श्रीमद्भास्कराचार्यप्रणीतः

सिद्धान्तशिरोमणिः

सूर्यप्रभा-हिन्दीटीका सहित

व्याख्याकार

पं० सत्यदेव शर्मा

चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

430

श्रीमद्भास्कराचार्यप्रणीतः

सिद्धान्तशिरोमणिः

'सूर्यप्रभा' हिन्दीटीका सहित

(गणिताध्यायः)

भाग-1

व्याख्याकार

पं० सत्यदेव शर्मा

एम०एस०सी० (गणित-आधुनिक खगोल गणित)

सी०ए०आई०आई०बी०

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

सिद्धान्तशिरोमणिः—पं. सत्यदेव शर्मा

ISBN : 978-93-80326-17-7 (सेट)

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263, 2335264
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण : 2019
₹ 1500 (1-2 भाग सम्पूर्ण)

वितरक :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 23286537, (मो.) 09811104365
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
ए.के. लिथोग्राफर, दिल्ली,

दो शब्द

भास्कराचार्य (द्वितीय) ने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की रचना अपने सभी पूर्ववर्त्ती आचार्यों के ग्रन्थों से नई-नई तथा प्रामाणिक बातों का संकलन करके की है। यह बात मुझे इस ग्रन्थ की प्रस्तुत भाषाटीका लिखने के क्रम में प्रतीत हुई। आचार्य ने ब्रह्मगुप्त को अपने ग्रन्थ-सिद्धान्त का मूल आधार बनाया है—इस बात का तो उन्होंने उल्लेख किया है; लेकिन अन्य जिन-जिन आचार्यों के ग्रन्थों से जिन-जिन सिद्धान्तों तथा सूत्रों को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया है, उसका उल्लेख उन्होंने कहीं भी अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। इस प्रकार उन्होंने अन्य आचार्यों की बातों को अपना बताकर प्रस्तुत किया है, यह बात इस ग्रन्थ के अध्ययन से पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है।

भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में ब्रह्मगुप्त के अतिरिक्त वराहमिहिर, वटेश्वर, लल्लाचार्य, आर्यभट (द्वितीय), श्रीपति, सूर्यसिद्धान्त, मुञ्जालाचार्य, भास्कर (प्रथम) आदि आचार्यों के ग्रन्थों से भी बहुत-सी नई बातें अपने ग्रन्थ में समाविष्ट की हैं। इसी कारण से भास्कराचार्य का यह ग्रन्थ अधिक विख्यात हुआ तथा ग्रन्थ के साथ-साथ भास्कराचार्य को भी प्रशंसा प्राप्त हुई। आचार्य ने स्वयं ही इस ग्रन्थ पर वासना-भाष्य लिखा, जिससे अन्य ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव कम हुआ तथा इनके पूर्व के ग्रन्थों को भी अनुपयोगी समझ लिया गया। साथ ही यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के स्थितिकाल में पूर्वलिखित ग्रन्थों की अनुपलब्धता भी रही। आज भी सम्पूर्ण वटेश्वर सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है और शायद इस बात के प्रयास भी नहीं किये जा रहे हैं कि इस ग्रन्थ को सामने लाया जाय। एक-दो लोगों ने अपने स्तर पर प्रयास जरूर किये हैं; लेकिन फिर भी अद्यावधि सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है। विशेष रूप से गोलाध्याय तो अपूर्ण ही है। इसके मात्र कुछ अध्याय ही प्राप्त हो सके हैं। श्रीपति का सिद्धान्तशेखर कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रेस से एक बार प्रकाशित हुआ था, जो वर्त्तमान समय में लाइब्रेरियों में भी उपलब्ध नहीं है। सौभाग्य से भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की उपलब्धता सार्वकालिक रही, जिसका उपयोग भी सदा-सर्वदा होता रहा। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में एक हजार से अल्प संख्या में ही श्लोक हैं, अतः शायद इसकी लघुता तथा स्वकृत टीका, दोनों ही इसकी उपलब्धता के कारण रहे। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त तथा वटेश्वर सिद्धान्त—दोनों ही बहुत विस्तृत सिद्धान्त हैं। आज भी अब तक प्राप्त सभी

भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में वटेश्वर-सिद्धान्त ही सबसे विस्तृत सिद्धान्त है। यदि सम्पूर्ण गोलाध्याय उपलब्ध हो जाता है तो निश्चित रूप से यह विशालतम सिद्धान्तग्रन्थ है, जिसमें और भी अनेकों सूत्रों का समावेश किया गया है। इनका अन्वेषण करके भारतीय गणित की अज्ञात वैभवता को उजागर किया जा सकता है। अनेकों आधुनिक गणित के सूत्र इस सिद्धान्त में समाविष्ट हैं, जिनको वर्त्तमान में उजागर करने की महती आवश्यकता है।

भारतीय सिद्धान्तगणित के सूत्रों को आधुनिक गणित के सूत्रों के रूप में परिवर्तित करने का कार्य वे ही ज्योतिर्विद कर सकते हैं, जिन्होंने आधुनिक तथा भारतीय एस्ट्रोनॉमी—-दोनों का ही अच्छा अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्त किया हो। ऐसे प्रयास कुछ विद्वानों ने किये भी हैं तथा अन्य ग्रन्थों की टीकायें भी अंग्रेजी भाषा में की गई हैं। भास्कराचार्य ने पूर्वोक्त ब्रह्मस्फुट, वटेश्वर, आर्यभट द्वितीय, श्रीपति आदि के प्रमुख ग्रन्थों में से प्रत्येक में से लगभग 70-80 प्रतिशत भाग अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में समाविष्ट किया है—ऐसा प्रतीत होता है। बहुत-सा भाग तो सभी ग्रन्थों में ही समान है। प्रस्तुत टीका में मैंने भास्करोक्त श्लोकों की हिन्दी व्याख्या के पश्चात् विशेष विवरण में अन्य प्रमुख-प्रमुख आचार्यों के ग्रन्थों के वे उद्धरण भी दिये हैं, जिनमें उन्होंने भास्करोक्त बात का ही प्रतिपादन किया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ पूर्ववर्त्ती आचार्यों के ग्रन्थों के सिद्धान्तों तथा सूत्रों का ही संकलनमात्र है। भास्कराचार्य ने स्वयं का कोई विशेष सूत्र या सिद्धान्त इस ग्रन्थ में प्रतिपादित नहीं किया है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में वेध से प्राप्त गणनाओं को ही पूर्व ग्रन्थों की अपेक्षा बदला है तथा जहाँ अन्य ग्रन्थों के स्वीकार अंकमानों में थोड़ा-थोड़ा अन्तर प्रतीत हुआ है, वहाँ ब्रह्मगुप्त के कहे अङ्कमानों को स्वीकार कर लिया है; लेकिन अन्य आचार्यों के मानों को त्यागने का कोई कारण नहीं बताया है।

प्रस्तुत टीका के द्वारा पाठकों को सिद्धान्तशिरोमणि के सिद्धान्तों के साथ-साथ अन्य पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों के सिद्धान्तों का भी अध्ययन स्वत: हो सकेगा; क्योंकि बहुश: स्थानों पर तो उन्हीं बातों को आचार्य ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में थोड़ा-बहुत घुमाकर अन्य प्रकार से तथा अनेक स्थानों पर तो लगभग यथावत् कह दिया है। इस व्याख्या के साथ ही नये अन्वेषणों के नये आयाम भी खुलेंगे, जिनमें अन्य आचार्यों द्वारा कथित अतिरिक्त सिद्धान्तों तथा सूत्रों के शुद्धता की परीक्षा भी की जा सकेगी। उनमें थोड़ा-बहुत सुधार करके नये सिद्धान्त व सूत्र भी बनाये जा सकेंगे तथा आधुनिक समय के अति सूक्ष्म तथा शुद्ध मानों से उनकी तुलना भी की जा सकेगी।

ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, मुञ्जाल, आर्यभट (दोनों) ने और भी सूत्र कहे हैं, जिनका भी अध्ययन कर शोध किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय गणित के सूत्रों का

संकलन स्पष्ट रूप से सांकेतिक रूप में करके उनकी आधुनिक समय के सूत्रों से तुलना करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि भारतीय गणित के सूत्र आधुनिक गणित के सूत्रों के कितने आसन्न तथा समरूप हैं। ऐसा पी. सी. सेऩगुप्ता, के. वी. शर्मा आदि आधुनिक ज्योतिष के मर्मज्ञों ने किया भी है। इसके लिये भारतीय ज्योतिष के विद्वानों को आधुनिक गणित के मूलभूत विषय; जैसे—सरल त्रिकोणमिति, गोलीय त्रिकोणमिति, दीर्घवृत्त आदि का भी अध्ययन करना होगा। इन विषयों के सम्बन्ध में इनकी उपयोगिता को म. म. बापूदेव शास्त्री तथा म. म. सुधाकर द्विवेदी जी ने भली-भाँति आँक लिया था; अत एव दोनों ने ही क्रमशः 'सरल त्रिकोणमिति' तथा 'दीर्घ-वृत्तलक्षणम्' आदि सरल ग्रन्थों की रचना भारतीय ज्योतिष के विद्वानों के लिये की थी; लेकिन इन ग्रन्थों का पठन-पाठन नगण्य-सा ही रहा; क्योंकि आधुनिक गणित के ज्ञाताओं से इन विषयों को समझने तथा पढ़ने में सहायता नहीं ली गई। मैंने इन दोनों ही ग्रन्थों की अतिशय महत्ता को ही अनुभव कर ही इनकी सरल हिन्दी भाषा में व्याख्या की है; साथ ही इनमें और भी अति आवश्यक तथा मूलभूत आधुनिक गणित एवं विज्ञान के सिद्धान्तों का सूक्ष्म रूप से उल्लेख करके इन ग्रन्थों की उपयोगिता तथा महत्त्व को और भी बढ़ाने का प्रयास किया है। ये (दोनों ही) ग्रन्थ हमारे भारतीय ज्योतिष के छात्रों तथा अध्यापकों के लिये अवश्यमेव ज्ञातव्य हैं। साथ ही इनका अध्ययन भारतीय विश्वविद्यालयों में भी अवश्यमेव होना चाहिये और इनमें उत्तीर्ण होना भी आवश्यक किया जाना चाहिये। इनका ज्ञान प्राप्त किये विना भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तों के क्रम में आगे का अन्वेषण अति दुर्लभ प्रतीत होता है। इनके अध्यापन के लिये आधुनिक गणित विषय के अध्यापक भी नियुक्त किये जा सकते हैं। वास्तव में देखा जाय तो भारतीय ज्योतिष गणित में आधुनिक गणित के भी अनेक सूत्र हैं; जिन्हें अलग रूप में कहा गया है; क्योंकि उस समय (आधुनिक) त्रिकोण-मिति आदि नामनिर्देशपूर्वक गणित का अलग से कोई शाखाग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। सभी सिद्धान्त रेखागणित पर आधारित हैं तथा आज की त्रिकोणमिति, दीर्घवृत्त आदि विषयों तथा इनके सूत्रों का आधार भी रेखागणित ही है। केतकी ग्रहगणित इसी बात का एक उदाहरण है। भारतीय ज्योतिष गणित का पाठ्यक्रम हमारे विश्वविद्यालयों में आज भी बहुत अल्प स्तर का है। आचार्य की परीक्षा तक लगभग सभी प्रमुख-प्रमुख प्राचीन सिद्धान्तग्रन्थों का अध्ययन पाठ्यक्रम में होना चाहिये। इसी दिशा में मेरे द्वारा की गई यह टीका एक कदम है। इसके द्वारा भास्कराचार्य (12वीं शताब्दी) सहित इनके पूर्ववर्त्ती प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा; साथ ही जो थोड़ा-थोड़ा विषय सबमें शेष रह जाता है, उसका अलग से शोध के रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

अभी भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनका दोहन हम अद्यावधि नहीं कर पाये हैं। इनमें प्रमुख रूप से ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, लल्लाचार्य, मञ्जात, माधवाचार्य, वराहमिहिर आदि हैं। प्राचीन ग्रन्थों की अनुपलब्धता तथा उनका अध्ययन-अध्यापन नहीं हो पाने के कारण ही भास्कराचार्य-रचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के सिद्धान्तों तथा सूत्रों को समीक्षाकारों ने उनकी स्वयं की ही मूल सोच को स्थान-स्थान पर कह दिया है; जबकि बाद में प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन करके कुछ विद्वानों ने यह भ्रम कुछ सीमा तक दूर किया। मेरी इस टीका में इस ओर कुछ और कदम आगे बढ़ाने का प्रयास मैंने किया है, जो सम्भवत: सभी विद्वज्जनों को प्रसन्नता प्रदान करेगा।

प्राचीन भारतीय ज्योतिष के दुर्लभ ग्रन्थों को सर्वसुलभ कराना भारत सरकार की भी जिम्मेदारी बनती है। कतिपय प्राचीन ग्रन्थों की कुछ आधुनिक खगोलविदों ने अंग्रेजी भाषा में व्याख्यायें की हैं, लेकिन वे उन्हीं के स्तर के लोगों के समझने तथा आगे अन्वेषण के लिये अधिक सहायक हो सकती हैं। उन व्याख्यायित ग्रन्थों के अध्ययन-क्रम में भारतीय ज्योतिष गणित के विद्वानों को भाषा, गणित की विविधता तथा उच्च स्तर के कारण अत्यधिक परेशानी का अनुभव होना स्वाभाविक है। अत: यह भी आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों की हिन्दी में भी व्याख्यायें की जायँ, जिससे इनके अन्वेषण तथा अध्ययन करने वालों की संख्या में वृद्धि हो सके। यत: इन ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में भी जो व्याख्यायें प्राचीन आचार्यों ने समय-समय पर की हैं, वे इतनी क्लिष्ट हैं कि उन्हें संस्कृत के ही छात्रों एवं विद्वानों द्वारा समझना मुश्किल हो जाता है; फिर सामान्य लोगों का तो कहना ही क्या है? हिन्दी एक ऐसी सर्वजन-सामान्य भाषा है, जिसको अंग्रेजी, संस्कृत तथा अन्य भाषायें जानने वाले भी जानते तथा समझते हैं। यह भारत की राष्ट्रभाषा भी है। आध्युनिक युग के लिये एक बात और भी आवश्यक है कि व्याख्याओं का प्रणयन सरल भाषा में होने के साथ-साथ पूर्ण रूप से छात्रों को समझ में आने लायक किया जाना चाहिये; लेकिन इसके लिये अध्ययन करने वालों का स्वयं का आधार भी सुदृढ़ होना आवश्यक है।

'लीलावती' को भी आज के समय के अनुरूप लिखने तथा व्याख्यायित करने की आवश्यकता है। लीलावती में कथित सिद्धान्तों तथा आधुनिक गणित के सिद्धान्तों को पढ़ने वाले छात्रों को इन दोनों में समानता या नवीनता दृष्टिगोचर होनी चाहिये। लीलावती में कहे गये तथा आधुनिक गणित के सिद्धान्त लगभग समान ही हैं, बस कहने का ढंग थोड़ा अलग है। कुछ ही बातें भिन्न हो सकती हैं, जिनको स्पष्ट रूप से व्याख्या में प्रकाशित किया जाना चाहिये। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थों में सरल-सी बात को भी घुमा-फिरा कर क्लिष्ट बनाकर कहा है, जिससे उनकी बातें महान् तथा कठिन प्रतीत होती हैं।

ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, भास्कराचार्य, लल्लाचार्य आदि आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन किया है तथ कुछ ने अलग से दूषणाध्याय ही बना दिया है एवं अपने पूर्वाचार्यों के लिये अनेक प्रकार के अपमानजनक शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसा कि भास्कराचार्य ने विशेष रूप से लल्लाचार्य के लिये अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर किया है। अत: सिद्धान्तग्रन्थ के 'लक्षणों' में 'दूषणाध्याय' स्वत: ही जुड़ जाता है और यह भी सिद्धाम्त ग्रन्थ का एक आवश्यक लक्षण कहा जा सकता है।

यह तो आवश्यक है कि परवर्ती आचार्य इस बात को स्पष्टता से प्रकाशित करें कि उनके पूर्ववर्त्ती आचार्यों के सिद्धान्तों में क्या कमियाँ तथा त्रुटियाँ थीं, जिन्हें उन्होंने किस प्रकार अपने ग्रन्थ में सही किया। लेकिन पूर्ववर्त्ती गुरुतुल्य आचार्यों के लिये अपमानजनक शब्दों का उपयोग करना विशेष रूप से भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है। गुरुतुल्य पूर्वाचार्यों के शास्त्रों का ही तो अध्ययन करके शास्त्र को जाना जाता है, फिर उन्हीं गुरुओं को अपमानित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। भास्कराचार्य ने पहले लल्लाचार्य के शिष्यधीवृद्धि ग्रन्थ की टीका की तथा उसमें आचार्य के सिद्धान्तों की प्रशंसा की; लेकिन जब स्वयं का सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ लिखा तो सबसे ज्यादा लल्लाचार्य के प्रति ही उन्होंने अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया। यह तथ्य इस व्याख्याग्रन्थ के अध्ययनक्रम में स्थान-स्थान पर स्वष्ट हो जाती है।

भारतीय ज्योतिष के आचार्यों की एक विशिष्ट बात यह रही है कि वे जिस पूर्वाचार्य को लक्ष्य बना लेते थे, उसी की बातों के आधार पर अपने ग्रन्थ की रचना करते थे। चाहे अन्य किसी आचार्य की बातें कितनी ही सही, तर्कपूर्ण तथा ग्रहण करने योग्य क्यों नहीं हों? यह कितनी उचित तथा सही दिशा है, विद्वान् लोग स्वयं विचार करें। लगभग सभी आचार्यों ने एक आचार्य को लक्ष्य बना कर दूसरे की बातों में दूषण खोजने का कार्य ही अपने ग्रन्थ में किया है; लेकिन किसी अन्य आचार्य के मत को भी स्वीकार करके अपने ग्रन्थ में उसका समावेश करते समय किसी ने भी उस आचार्य का उल्लेख अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। भास्कराचार्य ने भी इसी परिपाटी का अनुसरण किया है। आचार्यों ने किसी आचार्यविशेष को दूषण देते समय उसके द्वारा कही गई सही बात के लिये भी तथा नहीं की गई बात के लिये भी दूषण कह दिया है। विचित्र बात यह है कि किसी भी ग्रन्थ में किसी भी आचार्य की सराहना नहीं की गई है, न ही उस आचार्य का ग्रन्थ में कहीं उल्लेख ही किया गया है। यदि आचार्य ऐसा नहीं करते तो आज यह बात स्पष्ट रूप से सभी ग्रन्थों में लिखी हुई मिलती कि किस आचार्य का सिद्धान्त तथा सूत्र सही मान कर ग्रन्थ में स्वीकार किया गया है। इसी कारण से यह गलत धारणायें उत्पन्न होती हैं तथा हुई हैं कि कौन-सी बात किस

आचार्य द्वारा कही गई है? यह निर्णय व्याख्याकार को अथवा पाठक को स्वयं को ही करना पड़ता है और जब तक सारे ग्रन्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन नहीं किया गया हो, यह पता लगाना बहुत मुश्किल होता है।

मेरी इस हिन्दी टीका में अन्य कई ग्रन्थों के उद्धरण होने से अन्य ग्रन्थों की व्याख्या भी सुगम हो सकेगी तथा उनके श्लोकों का अर्थ सुगमता से जाना जा सकेगा; साथ ही उनकी समानता-असमानता का भी सहजता से पता लग सकेगा।

आज के समय में ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, वटेश्वराचार्य का वटेश्वर सिद्धान्त तथा श्रीपति का सिद्धान्तशेखर, इन ग्रन्थों का पुन: गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। इनमें अभी भी भारतीय ज्योतिर्गणित के बहुत-से धरोहर सुरक्षित हैं, जिनका दोहन करना आवश्यक है। इन ग्रन्थों को सर्वसुलभ कराने की आवश्यकता है तथा इन पर टीकाओं अथवा व्याख्याओं का प्रणयन किया जाना भी बहुत आवश्यक है। इनका अध्ययन-अध्यापन आचार्य तथा उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी रखना आवश्यक है तथा इन पर अन्वेषण कार्य भी गहराई से किया जाना चाहिये, जिसमें कि आधुनिक ज्योतिर्गणित के सिद्धान्तों तथा सूत्रों से तुल्यात्मक अध्ययन भी होने चाहिये। इन ग्रन्थों की व्याख्या तथा अन्वेषण के लिये सभी प्रकार के उपयुक्त विद्वानों के समूह या बोर्ड बनाये जाने चाहिये, जो इस कार्य को उच्च स्तर पर सम्पन्न कर सकें; तभी भारतीय गणित ज्योतिष को सर्वसमृद्ध बनाया जा सकता है।

आर्यभट प्रथम (499 AD) से लेकर भास्कर द्वितीय (1150 AD) तथा इससे भी परवर्ती आचार्यों; जैसे—मुनीश्वर (1620 AD) में परस्पर ज्योतिर्गणित के विभिन्न तत्त्वों को ज्ञात करने के नियमों में अनेक स्थानों पर समानता पाई जाती है। सबसे प्राचीन विचार तथा सिद्धान्त वेदाङ्ग ज्योतिष के समय में प्रतिपादित किये गये थे। इसी प्रकार ब्रह्म, वशिष्ठ, पैतामह, रोमक तथा पौलिश सिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में समाहित किये गये थे। यहाँ हम निम्नलिखित भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में परस्पर समानतायें, जो हमें प्राप्त होती हैं, उनका उल्लेख करते हैं। ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य समानतायें इस हिन्दी टीका के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेंगी

1. आर्य—आर्यभटीय—आर्यभट I-499 A.D.
2. ब्र.स्फु.सि.—ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त—ब्रह्मगुप्त-628 A.D.
3. खं. खा.—खण्डनखण्डखाद्य—ब्रह्मगुप्त 628 A.D.
4. क.कु.—कर्णकुतूहल—भास्कर II-1150 A.D.
5. ल.भा.—लघुभास्करीय—भास्कर I-522 A.D.
6. म.भा.—महाभास्करीय—भास्कर I-522 A.D.
7. म.सि.—महासिद्धान्त—आर्यभट II-950 A.D.

8. पं.सि.—पञ्चसिद्धान्तिका—वराहमिहिर-505 A.D.
9. शि.धी.वृ.—शिष्यधीवृद्धि—ललचार्य-598 A.D.
10. सि.शे.—सिद्धान्तशेखर—श्रीपति-1039 A.D.
11. सू. सि.—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त—6 या 7वीं शताब्दी
12. सि.शि.—सिद्धान्तशिरोमणि—भास्कर II-1150 A.D.
13. सि. सा.—सिद्धान्तसार्वभौम—मुनिश्वराचार्य-1620 A.D.

इन सिद्धान्तों में निम्नलिखित सिद्धान्त गणित के तत्त्व ज्ञात करने में समानतायें पाई जाती है—

1. मध्यम सूर्य, बुध तथा शुक्र ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि, म.सि., सि.शे., सि.शि., सि.सा, क.कु.

2. चन्द्रमा का पात ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अध्याय 25 श्लोक 35, म.भा.I-33, शि.धी.वृ. I, i-57 (ii)

4. बुध का मध्यम शीघ्रोच्च ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अध्याय 25 श्लो. 34; म. भा. I-36; शि.धी.वृ I, i-50 (ii)

5. मध्यम शनि ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ. 25 श्लो. 33, शि.धी.बृ. I, i 52 (i); म.भा. I-37

6. मध्यम मंगल ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ.25 श्लो.33, शि.धी.बृ. I-i-50 (i), म.भा. I-38

7. मध्यम गुरु ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ.25 श्लो.33, शि.धी.बृ. I-i-50 (i), म.भा. I-38

8. किसी स्थान की प्रधान मध्याह्न रेखा (Prime Meridian) से दूरी ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. भाग I शलेक 36; शि.धी.बृ. I-57-58 (i), ल.भा. I-25-26, सि.सा. I-143-144

9. दिग्ज्ञान करने में—

ब्र.स्फु.सि. III-1; म.भा. III-2; सू.सि. III-1-4, ल.भा. III-1; शि.धी.बृ. I-iii-1; म.सि. IV-1-2; सिशे. IV 1-3 सि.शि. I-iii 8-9 प्रकारान्तर नियम ब्र.स्फु.सि. III-2; म.भा. III-3, पं.सि.अ. 10-14-16; शि.धी.वृ. I-III-2; सि.शे. IV-4

10. सूर्य के अक्षांश और अक्ष कोटि (Colatitude) तथा नतांश एवं उन्नतांश

ज्ञान करने में—

ब्र.स्फु.सि. III-10; म.भा. III-5; सू.सि. III-13-14; ल.भा. III-2-3; शि.धी.वृ. I-iii 4-5; सि.शे. IV-7; सि.शि. I-iii-18

11. क्रान्ति; अहोरात्रवृत्त त्रिज्या (Day-radius) क्षितिजज्या (Earth Sine) तथा चर ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. II-55; सू. सि. II-28; ल.भा. II-16; शि.धी.बृ. I-ii (17); सि.शे.III

12. अक्षदृक्कर्म ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IV-4; म.भा. IV-1-2; शि.धी.बृ. I-vii 3 (ii); म.सि. VII-4; सि.शे. IV-7

13. अयन हक्कर्म ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IV-3, X-17; सुधारा गया म.भा. VI-2 ii(3); शि.धी.बृ. I-vii 2-3 (i); सि.शे. IV 4-5; समान म. सि. VII-2-3; अधिक शुद्ध सि.शे. I VIII-4-5

14. चन्द्रोदय ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VI-6; X-32; म.भा. VI-4-5(i): पं.सि. V-3; शि.धी.बृ. I-VII-5; सि.शे. VI 8(i)-13

15. चन्द्र की कलायें (Phases) ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VI-11(ii)-12; म.भा. VI-5(ii)7; शि.धी.बृ. I-IX-12

16. चन्द्र बिंब केंद्र की क्रांति ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VII-5; म.भा. VI-8; शि.धी.बृ. I VIII-2; सि.शे. X-7; अधिक शुद्ध नियम सि.शि. I-vii 3 और 13

17. मास के प्रथम चतुर्थांश में चन्द्रशृंगोन्नति का परिलेखन—

ब्र.स्फु.सि. VII-7-10; म.भा. VI-13-17; शि.धी.बृ. I-ix; सि. शि. I-ix

18. सूर्य से ग्रहों की अल्पतम दूरी जब वे दृश्य होते हैं—

ब्र.स्फु.सि. VI 6; X-32; म.भा. VI-44; शि.धी.बृ. I vii-5(ii) सि.शे. IX-8(i)-12

19. जब दो ग्रहों की युति (Conjunction) हो तब उनके स्थान (Longitude) तथा युति का समय ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IX-5-6; म.भा. VI 49-51; शि.धी.बृ. Ix 7-9(i) सि.शे.-XI12-12

20. जब दो ग्रहों की युति हो तब उनके बीच की दूरी ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. IX-11; म.भा. VI-54; शि.धी.बृ. I-x-11; सि.शे. XI-10

21. मध्याह्न शंकुछाया के द्वारा मध्यमस्पष्ट सूर्य ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अ.14 श्लो.28; III-61-62; म.भा. VII-5; सि.शि. I ii-45

22. कोज्या ज्या मान से उसका चाप ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. II-11; म.भा. VIII-6; सू.सि. II-33; शि.धी.बृ. I-ii-13; सि.शे. III-16; सि.शि. I-ii 11(ii)-12(i)

इनके अतिरिक्त अन्य भी समानतायें दृगोचर होती हैं।

ब्रह्मगुप्त वेधविधि को अच्छी प्रकार जानते थे तथा अपने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में अनेक विवेचनात्मक विषय तथा अनेक तरह के तात्त्विक विचार भी प्रकट किये हैं। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की भाँति ही वटेश्वर का वटेश्वरसिद्धान्त है। ये दोनों ही महारथी आचार्य अपूर्व प्रतिभा से सम्पन्न हैं। इनके परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं के लिखे हुये दोनों महान् ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों का ही प्रतिपादन अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। यह बात इन दोनों ही महान् ग्रन्थों का आद्योपान्त अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाती है। वटेश्वराचार्य ने अहर्गण का आनयन अनेक प्रकार से किया है। इसके लिये अलग से एक सम्पूर्ण अध्याय ही लिख दिया है। श्रीपति ने भी इन्हीं के अनुसार अनेक प्रकार से अहर्गण का आनयन किया है। वटेश्वर ने लघ्वहर्गण का आनयन भी किया है तथा ब्रह्मगुप्त ने भी किया है; लेकिन सिद्धान्तशेखर में इसका उल्लेख नहीं मिलता। भास्कराचार्य ने भी लघ्वहर्गणानयन किया है। यद्यपि यह आनयन ठीक नहीं है, फिर भी एक अपूर्व विषय है। मध्यमाधिकार में बहुत ही उत्तम प्रश्नाध्याय है तथा ब्रह्मस्फुट में भी इसी तरह का है। लेकिन इनसे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि ये प्रश्न वटेश्वराचार्य के मौलिक हैं अथवा ब्रह्मस्फुट के आधार पर कहे गये हैं।

स्पष्टाधिकार में ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने वृत्त के एक पाद में 225 कला वृद्धि चापों की 24 ज्याओं के मान साधन किये हैं, जबकि वटेश्वराचार्य ने छप्पन (56) कला पन्द्रह (15) विकला की छियानबे (96) ज्यायें कही है। इष्टचाप के आनयन की विधि एक प्रकार की ही है। वटेश्वर के शेषांशज्यानयन प्रकार को देखकर भास्कराचार्य ने भोग्यखण्ड का स्पष्टीकरण वटेश्वराचार्य के सदृश ही कहा है। वटेश्वर के शेषांशज्यानयन में यदि गतैष्य ज्यान्तरार्ध के स्थान पर गतैष्यखण्ड के अन्तर के आधे तथा प्रथम चाप के स्थान पर दशांश ले लिया जाय तो वटेश्वर तथा भास्कराचार्य दोनों के प्रकार तुल्य ही होते हैं, उनमें भेद नहीं रहता। शेषांशज्या शब्द के द्वारा शेष चापसम्बन्धी ज्यावृद्धि समझनी चाहिये। यह विषय सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने नहीं

कहा है। अधिकांश स्थानों पर श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वर के द्वारा कथित विषय को ही पुनः कहा है। भास्कराचार्य ने जो भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण किया है, उसका मूल ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तोक्त अथवा वटेश्वराचार्योक्त शेषांश ज्यानयन ही है। यह उनका अपना प्रकार नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिये। भास्कराचार्य की विधि वटेश्वर से सूक्ष्म होते हुये भी स्थूल ही है।

गणितसाधित स्वगोलस्थ स्पष्टग्रह में जिस संस्कार को करने से ग्रह हमें प्रत्यक्षीभूत होते हैं, उसी संस्कार को नतकर्म कहा गया है। स्वयं भास्कराचार्य ने कहा है कि उनके द्वारा सूर्य तथा चन्द्र में किया गया नतकर्म संस्कार का आनयन ब्रह्मगुप्त-सम्मत है। यद्यपि इन आचार्यों ने अद्भुत नवीन विषय कहा है, लेकिन उनके आनयन ठीक नहीं हैं, फिर भी आदरणीय अवश्य हैं।

अभी तक यह धारणा थी कि तात्कालिक गति-सिद्धान्त का ज्ञान सर्वप्रथम भास्कराचार्य को हुआ था; लेकिन उनसे भी प्राचीन वटेश्वराचार्य को इसका ज्ञान पहले से था, यह बात भास्करकथित भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण, मूलभूत वटेश्वरोक्त शेषांशज्यानयन देखने से स्फुट हो जाती है।

ज्या के विना इष्टज्या का चापानयन वटेश्वर का है तथा उनसे ही लेकर श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में इसे लिखा है। लेकिन यही प्रकार भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय/लघुभास्करीय में भी दिया है।

भुजकोटिज्यादिसाधन के विना अहर्गण से ही ग्रहस्पष्ट करने की विधि वटेश्वरसिद्धान्त में 'स्वोच्चनीयपरिवर्त्तशेषकाद् .... परिस्फुट' द्वारा कही गई है। यह विषय ब्रह्मस्फुट तथा सिद्धान्तशेखर में भी उल्लिखित है; लेकिन भास्कराचार्य ने इसका उल्लेख नहीं किया है। श्रीपति ने यह विषय अपने सामने आदर्श रूप में उपस्थित वटेश्वरसिद्धान्त तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त से ही ले लिया है तथा इन दोनों ही सिद्धान्तों में इस विषय में जो कुछ भी कहा गया है, उससे विशेष कुछ नहीं कहा है। वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में अध्याय (1) विषवच्छायानयनविधिः, अध्याय (2) लम्बाक्षज्यानयनविधि द्वितीयः, अध्याय (3) क्रान्तिज्यानयनविधि; अध्याय (4) द्युज्यानयनविधि; अध्याय (5) कुज्यानयनविधि; अध्याय (6) अग्रानयनविधि; अध्याय (7) स्वचरार्धप्राणज्यासाधनविधिः; अध्याय (8) लग्नादिविधि; अध्याय (9) द्युदलभादिविधि; अध्याय (10) इष्टच्छायाविधि; अध्याय (11) सममण्डलप्रवेशविधि; अध्याय (12) कोणशङ्कुविधि; अध्याय (13) छायातोऽर्कानयनाद्यविधि; अध्याय (14) छायापरिलेखनविधि; अध्याय (15) प्रश्नाध्यायविधि—इतने अध्याय दिये हैं। इनमें जिस प्रकार विषयों का वर्णन किया गया है, उससे वटेश्वराचार्य के अद्भुत पाण्डित्य का परिचय मिलता है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त तथा सिद्धान्तशेखर में कोणशङ्कु-साधन की एक ही विधि लिखित है, लेकिन वटेश्वर-

सिद्धान्त में अनेक प्रकार से कोणशङ्कु-साधन किया गया है। श्रीपति ने भी अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक प्रकार से कोणशङ्कु-साधन किया है। भास्कराचार्य द्वारा किया गया शङ्कुसाधन श्रीपति तथा वटेश्वरोक्त प्रकार से ही किया गया है। भास्करोक्त कोणशङ्कुसाधन का खण्डन उत्तरगोल में म. म. सुधाकर द्विवेदी ने किया है तथा दक्षिण गोल में खण्डन म. म. बापूदेव शास्त्री ने किया है। भास्करोक्त विधि का इन दोनों आचार्यों द्वारा खण्डन हो जाने से मूलभूत वटेश्वरसिद्धान्तोक्त तथा श्रीपत्युक्त कोणशङ्कु आनयन का भी खण्डन स्वत: ही हो जाता है।

त्रिप्रश्नाधिकार में वटेश्वराचार्य ने जो अनेक प्रकार से दिग्ज्ञान कहा है, उनमें से कुछ अन्य ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। भाभ्रम के सम्बन्ध से दिग्ज्ञान की वटेश्वराचार्य की विधि के अनुरूप ही श्रीपति ने भी विधि कही है। वटेश्वर ने सूर्यसिद्धान्त तथा लल्लाचार्य के अनुरूप विधि छायाभ्राभ्रमण मार्गज्ञान के लिये बताई है। वटेश्वराचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार में जो बहुत से प्रश्न कहे हैं, उनमें से बहुत से प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्तशेखर में दिये गये हैं। चन्द्रग्रहणाधिकार में सूर्य तथा चन्द्रमा के स्फुट कलाकर्णसाधन प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि में एक समान हैं। वटेश्वरसिद्धान्त का प्रकाशन होने के पश्चात् इसके लिये भास्कराचार्य को अब तक दिये जा रहे श्रेय की धारणा दूर हो जाती है। भूभा (राहु) बिम्बानयन जिस प्रकार वटेश्वराचार्य का है, उसी प्रकार श्रीपति तथा भास्कराचार्य ने भी किया है।

वटेश्वरसिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तगणित का सबसे विशाल तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दसवीं शताब्दी तक के आचार्यों द्वारा प्रयुक्त समस्त विधियों का समावेश है तथा यह बहुत सीमा तक मूल है एवं इसमें स्वयं वटेश्वर द्वारा प्रतिपादित नवीन विधियों तथा युक्तियों का समावेश है। वटेश्वर के सिद्धान्त पर्सियन विद्वान् अलबरुनि को भी पूर्ण रूप से ज्ञात थे, क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर वटेश्वर के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

वटेश्वरसिद्धान्त के गोलाध्याय के पाँच अध्याय ही अबतक प्राप्त हो सके हैं जिनका प्रकाशन National Commission for the compilation of History of Science in India द्वारा वटेश्वरसिद्धान्त तथा गोलाध्याय एक ही खण्ड में किया गया है।

भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में श्लोकसंख्या और भी कम हो सकती थी; लेकिन आचार्य ने गोलाध्याय में पूर्व के अनेक श्लोकों को ज्यों का त्यों दुबारा कहा है तथा कई बातों को दुबारा से थोड़ा अन्य प्रकार से कहा है। इन सबकी आवश्यकता नहीं थी। यह पिष्टपेषण दोष है, जो अन्य किसी आचार्य ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। शायद आचार्य ने अपने ग्रन्थ के श्लोकों की संख्या बढाने की दृष्टि

से ही ऐसा किया है। अपने इस दोष न्यूनता प्रदान करने के लिये ही आचार्य ने प्रश्नाध्याय में कहा है कि क्योंकि लोग इस प्रश्नाध्याय को ही विशेष रूप से पढ़ेंगे; अत: उन्होंने पूर्व में कही बातों को पुन: प्रश्नाध्याय में कह दिया है। यह बात समझ में नहीं आ सकती; क्योंकि इस प्रकार तो समस्त अध्यायों को दुबारा प्रश्नरूप में कहा जा सकता है, जो उचित नहीं है। मेरा गुरु, मेरी अष्टदेवी माँ भगवती नवदुर्गा ही हैं, जिनका ध्यान करके ही मैंने भारतीय ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया है। आधुनिक एस्ट्रोनॉमी का ज्ञान प्राप्त होने के कारण ही भारतीय ज्योतिष को समझने में माँ की कृपा से मुझे कहीं भी अधिक कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ। आधुनिक गणित एवं एस्ट्रोनॉमी के अध्यापक ही मेरे गुरु हैं।

प्रस्तुत व्याख्या हिन्दी में ही बहुत विस्तृत हो गई है; अत: इसमें आधुनिक ज्योतिष (Astronomy) के सूत्रों के साथ इस मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तों की तुलना मैंने नहीं की है। यदि मैं ऐसा करता तो यह व्याख्या अत्यधिक विस्तृत होने के साथ-साथ सम्भवत: क्लिष्ट भी हो सकती थी तथा छात्रों के लिये भ्रमित करने वाली भी हो सकती थी। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में कथित तथा सङ्कलित सिद्धान्तों का आधुनिक गणित से तुलनात्मक अध्ययन अलग से व्याख्या में किया जा सकता है, जिसमें उपपत्ति आधुनिक Astronmy तथा आधुनिक गणित के आधार पर करनी होगी। जो आधुनिक एस्ट्रोनॉमी जानते हैं, उन्हें केवल भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त तथा सूत्रों को ही जानने की आवश्यकता है। उसके आधार पर वे स्वयं ही उनकी परस्पर तुलना कर सकते हैं। अत: इस व्याख्या में केवल भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तों तथा सूत्रों की व्याख्या भारतीय गणित के आधार पर करके ही बताई गई है। इससे यह जानना सम्भव हो सकेगा कि भारतीय गणित के नियमों के अनुसार प्राप्त सूत्र आज के सूत्रों से कितने स्थूल हैं अथवा कितने तुल्य हैं। इस बात को जानकर भारतीय ज्योतिष के सूत्रों को और शुद्ध किया जा सकता है। सदियों पूर्व गणित की विधाओं का विकास नहीं था; फिर भी जिस सरलता से भारतीयों ने भी ये गणनायें की हैं, वे अचम्भित करने वाली हैं। ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार को मैंने सरल तथा समझ में आने लायक बनाने का प्रयास किया है। इसमें तीन समीकरण (क), (ख), (ग) दिये हैं तथा दो गोल के चित्र दिये हैं, जिनसे कुज्या, द्युज्या, चरज्या, हति, इष्टहति, सूत्र, इष्टसूत्र, इष्टशङ्कु, महाशङ्कु आदि को स्पष्ट रूप से गोल में देखा जा सकता है तथा उन्हें समझा जा सकता है। इनके आधार पर ही अन्य समकोण त्रिभुज तथा अक्षक्षेत्र बना कर आचार्य ने जो अनुपात किये हैं, वे भी समझ में आ सकते हैं।

सदियों से ज्ञान का आदान-प्रदान तो होता ही रहा है। भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान अपने-अपने देशों की सीमाओं का अतिक्रमण कर परस्पर समन्वय करते ही रहे हैं।

श्री कमलाकर भट्ट जी का कहना कि 'भास्कराचार्य द्वारा मात्र ज्या उत्पत्ति का सूत्र ही कहना तथा उनकी उपपत्ति नहीं कहना' इस बात की ओर इशारा करता है कि ये सूत्र आचार्य के स्वयं के नहीं थे। बाहर के अन्य आचार्यों द्वारा प्राप्त सूत्रों को जान कर उन्होंने केवल उन्हें कह भर दिया है। यह बात सत्य ही प्रतीत होती है; क्योंकि जब आचार्य ने अन्य अध्यायों के सभी श्लोकों की उपपत्ति कही है तो ज्योत्पत्ति वासना में कथित सूत्रों की उपपत्ति क्यों नहीं कही? यदि आचार्योक्त सूत्र स्वयं के होते तो वे और भी सूत्र ज्ञात कर सकते थे।

विद्वानों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इस व्याख्या में जहाँ-कहीं बुद्धिभ्रम के कारण अथवा अन्य किसी कारणवश कोई त्रुटि रह गई हो तो उसे स्वयं ठीक कर लें तथा इसके बारे में (तत्तत् स्थलों की स्वकृत सही व्याख्या से) व्याख्याकार या प्रकाशक को अवगत कराने की महती अनुकम्पा कर ग्रन्थ को सर्वजनोपयोगी बनाने का कष्ट करें।

भास्कराचार्य से पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के सभी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो पाने के कारण तथा उनका पूर्ण सूक्ष्म अध्ययन मेरे द्वारा नहीं हो पाने के कारण मैं और अधिक उद्धरण यहाँ नहीं दे सका हूँ। विद्वान् आचार्य इस कमी को स्वयं पूर्ण कर सकेंगे, मुझे ऐसा विश्वास है।

मंगलाचरण आदि के कुछ श्लोकों की व्याख्या अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझ कर मैंने बहुत सूक्ष्म में ही उनकी व्याख्या की है। पुस्तक के विषयसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण श्लोकों को ही इस व्याख्या में अधिक महत्त्व दिया गया है।

पं. सत्यदेव शर्मा

विषयसूची

विषया: **पृष्ठाङ्का:**

गोलाध्याय:

गोलप्रशंसा

गोलस्वरूपप्रश्नाध्याय:

भुवनकोश:

विषया: **पृष्ठाङ्का:**

मध्यगतिवासना

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

छेद्यकाधिकारः

विषयाः पृष्ठाङ्काः

गोलबन्धाधिकारः

त्रिप्रश्नवासना

ग्रहणवासना

उदयास्तवासना

विषया:	पृष्ठाङ्का:

शृङ्गोन्नतिवासना

यन्त्राध्याय:

विषया: **पृष्ठाङ्काः**

ऋतुवर्णनाध्यायः

प्रश्नाध्यायः

●

गणिताध्यायः

मध्यमाधिकारः

(अ) कालमानाध्याय

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतां मनोवाक्कायैर्नमस्कृत्य तस्याः सकाशादभीष्टार्थस्याशंसनमाह—

> यत्र त्रातुमिदं जगज्जलजिनीबन्धौ समभ्युद्गते
> ध्वान्तध्वंसविधौ विधौतविनमन्निः शेषदोषोच्चये।
> वर्त्तन्ते क्रतवः शतक्रतुमुखा दीव्यन्ति देवा दिवि
> द्राङ्नः सूक्तिमुचं व्यनक्तु स गिरं गीर्वाणवन्द्यो रविः ॥१॥

सूर्य-प्रभा टीका— भगवान भास्कर हमारी वाणी को अर्थपूर्ण शब्दों से पूर्ण वाक्य शैली प्रदान करें। जो सूर्य देव उदित होकर इस विश्व की रक्षा करते हैं तथा जगत का अंधकार दूर करते हैं एवं जो उनकी प्रार्थना करने वालों के पापों का नाश करते हैं, जिनके उदित होने पर पंचमहायज्ञ आदि कर्म संस्कार प्रवृत्त होते हैं जिससे अग्नि के मुख में आहुतियाँ देने से इन्द्रादि देवता अपना यज्ञ भाग (अंश) ग्रहण करके प्रसन्न होते हैं और प्राणियों को स्वर्ग प्रदान करते हैं। ऐसे भगवान सूर्य देवताओं से भी वंदित होते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा भी रात्रि में उदित होकर रात्रि का अंधकार दूर करता है तथा उसको देखकर उसकी रश्मियों से उल्लासित होकर जलकुमोदिनी खिल उठती है। सूर्य चन्द्रमा को विनम्र नमस्कार करने से शेष दोषों का नाश हो जाता है। इस प्रकार ग्रंथारंभ में आचार्य ने अभीष्ट देवता को मनोवाक्यों द्वारा नमस्कार किया है तथा कामना की है कि अभीष्ट की प्राप्ति हो तथा विघ्न शांत हों। इस प्रकार शुभ की कामना की है।

इदानीं पूर्वाचार्याणां प्रशंसनं सविनयमाह—

> **कृती जयति जिष्णुजो गणकचक्रचूडामणि-**
> **र्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः।**
> **वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः**
> **कृती भवति मादृशोऽप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः ॥२॥**

पूर्वाचार्यों की प्रशंसा में सविनय—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रंथ रचना से पूर्व आचार्य ने सर्वप्रथम वराहमिहिर

आदि पूर्ववर्ती आचार्यों की स्तुति करके और उनका स्मरण करके उनके प्रति आचार्य की गहरी श्रद्धा उक्त पद्य से सुस्पष्ट रूप में की है। आचार्य कहते हैं कि मैं, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों के समान गणक चूड़ामणि आचार्यों की विस्तृत सद्कृतियों का ठीक प्रकार से अवलोकन करके अपनी अल्प बुद्धि से मृदु अर्थात् सरल तथा आनन्द देने वाले तन्त्र की रचना करता हूँ।

इदानीमात्मनः कर्तृत्वारम्भणीयस्य च सम्बन्धार्थमाह—

कृत्वा चेतसि भक्तितो निजगुरोः पादारविन्दं ततो
लब्ध्वा बोधलवं करोति सुमतिप्रज्ञासमुल्लासकम्।
सद्वृत्तं ललितोक्तियुक्तममलं लीलावबोधं स्फुटं
सत्सिद्धान्तशिरोमणिं सुगणकप्रीत्यै कृती भास्करः।।३।।

उनसे संबंध बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— निज गुरु चरणारविन्द की ध्यानपूर्वक भक्ति करने से आचार्य को सुमति की प्राप्ति तथा प्रज्ञा की वृद्धि हुई है। आचार्य अज्ञान के मैल को धोने के लिए, सद्वृत्ति गणक की प्रसन्नता के लिए रुचिकर, आनन्द देने वाले सत् स्फुट गणना करने वाले तथा युक्तियुक्त ''सिद्धान्त शिरोमणि'' नामक ग्रंथ की रचना कर रहे हैं।

इदानीं ग्रन्थस्यानारम्भकारणं विशिष्टमारम्भे कारणान्तरं पूर्वार्धेनाभिधायोत्तरार्धेन सुजनगणकान् प्रार्थयन्नाह—

कृता यद्यप्याद्यैश्चतुरवचना ग्रन्थरचना
तथाऽप्यारब्धेयं तदुदितविशेषान् निगदितुम्।
मया मध्ये मध्ये त इह हि यथास्थाननिहिता
विलोक्याऽतः कृत्स्ना सुजनगणकैर्मत्कृतिरपि।।४।।

ग्रंथारंभ का विशिष्ट कारण श्लोक के पूर्वार्ध में कहकर उत्तरार्ध में सुजनगणकों से प्रार्थना की है—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि वे यद्यपि आरंभ से ही ज्ञानपूर्ण चतुर वचनों से श्लाघ्य ग्रंथरचना करेंगे, लेकिन फिर भी वे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा कही गई विशेष बातों का उल्लेख उनके इस ग्रंथ में बीच-बीच में यथा स्थान पर करते रहेंगे, जिससे सुजन (सुविज्ञ) गणक उनका भी अवलोकन कर सकेंगे। तथा कहा है कि मेरे द्वारा रचित इस ग्रंथ में सुजनगणों को पूर्वाचार्यो से भिन्न (विपरीत) कई बातें भी स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होंगी।

इदानीं सुजनगणकान् प्रार्थयन् प्रयोजनमाह—

तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान्।
अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः ।।५।।

सुविज्ञ गणकों को प्रार्थना का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि उनकी इस कृति (ग्रंथ) को सुजन (सुविज्ञ) लोग पढ़ कर तथा समझकर तृप्त होंगे, तथा विशेष रूप से मुदित होंगे। लेकिन जिन की समझ से यह परे है वे दुर्जन लोग अपनी सञ्छन्न मति के कारण मेरी इस कृति को पढ़कर समझ नहीं पाने के कारण मुझ पर हँसेंगे तथा दोष निकालेंगे, वे संतुष्ट नहीं होंगे।

अथैकश्लोकेन सिद्धान्तग्रन्थलक्षणमनन्तरश्लोकद्वयेन सिद्धान्तप्रशंसां चाह—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः ।।६।।
जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिः शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः ।।७।।
गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताऽश्वादिके-
रुद्यानं च्युतचूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्न भात्युच्चके-
र्ज्योतिः शास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः ।।८।।

अब एक श्लोक में सिद्धान्त ग्रन्थ के लक्षण तथा बाद के दो श्लोकों में सिद्धान्त की प्रशंसा की गई है—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रुट्यादि से लेकर प्रल्यान्त काल तक की काल गणना का मान जो बताता है, सोदाहरण द्विधा गणित से खगोल संबंधी प्रश्नों के उत्तर देने वाला; दिवस (सावन, सौर, चांद्र), नक्षत्र आदि के मानों का भेद प्रतिपादित करने वाला, व्यक्त और अव्यक्त गणित (अंक गणित, बीज गणित, रेखा गणित, त्रिकोणमिति आदि) वाला; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की गति, स्थिति, आकार आदि का वर्णन करने वाला; यन्त्रादि का निर्माण तथा उनका

वर्णन करने वाला; गति विधि ज्ञापक गणित स्कन्ध बताने वाला जो शास्त्र है उसको सिद्धान्त कहते हैं। गणित स्कन्ध वह होता है जिसमें व्यक्त, अव्यक्त आदि अनेक प्रकार के गणित का वर्णन हो। यह स्कन्ध सिद्धान्त स्कन्ध के अंदर ही आता है॥६॥

विशेष— भास्कराचार्य ने सिद्धान्त ग्रंथ के लक्षण के विषय में वटेश्वराचार्य से कुछ विशेष कहा है जैसे यंत्रादि के लिए।

वटेश्वर सिद्धान्त मध्यामाधिकार प्रथम अध्याय में यंत्रादि के अतिरिक्त आचार्योक्त ही कहा है, यथा–

"समयमितिरशेषा सावनं खेचराणां गणितमखिलमुक्तं यत्रकुट्टाद्युपेतम्।
ग्रहभगणमहीनां संस्थतिर्यत्र सम्यक् स खलु मुनिवरिष्ठैः स्पष्टराद्धान्त उक्तः॥५॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने सिद्धान्त लक्षण इसी प्रकार कहा है, यथा—

"शतानन्दध्वस्ति प्रभृतित्रुटिपर्यन्तसमयप्रमाणं भूधिष्ण्यग्रहनिवहसंस्थान-कथनम्। ग्रहेन्द्राणां चाराः सकलगणितं यत्र गदितं स सिद्धान्तः प्रोक्तो विपुल गणितस्कन्धकुशलै॥ अ.१श्लोक ३॥"

सूर्य-प्रभा टीका— जातक, संहिता तथा गणित, त्रिस्कन्ध में किसी को भी जान करके ज्योतिष शास्त्र के विचार (जानने) से किसी भी प्रश्न का उत्तर बड़ी योग्यता पूर्ण ढंग से किंचितकर ही दिया जा सकता है। सिद्धान्त ग्रंथ से अनन्त युक्ति से ग्रहादि चालन का ज्ञान विस्तृत रूप से ज्ञात किया जा सकता है। त्रिस्कन्ध (जातक, संहिता, गणित) ज्योतिष के मात्र जातक शास्त्र का ज्ञान रखने वाले दैवज्ञ की आचार्य के अनुसार कोई महत्त्वता नहीं होती। पक्ष-विपक्ष के अनन्त तर्कों से सिद्ध सिद्धान्त गणित को जो ज्योतिषी नहीं जानता वह भित्ति (दीवार) पर बनाये गये चित्र; काष्ठ से बनाये गये गर्जनाहीन सिंह तथा पंक्तिरहित हाथी, अश्व व बिना घोड़ों एवं सेना के राजा, बिना आमके वृक्षों के नीरस उद्यान; जल विहीन तालाब; यौवना स्त्री के परदेश गया हुआ पति का वियोग, जिस प्रकार शोभा नहीं पाते उसी प्रकार यह जगत भी ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त से विहीन होने पर प्रकाशित नहीं होता अर्थात् शोभा नहीं पाता। (ज्योतिष) ग्रह गणित सिद्धान्त से रहित ज्योतिषी की भी ऐसी ही स्थिति कही गई है॥७-८॥

इदानीं ज्योतिः शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं निरूप्य वेदाङ्गत्वादवश्यमध्येतव्यं तद्द्विजैरेव नान्यैः शूद्रादिभिरित्येतत्प्रतिपादनार्थ श्लोकचतुष्टयमाह—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्॥९॥

ज्योतिष के वेदाङ्गत्व का निरूपण शूद्रादि के लिए इसका अध्ययन वर्जित—

सूर्य-प्रभा टीका— वेदों में कहे गये, यज्ञ कर्म प्रवृत्ति के लिए, जो यज्ञादि कर्म कहे गये हैं वे काल के अधीन हैं। अतः जिस शास्त्र से काल का बोध होता है वह वेदाङ्ग है अर्थात वह शास्त्र वेदों का अंग है। ज्योतिष शास्त्र क्योंकि काल की गणना करता है तथा काल का बोध कराता है, अतः यह वेदाङ्ग है।

वेद शास्त्र हमें यज्ञ कर्म करने के लिए प्रवृत्त करता है। शुभ काल में यज्ञादि शुभ कर्म सफल होते हैं तथा दूषित काल में किये गये अभीष्ट कार्य असिद्ध होते हैं। शुभ-अशुभ काल तथा तिथि-वारादि का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा होता है, अतः यह वेदों के छः अंगों में से एक अंग है। यह भास्कराचार्य ने इस श्लोक में कहा है।

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः॥१०॥

सूर्य-प्रभा टीका— शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण वेदों का मुख है, ज्योतिष शास्त्र चक्षु है, निरुक्त कर्ण (कान) हैं, इनकी शिक्षा नासिका है तथा छन्द वेदों के दोनों पैर हैं और कल्प उसके हाथ हैं। ये सभी वेदों के ज्ञान प्रवर्तक होने से वेदों के छः अंग शास्त्र कहे गये हैं।

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥११॥

सूर्य-प्रभा टीका— (वेदों के) सभी छः अंगों में चक्षु की मुख्यता होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को इनमें मुख्य कहा गया है। क्योंकि कर्ण, नासिकादि अंगों में यदि चक्षु न हो तो शेष अंगों के होने पर भी कुछ नहीं होने के तुल्य है। नेत्रों के न होने पर कोई भी कुछ नहीं कर सकता।

तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्वम्।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थकामाँल्लभते यशश्च॥१२॥

सूर्य-प्रभा टीका— इन सब कारणों से ज्योतिष शास्त्र द्विजों (जो

यज्ञोपवीत धारण करते हैं) के लिए अध्ययन करने योग्य हैं तथा इसके तत्त्व का रहस्य परम पुण्यकारी है। जो मनुष्य ज्योतिष शास्त्र जानता है, उसे समस्त धर्म, कामनाओं तथा यश की प्राप्ति होती है।

अर्थात् सर्व शास्त्रों के अध्ययन की महत्त्वता होते हुए भी ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान की परिपक्वता से वेदोक्त धर्म, कर्म, नीति, भूत, भविष्यादि के ज्ञान पूर्वक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

विशेष— श्लोक ६ से १२ में भास्कराचार्य ने ज्योतिष शास्त्र की प्रधानता बताई है, इसको अध्यन करने के अधिकारी तथा इसके फल को बताया है। अब अन्य आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में इस विषय में क्या कहा है? उसका थोड़ा अवलोकन करते हैं।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार अध्याय १ में कहा है—

"श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्तुतिथिपर्वदिनादि पूर्वैः।
वेदीककुब्भवनकुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुतिविदां बहुमत्यमस्मात्॥४॥"

अर्थात् उत्तरायण-दक्षिणायन, वसन्तादि ऋतु, प्रतिपदादि तिथि, ग्रहण, संक्रान्ति रवि आदि दिन, इन कालों में वेदविहित कर्मों का विनियोग होता है, और यज्ञवेदी, यज्ञमण्डल कुण्डादियों की रचना और उनमें दिशा-ज्ञान-दैर्घ्य-विस्तार आदि ज्ञान ज्योतिष शास्त्र से होता है। अतः वैदिकों की बहुसम्मति से ज्यौतिष शास्त्र को वेद का प्रधान अंग (नेत्र रूप) कहा गया है॥

आचार्य ने अध्ययन अध्यापन आदि विषयों की चर्चा नहीं करके वेदी, ककुब्भवन, कुण्ड, तदन्तरादि विशेष बातें कही हैं।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व पर कहा है—

"क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः।
शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गतामुष्य ततः प्रसिद्धा॥
छन्दः पादौ शब्दशास्त्रञ्च वक्त्रं कल्पः पाणौ ज्यौतिषं चक्षुषी च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च॥
वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत् प्रधानताऽङ्गेषु ततोऽस्य युक्ता।
अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न कश्चित्॥
अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिः शास्त्रं पुण्यमेतद् रहस्यम्।

एतद् बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थ धर्म मोक्षमग्रयं यशश्च॥''

इस प्रकार श्रीपति के अनुरूप ही भास्कराचार्य ने कहा है। अंतिम तीनों श्लोक आचार्य ने वृहद वसिष्ठ सिद्धान्त के ज्यों के त्यों कह दिये हैं।

पाणिनीय शिक्षा में भी वेदाङ्ग के रूप में ज्यौतिष का प्रतिपादन किया है।

''छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्॥
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥''

यहाँ भास्कराचार्य के अनुरूप ही शरीर के अंगों का वर्णन करके ज्यौतिष शास्त्र की प्रधानता बताई है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में कहा है—

''वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्॥''

वेदाङ्ग ज्यौतिष में कुछ विशेष स्थान ज्योतिष शास्त्र को वेदाङ्गों में दिया गया है कि जिस प्रकार मयूर (मौर) के सिर पर शिखा होती है तथा नागों के फण पर मणि शोभित होती है उसी प्रकार वेदाङ्गों में सर्वोपरि अङ्ग ज्योतिष शास्त्र है। यहाँ कही गई शेष बातें भी भास्कराचार्य ने कही हैं।

वृहद वसिष्ठ सिद्धान्त में भी वेदांग के रूप में ज्योतिष शास्त्र की प्रधानता कही गई है— अध्याय प्रथम

''छन्द पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्योतिषं लोचने च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षड्वा॥७॥''
वेदस्यचक्षुः किल शास्त्रमेतत् प्रधानताङ्गेषु ततोऽर्थजाता।
अङ्गैर्युतोऽन्यै परिपूर्णमूर्त्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किञ्चित्॥
अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिः शास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम्।
एतद्बुध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थ धर्म मोक्षमग्रयं यशश्च॥१०॥

इस प्रकार वृहद वसिष्ठ सिद्धान्त में कही गई बातें भी भास्कराचार्य ने अपने ग्रंथ के उक्त श्लोक ६ से १२ में कही हैं।

इदानीं ज्योतिश्शास्त्रमूलभूतस्य सग्रहस्य भचक्रस्य चलनं श्लोकद्वयेनाह—

सृष्ट्वा भचक्रं कमलोद्भवेन ग्रहैः सहैतद्भगणादिसंस्थैः।
शश्वद्भ्रमे विश्वसृजा नियुक्तं तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वे॥१३॥
ततोऽपराशाभिमुखं भपञ्जरे सखेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि।
तदल्पगत्येन्द्रदिशं नभश्चराश्चरन्ति नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु॥१४॥

ज्योतिष शास्त्र के मूलभूत ग्रहसहित भचक्र के चलने के संबंध में—

सूर्य-प्रभा टीका— सृष्टीकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टी की रचना करते समय सर्वप्रथम अश्विनी और रेवती नक्षत्र के मध्य (संधि) में बंधे हुए सूत्र अक्ष पर भचक्र को ग्रहों सहित पूर्व से पश्चिम की ओर भ्रमण करते हुए स्थापित किया, जो अनवरत भ्रमण करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त जो भचक्र में अश्विन्यादि तारा समूह सदा स्थिर रहते हैं, की सृष्टी भी ब्रह्मा ने भचक्र के साथ ही की। यह भचक्र ग्रहों सहित दो ध्रुव (स्थिर) तारों के (उत्तर तथा दक्षिण) सापेक्ष भ्रमण करता है। ये ग्रह भपञ्जर अर्थात भचक्र सहित शीघ्रता से पश्चिमाभिमुख भ्रमण करते दिखाई देते हैं लेकिन इनकी गति भपञ्जर से अल्प होने के कारण वे स्वगति से पूर्वाभिमुख होकर आकाश में भ्रमण करते हुए नहीं दिखाई देते हैं। ग्रह नीचे से ऊपर की ओर भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं। सबसे नीचे चन्द्रमा, उसके ऊपर बुध, फिर शुक्र, फिर रवि, फिर मंगल, फिर गुरु और अंत में शनि ग्रह की कक्षा है। सभी की कक्षायें दूर-दूर एक के ऊपर एक हैं। नीचे से ऊपर की कक्षाओं में भ्रमण करने वाले ग्रहों की गति शीघ्रतम से क्रमशः अल्प होती जाती है। ब्रह्मा ने ग्रहों को प्रवह नामक वायु में आकाश में स्थापित किया है॥१३-१४॥

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वराचार्यादि ने भी कहा है। इन सभी आचार्योक्त कथनों को भास्कराचार्य ने कहा है—

ब्रह्मस्फुट मध्यमाधिकार—

"ध्रुवताराप्रतिबद्धज्योतिश्चक्रं प्रदक्षिणगमादौ।
पौष्णाश्विन्यन्तस्थै सह ग्रहैर्ब्रह्मणा सृष्टम्॥३॥"

वटेश्वर-सिद्धान्त मध्यमाधिकार अध्याय प्रथम—

"आदौ ससर्ज भगणं झष मेष सन्धि-संस्थग्रहैः सह ग्रहस्फुरंदशुजालम्
ब्रह्मा प्रतिक्षणगमर्कजसोमकक्षा-वक्त्र ध्रुव प्रतिनिबद्धमिनेन्दुवश्यम्॥६॥"

वृहदवसिष्ठ सिद्धान्त में अध्याय १ श्लोक ११ में कहा है—

''सृष्ट्वा ज्योतिश्चक्रं खत्रयवेदाङ्कखाद्रिशशिवर्षैः।
शश्वद् भ्रमणे क्षिप्त्वा मेषादिग्रहाः कमल भुवा॥११॥''

श्रीपति-सिद्धान्तशेखर अध्याय एक श्लोक ९ में—

''ध्रुवद्वयी मध्यगतारकाश्रितं चलद्भचक्रं जलयन्त्रवत् सदा।
विधिः ससर्जाश्विनपौष्णमध्यगैर्ग्रहैः सहोपर्युपरि व्यवस्थितः॥१॥''

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के अध्याय १३ में ग्रह कक्षाक्रम तथा उनकी घटती हुई गति के लिए भास्कराचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

''चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवाऽर्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः॥३९॥
तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेम्यां स्यान्महेदवं स्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्॥४०॥
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलमधः स्थः।
ऊर्ध्वस्थस्तुल्यजवो विचरति तथा न महदर्कसुतः॥४१॥''

आर्यभट्ट—

''उदयास्तमयनिमित्तं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः सग्रहो भ्रमति॥''

लल्लाचार्य— शि.धी.गो. भुव. ३८-३९ श्लोक में-

''मध्यमकक्षावृत्ते मध्यमया गच्छति ग्रहो गत्या।
उपरिष्टात् तल्लघ्व्या तदधिकगत्या त्वधः स्थः स्यात्॥३८॥
वक्री यात्यपराशां निसर्गतो गच्छति ग्रहः प्राचीम्।
क्रान्त्या याम्योदीच्योर्ग्रहगतिरेवं भवेत् षोढ़ा॥३९॥''

वृहद वसिष्ठ अध्याय १ श्लोक १२ में—

''पश्चिमदिग्गतवायु प्रवहनिबद्धे भपञ्जरे शीघ्रम्।
भ्रमति सखेचरे सत्यपि खेटाः गतितः प्रयान्ति पूर्वदिशम्॥१२॥''

श्रीपति-सिद्धान्त शेखर अध्याय १५ श्लोक ११ व १२ में—

''स्वव्यापारात् प्राग्गतिः खेचराणामूर्ध्वाधस्ताद्याम्यसौम्यापराणि।
गोलाभिज्ञैः पञ्च यातानि यानि तेषामुक्तान्यन्यहेतुनि तानि॥
प्रत्यग्गतिः प्रवध्वायुवशेन तेषां नीचोच्चवृत्तजनितोर्ध्वमधश्च सा स्यात्।
याम्योत्तरा त्वपमवृत्तविमण्डलाभ्यां षोढा गतिर्निगदितैवमिह ग्रहाणाम्॥''

सूर्यसिद्धान्त भूगोलाध्याय श्लोक ३०-३१ में जो कहा है वह आचार्योक्त ही है। यथा—

"ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योम कक्षाऽभिधीयते। तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा॥३०॥

मन्दामरेज्य-भूपुत्र-सूर्य-शुक्रेन्दुजेन्दवः। परिभ्रमन्त्यधोऽधः स्थाः सिद्धा विद्याधरा घनाः॥३१॥"

भूगोलाध्याय श्लोक ७३ में भचक्र भ्रमण के लिए कहा है तथा क्रमशः ऊँची कक्षाओं में ग्रहगति अल्प होती है यह श्लोक ७५ व ७६ में कहा है।

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम्॥७३॥
उपरिष्ठस्य महती कक्षाऽल्पाऽधः स्थितस्य च।
महत्या कक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाऽल्पया॥७५॥
कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्पभ्रमणाश्रितः।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन्॥७६॥

शाकल्य ने भी ग्रहों की पूर्वाभिमुख गति ही बनाई है— "इति पर्यटतां तेषां भाग्रे भानि तु तान्ग्रहान्। अतीत्य तरसा साऽह्नि यत्प्रत्यक् प्रागतिश्च सा॥"

ग्रहों की उत्पत्ति के लिए अन्य प्रकार से ब्रह्म द्वारा ही बताई है तथा मध्यमा. श्लोक २५ में पूर्वाभिमुख गति बताई है॥

इदानीमनाद्यनन्तस्य कालस्य प्रवृत्तिमाह—

लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः॥१५॥

अनादि अनन्त काल की प्रवृत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— लङ्कापुरी नगरी पर जब सूर्य प्रथम बार उदय हुआ तब चैत्र शुक्ल रविवार से दिन, मास, वर्ष, युग तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति हुई।

विशेष— यहाँ प्रवृत्ति शब्द का अर्थ सृष्टी के आदि से है। जिस समय सूर्य का प्रथम बार लङ्का में उदय हुआ। उस समय से सृष्टि का आरम्भ कहा गया है तथा उस समय चैत्र शुक्ल पक्ष रविवार था तथा उसी घड़ी से कल्प, युग, वर्ष, मास तथा दिन की गणना आरंभ हुई। जिस प्रकार सृष्टी के आरंभ में काल गणना के इन अवयवों की प्रवृत्ति हुई उसी प्रकार प्रलयकाल में इन

का अंत हो जाता है तथा सभी जीवों एवं सूर्यादि का अंत हो जाता है। ऐसे काल को अव्यक्त काल कहते हैं तथा इसका अभिप्राय अव्यक्त अवस्था से है। इस युक्ति से काल अनादि तथा अनन्त कहा गया है। उस अव्यक्त काल से सृष्टी का आरंभ होता है तथा व्यक्त जीव एवं भचक्र ग्रहादि का प्रादुर्भाव होता है। तब से व्यक्त नाम दिन, मास, वर्ष, युग, कल्पादि की प्रवृत्ति होती है। जैसे मधुमासादि, शुक्ल पक्षादि, दिनादि, सौर दिनादि तथा मास वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प आदि की प्रवृत्ति होती है।

आचार्य ने काल के अनादि अनन्त कहे जाने की युक्ति के लिए शास्त्रान्तर से उद्धरण दिया है—

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्॥

यही श्लोक सिद्धान्त शिरोमणि ग्रथ के संस्कृत व्याख्याकार नृसिंह दैवज्ञ ने अपनी टीका में कहा है।

काल की महिमा का पुराणों में वर्णन

कलनाद्, सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः।
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरः परः॥
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः।
ब्रह्मणो बहवो रुद्रा अन्ये नारायणादयः॥
एकोऽहि भगवानीशः कालः कविरिति स्मृतः।
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्राकृतोलयः॥
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः।
परं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शङ्करः॥
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः।
तस्मात् कालात्मकं विश्वं स एव परमेश्वरः॥
अनादि निधनः कालो रुद्रः सङ्कर्षणस्मृतः।
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु सङ्कर्षणः स्मृतः॥
सर्वभूतसमित्वाच्च स रुद्रः परिकीर्तितः।
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वरः॥

(विष्णुपराण, कूर्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराणादि से)

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अन्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त में भगवान् तथा भृगु संवाद में भगवान का कहा हुआ वाक्य इस प्रकार है—

"लङ्कायामर्कोदये चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ किंस्तुघ्नादौ रौद्रादौ कालप्रवृत्तिः।"

यहाँ अश्विन नक्षत्र तथा किंस्तुघ्न करण का नाम विशेष दिया गया है, शेष आचार्योक्त ही कहा है।

इसी प्रकार **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** मध्यमाधिकार श्लोक ४ में कहा है—

"चैत्रसितादेरूदयाद्भानोर्दिनमासवर्षयुग कल्पाः।
सृष्ट्यादौ लङ्कायां समं प्रवृत्ता दिनेऽर्कस्य॥१४॥"

यह भास्कराचार्योक्त ही है।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है—

"मधुसित प्रतिपद्दिवसादितो रविदिने दिनमासयुगादयः।
दशशिरः पुरि सूर्यसमुद्‌गमात् सममभी भवसृष्टिमुखेऽभवन्॥ अ. १श्लो.१०॥"

सूर्यसिद्धान्त में काल के बारे में इस प्रकार कहा है—

"भूतानामन्तकृत्कालः कालोऽन्य कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामुर्त्त उच्यते॥ अ.१ श्लोक १०॥"

अर्थात् काल दो प्रकार का कहा है। एक प्राणियों का संहार करने वाला (प्रलय) उसको काल कहा है तथा दूसरा कलनात्मक अर्थात् गणना करने वाला। यह कलनात्मक काल भी दो प्रकार का होता है एक स्थूल जो मूर्त संज्ञक (व्यवहारिक) है तथा दूसरा सूक्ष्म जो अमूर्त संज्ञक (अव्यवहारिक) कहा गया है। मूर्त संज्ञक में दिन, घटी, पल, मास, वर्ष, युग कल्पादि है। यही भास्कराचार्य ने कहे हैं।

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** में आचार्योक्त प्रकार ही से सृष्टादि काल को कहा है यथा मध्यमाधिकार श्लोक. ५—

"अन्याशाख्यास्तत्राक्षांशा लङ्कापुरे प्रवृत्तिदिने।
कल्पवर्ष मासाश्चैत्रसितादेरिनोदयाद्युगपत्॥५॥"

वटेश्वर सिद्धान्त अध्याय २, मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"त्रुट्यादि पद्मोद्भव जीवितान्तः कालः समंतेन झषजसन्धौ।
लङ्का कुजस्थ द्युचरैः प्रवृत्तो रविर्दिने चैत्रसितादितोऽयम्॥६॥"

अर्थात् त्रुटि आदि से ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कालों की, मीन तथा मेष की संधि (रेवत्यन्त) स्थान में लङ्का क्षितिज पर ग्रहों की स्थिति में रविवार के दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा आरंभ के समय से, प्रवृत्ति हुई। अर्थात् इस समय से युगादि, मन्वन्तर, कल्प, सौरवर्षादि की प्रवृत्ति हुई।

आर्यभट (प्रथम) ने आर्यभटीय के कालक्रिया पाद में चैत्र शुक्लादि से काल प्रवृत्ति कही है। यथा—

"युगवर्षमासदिवसास्समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः।
कालोऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे॥११॥"

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भास्कराचार्य ने उनके पूर्ववर्ति आचार्यों के कथनों को (अनुरूप) ही अपने उक्त श्लोक में कहा है।

इदानीं कालमानानां विभागकल्पनां श्लोकत्रयेणाह—

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकैः कलोक्ता॥१६॥
त्रिंशत्कलाऽऽक्षीं घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तै खगुणैर्दिनं च।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः॥१७॥
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।
क्षेत्रे समाद्येन समा विभागाः स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः॥१८॥

कालभाग के विभाग की कल्पना—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने इन श्लोकों में कालविभाग को परिभाषित किया है। पलक झपकने में जितना समय लगता है उसको एक निमेष कहते हैं। एक निमेष का तीसवाँ भाग तत्पर होता है। तत्पर के शतांश को त्रुटि कहते हैं। १८ निमेष का एक काष्ठ होता है। ३० काष्ठ की एक कला होती है। ३० कला की एक घटी होती है। दो घटी का एक मुहूर्त (क्षण) होता है। ३० क्षण का एक दिन होता है।

इसके पश्चात प्रकारान्तर से दिनादि को परिभाषित किया है। दस गुरु (दीर्घ) अक्षरों के उच्चारण का समय एक असु (प्राण) होता है। जिस अक्षर के विसर्ग के अंत में अनुस्वर लग जावे उसे दीर्घ अक्षर कहते हैं अर्थात एक मात्रा का लघु तथा दो मात्रा का अक्षर गुरु कहलाता है। प्राण या असु वह

होता है, जितने समय में कोई व्यक्ति एक स्वास-प्रस्वास लेता है। ६ असु का एक पल होता है और ६० पल की एक घटी तथा ६० घटी का एक दिन होता है। एक चक्र में १२ राशि, एक राशि में ३० अंश, एक अंश में ६० कला तथा एक कला में ६० विकला होता है।

आचार्योक्त काल विभाग को संख्यात्मक सूत्र रूप में निम्नलिखित प्रकार से लिख कर बताते हैं—

पलक झपकने का काल = एक निमेष = ३० तत्पर = ३०० त्रुटि।

$\frac{\text{निमेष}}{३०}$ = १ तत्पर तथा $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$ = १ त्रुटि या १ तत्पर = १०० त्रुटि

३०० त्रुटि = १ निमेष

१८ निमेष = १ काष्ठ

३० काष्ठ = १ कला

३० कला = १ घटी (नाड़ी)

२ घटी = १ क्षण या मुहूर्त्त

प्रकारान्तर से काल विभाग—

१० गुरु अक्षर उच्चारण काल=१ असु = मनुष्य का एक स्वास प्रस्वास।

६ असु = १ पल

६० पल = १ घटी

६० घटी = १ अहोरात्र (दिवस)

३० अहोरात्र = १ मास

१२ मास = १ वर्ष

विशेष— नाडी, घटी तथा दण्ड तीनों एक ही हैं। जो समय अंगुष्ठ प्रमाण के नलिका आकार के यंत्र से प्रदर्शित होता है वह नाडी है, घटी यन्त्र से जो समय प्रदर्शित होता है वह घटी है तथा दण्ड (यष्टि) जैसे यंत्र द्वारा प्रदर्शित समय दण्ड होता है। इस प्रकार ये तीनों यंत्र भेद से एक ही काल को प्रदर्शित करते हैं। अतः इनके केवल नाम का भेद है। इसी प्रकार वि-उपसर्ग लग जाने से उस काल मान का ६० (साठ) वाँ भाग प्रदर्शित होता है।

मनुस्मृति में काल बोध चक्र इस प्रकार कहा है—

''निमेषा दशचाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥अ. १ श्लोक ६४॥''

अर्थात् अठारह निमेष (पल झपकने का काल) का एक काष्ठ और ३० काष्ठ की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का एक दिनरात होता है। आचार्य ने आगे के श्लोकों में १५ अहोरात्र का एक पक्ष (मानुष) तथा दो पक्ष का एक मास, ६ मास का एक अयन, १२ मास का एक वर्ष कहा है।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने मनुस्मृति के अनुसार काल विभाग कहा है।

विष्णु पुराण में पाराशरमुनि ने तृतीय अध्याय में १५ निमेष का एक काष्ठ कहा शेष सभी विभाग मनुस्मृति अनुसार ही कहे हैं। यथा–

"काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम।
काष्ठा त्रिंशत्कला त्रिंशत्कलामौहूर्तिको मुनिसत्तम्॥८॥
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मास पक्षद्वयात्मकः॥९॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥१०॥"

वृहदवसिष्ठ सिद्धान्त में भी कालमान भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"दशगुर्वक्षरोच्चारकालः प्राणोऽभिधीयते। तत्षटकैश्च पलं षष्ट्या नाडीषष्ट्यार्क्षजं दिनम् (अध्या. १ श्लोक ४)।

सोम सिद्धान्त में भी यथावत ही कहा है—

"दशगुर्वक्षरा प्राणः षड्भि प्राणैर्विनाडिका। तत्षष्ट्या नाडिका प्रोक्ता नाडी षष्ट्या दिवानिशम्।"

आर्यभट ने **आर्यभटीय** कालक्रियापद श्लोक २ में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः।
एवं काल विभागः क्षेत्र विभागस्तथा भगणात्॥२॥"

अर्थात् जितना काल ६० (साठ) गुरु अक्षर उच्चारण करने में लगता है वह काल आर्क्षि अथवा विनाडी होती है। ऋक्षों का आधारभूत मंडल जितने काल में एक परिभ्रमण करता है वह काल आर्क्षदिवस (नक्षत्र दिवस) होता है। उसका साठवाँ भाग आर्क्ष नाडि है। उसका साठवाँ भाग आर्क्षी विनाडिका होती है। छः विनाडि का एक प्राण होता है। जितने काल में पुरुष छः स्वासप्रस्वास

करता है उतना काल आर्क्षि विनाडि होती है। ये दोनों काल तुल्य होते हैं। कालविभाग इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है। क्षेत्र विभाग भी इसी प्रकार जानें।

यहाँ आर्यभटीय की परमेश्वराचार्य कृत "भटदीपिका" संस्कृत टीका का मैंने हिन्दी अनुवाद कहा है।

क्षेत्र विभाग से यहाँ अर्थ भगण क्षेत्र विभाग से है। एक भगण का बारहवाँ भाग एक राशि, एक राशि में ३० (तीस) अंश, एक अंश में ६० कला तथा एक कला में साठ विलिप्ता होती है। यह वर्षात्मक काल विभाग अनुसार है।

आर्यभट्ट ने आर्यभट्टीय में कालक्रिया पाद के श्लोक-१ में वर्ष-मास-दिनादि का मान आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"वर्ष द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत्स मासस्तु।
षष्टिर्नाड्यो दिवसष्षष्टिस्तु विनाडिका नाडी॥१॥"

अर्थात– १२ मास का एक वर्ष, ३० दिवस का एक मास, एक दिवस में ६० नाडी, एक नाडी में ६० विनाडी होती है। परमेश्वर आचार्य की टीकानुसार ही सौर, सावन तथा चांद्र दिवस संज्ञा अनुसार ये वर्षादि उन-उन के अनुसार ही होंगे।

भास्कराचार्य ने आर्यभटोक्त ये मान ही कहे हैं।

वटेश्वर सिद्धान्त मध्यमाधिकार अध्याय १ में भास्कराचार्योक्त ही कहा है—

कमलदलनतुल्यः काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छतमिह लवसंज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेषः।
सदलजलधिभिस्तैर्गुविहैवाक्षरं तत्कृतपरिमित-काष्ठा-तच्छरार्धेन वासुः॥७॥"

इसको अंक सूत्र रूप में इस प्रकार कह सकते हैं—

कमलपुष्प को सुई से छेदने में जितना काल लगता है वह एक त्रुटि तुल्य होता है। आचार्य ने १०,००० त्रुटि का एक निमेष कहा है जब कि भास्कराचार्य ने ३००० त्रुटि का एक निमेष कहा है।

१०० त्रुटि = १ लव तथा १०० लव = १ निमेष

४$\frac{१}{२}$ निमेष = १ दीर्घ अक्षर उच्चारण काल

४ दीर्घ अक्षरोच्चारण काल = १८ निमेष = १ काष्ठ

२$\frac{१}{२}$ काष्ठ = १० दीर्घ अक्षर उच्चारण काल = १ असु

''आर्क्षपलं षडसवो घटिका पलानां षष्ट्या दिनं च घटिका खलु षष्टिमाहुः।
मासंखवह्निभिरथाब्दभिनाहतं तं क्षेत्रे च कालदृशावयवं तथाहुः॥८॥''

अर्थात् ६ असु = १ नाक्षत्र पल तथा ६० पल = १ घटी

६० घटी = १ दिन तथा ३० दिन = १ मास

१२ मास = १ वर्ष तथा १२ राशि = १ भगण

३० दिन = १ मास तथा ३० अंश = १ राशि

६० घटी = १ दिन तथा ६० कला = १ अंश

६० पल = १ घटी तथा ६० विकला = १ कला

अतः वटेश्वराचार्योक्त ही भास्कराचार्य ने कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी इसी प्रकार कहा है। तथा आगे श्लोक ८ में भी उपरोक्त प्रकार ही कहा है—

''मासःप्रोक्तस्त्रिंशताऽहर्निशानां द्विघ्नैः षडभिस्तैश्च वर्षः प्रदिष्टम्।
एवंचक्रार्क्षाशलिप्ता विलिप्तास्तुल्याः क्षेत्रेऽनेहसाऽब्दादिकेन॥८॥''

सूर्यसिद्धान्त में काल मान आचार्योक्त ही है। लेकिन वटेश्वर तथा सूर्य सिद्धान्त के काल मानों में अंतर केवल यह है कि वटेश्वर ने १०००० (दस हजार) त्रुटि का एक निमेष कहा तथा सूर्य सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ३००० (तीन हजार) त्रुटिका एक निमेष कहा है। सूर्य सिद्धान्त मध्याधि श्लोक ११ व १२—

''प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः।
षड्भि प्राणैर्विनाडीस्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृताः॥११॥
नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा॥१२॥

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में **ब्रह्म गुप्त** ने भास्कराचार्य एवं श्रीपति आदि के अनुरूप ही कहा है। मध्यमा अध्याय १ श्लोक ५ व ६—

''प्राणैर्विनाडिकार्क्षी षड्भिर्घटिका विनाडिका षष्ट्या।
घटिका षष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता भवेन्मासः॥५॥
मासा द्वादश वर्ष विकला लिप्तांश-राशि-भगणान्तः।
क्षेत्रविभागस्तुल्यः कालेन विनाडिकाद्येन॥६॥''

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ति आचार्योक्त कथनों के अनुकूल ही काल विभाग कहा तथा उनके बहुमत को ही स्वीकार किया है।

ब्रह्मसिद्धान्त में भी काल मान विभाग आचार्योक्त ही है। यथा—

"अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः।
तासां त्रिंशत् क्षणस्तेऽपि षट्नाडीति प्रशस्यते॥
यद्वा गुर्वक्षराणां तु दशकं प्राणः उच्यते।
षडभिः प्राणैर्विनाडी तु तत्षष्ट्या घटिका तथा॥
नाडी षष्ट्या ह्यहोरात्रमिति॥६॥"

इदानीमनयैव कालविभागपरिभाषया सौरादीनि तन्मानान्याह—

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव।
रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पैत्रं द्युरात्रम्॥१९॥
इनोदयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम्।
तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रमः॥२०॥

काल विभाग परिभाषा में सौरादि के मान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य जितने समय में मेषादि भचक्र में भ्रमण करते हुए अपने पूर्व (आरंभ) स्थान पर एक बार वापस आता है उतने काल को रवि वर्ष कहते हैं। उसका बारहवाँ भाग सौर मास होता है तथा मास के ३० वें भाग को सौर दिन कहते हैं। दिन का साठवाँ भाग एक घटी होता है तथा घटी के साठवें भाग को विघटि कहते हैं। यह पूर्व में दी गई परिभाषा के अनुरूप है।

अब **दैवमान** कहते हैं— पूर्वोक्त एक वर्ष देवता तथा असुरों के लिए एक अहोरात्र होता है लेकिन जब देवताओं का दिन होता है तब दैत्यों की रात्रि होती है। देवताओं का एक वर्ष ३६० सौर वर्षों के तुल्य होता है।

अब **चांद्रमान** कहते हैं— सूर्य चन्द्र की एक बार युति के जितने काल के पश्चात् जब दूसरी बार युति होती है उस काल को चांद्रमास कहते हैं। सूर्य-चंद्र की युति अमावस्या को होती है, अतः इसके बाद जब दूसरी बार सूर्य-चंद्र की युति होती है तो उस काल को विधुमास अर्थात् चांद्रमास कहते हैं। इस प्रकार यह चान्द्रमास अमावस्या से आरंभ होकर दूसरी अमावस्या को समाप्त होता है। इन मानों से पूर्व परिभाषित वर्षादि मान समझें।

अब **पितृमान** कहते हैं— यह चांद्र मास पितृगणों का एक अहोरात्र होता है। इन मानों से पूर्व परिभाषित मास वर्षादि मान समझें।

अब **सावनमान** कहते हैं— सूर्य का एक बार उदय से दूसरी बार उदय होने के अन्तर काल को सूर्य का सावनदिन (काल) या कुदिन (पृथ्वी का दिन)

कहते हैं। इस मान से पूर्व परिभाषित प्रकार से मास वर्षादि समझें। यहाँ सूर्य उपलक्षण है, इसी प्रकार अन्य ग्रहों के दो बार लगातार उदयान्तर काल को उनका सावन दिन कहते हैं।

अब **नाक्षत्रमान** कहते हैं– पृथ्वी जितने समय में भचक्र में अपनी धुरी पर एक भ्रमण करती है उस काल को नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्वोक्त प्रकार से इस मान से मास वर्षादि मानें।

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

''सावनमुदयादुदयं भानां चार्क्ष नृवत्सरोऽर्काब्दः।
पितृदिवसाः शशिमासा दिव्यानि दिनानि रविभगणाः॥ मध्य.श्लो. २५॥''

वटेश्वर सिद्धान्त में वटेश्वराचार्य ने मध्यमा अध्याय २ में आचार्योक्त प्रकार कहा है—

''क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरमाहुस्तिथिविलयान् नृसमां रविवर्षम्।
पितृदिवसं विधुमासमिनाब्दं दितितनयामरवासरसंज्ञम्॥४॥''

सूर्यसिद्धान्त में भी आचार्योक्त कहा है। मध्यमा. यथा–

''ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते॥१३॥
सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
तत्षष्टिः षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च॥१४॥
उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासरः॥३६॥

इदानीं ब्राह्ममानमाह—

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः॥२१॥
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः॥२२॥
मनुः क्षमानगैर्युगैर्युगेन्दुभिश्च तैर्भवेत्।
दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका॥२३॥
सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रन्तु कल्पद्वयम्॥२४॥

शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्म्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान्॥२५॥
ब्रह्म मान—

सूर्य-प्रभा टीका— ४,३२,००० (चार लाख बत्तीस हजार) सौर वर्षों का चतुर्गुणित ४,३२,००० × ४ = १७,२८,८०० सौर वर्ष का कृत नामक प्रथम युगचरण है।

त्रिगुणित ४,३२,००० × ३ = १२,९६,००० सौर वर्ष का त्रेत्रा नामक द्वितीय युग चरण है।

द्विगुणित ४,३२,००० × २ = ८,६४,००० सौर वर्ष का द्वापर नामक तृतीय युग चरण है।

तथा एकगुणित ४,३२,००० × १ = ४,३२,००० सौर वर्ष का कलि नामक चतुर्थ युग चरण है।

योग ४,३२,००० × १० = ४३,२०,०००

इन युग चरणों के बारहवें भाग प्रमाण की इन चरणों की सन्ध्यायँ हैं। इतनी ही युग चरण के आरंभ में तथा इतनी ही अंत में होती है। इन युग संधियों सहित ये युग चरण प्रमाण कहे गये हैं।

कृतयुग के आरंभ में संध्यावर्ष = १,४४,००० और इतने ही अंत में।
त्रेतायुग के आरंभ में संध्यावर्ष = १,०८,००० और इतने ही अंत में।
द्वापरयुग के आरंभ में संध्यावर्ष = ७२,००० और इतने ही अंत में।
कलियुग के आरंभ में संध्यावर्ष = ३६,००० और इतने ही अंत में।

इन चारों युग चरण प्रमाण को जोड़ने से एक (महा) युग प्रमाण होता है। यथा १७,२८,०००+१२,९६,०००+८,६४,०००+४,३२,००० = ४३,२०,००० सौर वर्ष का एक महायुग होता है।

७१ महायुग का एक मनु होता है। १४ मनु का ब्रह्मा का एक दिन तथा इतने ही प्रमाण की एक रात्रि होती है। अतः ७१×१४=९९४ महायुग का ब्रह्मा का एक दिन होता है।

स्मृति पुराणादि में कहा गया है "चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणों दिनमुच्यते"। इनमें कहे गये कथन की शंका का परिहार करते हैं। एक मनु में कृतयुग चरण तुल्य १५ संधियाँ १४ मनुओं के आरंभ से अंत तक होती है। अतः १५×१७,२८,००० = २,५९,२०,००० सौर वर्ष। ये सौष वर्ष ६ महायुगों

(६×४३,२०,००० = २,५९,२०,०००) के तुल्य है। अतः पूर्वोक्तानुसार ब्रह्मा का एक दिन ९९४+६=१००० महायुग अर्थात् चतुर्युग सहस्र गुणा का हुआ। यह सिद्ध हो गया। ब्रह्मा के दिन को एक कल्प कहते हैं तथा रात्रि भी इतने ही प्रमाण की होती है। इस प्रकार ब्रह्मा का एक दिन-रात्रि दो कल्प तुल्य होता है। इस कल्प दिन मान से ब्रह्मा की आयु १०० (३६०×२×१०० कल्प) वर्ष की होती है, जिसको महाकल्प कहते हैं।

ब्रह्मा की आयु के कितने वर्ष बीच चके हैं? इसके लिए श्रुति तथा पुराण बताते हैं। **विष्णु पुराण** में कहा है—

"निजेनैव तु मानेन कायुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्ध तु परार्धमभिधीयते॥"

इस श्लोक के अनुसार ब्रह्मा की आयु का आधा भाग बीत चुका है। लेकिन वास्तव में कितने वर्ष बीच चुके हैं? यह शंका ही है। क्योंकि यह तो अनादि मान का काल है, अतः वास्तव में कितना बीत गया, यह ज्ञात नहीं है।

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने मध्यमाधिकार के प्रथम अध्याय में महायुग, युगचरण मान, युग संधि आदि भास्कराचार्योक्त ही कही हैं। मध्यमाधिकार श्लोक ७ व ८ —

"खचतुष्टयरदवेदा ४३,२०,००० रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।
सन्ध्यासन्धयांशैः सह चत्वारि पृथक् कृतादिनि ॥७॥
"युगदशभागो गुणित कृतं १७,२८,००० चतुर्भिस्त्रिभिर्गुण १२,९६,००० स्त्रेता।
द्विगुणो ८,६४,००० द्वापरमेकेन सङ्गुणः ४,३२,००० कलियुगं भवति॥८॥"

यहाँ आचार्य ने चतुर्युग (महायुग) मान ४३,२०,००० के दशमंश का ४,३,२ तथा १ गुणित क्रमशः कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग कहा है जिसका मान भास्कराचार्योक्त ही है। युग संधियाँ आदि आचार्योक्त ही कही हैं। आगे के १० वें श्लोक में आचार्य ने भास्करोक्त प्रकार ही से मनुमान बताकर ब्रह्मा का एक दिन १००० युग तुल्य पुराणोक्त प्रकार से सिद्ध किया है। यथा—

"मनुरेकसप्ततियुगः कल्पो मनवश्चतुर्दश मनूनाम्।
आद्यन्तरान्तसन्धिषु कृतकालोऽस्माद्युगसहस्रम्॥१०॥"

लेकिन आगे श्लोक ११ में कहते हैं कि जो १४ मनु संबंधि आदि मध्य और अन्त में संधियों को कृतयुगचरण तुल्य नहीं मानते। उनके मत से

कल्पप्रमाण छः कम एक हजार महायुग (९९४ महायुग) तुल्य ही है। भास्कराचार्य ने भी इतना ही स्वीकार किया है—

"आद्यन्तरान्तसन्धिषु कल्पममूनां कृताब्दसमकालम्।
नेच्छन्ति ये षड्नं तेषां कल्पो युगसहस्रम् ४२९४०८००००॥११॥"

लेकिन अगले श्लोक ११ में वे पुनः आर्यभट मतानुसार ७२ युगों का एक मनु मानकर १४ मनु तुल्य ब्रह्म का एक दिन ७२×१४=१००८ महायुगों का होता है कहते हैं लेकिन वे आर्य भटोक्त समान युग चरणों को स्मृति सम्मत नहीं होने से नहीं मानते।

आर्यभट ने दशगीतिका अध्याय में इस प्रकार कहा है। यथा—

"काहो मानवो ढ १४ मनुयुग श्ख ७२ गतास्ते च ६ मनुयुग छ्ना ७२ च।
कल्पादेर्युगपादा ग ३ च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम्॥३॥"

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त प्रकार ही महायुग, मनु, कल्प, ब्रह्मअहोरात्र-वर्ष तथा आयु कही है। यथा मध्यमाधिकार प्रथम अध्याय—

"दन्ताब्धयोऽयुतहता ४३,२०,००० युगमर्कमानाच्चन्द्राद्रयो ७१ युगगुणा मनुरेक उक्तः।
कल्पश्चतुर्दश १४ मनुर्द्युनिशं च तौ द्वौ कस्य स्ववर्षशतमत्र सदायुरुक्तम्॥६॥"

आचार्य ने चारों कृतादि युगों के पाद ४,३,२ तथा १ क्रमशः नहीं माना है, यहाँ इनके संबंध में कुछ भी नहीं कहा है। उन्होंने आगे अध्याय १० में कहा है। यथा—

"भुञ्जते सममतो युगांघ्रयः श्रीमदार्यभटकीर्त्तिताः स्फुटाः॥२॥"

अर्थात्– "........इसलिए आर्यभटोक्त स्पष्ट सममान के युगचरण मैं स्वीकार करता हूँ।" ऐसा कहा है।

पौलिश सिद्धान्त में दिव्यमान से कृतादि युग चरणों के वर्षमान मनुस्मृति तथा सूर्यसिद्धान्त आदि की तरह ही कहे हैं। यथा—

"अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात्कृतादीनाम्।
अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्य युगं तदेकत्वम्॥"

ब्रह्मसिद्धान्त में ब्रह्मा ने दिव्यवर्ष मान से सूर्यसिद्धान्त, मनुस्मृति अनुसार ही कहा है। यथा—

"दिव्याब्दानां सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम्।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः।
क्रमात कृतयुगादिनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः॥"

आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार ही ७१ युगों का एक मनु तथा युगचरण पाद ४, ३, २, १ गुणित ४३२०००० इत्यादि कहे हैं। यथा—

''कलिसञ्ज्ञो युगपादो ढिडिखिनिनीना विलोमतश्चाद्याः।
कलिवृद्ध्या तद्योगो युगं युगैस्तैर्मनुः स्कमितै॥मध्य.श्लोक १५॥
क भ १४ मनवस्ते कल्पे कृताब्दाब्दतुल्यैः क्मसन्धिभिः सहिताः।
आद्यन्तरान्त्यवर्त्तिभिरेवं कल्पोऽर्कभगण तुल्याब्दः॥१६॥
ब्राह्मो दिवसः कल्पः कल्पसमा शर्वरी तत्र।
ग्रहभसुरासुर लोका नश्यन्त्याविर्भवन्ति दिवसादौ॥१७॥

मनुस्मृति में दिव्यमान से युगचरण आचार्योक्त ही पठित किये हैं। यथा—

''चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः।
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।''

ये आगे कहे सूर्यसिद्धान्तोक्त प्रकार से है।

सूर्यसिद्धान्त में मध्यमाधि. अध्याय १ में दिव्यमान से आचार्योक्त प्रकार ही युग, मनु, कल्पादि, युगचरणादि कहे हैं। यथा—

''तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्द सङ्ख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः॥१५॥
सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेतं तच्चतुर्युगम्।
कृतादिनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया॥१६॥

अर्थात् देवसुरों के वर्षामान के १२ हजार वर्षों (दस हजार दिव्यवर्ष) का एक चतुर्युग (तुल्य महायुग) कहा गया है। सौर मान से दस हजार गुणित ४३२ वर्षां का अर्थात ४३,२०,००० वर्षों का एक महायुग होता है। कृत युग आदि प्रत्येक युग संध्या संध्यंश युक्त चतुर्युग का मान (१२०० दिव्य वर्षों के) धर्मपाद व्यवस्था के अनुसार हैं।

''युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वेकसंगुणः।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांश सन्ध्ययो स्वकः॥१७॥
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसङ्ख्यस्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥१८॥''

अर्थात् महायुग मान १२००० दिव्य वर्ष के दशमांश को क्रमशः

४,३,२,१ से गुणा करने से प्राप्त वर्षमान कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के क्रमशः होते हैं। अपने-अपने युगमान के षष्ठांश तुल्य इनकी दोनों संधियाँ होती हैं। ७१ महायुगों का एक मन्वन्तर कहा है। एक मनु के अंत में कृतयुग (४८००) दिव्यवर्ष तुल्य मनु की सन्धि होती है। संधि काल को जलप्लव कहते हैं।

"ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ संधि पञ्चदशः स्मृतः॥१६॥"

अर्थात् एक कल्प में संधि सहित १४ (चौदह) मनु होते हैं। कल्प के आदि में कृत युग तुल्य संधि होती है। इस प्रकार एक कल्प में सतयुग के समान, १४ मनु की १५ संधियाँ होती हैं।

इस प्रकार सूर्य सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। अंतर केवल यह है कि सूर्य सिद्धान्त में मनुस्मृति के अनुरूप दिव्य वर्ष मान से कहा गया है। दोनों प्रकार से मान समान ही हैं। उपरोक्त को सारिणी रूप में लिख कर बताते हैं।

एक महायुग = १२००० दिव्यवर्ष = सौरमान वर्ष ४३,२०,००० वर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × ४ = ४८०० दि.व. कृतयुग = १७,२८,००० सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × ३ = ३६०० दि.व. त्रेतायुग = १२,९६,००० सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × २ = २४०० दि.व. द्वापरयुग = ८,६४,००० सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × १ =१२०० दि.व. कलियुग = ४,३२,००० सौरवर्ष।

योग १२०० दिव्यवर्ष ×१०=१२००० दि.व. = ४३,२०,००० सौ.व.

संधियाँ कहते हैं—

कृतयुग ४८०० × $\frac{१}{६}$ = ८०० दि.व. (४००+४००) = १,४४,०००+१,४४,००० सौ.व.

त्रेतायुग ३६०० × $\frac{१}{६}$ = ६०० दि.व. (३००+३००) = १,०८,०००+१,०८,००० सौ.व.

द्वापरयुग २४०० × $\frac{१}{६}$ = ४०० दि.व. (२००+२००) = ७२,०००+७२,००० सौ.व.

कलियुग ४८०० × $\frac{१}{६}$ = २०० दि.व. (१००+१००) = ३६,०००+३६,००० सौ.व.

७१ महायुग = १ मनु = ७१×१२०००=८,५२,००० दि.वर्ष = ३०,६७,२०,००० सौ.व.

एक कल्प = १४ मनु +१५ संधि = १४×८,५२,०००+१५×४,८०० = ११,९,२८,०००+७२,०००

एक कल्प = ब्रह्मा का एक दिन = १,२०,००,००० दि.व. = ४३२,००,००,००० सौ.व.

ब्रह्मा का अ.रा. = १२०००×१०००×२=१,२०,००,०००×२ = २,४०,००,००० दि.वर्ष = ८,६४,००,००,००० सौ.व.

"परमायुः शतं तस्य तयाऽहोरात्र सङ्ख्यया॥२१॥"

पूर्वोक्त ब्रह्मा के अहोरात्र प्रमाण से सौ वर्षों = ३६०×२×१०० दिवस की ब्रह्मा की आयु होती है।

इस प्रकार हमने देखा कि आचार्य भास्कर ने उनके पूर्ववर्ति आचार्यो के कहे अनुसार ही कालमान बताये हैं तथा उन्होंने बहुमत को ही स्वीकार किया है।

इदानीमन्यदाह—

तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्त्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः॥२६॥

सूर्य-प्रभा टीका— वर्तमान में ब्रह्मा की आयु का कितना काल बीत गया यह ज्ञात नहीं है। कुछ आचार्य आयु का आधा बीत चुका मानते हैं तो कुछ आयु के साढ़े आठ वर्ष बीत गये मानते हैं। इसका आगम ही प्रमाण है। अतः भास्कराचार्य कहते हैं कि कोई मत आगम हो मुझे उसकी जरूरत नहीं है अर्थात् ब्रह्मा की गतायु की कुछ भी जरूरत नहीं है, क्योंकि ग्रहों का साधन तो वर्तमान (कल्प के) अहर्गण पर से करना है।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त में कहा है– "आयुषोऽर्धमितं तस्य" अर्थात् ब्रह्मा की आयु का आधा व्यतीत हो गया। **वटेश्वर सिद्धान्त** में कहा है

"कजन्मनो ऽष्टौ सदलाः समा ययु" अ.१ श्लोक १०। अर्थात् ब्रह्मा की आयु के साढ़े आठ वर्ष बीत गये।

इदानीं तत्कारणमाह—

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु॥२७॥

सूर्य-प्रभा टीका— भास्कराचार्य ने आक्षेप किया है कि ब्रह्मा की आयु (महाकाल) के भगण पाठ करना ही व्यर्थ है क्योंकि कल्प अर्थात् ब्रह्मा के दिन के बाद सब ग्रहों का लय हो जाता है। कल्प के अंत में ही सब ग्रहों के भगणों की पूर्ति हो जाती है, अतः अनेक कल्पों का भगण कहना व्यर्थ है।

विशेष— भगवदुक्ति में इसी प्रकार कहा है "अव्यक्ताद्व्यक्तय सर्वाः प्रभवन्त्यहरागये। रात्रयागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥" अर्थात् दिन के आरम्भ में अव्यक्त रूप ब्रह्म से यह सब व्यक्त रूप जगत उत्पन्न होता है तथा रात्र्यारंभ में सब उसी अव्यक्त रूप ब्रह्म में लीन हो जाता है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में इसी प्रकार कहा है—

'ग्रहनक्षत्रोत्पत्तिर्ब्रह्मदिनादौ दिनक्षये प्रलयः।
यस्मात्कल्पस्तस्याद् ग्रहगणिते कल्पयाताब्दाः॥२८॥ अर्थात्

दिन कल्प में रहने तथा रात्रि में प्रलय हो जाने के कारण ग्रह नक्षत्रादि की गति होती है। अतः उनके साधन के लिए वर्तमान कल्पदिन के वर्षमान की आवश्यकता है, अन्य कल्पवर्ष की आवश्यकता नहीं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में इसी प्रकार कहा है। यथा—

"ज्योतिर्ग्रहाणां विधिवासरादौ सृष्टिलैयस्तद्दिवसावसाने।
यस्मादतोऽस्मिन् गणिते ग्रहाणां योग्यो मते नः खलु कल्प एव॥ अ.१श्लो.२१॥

नारदपुराण में वेदव्यास ने कहा है कि नारद, ब्रह्माजी के वर्तमान कल्प में जितने वर्ष बीत गये हैं उन्हे एकत्र करके ग्रहानयन करना चाहिये अथवा युगादि से ग्रह साधन करे। इस प्रकार उन्होंने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"स्वयम्भुवः सृष्टिगतानब्दान् सम्पिण्ड्य नारद। खचरानयन कार्यमथवेष्टयुगादितः॥ पाद. २ श्लोक ६४॥

इदानीं वर्तमानदिनगतमाह—

याताः षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।

गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्रनगगोचन्द्राः १९७२९४७१७९ शकाब्दान्विताः
सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्त्तमाने गताः ॥२८॥

स्वायम्भुवो मनुरभूत् प्रथमस्ततोऽमी स्वारोचिषोत्तमजतामसरैवताख्याः।
षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम्॥२९॥

वर्तमान दिनगत मान—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य के अनुसार छः मनु संधि-सहित तथा सातवें मनु का २७ वाँ युग व्यतीत होकर वर्तमान युग के तीन अंग (तीन युग चरण-कृत, त्रेता और द्वापर) व्यतीत हो चुके हैं तथा कलि आरंभ से ३१७९ वर्ष शकारम्भ तक वर्तमान में व्यतीत हो चुके हैं जिन सब की योग संख्या १९७२९४७१७९ वर्ष है। ब्रह्मा के आदि से छः मनु (१) स्वायम्भुव (२) स्वारोचिष (३) उत्तमज (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष व्यतीत हो चुके हैं तथा वर्तमान में सातवाँ वैवस्वत नामक मन्वन्तर चल रहा है।

विशेष— वटेश्वराचार्य के अनुसार ब्रह्मा की आयु के ८$\frac{1}{2}$ वर्ष व्यतीत हो चुके तथा नवें वर्ष के प्रथम दिन के छः मनु, २७ युग, महायुग के तीन चरण (सत्युग, त्रेता, द्वापर) बीत गये तथा कलियुगादि से शकादि आरंभ तक ३१७९ वर्ष व्यतीत हो गये। इस प्रकार दोनों आचार्यों के अनुसार व्यतीत हो चुका काल समान है। लेकिन वटेश्वराचार्य ने कल्पवर्ष संख्या नहीं लिखी है, जबकि भास्कराचार्य ने लिखी है।

वटेश्वर सिद्धान्त– ''युगत्रिवृन्दं सदृशाङ्घ्रयस्त्रयः कलेर्नवागैकगुणा शकावधेः॥ म..अ.२श्लो.१०॥''

आर्यभट ने भी वर्ष संख्या नहीं लिखी है। आर्यभटीय गीतिकापाद श्लोक. ३

''काहोमनवो ढ मनुयुग श्रव गतास्ते च मनुयुग छ्ना च।
कल्पादेर्युगपादा ग च गुरु दिवसाच्च भारतांत्पूर्व॥३॥''

अर्थात् ब्रह्मा के कल्प में १४ मनु होते हैं तथा एक मनु में ७२ महायुग होते हैं। वर्तमान में छः मनु समाप्त हो कर सातवाँ मनु के २७ युग समाप्त होकर २८ वें युग के तीन पाद (चरण) समाप्त हो गये हैं। यहाँ ''भरतां' शब्द से युधिष्ठिर को उपलक्षित करके ''गुरु दिवसा'' से ''भारतगुरु दिवस'' कहा है। इसका अर्थ द्वापर के आसन्न काल से है जिस दिन युधिष्ठिरादि का राज्य समाप्त

हो गया था। अतः उस गुरु दिवस से कल्पारंभ से गत मन्वादि के लिए कहा है।

आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त प्रकार ही से कलि आरंभ तक का कल्पारंभ से गतकाल गणना कही है। मध्यमा. गणिताध्याय। यथा–

"चा ६ मनवश्छा ७ याताः सन्धय इह रथमितानि च युगानि।
गायुगचरणा ऐक्यं कुधिथिरधोभीघुनो नोनाः ॥१९॥"

अर्थात् ६ मनुसंधि सहित, २७ युग, तीन युग चरण कल्पारंभ से कलिआरंभ तक व्यतीत हो गये। यदि इन वर्षों में भास्कराचार्योक्त ३१७९ वर्ष शकाब्द आरंभ तक के और जोड़ देवें तो भास्कराचार्योक्त वर्ष संख्या १९७२९४४०००+३१७९ प्राप्त हो जाती है।

आर्यभट ने सूर्यसिद्धान्त की ही भांति ब्रह्मा को सृष्टी की रचना लोकार्थ ४७४०० दिव्यवर्ष अर्थात् १७०६४००० सौरवर्ष लग गये ऐसा माना है। यथा–

तस्मात् कल्पगताब्दा गणिते ग्राह्याः परन्तु सृष्यब्दैः।
बनखभननिनै ऊना लोकार्थं शास्त्रमेतदतः ॥१८॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"कल्पपरार्धे मनवः षट्कस्य गताश्चतुर्युगत्रिघनाः।
त्रीणि कृतादीनि कलिर्गोऽगैकगुणाः ३१७९ शकान्तेब्दाः ॥२६॥
नवनगशशिमुनिकृतनवयमनगनन्देन्दवः १९७२९४७१९ शकपृपान्ते।
सार्धमतीतमनूनां सन्धिभिराद्यन्तरान्तगतैः ॥२७॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी यद्यपि आचार्योक्त कहा है लेकिन क्योंकि यह सिद्धान्त प्राचीनतम है अतः इसमें कृत युग तक के बीत चुके काल के लिए ही कहा है। तथा एक बात विशेष यह कही है कि ब्रह्मा को ग्रह, नक्षत्र, देव, दानव आदि चर-अचर जगत की रचना करने में ४७४०० दिव्य वर्ष लग गये। अर्थात वर्तमान कल्प आरंभ से इतने दिव्य वर्ष पश्चात् सृष्टि काल का आरंभ हुआ। अतः इतने वर्ष काल गणना में और जोड़ने होंगे। यथा—

"कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः ॥२२॥
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतम् कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसङ्ख्याय सङ्ख्यामेकत्र पिण्डयेत् ॥२३॥

ग्रहर्क्ष-देव-देत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः॥२४॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में सात मनुओं के नामों के लिए आचार्योक्त कहा है।

''स्वायम्भुवाख्यो मनुराद्य आसीत् स्वारोचिषश्चोत्तमतामसाख्यौ।
जातौ ततो रैवतचाक्षुषों च वैवस्वतः सम्प्रति सप्तमोऽयम्॥'' अ. १ श्लो.२४॥

पूर्वोक्त आचार्योक्त शकारंभ तक की वर्ष संख्या यहाँ गणना करके बताते हैं।

६ मनु+७ मनुसंधि+२७ युग+कृतादि तीन युगचरण+३१७९

= ६ × ७१ यु+७×४×४,३२,०००+२७×४३,२०,०००+ (युग–कलिचरण) +३१७९

=४२६यु+२८×४,३२,०००+२७×४३,२०,०००+ (४३,२०,०००–४,३२,०००)+३१७९

= ४२६×४३,२०,००० + १,२०,९६,००० + ११,६६,४०,००० + ३८,८८,००० + ३१७९

= १९७२९४७१७९ आचार्योक्त वर्ष।

इदानीं बार्हस्पत्यं मानुषमानञ्चाह—

**बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् संवत्सरं सांहितिका वदन्ति।
ज्ञेयं विमिश्रन्तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः॥३०॥
वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्-
मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।
यत् कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं
तत् सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात्॥३१॥**

बृहस्पति तथा मनुष्य मान—

सूर्य-प्रभा टीका— संहिता ग्रंथों में कहा गया है कि बृहस्पति का मध्यम एक राशिभोगकाल संवत्सर कहलाता है। इस संसार में चार प्रकार के मान व्यवहार में आते हैं। वर्ष, अयन, ऋतु, युगादि सौर मान से प्रवर्त होते हैं और मास तिथि चंद्रमा से व्रत, उपवास, चिकित्सा, सूतक, वारादि सूर्य सावनात्मक हैं। घटिकादि नाक्षत्र कालिक हैं। इन सौर-चान्द्र-सावन तथा नक्षत्र

चारों मानों का मिश्रण मनुष्यों के लिए व्यवहार होता है, अतः ये मनुष्य मान हैं।

विशेष— मध्यम गुरु जितने समय में एक राशि का भोग करता है उस काल को संवत्सर कहते हैं तथा ये विजया से आरंभ करके ६० संवत्सर होते हैं। कल्प के आरंभ में विजय नाम का संवत्सर मनुष्य मान के लिए था। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय से मनुष्य मान की प्रवृत्ति कहते हैं।

भास्करोक्त वचन ही अधोलिखित शास्त्र भी कहते हैं।

क्षेपकपद्य—

"कल्पादितो मध्यमजीवभुक्ता ये राशयः षष्टिहृतावशेषाः।
संवत्सरास्ते विजयाश्विनाद्या इतीज्यमानं किल संहितोत्तम्॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर अध्याय-१ में संवत्सर के लिए कहा है। यथा–

"कल्पादि भुक्ता गुरुराशयो ये संवत्सराः स्युर्विजयादयस्ते।
बभाषिरे संहितिका हि पूर्वे वर्षाणि तस्याश्विनपूर्वकाणि॥४३॥"

मुहूर्तकल्पद्रुम में—

"चेत स्पष्टया वाऽप्यंथ मध्यगत्या राश्यन्तरं यत्र च चान्द्रवर्षेः।"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में भास्कराचार्योक्त ही प्रकार से कालमानों के विभिन्न उपयोगों को कहा है। यथा अध्याय १—

"वर्षाणि सौरात् प्रवदन्ति चान्द्रान्मासाँस्तिथीः सावनतोदिनानि।
सौरैन्दवाभ्यां तु विना न तत् स्यान्नाक्षत्रमानाद्घटिकादिकालः॥४९॥
युगायनर्तुप्रभृतीनि सौरान्मानाद्द्युरात्र्योरपि वृद्धिहानी।
पर्वाधिमासोनदिनानि चान्द्रात् तथा तिथेरर्धमपि प्रदिष्टम्॥५०॥
प्रायश्चित्तं सूतकाद्यं चिकित्सायज्ञाद्येवं कर्म वारादिकञ्च।
शास्त्रे त्वस्मिन् खेचराणाञ्च चारा विज्ञातव्याः सावनाद्भास्करीयात्॥५१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में भास्कराचार्य से बहुत अधिक कहा है। उन्होंने नौ प्रकार के कालमान जो भास्कराचार्य ने अगले श्लोक में कहे हैं में से किस मान में क्या कार्य करना चाहिए यह विस्तार से कहा है। ये सब अध्याय २ मध्यमा. में श्लोक १० से १३ में कहे हैं।

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त ही ४ मान मनुष्य मान बताये हैं। यथा–

"सौरचान्द्रमससावनमानैः सार्क्षकैर्गहगते खबोधः।
एभिरत्र मनुजव्यवहारो दृश्यते च पृथगेव चतुर्भि॥४८ अ.१॥"

सूर्यसिद्धान्त के मानाध्याय में भी मानवमान अर्थात मनुष्यों के उपयोग के चार कालमान बताये हैं तथा किसमान से किसका विचार करते हैं यह भी बताया है यथा– ''चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रार्क्षसावनैः ॥२॥ नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ॥१५॥ सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च। अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालता ॥३॥ तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा। व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण गृह्यते ॥१३॥ सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा। मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावने नैव गृह्यते ॥१६॥'' यहाँ भास्कराचार्योक्त ही कहा गया है।

इदानीं मानोपसंह्वारश्लोकमाह—

एवं पृथङ्मानवदैवजैवपैत्रार्क्षसौरैन्दवसावनानि।
ब्राह्मञ्च काले नवमं प्रमाणं ग्रहास्तु साध्या मनुजैः स्वमानात् ॥३२॥

कालमान के उपसंहार स्वरूप में श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने काल के नौ मान बताये हैं मानव, दैव, जैव, पैतृ, अर्क्ष, सौर, चान्द्र, सावन, अहोरात्र आदि। ब्रह्मा का काल नवाँ प्रकार का है। मनुष्य जिस मान से ग्रहस्पष्ट करते हैं वह मनुष्य मान अर्थात् मनुष्य का स्वमान है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में अध्याय १ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''पैतामहं दिव्यमथासुरञ्च पैत्रं तथा मानुषमानमन्यत्।
सौरार्क्षमांशवसावनानि जैवं तथेदं दश कीर्तितानि ॥४७॥
सौरचान्द्रमससावनमानैः सार्क्षकैर्ग्रहगतेरवबोधः।
एभिरत्र मनुजव्यवहारो दृश्यते च पृथगेव चतुर्भिः ॥४८॥''

यहाँ आचार्य ने दस प्रकार के मान कहे हैं। श्रीपति ने भी ग्रह आनयन मनुष्य मान से करने से भास्करोक्त उन चारों मानों को मनुष्य मान कहा है।

वटेश्वराचार्य ने स्वसिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है लेकिन उन्होंने मनुष्य मान के स्थान पर दैत्यमान कहा है। दैव तथा दैत्य मान तो एक ही हैं, अतः यह अतिशयोक्ति है। यथा मध्यमाधिकार द्वितीय अध्याय–

''आर्क्ष चान्द्रमस सौर सावन ब्राह्म जैव पितृदेव दैत्यजैः।
काल एभिरनुमीयतेऽव्ययोयेन माननवकस्य च व्ययः ॥८॥''

सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय में निम्नलिखित नौ प्रकार के कालमान बताये हैं–

"ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरश्च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव॥१॥"

अर्थात– ब्राह्म, दिव्य (देवता), पित्र्य, प्रजापत्य (मन्वन्तरादि), गौरव (ब्रस्पतिवर्ष-संवत्सर), सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र ये नौ प्रकार के काल मान होते हैं।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कालमानाध्याय की पण्डितवर्य श्रीदामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

—

(ब) भगणाध्याय

अथेदानीं ग्रहाणां मन्दोच्चानां चलोच्चानां ग्रहपातानाञ्च भगणान् श्लोकषट्केनाह—

अर्कशुक्रबुधपर्यया विधेरह्नि कोटिगुणिता रदाब्धयः ४३२००००००।
एत एव शनिजीवभूभुवां कीर्त्तिताश्च गणकैश्चलोच्चजाः॥१॥
खाभ्रखाभ्रगगनामरेन्द्रियक्ष्माधराद्रिविषया ५७७५३३००००० हिमद्युतेः।
युग्मयुग्मशरनागलोचनव्यालषणनवयमाश्विनो २२९६८२८५२२सृजः॥२॥
सिन्धुसिन्धुरनवाष्टगोऽङ्कषट्त्र्यङ्कसप्तशशिनो १७९३६९९८९८४ ज्ञशीघ्रजाः।
पञ्चपञ्चयुगषट्कलोचनद्व्यब्धिषड्गुणमिता ३६४२२६४५५ गुरोर्मताः॥३॥
द्विनन्दवेदाङ्गगजाग्निलोचनद्विशून्यशैलाः ७०२२३८६४९२ सितशीघ्रपर्ययाः।
भुजङ्गनन्दद्विनगाङ्गबाणषट्कृतेन्दवः १४६५६७२९८ सूर्यसुतस्य पर्ययाः॥४॥

खाष्टाब्धयो ४८०ऽष्टाक्षगजेषुदिग्द्विप-
द्विपाब्धयो ४८८१०५८५८ द्व्यङ्कयमा २९२ रदाग्नयः ३३२।
शरेष्विभा ८५५ स्त्र्यक्षरसाः ६५३ कुसागराः ४१
स्युः पूर्वगत्या तरणेर्मृदूच्चजाः॥५॥

गजाष्टिभर्गात्रिरदाश्विनः २३२३१११६८ कुभृ-
द्रसाश्विनः २६७ कुद्विशराः ५२१ क्रमर्त्तव ६३।
त्रिनन्दनागा ८९३ युगकुञ्जरेषवो ५८४
निशाकराद्व्यस्तगपातपर्ययाः॥६॥

ग्रहों, मंदोच्चों, शीघ्रोच्चों तथा ग्रह पातों के भगण—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य बुध शुक्र की पूर्वाभिमुख गमन करते हुए ४३२ गुणा एक करोड़, एक कल्प में भगण संख्या होती है और इतनी ही शनि, गुरु तथा मंगल के शीघ्रोच्चों की संख्या होती है॥१॥ चन्द्रमा की भगण संख्या ५७७५३३००००, मंगल की २२९६८२८५२२॥२॥ बुध शीघ्रोच्च की १७९३६९९८९८४, गुरु के भगण ३६४२२६४५५॥३॥ शुक्र शीघ्रोच की ७०२२३८६४९२, शनि की भगण संख्या १४६५६७२९८ होती है॥४॥ सूर्य का मन्दोच्च ४८० भगण, चंद्र का मंद ४८८१०५८५८, मंगल का मंद २९२, बुध

का मंद ३३२, गुरु का ८५५, शुक्र का मंद ६५३, शनि का मंद ४१ पश्चिम से पूर्व की ओर गति करता है।।५।।

पातभगण कहते हैं। चंद्र का पात भगण २३२३११९६८, मंगल का २६७, बुध का ५२१, गुरु का ६३, शुक्र का ८९३, शनि का पात भगण ५८४ है। चंद्र सहित सभी के पात मेष से मीन, कुंभ, मकर आदि क्रम से विलोम गति करते हैं।

उपपत्ति— आचार्य का कहना है कि यहाँ जो आचार्य ने भगणादि पठित किये हैं उस की गणितस्कन्ध से उपपत्ति का आगम ही प्रमाण है। एक कल्प में जितने वर्ष होते हैं उतने ही सूर्य के भगण होते हैं। यह उपपन्न है। पूर्व में यहाँ सूर्य का भगण भोग काल ही वर्ष कहा गया है। बुध शुक्र सदासूर्य के आसन्न ही रहते हैं कभी उसके आगे रहते हैं तो कभी पीछे रहते हैं। ये रवि के साथ सदा अनुचर के रूप में घूमते रहते हैं। अतः उनकी भगण संख्या रविभगण तुल्य होती है। इनके शीघ्रोच्चों की उपपत्ति वक्ष्यमाण प्रकार से आगे बताई जायेगी।

समतल की हुई भूमि पर अभीष्ट कर्कटक (गोला प्रकार) से एक त्रिज्या तुल्य अंकित वृत्त बनावे जिसमें दिशा अंकित हो तथा भगणों के अंशादि अंकित हो। ऐसा करके उसमें पूर्व दिशा के चिन्ह से दक्षिण की ओर थोड़ी दूरी पर वृत्त के मध्य स्थित होकर रवि के उदय का वेध करके (कील) निशान लगा देवे, फिर एक वर्ष के अनन्तर रवि के उदय की गणना करे। यह ३६५ तुल्य होती है। यह एक वर्ष बाद का उदय पूर्व के उदय स्थान के आसन्न ही दक्षिण की ओर होता है। उस अन्तर को गणना करके ग्राह्य करे। फिर अंतर करे कि यदि एक अन्तर विज्ञ (ज्ञात की हुई) कला में ६० घटिका प्राप्त होती है तो दक्षिण की ओर अन्तरित कला में कितनी होगी? इससे १५ घटी ३० पल २२ विपल ३० प्र.विपल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ३६५ दिन और १५।३०।२२।३० घट्यादि सावन दिन तुल्य रवि वर्ष होता है। फिर अनुपात किया कि यदि एक वर्ष में इतने कुदिन होते हैं तो कल्पवर्षों में कितने होंगे? इससे जो प्राप्त होंगे वे एक कल्प में सावन दिन संख्या होती है। इस प्रकार रविवर्ष प्राप्त करके अनुपात किया कि इतने कुदिन में चक्रकला प्राप्त होती है। (३६०×६०=२१६००) तो एक कुदिन में कितनी होगी? प्राप्त फल मध्यम रवि गति उपपन्न होती है।

चन्द्रभगणोपपत्ति— ग्रह वेध करने के लिए गोलबन्ध नियमों के अनुरूप गोलयन्त्र बनाकर उस खगोल के अंदर भगोल को स्थापित करे। दोनों का आधारवृत्त विषुवद्वृत्त है। इस वेध रचित गोल में क्रांति वृत्त में ३६० अंश अंकित करे और दोनों कदम्ब को कीलित करे, कदम्ब प्रोत वृत्त जो ग्रह वेधवलन है, पर भी ३६० अंश चिन्हित करें। फिर उस गोलयंत्र को जल के समान क्षितिज वलय की भांति ध्रुवाभिमुखयष्टि करके स्थिर करे। रात्रि में गोल केंद्र गत दृष्टि द्वारा रेवती तारा को देखकर वेधगोलीय क्रांतिवृत्त में मीनांत पर रेवती तारा को अंकित करे और गोलकेंद्रगत दृष्टि द्वारा चन्द्रमा को देखकर वेधगोल में परिणत चन्द्र के ऊपर उसका कदम्ब प्रोत्तवृत्त बनावे। इस वृत्त का व क्रांतिवृत्त का जो संपात है वही वेधगत स्पष्ट चन्द्र जानना चाहिए। रेवती बिंदु से स्पष्टचंद्र तक क्रांतिवृत्त में जो राश्यंशादि हो वही उस समय राश्यादि चन्द्र स्पष्ट होता है। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त और चंद्रमा के मध्य वेधवृत्त में जो अंतर होता है। वह चंद्रमा का विक्षेप है। जिस प्रकार यह जिस रात्रि में वेध किया है उसी प्रकार पुनः द्वितीय दिन करे। इन दोनों का अंतर चंद्र की उस दिन की स्फुट गति होती है। फिर इस चंद्र स्पष्ट से ''स्फुट ग्रह मध्य खगं प्रकल्प्य'' इत्यादि द्वारा मध्यमचन्द्र से स्पष्ट चन्द्र साधन की विपरीत क्रिया द्वारा मध्यम चंद्र का आनयन करे। अनुपात करे की यदि एक दिन में इतनी चंद्र गति होती है तो कुदिन में क्या? इस अनुपात से चन्द्र की भगण संख्या प्राप्त हो जावेगी।

ब्रह्मगुप्त ने भी इसी प्रकार कहा है, यथा—

''ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः।
त्रैराशिकेन भुक्त्या कल्पग्रहमण्डलानयनम्।।''

इसी प्रकार अन्यों के भी भगणों की उपपत्ति करें।

चन्द्रोच्च की उपपत्ति— प्रतिदिन वेध के द्वारा चन्द्र की स्पष्ट गति को देखते रहे जिस दिन यह परमाल्प होगी उस दिन मध्यम तथा स्फुट (ग्रह) चंद्र तुल्य होते हैं और वही उसका उच्च स्थान होता है। उच्च स्थान पर ग्रह का फलाभाव अर्थात् फल शून्य होता है अतः वहाँ गति परमाल्प होती है। पुनः उस दिन के उपरान्त दूसरे भगण में भी प्रत्येक दिन वेध से पूर्वोक्त प्रकार ही से चंद्रमन्दोच्च स्थान ज्ञात करें। यह स्थान पूर्व स्थान से आगे होता है। इनका अंतर ज्ञात करके अनुपात करे कि यदि इतने दिन के अंतर में इतना उच्च का

अन्तर प्राप्त होता है तो एक दिन में कितना होगा? प्राप्त फल उच्च की गति होगी। फिर अनुपात करे कि यदि एक दिन में चंद्रमन्दोच्च गति इतनी प्राप्त होती है तो कुदिन में कितनी होगी? इस के द्वारा चन्द्रमन्दोच्च भगण का मान प्राप्त हो जावेगा।

चन्द्रपात भगणोपपत्ति— प्रतिदिन चंद्रमा का वेध करने से जिस दिन उसका दक्षिण (शर) विक्षेप क्षीयमाण हो उस दिन उसका विक्षेप शून्य होता है। उस दिन क्रांतिवृत्त में उस स्थान को चिन्हित कर देवे। वहाँ जितना चंद्र स्पष्ट हो उसको १२ राशि में से घटाने से चन्द्र का पात प्राप्त होता है। पुनः दूसरे पर्यय में भी पात स्थान ज्ञात करे। यह पातस्थान पूर्व पात स्थान से पश्चिम में (पीछे) होता है। इससे पात की विलोम गति सिद्ध होती है। दोनों पातों का अंतर पात की गति होगी। फिर अनुपात करने पर कि इतने दिनों के अंतर में पात गति इतनी होती है तो एक दिन में क्या होगी? प्राप्त फल एक दिन की पात गति होगी। फिर पूर्ववत अनुपात करने पर कि यदि एक दिन में इतनी गतिपात की होती है तो कुदिन में क्या? इस प्रकार प्राप्त फल कल्प में चंद्र पात भगण संख्या आ जावेगी।

रविमन्दोच्च भगणोपपत्ति— मिथुनस्थ रवि के रहने पर किसी भी दिन रेवती नक्षत्र के उदय के पश्चात जितनी घटी बाद सूर्य उदित हो उतनी घटी का मीनान्त से लग्न साधन करे। यह जो लग्न होगा वही स्पष्ट सूर्य होगा। इसी प्रकार दूसरे दिन भी करे। दोनों रविस्पष्ट का अन्तर सूर्य गति होगी। इसी प्रकार प्रत्येक दिन स्फुट गति ज्ञात करे। जिस दिन इस प्रकार करते रहने से रवि की स्पष्ट गति परमाल्प होगी उसी दिन जितना रवि स्पष्ट होगा उतना ही रवि मन्दोच्च प्रमाण होगा। इस प्रकार दूसरे पर्ययों में सौ वर्षों के अनन्तर भी रवि मन्दोच्च गति उपलब्ध नहीं होती किन्तु फिर भी चन्द्रमन्दोच्च की तरह यहाँ भी आचार्य ने इसकी गति स्वीकार की है तथा कहा है कि दूसरे पर्यय में भी मंदोच्च स्थान ज्ञात करे। इस प्रकार इन दोनों मंदोच्चों का अन्तर उनकी गति होती है। फिर पूर्वोक्त प्रकार से अनुपात द्वारा रवि मन्दोच्च भगण प्राप्त करे।

आचार्य कहते हैं कि ये भगण जितने उपयुक्त अहर्गण के वर्ष गणों में कहे अनुसार दृष्टिगत हो उनको कुट्टक के द्वारा कल्पित करे।

अन्य ग्रहों के शीघ्रोच्चोपपत्ति— शनि गुरु मंगल इत्यादि उच्च से आकर्षित होते हैं जिससे वे स्वकक्षामंडल में भ्रमण करते हुए अपने अभिमुख

उच्च स्थानों की ओर आकर्षित होते हैं। इस आकर्षण के कारण अपनी कक्षा मंडल में ग्रह अपने मध्यम स्थान जितना आगे अथवा पीछे दृश्य होता है उतना फल उसका मंदफल होता है। यहाँ उच्च नामक स्थान, स्थान विशेष होता है। अतः उसके लिए कहा है कि वह आकर्षित करता है। जिस प्रकार सूर्य सिद्धान्त में कहा है—

"अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथाऽऽसन्नं स्वदिङ्मुखम्॥" इत्यादि

यहाँ जो देवता विशेष को अंगिकृत किया है वह दोषपूर्ण है। शनि, गुरु और कुज यदि सूर्य से आगे होते हैं तब मध्यमग्रह से स्फुट ग्रह आगे दृश्य होता है और यदि पीछे होता है तो मध्यम ग्रह से स्फुट ग्रह पीछे दृश्य होता है। यहाँ तीनों ग्रहों के शीघ्रोच्च रवि को ज्ञानियों ने माना है। अतः रविभगण तुल्य इनके शीघ्रोच्च भगण होते हैं, यह उपपन्न हुआ।

मन्दोच्च उपपत्ति— जहाँ वेध से स्फुट ग्रह ज्ञात होता है, उसको मंदस्फुट मान कर उसका शीघ्रफल आनयन करके उस स्फुट ग्रह में विलोम संस्कार करके मंदस्फुट ग्रह प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रत्येक दिन का मंदस्फुट ज्ञात करे। इस प्रकार प्रत्येक दिन को मंदस्फुट उपलक्षित करके उनका धन मंदफल क्षीयमाण होते हुए जिस दिन वह ग्रह मध्यम तुल्य होता है उसके तुल्य ही मंदोच्च होता है। उससे रवि मन्दोच्च भगण जिस प्रकार ज्ञात किया है उसी प्रकार इनका भी ज्ञात करे। द्वितीय पर्यय में भी ग्रह मंदोच्च ज्ञात करना होगा।

बुध शुक्र के शीघ्रोच्चोपत्ति— पूर्व दिशा में चक्रयन्त्र द्वारा स्पष्ट रवि शुक्र के वेध से उनके अंतरांश ज्ञात करे तथा उनको स्फुट सूर्य में से घटाने से स्पष्ट शुक्र होता है। स्फुट शुक्र का मन्दफल साधन करके स्फुट शुक्र में धन ऋण का विलोम संस्कार करने से मन्दस्पष्ट शुक्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्पष्ट रवि से भी विलोम विधि से मध्यम रवि ज्ञात करे। दोनों का अंतर करने पर धन-ऋण शीघ्रफल होगा अर्थात् मध्यम रवि तुल्य मध्यम शुक्र और मध्यमफल व्यस्त संस्कृत से लाये हुए स्पष्ट शुक्र का अन्तर करने से जो धन-ऋण शीघ्रफल प्राप्त होता है वही स्पष्ट शुक्र तथा मन्द स्पष्ट शुक्र का अंतर शीघ्र फल होता है। इस प्रकार वेध से प्रतिदिन परमशीघ्र फल प्राप्त करना चाहिये। शीघ्रफल का

परमत्व प्रायः कक्षा मध्यतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त सम्पात में रहने से होता है। अतः वहाँ स्पष्ट शुक्र से तीन राशि दूरी पर शीघ्रोच्च होता है। इसी प्रकार पुनः ऐसे ही पर्यय में द्वितीय बार वेध से पूर्वोक्तानुसार शीघ्रोच्च का साधन करके उन दोनों शीघ्रोच्चों का अन्तर करे तथा अनुपात करे कि यदि शीघ्रोच्चों का इतना अंतर इतने समय में प्राप्त होता है तो एक दिन में कितना होगा।? प्राप्त फल एक दिन की शीघ्रोच्च गति होगी। फिर अनुपात करे कि यदि एक दिन में यह शीघ्रोच्च गति होती है तो कुदिन में कितनी होगी? इस के द्वारा कुदिन में शुक्रोच्च भगण आ जायेंगे। इसी प्रकार बुध शीघ्रोच्च भगण प्राप्त करे।

भोमादि के पात भगण— भोमादि के पूर्ववत दक्षिण विक्षेप अभाव स्थान पर वह मंदस्फुट होता है। ग्रह को चक्र (१२ राशि) में से घटाने से उनके पात होते हैं। बुध शुक्र के मन्दफल व्यस्त संस्कृत करने से प्राप्त शीघ्रोच्च को चक्र में से घटाने से उनके पात ज्ञात होते हैं। उनसे पूर्ववत कल्प भगण प्राप्त करे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने सभी भगण संख्यायें महायुग के लिए कही हैं अतः उनके अंकों में थोड़ा-थोड़ा अंतर प्रतीत होता है। आचार्य ने ये भगण मध्यमाधिकार के द्वितीय अध्याय में श्लोक ११ से १९ तक में कहे हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में श्लोक १६ से २१ में आचार्योक्त भगण ही पठित किये हैं। श्लोकों की संख्या अधिक होने से यहाँ उन्हें नहीं दिया जा रहा है।

सूर्यसिद्धान्त में सू, चं, मं, गु, श, बु, शु, बु.शी, शु.शी, चं.शी. तथा राहु आदि के भगण कहे हैं। ये भगण महायुग के लिए कहे हैं तथा कल्प भगणप्राप्त करने के लिए वटेश्वराचार्य की तरह उन्हें एक हजार से गुणा करने के लिए कहा है। सूर्य सिद्धान्त तथा वटेश्वर सिद्धान्त में इनकी भगणसंख्या तुल्य ही कही है।

	वटेश्वर सिद्धान्तोक्त युग भगण	सूर्य सिद्धान्तोक्त युग भगण
सूर्य-बुध-शुक्र	४३२००००	४३२००००
चंद्र	५७७५३३३६	५७७५३३३६
भौम	२२९६८२८	२२९६८३२
		यहाँ ४ भगण का अंतर है।
गुरु	३६४२२०	३६४२२०
शनि	१४६५६८	१४६५६८

राहु (चंद्रपात)	२३२२२३८	२३२२२३८
बुध शीघ्रोच्च	१७९३७०८०	१७९३७०६०
शुक्र शीघ्रोच्च	७०२२३७६	७०२२३७६
चंद्र मंदोच्च	४८८२०३	४८८२०३
रवि मंदोच्च भगण	१६५११	३८७एक कल्प में
	ब्रह्मा की आयु में	
मंगल मंदोच्च	८११६५ ,,	२०४ ,,
गुरु मंदोच्च	१३९४५ ,,	९०० ,,
शनि मंदोच्च	७२९७४ ,,	३९ ,,
बुध मंदोच्च	४७७२९१ ,,	३६८ ,,
शुक्र मंदोच्च	१५२८४२ ,,	५३५ ,,
ब्रह्मा की आयु में—		
बुध पात भगण	९५५२७१४५५४१८७१६	४८८ ,,
शुक्र पात भगण	१९६१२७४८०६३६५५५	९०३ ,,
मंगल पात भगण	२०६८४	२१४ ,,
गुरु पात भगण	३९२०२	१७४ ,,
शनि पात भगण	१५४२	६६२ ,,

सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार श्लोक ३० से ३३ तथा ४१ से ४४ में ये भगण कहे हैं।

सिद्धान्त शेखर में भगण संख्या आचार्योक्त ही कहे हैं। यथा–

"अष्टकोटिगुणिताः कृतेषवः ४,३२,००००००० सूर्यसौम्यभृगुसूनुपर्ययाः।
कल्पकालकथिताश्चलोच्चजा भौम मंदसुरमंत्रिणामपि॥२६॥
देववाणनगशैलवायवो लक्षकाभिनिहता ५७,७५३,३००,००० हिमत्विषः।
आकृतीष्वहियमाष्टषडङ्कद्वयश्विनोऽ २२९६८२८५२२ वनिसुतस्य कीर्तिताः॥२७॥
वेदाष्टनन्दवसुगोऽङ्करसाग्निरन्ध्रशैलेन्दवो १७९३६९९८९८४ बुधचलोच्चज मंडलानि।
वाणेषुवेदरसनेत्रयमाब्धिषट्क रामा ३६४२२६४५५ गिरामधिपतेर्भगणः प्रदिष्टः॥२८॥"

इसी प्रकार आगे। (अ.१ श्लोक २६ से ३१)

अथ भभ्रमानाह—

खखेषुवेदषड्गुणाकृतीभभूतभूमयः।
शताहता १५८२२३६४५०००० भपश्चिमभ्रमा भवन्ति काहनि॥७॥

नक्षत्र भगणमान—

सूर्य-प्रभु टीका— एक कल्प में नक्षत्र दिन संख्या १५८२२३६४५०००० होती है।

विशेष— ये भगण वास्तव में पृथ्वी के हैं जो पृथ्वी को स्थिर मान कर (तारे) नक्षत्र के कहे हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"भूतवेदरसरामयमाश्विव्यालवाणशशिनोऽयुतनिघ्नाः १५८२२३६४५०००० ज्योतिषामपरया खलु गत्या गच्छतां विधिदिनं परिवर्त्ता॥३२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त नक्षत्रदिन कहे हैं—

"भपरिवर्त्ताः खचतुष्टयशरब्धिरसगुणयमद्विवसुतिथयः १५८२२३६४५०००० ॥२२॥"

अथ सूर्याहाँश्चान्द्राहाँश्चाह—

विधिदिने दिनकृद्दिवसाः करे-
न्द्रियशरेषुभुवोऽर्बुदसङ्गुणाः १५५५२००००००००।
नवनवाङ्करकराभ्ररसेन्दवः
प्रयुतसङ्गुणिता १६०२९९९०००००० विधुवासराः॥८॥

सूर्य चन्द्र दिन संख्या—

सूर्य-प्रभा टीका— एक कल्प में सौर दिवस १,५५५,२००,०००,००० होते हैं तथा चांद्र दिवस १,६०२,९९९,०००,००० होते हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है तथा उनकी उक्ति से भास्कराचार्योक्त कथन की उपपत्ति भी हो जाती है। यथा—

रविभगणा रव्यब्दा द्वादशगुणिता भवन्ति रविमासा।
भगणान्तरं रविन्द्वो शशिमासाः ५३४३३३००००० सूर्यमासोनाः॥२३॥
अधिमासाः १,५९३,३००,००० शशिमासास्त्रिंशदगुणता १६०२९९९०००००० भवन्ति शशिदिवसाः।

अर्थात्— रविभगण तुल्य वर्षमान होते हैं अतः रविभगण ४३२०,०००,०००×१२ = ५१,८४०,०००,०००। रविमास × ३० दिन = १५,५५,२००,०००,००० रविदिन।

कल्पचंद्रभगण ५७७५३३००००० – रविभगण ४३२०००००००० = चंद्रमास ५३४३३३०००००।

इन मासों को ३० दिन से गुणा करने से चांद्र दिवस = १६०२,९९९,०००,०००

आचार्योक्त चांद्रमास की परिभाषा सूर्य सिद्धान्तादि में भी दी गई है क्योंकि ये आधारभूत परिभाषायें हैं।

अथ कुदिनान्याह—

भूदिनानि शरवेदभूपगोसप्तसप्ततिथयोऽयुताहताः १५७७९१६४५००००
भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा॥९॥

कुदिन मान—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्प नक्षत्र दिवस में से सूर्य भगण घटा देने से कल्प सावन दिन संख्या होती है। (क्योंकि एक रविवर्ष में जितने नक्षत्र भ्रमण होते हैं उससे एक कम सावन दिन होता है) अतः नक्षत्र भगण १,५८२,२३६,४५०,००० – रवि भगण ४,३२०,०००,००० = १,५७७,९१६,४५०,००० कुदिन (सावन दिन)।

सावन दिन ज्ञात करने की परिभाषा आधारभूत परिभाषा है। इसी परिभाषा से सभी आचार्यों ने अपने अपने ग्रंथ में सावन दिन ज्ञात किये हैं, लेकिन उनके भगणों के मान भिन्न भिन्न होने से तथा वर्षमान भिन्न भिन्न होने से सावन दिनादि संख्या अलग अलग होती है।

वर्ष मान को कल्प/युग सूर्य भगण से गुणा करने से कल्प/युग के सावन दिन संख्या प्राप्त हो जाती है।

अथाधिमासान् न्यूनाहाँश्चाह—

लक्षाहता देवनवेषुचन्द्राः १५९३३००००००
कल्पेऽधिमासाः कथिताः सुधीभिः।
दिनक्षयास्तत्र सहस्रनिघ्नाः
खबाणबाणाश्व्यहिखेषुदस्राः २५०८२५५००००० ॥१०॥

अधिमास-क्षय दिवस—

सूर्य-प्रभा टीका— ज्ञानी जनों ने एक कल्प में १५९३३०००००० अधिमास कहे हैं और एक कल्प में २५०८२५५००००० क्षयदिन कहे हैं।

इदानीमधिमासेन्दुदिनावमानि प्रकारान्तरेणाह—

रवेः कोटिनिघ्नाः कृताष्टेन्दुबाणाः ५१८४००००००००।
सुराग्न्यब्धिरामेषवो लक्षनिघ्नाः ५३४३३३००००००।

शशाङ्कस्य मासाः पृथक् सूर्यमासै-
विहीनास्तु कल्पेऽथ वा तेऽधिमासाः ॥११॥
अधिदिनैर्दिनकृद्दिनसञ्चयः सहित इन्दुदिनान्यथ तानि वा।
विरहितानि च तानि दिनक्षयैः क्षितिदिनान्यत उत्क्रमतोऽपरम् ॥१२॥

अधिमास चांद्र दिवस तथा (क्षय) अवयमान प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— सौर मास (४३२००००००×१२) ५१,८४०,०००,००० को चांद्रमास (श्लोक ८ में प्राप्त किये अनुसार) ५३,४३३,३००,००० में से कम करने से अधिमास प्राप्त होते हैं। अधिमास के दिनों में सौर दिन युक्त करने से चांद दिवस प्राप्त होते हैं। कल्प चांद्र दिन और कल्प कुदिन का अन्तर कल्प अवमदिन होते हैं। क्षयदिनों को उत्क्रम से चांद्र दिनों में कम करने से कल्प कुदिन प्राप्त होते हैं।

विशेष— ये श्लोक ११ तथा १२ वाँ, श्लोक १० की उपपत्ति भी है।

अब

चांद्रमास – सौरमास = अधिमास (परिभाषा है)

अधिमास+सौरमास = चांद्रमास

अर्थात् अधिमास दिन+सौर दिन =चांद्रदिन (कल्प में)

१५९३३००००००×३०+१,५५५,२००,०००,००० = चांद्र दिन एक कल्प में। ४७,७९९,०००,०००+१,५५५,२००,०००,००० = १,६०२,९९९,०००,००० एक कल्प में चांद्र दिन उपपन्न हुआ।

ये सभी आधारभूत परिभाषायें हैं जिनके आधार पर ही अन्य ग्रंथों में गणनायें की गई हैं। उनके मान भिन्न हो सकते हैं। वटेश्वर, ब्रह्मगुत्पादि ने तथा सूर्यसिद्धान्त आदि में भी आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं प्रकारान्तरेण चान्द्रमासान् दिनक्षयांश्चाह—

अन्तरं तरणिचन्द्रचक्रजं यद्भवेत् स विधुमाससञ्चयः।
चन्द्रचक्रदिवसैक्यमूनितं चन्द्रमासभदिनैर्दिनक्षयाः ॥१३॥

प्रकारान्तर से चांद्रमास और दिनक्षय ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रभगण में से सूर्य भगण घटाने से चांद्रमास संख्या प्राप्त होती है। चान्द्र भगण में से चांद्रमास घटाने से सूर्य भगण प्राप्त होते हैं। नक्षत्र भगण में से रवि भगण घटाने से सूर्य सावनदिन प्राप्त होते हैं। इन सावन दिनों को चांद्रदिनों में से घटाने से क्षय दिन प्राप्त होते हैं।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त, वटेश्वर तथा ब्रह्मगुप्तादि ने भी इसी प्रकार कहा है। आचार्योक्त परिभाषायें आधारभूत परिभाषायें हैं।

एक सौर वर्ष में नृसिंह दैवज्ञानुसार चन्द्र चक्र १३।४।१२।४६।३० ये १३ चक्रसंख्या के अतिरिक्त संख्या के घटिकादि बनाने से २२।७।४५ हुए अतः चन्द्र चक्र को दिन मानने से १३।२२।७।४५ में चांद्र दिवस ३७१।३।५२।३० युत करने से ३८४।२६।०।१५ चन्द्र चक्र दिवसैक्य हुए। इनमें से चांद्रमास १२।११।३।५२।३० घटाने के लिए इसको सजातीय करने के लिए चांद्रमास के आगे के अंकों को दो से गुणा करके घटिकादि प्राप्त करके चान्द्रमास तुल्य दिन मान कर १२।२२।७।४५ घटाने से ३७२।३।५२।३० प्राप्त हुए। इनमें से ३६६।१५।३०।२२।३० नक्षत्रदिन घटाने से ५।४८।२२।७।३० दिन क्षय हुए।

इदानीमन्यदाह—

इन्दुमण्डलगुणेन्दु १३ सङ्गुणब्रध्नचक्रविवरेऽधिमासकाः।
खेचरोच्चभगणान्तरोन्मिताः सन्ति मन्दचलकेन्द्रपर्यया:॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— १३ गुणित रविभगण को चान्द्रभगण में से घटाने से अधिमास प्राप्त होते हैं और ग्रहभगण में से मन्द/शीघ्र उच्च भगण को घटाने मन्द/शीघ्र केंद्र भगण प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— युग अधिमास = युग चांद्रमास – युगसौर मास

युग चांद्रमास = युग चांद्रभगण – युगसूर्य भगण ....(१)

तथा युगसौरमास = १२ × युगसूर्य भगण ....(२)

अतः युगअधिमास = (युगचांद्रभगण – युगसूर्यभगण) – १२ युग सूर्यभगण

यहाँ युग चांद्रमास तथा युग सौर मास का मान समी. (१) तथा (२) से प्रतिस्थापित किया है। (यहाँ युग के स्थान पर कल्प ले सकते हैं।)

अथवा युग अधिमास = युग चांद्रमास – १३ युग सूर्यभगण उपपन्न हुआ।

एक सौर वर्ष में सूर्य भचक्र का एक भगण तथा चंद्रमा १३ भगण करता है। क्योंकि चंद्रमा सूर्य के चक्कर लगाता है और सूर्य चंद्रमा सहित भचक्र में एक चक्कर एक वर्ष में लगाता है अतः एक सौर वर्ष में चन्द्रमा के १३ भगण हो जाते हैं। अतः एक वर्ष में सूर्य के बारह मास तथा चंद्रमा के १३ मास हुए। इन दोनों का अंतर चंद्र मास तथा सूर्यमास का अंतर चंद्रमा का एक

अधिमास हुआ। चन्द्रमा का एक भगण एक मास तुल्य होता है। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि एक वर्ष के चंद्र भगणों (१३) में चांद्रमास (१२) घटाने से एक सूर्यभगण प्राप्त होता है। इस प्रकार यह आचार्योक्त श्लोक १० से १३ की उपपत्ति हो जाती है। चंद्रमा क्योंकि सूर्य से शीघ्र गति से चलता है अतः उसके दिनों की संख्या से सावन दिनों की संख्या अल्प होती है। अतः इन दिनों की संख्या कितनी अल्प होती है यह इन दोनों के अंतर करने से ज्ञात हो जावेगा। अतः यह अन्तर क्षय दिवस कहे जाते हैं।

वटेश्वर तथा ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने भी यही आधारभूत परिभाषायें कही हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में मध्यमगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''द्युगणां युगाधिमासैर्गुणितं युगभूदिनैर्भजेल्लब्धम्।
भगणादिमध्यमार्कत्रयोदशगुणाधिकं चन्द्रः ॥३३॥''

लल्लाचार्य ने शिश्याधिवृद्धिद के मध्यमाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''विश्वघ्नतिग्मकरपर्ययवर्जितेषु चक्रेषु शीतमहसस्त्वधिमासकाः स्युः'' ॥९ $\frac{1}{2}$॥
''ये स्वोच्चपर्ययनभश्चर मण्डलानां विश्लेषजास्त इह केन्द्रजपर्ययाः स्युः'' ॥११॥

॥ इति श्रीमद् भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के भगणाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्यप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

॥ इति भगणाध्यायः॥

(स) अथ ग्रहानयनाध्यायः।

तत्राहर्गणानयनमाह—

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
रविगुणो गतमाससमन्वितः।
खदहनैर्गुणितस्तिथिसंयुतः
पृथगतोऽधिकमास - १५९३३०००००० समाहतात्॥१॥
रविदिना - १५५५२०००००००० प्तगताधिकमासकैः
कृतदिनैः सहितो द्युगणो विधोः।
पृथगतः पठितावम - २५०८२५५०००० सङ्गुणाद्-
विधुदिना - १६०२९९९०००००० प्तगतावमवर्जितः॥२॥
भवति भास्करवासरपूर्वको दिनगणो रविमध्यमसावनः।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो द्युघटिकादिकमत्र न गृह्यते॥३॥

अहर्गण आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पारंभ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को १२ से गुणा करके (गताब्द के रविमास प्राप्त होंगे। इनमें चैत्रारंभ से वर्तमान वर्ष के) गतचांद्रमास संख्या (सौरमास मान कर) युत करके तीस से गुणा करके इष्टमास की (प्रतिपदा से) गति तिथि (सौर तिथि तुल्य मान कर) युत करके इसको पृथक् स्थान पर कल्प अधिमास १५९३३०००००० से गुणा करके कल्प रवि दिन १५५५२०००००००० से भाग देने से प्राप्त अधिमास संख्या के दिन बनाकर (पूर्वोक्त) द्युगणों में युक्त कर देवे। फिर इन प्राप्त चांद्र दिनों को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से पृथक स्थान पर गुणा करके कल्पचांद्र दिवस संख्या १६०२९९९०००००० से विभक्त करने से प्राप्त फल को (पूर्वोक्त) द्युगणों में से हीन करने से पूर्वोक्त रविदिनगण संख्या से रविमध्यम सावन दिन संख्या प्राप्त होती है। यहाँ अधिकमास तथा दिन क्षय में प्राप्त शेष की दिन घटिकादि को ग्रहण न करे।

स्पष्टीकरण— कल्पारंभ से इष्ट दिवस संख्या को सिद्धान्त ग्रंथों में,

तथा युगारंभ से इष्ट दिवस संख्या को तंत्र ग्रंथों में एवं इष्ट तिथि वर्ष से करण ग्रंथों में अहर्गण कहा गया है।

कल्पारंभ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को बारह से गुणा करने से रविमास प्राप्त होते हैं। इनमें चैत्र से आरंभ करके वर्तमान वर्ष के गत चांद्र मासों की संख्या को सौरमास तुल्य मानकर युक्त करके प्राप्त फल को तीस से गुणा करने से सौर दिन (तिथि) संख्या प्राप्त होती है। इनमें इष्ट मास की प्रतिपदा से इष्ट दिवस से गत तिथि तुल्य संख्या को सौर तिथि मान कर युत करे। इस योग को एक स्थान पर पृथक स्थापित करके त्रैराशिक से अधिकमास संख्या ज्ञात करे कि, यदि कल्प सौर दिन में कल्प अधिमास प्राप्त होते हैं तो इतने (पूर्वप्राप्त) सौर दिनों में कितने अधिक मास प्राप्त होंगे? इस प्रकार प्राप्त फल गत अधिमास संख्या होगी। इसके लिए अभीष्ट तिथि तक की पूर्व प्राप्त सौर तिथि संख्या को पूर्वोक्त कल्प अधिकमास संख्या १५९३३०००००० से गुणा करके कल्प रवि दिन संख्या १५५५२०००००००० से भाग देने से अभीष्ट तिथि तक गत अधिकमास संख्या होगी।

फिर पूर्वोक्त अभीष्ट सौर दिवस संख्या में इन प्राप्त अधिकमास संख्या को ३० से गुणा करके दिन बना कर जोड़ने से प्राप्तफल चांद्र दिवस (अहर्गण) हो जाता है क्योंकि सौर चांद्र दिवसों में अधिकमास के दिनों तुल्य अन्तर होता है। अब इन चांद्र द्युगणों से अवम दिन संख्या त्रैराशिक से ज्ञात करे कि यदि कल्प चांद्र दिवस में इतने अवम दिन होते हैं तो इन अभीष्ट चांद्र द्युगणों में कितने अवम दिन होंगे? प्राप्त फल गत अवमदिनों की संख्या होगी। इसके लिए पूर्वप्राप्त चांद्र द्युगण संख्या को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से गुणा करके कल्पचांद्र दिन संख्या १६०२९९०००००० से भाग देने से अभीष्ट तिथि तक के चांद्र द्युगण में गत अवम दिन संख्या प्राप्त होगी।

सावन तथा चांद्र दिवस का अन्तर क्योंकि पूर्व कथित अनुसार अवम दिन संख्या होती है, अतः इन प्राप्त अवम दिन संख्या को चांद्र द्युगण (अहर्गण) में से हीन करने से रविमध्यम सावन दिन अहर्गण प्राप्त होता है लेकिन यह स्फुट अहर्गण नहीं होता। मध्यम तथा स्फुट अहर्गण में जो भेद है वह आचार्य ने गोलाध्याय में कहा है। यहाँ अधिमास आनयन में अधिमास शेष को नष्ट कर दिया (छोड़) गया है उससे पुनः दिनादि अवयव गृहण नहीं किये हैं। इसी प्रकार अवम शेष आनयन में प्राप्त शेष के घटिकादि ग्रहण नहीं किया है, उन्हें छोड़

दिया गया है। अतः उनका अनुपात करके सावयव नहीं करके उनके अवयवों को क्यों नहीं किया है उसके कारण की आचार्य गोलाध्याय में व्याख्या करेंगे।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार से अहर्गण साधन सभी पूर्ववर्ति तथा परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में कहा है लेकिन आचार्य ने स्पष्ट रूप से एक बात यहाँ पर खोल कर कही है कि इस प्रकार साधित अहर्गण मध्यम मान का है, स्फुट नहीं है। अर्थात् वास्तविक अहर्गण से यह अहर्गण संख्या भिन्न हो सकती है।

वटेश्वराचार्य ने अनेक विधियों से अहर्गण साधन के लिए अलग से "द्युगण विधिः" अध्याय दिया है जिसमें इसके आनयन के लिए २६ श्लोक कहे हैं।

इदानीं ग्रहानयनमाह—

द्युचरचक्रहतो दिनसञ्चयः क्कहहतो भगणादि फलं ग्रहः।
दशशिरः पुरि मध्यमभास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः ॥४॥

ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ग्रह की कल्प भगण संख्या से गुणा करके कल्प कुदिन संख्या से भाग देने से प्राप्त फल मध्यम ग्रह होता है। यह लंका के क्षितिज के आसन्न स्थित है।

विशेष— आचार्य ने यहाँ ग्रह के लंका क्षितिज के आसन्न स्थित होने के लिए कहा है अर्थात् कभी वह क्षितिज से कुछ ऊपर तथा कभी कुछ अधः स्थित होता है। इसके कारण की आचार्य ने गोलाध्याय में उदयांतर कर्म की विवेचना करते समय व्याख्या की है। अतः यहाँ ग्रह को लंका क्षितिज के "सन्निधिग" ही कहा है।

सभी आचार्यों ने आचार्योक्त प्रकार से ग्रह आनयन अहर्गण द्वारा करना बताया है। जैसे **वटेश्वराचार्य** ने मध्या. चतुर्थ अध्याय श्लोक १ में कहा है—

"द्युगणे भगणाभ्यस्ते कुदिनहृतेपर्ययादि गतरवेटाः।
रव्युदये लङ्कायां मृदूच्चपाताः स्वकुद्युभिः साध्याः ॥१॥"

सूर्यसिद्धान्त में मध्यमा. १ में भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिन राशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥५३॥"

भास्कराचार्य ने यहाँ आधारभूत विधि कही है। **ब्रह्मगुप्ताचार्य** ने भी जो

अहर्गण से ग्रहादि आनयन विधियाँ दी है उनका आधार भी यही आधार भूत विधि ही है। यथा–

"इष्टग्रहभगणगुणादहर्गणात्कल्पसावनाद्युहृतात्।
भगणादिफलं मध्यो लंकायां भास्करौदयिकः॥ मध्यमा. श्लोक ३२॥"

भास्कर प्रथम ने महाभस्करीय के प्रथम अध्याय में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"कलीकृतं वा ससमं दिवाकरं स्वगीतिकोक्तैर्भगणैः समाहतम्।
भजेत वर्षैर्युगसङ्ख्ययोदितैर्विहङ्गमानां प्रवदन्ति लिप्तिकाः॥६॥"

यहाँ "गीतिकोक्तै" शब्द आर्यभट की आर्यभटीय के प्रथम अध्याय के लिए कहा गया है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अहर्गणे खेचरमण्डलाहते क्वहोद्धृते मण्डलपूर्वको ग्रहः॥१६$\frac{१}{२}$॥"

इदानीं ज्ञातेऽर्केऽवमशेषाच्चन्द्रमाह—

**कोट्याहतैरङ्कृतेन्दुविश्वै-१३१४९००००००० न्यूनाहशेषे विहृते लवाद्यम्।
रविघ्नतिथ्याढ्यमनेन युक्तो रविर्विधुः स्याद्विधुरूनितोऽर्कः॥५॥**

अवम शेष से सूर्य तथा चंद्र का आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अवमशेष में १३१४९००००००० से भाग देने से प्राप्त फल में १२ गुणित चैत्रादि गत तिथिं को जोड़ने से प्राप्त फल को रवि में युक्त करने से चंद्रमा की तथा चंद्रमा में से घटाने से सूर्य की स्थिति प्राप्त होती है।

उपपत्ति— आचार्य द्वारा बताये उपरोक्त पद्य को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं।

$$\text{चंद्रमा} = \text{रवि} + १२ \times \text{गतिविधि} + \frac{\text{क्षयशेष}}{१३१४९०००००००}$$

यदि $\frac{\text{क्षयशेष}}{१३१४९०००००००} + १२ \times \text{गत तिथि} = A$ मान लें तो उपरोक्त सूत्र इस प्रकार बन जाता है, चंद्रमा = रवि +A

अतः आचार्योक्त प्रकार से A को रवि में युक्त करने से चंद्रमा तथा चंद्रमा में से हीन करने से रवि प्राप्त होता है।

चंद्र तथा रवि का अन्तर मान १२ अंश होने पर एक तिथि होती है। अतः गत तिथि संख्या तथा १२ का गुणा चंद्र-सूर्य के अंतर तुल्य होता है। इस अंतर को यदि रवि में जोड़ दिया जावे तो चन्द्र का मान आ जाता है और यदि चंद्र में से घटा देने से सूर्य का मान आ जाता है। यह युक्त्युिक्त है। किन्तु यह स्थिति तिथि अंत (पूर्ण) पर ही होती है। सूर्योदय कालिक चंद्र तथा सूर्योदय से तिथि अंत के मध्य जो अवमशेष रहता है वह सावनात्मक है। इन रविचंद्र अंश अंतर से अनुपात करके चन्द्रमा ज्ञात करते हैं कि यदि कल्पकुदिन में कल्प चन्द्र दिन प्राप्त होते हैं तो इन अवमशेष पतित कुदिन में कितने होंगे?

$\text{क्षयशेष} = \dfrac{\text{क्षयशेष}}{\text{कल्प चां.}}$ यह सावनात्मक है। इसको चन्द्रात्मक करने के लिए अनुपात किया –

$\dfrac{\text{क.चां.}}{\text{क.कु.}} \times \dfrac{\text{क्ष.शे.}}{\text{क.चा.}} = \dfrac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$ इस प्रकार कल्प कुदिन भाग-हार प्राप्त हुआ।

यह फल चन्द्र दिनात्मक है। (इसको १२ से गुणा करने से अंशात्मक होता है)। इसमें गत तिथि जोड़ने से चैत्र अमान्त से अहर्गणांतपर्यंत तिथि प्रमाण होगा।

$\text{गत तिथि} + \dfrac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$। इनको १२ से गुणा करने से ये अंशात्मक होंगे,

अतः $१२\left(\text{गत तिथि} + \dfrac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}\right)$ = अहर्गण के अंत में रवि चंद्र के अंतर अंश।

$\text{अतः चन्द्र} - \text{रवि} = १२\left(\text{गति तिथि} + \dfrac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}\right)$

अथवा $\text{चन्द्र} = \text{रवि} + १२\left(\text{ग.ति.} + \dfrac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}\right)$ तथा $\text{रवि} = \text{चंद्र} - १२ \left(\text{ग.ति.} + \dfrac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}\right)$

$$\text{या चन्द्र} = \text{रवि} + १२\ \text{ग.ति} + \frac{\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}}{१२} = \text{रवि} + १२$$

$$\text{ग.ति.} + \frac{\text{क्षयशेष}}{१३१४६३०३७५००}$$ प्राप्त होगा।

भास्कराचार्य स्वकृत टीका में कहते हैं कि उन्होंने लाघवार्थ हार को १३१४६००००००० पठित किया है "लाघवार्थमाद्येषु सप्तषु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहार पठितः। यतस्तथा कृत एकाऽपि विकला नान्तरं भवति।" तथा कहते हैं कि इस से एक कला से अधिक अंतर नहीं पड़ेगा।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने भास्कराचार्योक्त ही कहा है लेकिन उन्होंने भाग-हार के लिए कुछ भी नहीं कहा। भास्कराचार्य ने केवल लघुता के लिए तथा कुछ विशेष (अन्य) प्रकार से अपनी बात कहने के लिए हार की संख्या कही है जिसकी शायद आवश्यकता नहीं थी क्योंकि ऐसा करने से त्रुटि तो उत्पन्न हो ही गई है। भास्कराचार्योक्त हार मान से त्रुटि अधिक हो सकती है।

वटेश्वर मध्यमा. अध्याय ४ यथा—

"गततिथि युतावमाद्यं द्वादश गुणितं च भागपूर्व स्यात्।
तेन विहीनश्चन्द्रोऽर्को युक्तो विधुर्वा स्यात्॥११॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में वटेश्वराचार्योक्त ही कहा है।

आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"किडिपढिधगननुननुनिन भक्तादवमाग्रकाल्लवा ये तैः।
गततिथिकरवधसहितैर्युक्तोनाविनविधु विद्युरवी स्तः॥२७॥"

ब्रह्मगुप्त आचार्य ने मध्यगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त सूत्र कहा है। यथा–

"कुदिनहतमवमशेष द्वादशभिर्गुणितमाप्तमंशाद्यम्।
द्वादशगुणतिथ्यंशैर्युतं धनं भास्करे चन्द्रः॥३२॥"

इदानीमधिमासावशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनमाह—

कोट्याहतैर्यद्भवभै-२७११०००००००० रवाप्तं न्यूनाहशेषे विहृते कलाद्यम्।
तत् स्याद्धनाख्यं तरणेर्विधोस्तत् त्रिभूहतं स्वेषुगुणांशयुक् स्वम्॥६॥

चैत्रादियातास्तिथयः पृथक्स्था विश्वैर्हताः सूर्यविधू लवाद्यौ।
तौ चाधिशेषाच्छशिमासलब्ध्या हीनौ युतौ स्वस्वधनाह्वयाभ्याम् ॥७॥

अधिमास अवमशेष से सूर्य चंद्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अवमशेष को २७११०००००००० से भाग देने से प्राप्त कलादि लब्धि रवि की धन फल संज्ञक होती है। इस फल को १३ से गुणा करके इसमें फल का ३५ वाँ अंश युक्त करने से चंद्रमा का धन फल संज्ञक फल होता है। अब चैत्रादि से गत तिथि को दो स्थानों पर स्थापित करे। द्वितीय स्थान पर १३ से गुणा करने से क्रमशः रवि तथा चंद्र होते हैं। और वर्षांत अधिमास शेष को कल्प चांद्र मास से विभक्त करने से प्राप्त फल को इनमें से घटा देने से सूर्योदयकालिक सूर्य चंद्र होते हैं।

उपरोक्त विवेचन को निम्न लिखित प्रकार से समीकरण रूप में लिख सकते हैं—

$$\text{सूर्योदय कालिक चन्द्र} = \text{१३ चैत्रादिगत दिन} + \text{चन्द्रधनफल} - \frac{\text{वर्षान्त अधिशेष}}{\text{कल्प चांद्र मास}}$$

$$\text{सूर्योदय कालिक सूर्य} = \text{चैत्रादिगत दिन} + \text{रविधनफल} - \frac{\text{वर्षान्त अधिशेष}}{\text{कल्प चांद्र मास}}$$

उपपत्ति— अधिमास अवशेष से सूर्यचंद्र का आनयन म.म. सुधाकर द्विवेदी ने इस प्रकार किया है।

कल्पसौर तिथिघात संयुता स्वस्वभुक्त्यवमशेषसंहतिः।
हीनिताऽप्यधिकमासशेषकैः संहृता च यदवाप्यते दिनैः॥
चन्द्रार्कैर्भवति तत्स्वभुक्तिजं भागमानमिनचन्द्रयोः किल।
चन्द्रामानवधेहि संयुतं द्वादशघ्नतिथिभिः स्फुटं बुधाः॥
रवीन्द्वोर्दिनसंख्याया कल्पे चेत्कल्प्यते समा।
मद्विधौ भास्करस्येन्दुरव्योः स्वल्पान्तरान्मितिः॥

$$\text{वर्षान्त से तिथ्यन्त पर्यंत चान्द्रदिन} = \text{चैत्रगत तिथि} - \frac{\text{वर्षांत अधिशेष} \times \text{३०}}{\text{कल्प सौर}}$$

$$= \frac{\text{चै गति} \times \text{क.सौ} - \text{वर्षान्ताधि शे.} \times \text{३०}}{\text{कल्प सौर}}$$

ऐतत्सम्बन्धी सौर दिन ही तिथ्यन्त में अंशात्मक रवि होते हैं। क्योंकि वर्षान्त में रवि का भगण पूरा हो जाता है। अतः तिथ्यन्त में—

$$\text{रवि} = \frac{\text{क.सौ.} \times \text{इ चां}}{\text{क.चा.}} = \frac{\text{क.सौ.} (\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०)}{\text{क.चा.} \times \text{क.सौ.}}$$

यहाँ उपरोक्त से इचां का मान प्रतिस्थापित किया है।

$$\text{रवि} = \frac{\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}}$$

और तिथि अंत में चन्द्र = रवि + १२ चै गति.

$$= \frac{\text{चै गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + १२ \times \text{चै गति}$$ । यहाँ रवि का मान प्रतिस्थापित किया है।

तिथ्यन्त और सूर्योदय में अन्तर सावनात्मक = $\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.चां}}$

एतत्सम्बन्धी रवि चालन = $\frac{\text{र ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$

और चन्द्र चालन = $\frac{\text{चंग} \times \text{क्ष.शे.}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$

अतः सूर्योदय कालिक रवि =

$$\frac{\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + \frac{\text{र ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{\text{क.चां}}$$

$$\text{सूर्योदयकालिक रवि} = \frac{\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३० + \text{र ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{\text{क.चां}}$$

इसी प्रकार सूर्योदयकालिक चन्द्र =

$$\frac{\text{चै गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३० + \text{चं ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{\text{क.चां}} + १२ \text{ चै गति}$$

यहाँ स्वल्पांतर से यदि कसौ = क चां हो तो रवि तथा चंद्र बराबर होंगे और वर्षान्ताधिशेष = तिथ्यन्तकालिकाधिशेष। ये मान उपरोक्त में प्रतिस्थापित करने से—

$$\text{रवि} = \text{चै गति} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + \frac{\text{र ग} \times \text{क्ष शे}}{\text{क.चां}}$$

$$\text{तथा चंद्र} = \text{१३ चै गति} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}\times\text{३०}}{\text{क.चां}} + \frac{\text{चंगक}\times\text{क्ष शे}}{\text{क.चां}}$$

$$\text{अथवा रवि} = \text{चै गति} + \frac{\frac{\text{क्ष.शे.}}{\text{क चां}}}{\text{र ग}} - \frac{\frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\text{क चां}}}{\text{३०}}$$

यहाँ $\frac{\text{क चां}}{\text{र ग}}$ = २७११०००००००० = हा; (दी हुई है आचार्य ने)

$$\text{तथा चंद्र} = \text{१३}\times\text{चैगति} + \frac{\text{क्ष शे}\times\text{चं ग}}{\text{र ग}} \div \frac{\text{क चां}}{\text{र ग}} - \frac{\frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\text{क चां}}}{\text{३०}}$$

यहाँ $\frac{\text{चं ग}}{\text{र ग}} = \text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}$ होता है।

$\frac{\text{क्ष.शे.}}{\text{हा}}$ = रविधनफल तथा $\frac{\text{क्ष शे}\times\text{चं ग}\div\text{र ग}}{\text{हा}}$

= चन्द्रधनफल = रविधनफल $\left(\text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right)$

इसलिए सूर्योदयकालिकरवि = चै गति+रविधनफल − $\frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\text{क चां मा}}$

तथा सूर्योदय कालिक चंद्र =

१३ चै गति + रविधनफल $\left(\text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right) - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\text{क चां मा}}$

यह आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

यहाँ रविधनफल $\left(\text{१३} + \frac{\text{१३}}{\text{३५}}\right)$ = चंद्रधनफल है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के मध्य. में अधिमास से सूर्यचंद्र का आनयन करने के लिए इसी प्रकार कहा है—

"कल्पाधिमासगुणितादवमावशेषात् क्ष्माहोद्धृतात् फलयुतं ह्यधिमास शेषम्।
मासादिकं फलमतः शशिवासरैः स्यात्क्ष्माहैर्हताच्च दिवसाद्यवमावशेषात्॥२१॥
चैत्रादितो विगतमासदिनैर्युतं तत् कृत्वा दिनाद्यथ पृथग्गुणितञ्च विश्वैः।
मासादिना विरहिते विहिते क्रमेण यद्वा दिवाकरतुषारकरौ भवेताम्॥२२॥"

वटेश्वराचार्य ने मध्यमा. चतुर्थ अध्याय में अधिमास शेष से आचार्योक्त तुल्य प्रकार से सूर्यचंद्र का आनयन बताया है। यथा—

"अवमावशेषगुणिता युगाधिमासाः कुवासरविभक्ताः।
लब्धयुतोऽधिकशेषः शशिमासहृतो दिनादिफलम्॥८॥
कुदितहृतमवमशेषं दिनादितद्वर्षमासदिनयोगः।
पृथगभ्यस्तो विश्वैरधिकफलोनावुभाविनेन्दू वा॥९॥
अधिकफलर्म गुणितं चंद्रांशेभ्यो विशोध्य विश्वांशः।
सूर्यो विश्वैर्गुणितः समन्वितः शीतगुर्वा स्यात्॥१०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सि. मध्यगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"गुणिताद्युगाधिमासैर्युगभूदिवसैहृतादवमशेषात्।
फलयुक्तमधिकमासक शेषं मध्यावतोऽर्केन्दु॥२०॥
अधिमासाववमशेषं युगशशिभूदितहृते पृथक् लब्धे:।
मासदिनाद्येस्याप्ये गतमासदिनानि चैत्रादेः॥२१॥
अवमावशेषलब्ध्या सहितानि पृथक् त्रयोदश गुणानि।
अधिमासशेषलब्ध्या हीनानि पृथग्रवि-शशाङ्कौ॥२२॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कथकनुसनुननुननुनै आप्ता अवमाग्रकात् कलिकाः॥१७॥
यास्त्वाभिरिनो युक्तो मध्योऽथो अवमशेषकाद्रक्तात्।
खनुरसुवनुननुनीनै आप्तकलाभिर्युतः शशीमध्यः॥१८॥
चैत्रसिताद्या यातास्तिथयो भागादिरर्कः स्यात्।
पल (१३) गुणितोऽसौ चन्द्रोऽधिमासशेषाच्छशाङ्कमासहृतात्॥१९॥
यद्भागादिकलब्धं तेनोनौ रविविधु कार्यौ॥ $\frac{1}{2}$ ॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहनयनमाह—

अर्कसावनदिवागणो हतः स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजैः।
खाभ्रबाणगिरिरामखत्रिगोशक्रविश्व-१३१४९३०३७५०० विहृदाप्तराशिभिः॥८॥
विवर्जितो विकर्त्तनो गृहादिको गृहादिकाः।
ग्रहा भवन्ति वा बुधैर्विचिन्त्यमन्यदप्यतः॥९॥

प्रकारान्तर से ग्रहानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ग्रह के कल्प सावन दिनों से गुणा करके १३१४९३०३७५०० से भाग देने से प्राप्त शेष से जो राश्यादि होता है। इसको रवि से अधिक गतिग्रह और अल्प गति ग्रह रहने पर रवि की राश्यादि में धन-ऋण क्रमशः करने से राश्यादिग्रह होते हैं अथवा इसी तरह रवि होते हैं।

उपपत्ति— त्रैराशिक से अनुपात किया कि कल्प कुदिन में कल्प ग्रह भगण होते हैं तो अहर्गण में कितना? इससे अहर्गण में ग्रहभगण प्राप्त होगा।

$$\text{ग्रह भगण} = \frac{\text{कल्प ग्रह भगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

तथा क्योंकि, क. भभ्रम – क.ग्र.भ. = क.ग्र. कुदिन

$\therefore$ क. भभ्रम – क.ग्र.कुदिन = क.ग्र.भ पक्षान्तर से,

यह मान उपरोक्त में प्रतिस्थापित करने से–

$$\text{ग्रह भगण} = \frac{(\text{क.भभ्रम} - \text{क.ग्र.कु.})\ \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{ग्रह भगण} = \frac{(\text{क.कु.} + \text{क.रविभ} - \text{क.ग्र.कु})\ \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$\because$ क भ भ्र म = क.कु.दिन. + क. र. भ

$$= \text{अहर्गण} + \frac{\text{क.र.भ} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}} - \frac{\text{क.ग्र.कु.} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

= अहर्गण+(गत र.भ+र. राश्यादि – ग. स्वसावन तुल्य भ.+राश्यादि)

= अहर्गण+गत र. भ+र. राश्यादि – ग. स्वसावन तुल्य भ. – राश्यादि

यहाँ भगणों का प्रयोजन नहीं होने से छोड़ देने से–

रविराश्यादि – राश्यादि = ग्रहराश्यादि

$$\frac{\text{क.ग्र.कुदि.} \times \text{अहर्गण}}{\text{क.कु.}} = \text{गत स्वसावन तुल्य भगण} + \frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}}$$

$$\text{यहाँ } \frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}} \text{ ऐतत्सम्बन्धी राश्यादि फल} = १२ \times \frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}} = \frac{\text{शेष}}{\frac{\text{क.कु.}}{१२}} = \frac{\text{शेष}}{\text{हर}}$$

आचार्य ने हर = १३१४९३०३७५०० दिया है।

भास्कराचार्य ने हर का मान श्लोक ५ में १३१४९०००००० दिया है वह यहाँ दिये गये मान को ही लघुता के लिए दिया। यहाँ दिये गये मान को ही लघुता के लिए दिया। यहाँ दिया गया मान ही वास्तविक है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटे. सि. के मध्यमाधिकार अध्याय ४ में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रहोदयघ्नोद्युगणः क्वहोद्धृतो गतोदयो भाद्यवशेषकाद् गृहे।
क्षयस्वमर्काद् बृहदल्प भुक्तिग्रहे ग्रहोऽप्येवमिनोऽथवा भवेत्॥३४॥"

इदानीमानयनप्रकारान्तराणामुपपत्तिमाह—

यथायथाऽधिमासकावमेन्दुमासपूर्वकाः।
परस्परं युतोनिता भवन्ति खेटपर्ययाः॥१०॥
त एव सूर्यसावनद्युपिण्डतोऽनुपातजाः।
तथातथा युतोनिता भवन्ति तेऽथवा ग्रहाः॥११॥

रविचन्द्र आनयन की प्रकारांतर से उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— चान्द्रमास और सौर मास का अंतर अधिमास होता है और चांद्रभगण तथा सौर भगण का अंतर = चांद्रमास होता है। अहर्गण को कल्पाधिमास से गुणा कर युगकुदिन से भाग देने से (अनुपात करने से) जो भगणादि फल हो उसको तेरह गुणित रवि में जोड़ने से चन्द्रहोता है और उसी फल को चंद्र में से घटा कर तेरह से भाग देने से रवि होता है।

उपपत्ति— "इन्द्र मण्डल गुणेन्दुसंगुणव्रघ्न चक्र विवरेऽधिमासकाः" इस उक्ति से कल्प चन्द्रभगण में से १३ गुणित रविभगण को घटाने से कल्पाधिमास होते हैं (भगणाध्याय श्लोक १४)। इस समीकरण से स्पष्ट है कि अहर्गण से अनुपात द्वारा जो कल्पाधिमास संबंधि फल हों उसमें तेरह गुणित रवि भगणादि फल को जोड़ देने से भगणादि चंद्र होता है और यदि उसी अधिमास संबंधि फल को चन्द्र में घटा कर १३ से भाग देते हैं तो रवि प्राप्त होता है। भगणाध्याय के श्लोक १४ में कथित प्रकार से प्राप्त समीकरण को अहर्गण से गुणा करके कल्प कुदिन से भाग देने से यहाँ कहा हुआ प्राप्त हो जाता है।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही से **वटेश्वराचार्य** ने मध्य. अध्याय ४ में कहा है–

"अधिमास हतो द्युगणः कुदिनहतः पर्ययादि तद्युक्तः।
विश्वघ्नोऽर्कश्चन्द्रोहीनस्त्रयोदशहृदर्कः ॥२६॥"

ब्रह्मगुप्त ने मध्यगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्युगणं युगाधिमासैर्गुणितं युगभूदिनैर्भजेल्लब्धम्।
भगणादिमध्यमार्कत्रयोदशगुणाधिकं चन्द्रः॥३३॥"

श्रीपति सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अहर्गणाच्चाधिकमासनिघ्नात् कुद्यूद्धृतान्मण्डल पूर्वकेण। विश्वातोऽर्कः सहितोविधुरिति।"

इदानीमस्योदाहरणभूतानि प्रकारान्तराणि दर्शयन्नाह—

द्विचक्रयोगजो ग्रहो वियोगजेन युग्वियुक्।
दलीकृतौ च तौ क्रमादमन्दमन्दगामिनौ॥१२॥
द्विपर्ययान्तरोद्भवग्रहेण वर्जितो द्रुतः।
स मन्दगोऽथ मन्दगो युतो भवेदमन्दगः॥१३॥

इसका उदाहरण रूप प्रकारान्तर से दर्शाया है—

सूर्य-प्रभा टीका— दो ग्रहों के भगण योग तथा वियोग को अहर्गण से गुणाकर कल्पकुदिन से भाग देने से प्राप्त फल को एक स्थान पर जोड़ कर तथा दूसरे स्थान पर घटाकर आधा करने से क्रमशः द्रुतगतिग्रह तथा मंदगति ग्रह होते हैं॥१२॥

दोनों के भगण योगज फल में मन्द गति ग्रह को घटा देने से शीघ्र गति ग्रह तथा उसी में से शीघ्र गति ग्रह को घटाने से मंद गतिग्रह होते हैं॥१३॥

उपपत्ति— यहाँ आचार्य ने दो ग्रहों, एक मन्द गति तथा दूसरा शीघ्रगामी, के भगणों के योग तथा अन्तर के द्वारा उन दोनों को साधन करने की विधि बताई है।

शीघ्रगामी ग्रह भगण + मन्द गति ग्रह भगण = भगण योग

शीघ्रगामी ग्रह भगण – मन्द गति ग्रह भगण = भगणान्तर

अहर्गण से अनुपात करने से अर्थात् अहर्गण से गुणा तथा क.कु. से इनको विभक्त करने से–

$$\frac{(\text{शी.ग्र.भ} + \text{मं.ग्र.भ}) \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

= भगणादि शी.ग्र. फल + भगणादि मं.ग्र.फल = भगणयोगज. ग्र.

इसी प्रकार $\frac{(\text{शी.ग्र.भ}-\text{म.ग्र.भ})\times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$

= भगणादि शी.ग्र फल – भगणादि मं.ग्र.फल = भगणांतरज ग्र.

इन दोनों का योग करने पर;

$\frac{\text{भगयोगज ग्रह} + \text{भगणांतरजग्रह}}{२}$ = भगणादि शी. ग्र. फ

तथा घटाने पर ;

$\frac{\text{भगयोगज ग्रह} - \text{भगणांतरजग्रह}}{२}$ = भगणादि मं. ग्र.फ.

यह श्लोक १२ की उपपत्ति हुई।

अब श्लोक १३ की उपपत्ति बताते हैं।

भगण योग = भगण शीघ्र ग्रह + भगणमंद ग्रह

भगण योग – भ०मं०ग्र = भगणादि शी० ग्र

तथा भगण योग – भ.शी.ग्र. = भगणादि मं.ग्र। उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने इन श्लोकों में कथित सूत्रों को मध्यमा. अध्याय ४ में इस प्रकार स्पष्ट करके कहे है—

''स्वपर्ययैक्याहतवासरौघतक्षितिद्युलब्धं भगणादिकं द्विधा।
वियोगलब्धोनयुतं तथार्धितं वियत्सदौ वा भवतोऽत्र मध्यमौ॥३२॥
तदूनभुक्तिना हीनं खेचरेण बृहद्गतिः।
शीघ्रभुक्तिग्रहेणोनं मृदुभुक्तिग्रहो भवेत्॥३३॥''

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''द्वयोर्द्वयोश्चक्रविशेष सङ्गुणादहर्गणाद्भूदिवसैर्यदाप्यते।
अनल्पगस्तद्रहितोऽल्पगोभवेद्युतोऽल्पगस्तेनतयोरनल्पगः॥२५॥''

आर्यभट ने महासिद्धान्त के मध्यमाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''खद्युचरभगणयोगजखेटस्त्रैराशिकेन संसाध्यः।
भेदज आद्यो रस्थस्तेनाद्द्योनोऽर्धितौ तौ स्तः॥२८॥''

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

केन्द्रोच्चयोश्चश्चलयोर्वियोगे योगेऽथवा स्यान्मृदुनोः प्रसाध्यः।
साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथ वा प्रसाध्यः।।१४।।

पुनः प्रकारांतर से—

सूर्य-प्रभा टीका— शीघ्रोच्च में से ग्रह को शोधित करने से शीघ्र केंद्र होता है तो शीघ्र केंद्र को शीघ्रोच्च में से घटाने से ग्रह होगा यह बात स्पष्ट है। मन्दोच्च में से ग्रह घटाने से मन्द केंद्र होता है। अतः केंद्र में मन्दोच्च को युत करने से ग्रह होता है, यह भी स्पष्ट हैं। सिद्ध ग्रह को साध्य ग्रह कल्प भगण से गुणा करके सिद्ध ग्रह के कल्प भगण से भाग देने से साध्य ग्रह प्राप्त होता है।

उपपत्ति— इष्टग्रह = विदित ग्रह = सिद्धग्रह

अन्य ग्रह = अविदित ग्रह = साध्य ग्रह

ग्रह आनयन रीति से—

$$\text{सिद्ध ग्रह} = \frac{\text{क.सिद्ध ग्र. भगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{सिद्ध ग्रह} = \frac{\text{क.साध्य ग्र.} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{अतः} \ \frac{\text{सिद्ध ग्रह}}{\text{साध्य ग्रह}} = \frac{\text{क.सि.ग्र.भ}}{\text{क.सा.ग्र.भ}}$$

अथवा सि.ग्र × क.सा.ग्र.भ = सा.ग्र × क.सि.ग्र.भ.

$$\text{अतः} \ \frac{\text{सिद्ध ग्रह} \times \text{क.सा.ग्र.भ.}}{\text{क.सि.ग्र.भ}} = \text{साध्य ग्रह}$$

$$\text{तथा} \ \frac{\text{साध्य ग्रह} \times \text{क.सि.ग्र.भ.}}{\text{क.सा.ग्र.भ}} = \text{सिद्ध ग्रह।}$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वरसिद्धान्त में वटेश्वर ने मध्यमा. अध्याय ४ में आचार्योक्त ही कहा है।

"अन्यग्रहभगण गुणा इष्ट ग्रह मण्डलोद्धताःखेटाः।
हारान्यगुणाभ्यस्ताद् द्युगुणादिष्टग्रहो भवति॥४२॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"विज्ञातकल्पभगणैर्विहृतेषु साध्यचक्रेषु यद्भगणपूर्वमित्यादिना॥"

भास्कराचार्य प्रथम ने महाभास्करीय के प्रथम अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"निशाकरं वा ग्रहमुच्चमेव वा कलीकृतं तत्सहयातमण्डलैः॥
यथेष्टनक्षत्रगणैर्हतं हरेत् तदीयनक्षत्रगणैस्ततः कलाः॥१०॥"

अर्थात् (मध्यम) चन्द्रमा, ग्रह या उच्च जो ज्ञात हो, के भगणों की कला बनाकर अन्य ग्रह के भगण संख्या से गुणा करके ज्ञात ग्रहादि की भगण संख्या से विभक्त करने से मध्यम अन्य ग्रह के कलादि प्राप्त होते हैं।

श्रीपति सिद्धान्तशेखर में– अविदित ग्रहपर्ययसङ्गुणे सभगणो विदेते कृतलिप्तिके।

विदित कल्पजचक्र विभाजिते भवति वा ऽविदितः स कलादिकः॥२५॥ अ. २॥ इस प्रकार अक्षरशः आचार्योक्त ही कहा है।

भास्कराचार्य की ही भांति **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** मध्यगत्युत्तराध्याय में कहा है। यथा–

"ज्ञात भगणादिभुक्त सविकलमिष्टयुगभगणसङ्गुणितम्।
ज्ञातयुगभगणर्भक्त मध्यो भगणादिफल मिष्टः॥२७॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रसिद्धलिप्ताहतसाध्यपर्ययाः प्रसिद्धचक्रापहृताः कलादिकः।
भवेत् प्रसाध्यो मृदुतुंगकेन्द्रयोः समागमो वा चलयोर्ग्रहान्तरम्॥२६॥"

अहर्गणान्मध्यमग्रहमानीयेदानीं मध्यमग्रहादहर्गणमाह—

साग्रात् सचक्राच्च खगात् कहघ्नात् तत्कल्पचक्राप्तमहर्गणः स्यात्।
निरग्रचक्रादपि कुट्टकेन वक्ष्येऽग्रतोऽग्राच्च तथाग्रयोगात्॥१५॥

मध्यम ग्रह से अहर्गण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह को कल्पकुदिन से गुणा करके कल्प ग्रह भगण से भाग देने से अहर्गण होता है। इसके द्वारा कुट्टक विधि से भागफल आगे-आगे जोड़ते जाने की विधि से अहर्गण साधन किया जा सकता है।

उपपत्ति— अहर्गण से ग्रह आनयन विधि में हम अनुपात करते हैं कि कल्प कुदिन में कल्प ग्रह भगण होते हैं तो अहर्गण में कितने होंगे? अर्थात्

$$\text{ग्रह} = \frac{\text{क.ग्र.भ} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{या अहर्गण} = \frac{\text{ग्रह} \times \text{कल्प कुदिन}}{\text{क.ग्र.भ}}$$

अतः इस सूत्र के द्वारा कुट्टक व्यवहार से हम ग्रह की विकला शेष से ग्रह तथा अहर्गण का साधन कर सकते हैं। यहाँ भाज्य ६०, हार = कल्प कुदिन तथा क्षेप ऋणात्मक विकला शेष समझ कर कुट्टक विधि से साधन कर जो लब्धि हो वह विकला और जो गुणक हो वह कला शेष होगा। इसके पश्चात् कला शेष को ऋणात्मक क्षेप तथा उक्त भाज्य तथा हार मान कर कुट्टक द्वारा लब्धि कला और गुणक भाग (अंश) शेष होगा। इसके बाद भाज्य ३०, हार = कुदिन तथा अंश शेष को ऋणात्मक क्षेप मानकर कुट्टक विधि से लब्धि अंश तथा गुणक राशि शेष होगा। इसके पश्चात् भाज्य १२, हार = कुदिन तथा ऋणात्मक राशि शेष मानकर कुट्टक विधि से लब्धि राशि तथा गुणक भगण शेष होगा। इसके पश्चात् कल्प ग्रह भगण भाज्य, हार कुदिन तथा ऋणात्मक भगण शेष को क्षेप मान कर कुट्टक विधि से लब्धि गत भगण और गुणक अहर्गण होगा। अहर्गण से ग्रह आनयन के लिए कहते हैं –

भगण आनयन—

$$\frac{\text{कल्पग्रहभगण}}{\text{कल्प कुदिन}} \times \text{अहर्गण} = \text{ग्रहभगण} + \frac{\text{भगणशेष}}{\text{क.कु.}}$$

$$\text{अथवा ग्रह भगण} = \frac{\text{क.ग्र.भ.} \times \text{अह.} - \text{भ.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \text{..............(१)}$$

राशि आनयन—

पुनः अनुपात किया कि क.कु. में १२ राशि होते हैं तो भगण शेष में क्या?

$$\frac{\text{१२} \times \text{भ.शे.}}{\text{क.कु.}} = \text{ग्र.रा.} + \frac{\text{रा.शे.}}{\text{क.कु.}}$$

$$\text{अर्थात ग्रह राशि} = \frac{\text{१२} \times \text{भ.शे.} - \text{रा.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\text{२})$$

अंश आनयन—

पुनः कल्प कुदिन में ३० अंश होते हैं तो राशि शेष में कितने होंगे?

$$\frac{\text{३०} \times \text{रा.शे.}}{\text{क.कु.}} = \text{ग्र.अं.} + \frac{\text{अं.शे.}}{\text{क.कु.}}$$

$$\text{अर्थात् ग्र.अं.} = \frac{\text{रा.शे.} \times \text{३०} - \text{अं.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\text{३})$$

इसी प्रकार कला तथा विकला के लिए करने से—

$$\text{ग्रह कला} = \frac{\text{६०} \times \text{अं.शे.} - \text{कलाशे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\text{४})$$

$$\text{ग्रह विकला} = \frac{\text{६०} \times \text{क.शे.} - \text{वि.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\text{५})$$

अहर्गण से ग्रह के भगण, राशि, अंश, कला, विकला, ज्ञात करने के १ से ५ उपरोक्त समीकरण है। विपरीत क्रम से ५ से १ तक क्रिया करने से ग्रह की विकला शेष से आरंभ करके अंत में ग्रह के भगण तथा अहर्गण ज्ञात कर सकते हैं। यही बात आचार्य ने इस श्लोक में कही है। अतः उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्य ने जो कुट्टक विधि से ग्रह द्वारा अहर्गण साधन करना यहाँ कहा है वह उन्होंने लीलावती में भी कहा है। कुट्टक विधि आचार्य के पूर्वकाल से प्रचलित है। आर्यभट (द्वितीय) ने भी महासिद्धान्त में यह कुट्टक गणित कही है।

महाभास्करीय में भास्कर प्रथम ने कुट्टक विधि द्वारा प्रथम अध्याय में श्लोक ४१ से ५२ तक में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में अहर्गण ज्ञान करना बताया है। विस्तारभय से श्लोक नहीं दिये जा रहे हैं।

कुट्टक विधि में $\frac{Ax - C}{B} = y$ समीकरण को कुट्टक (Pulveriser) समीकरण कहा जाता है। इस समीकरण में—

A = ग्रह की भगण संख्या है।

B = युग/कल्प में सावन दिन संख्या है।

C = ग्रह का भगण शेष (Residue)।

x = अहर्गण।

y = ग्रह द्वारा पूर्ण किये भगण।

इदानीमहर्गणादपि कल्पगतमाह—

अभिमतद्युगणादवमैर्हतात् क्षितिदिनाप्तगतावमसंयुतः।
दिनगणः स भवेत् तिथिसञ्चयः पृथगतोऽधिकमाससमाहतात्॥१६॥
विधुदिनाप्तगताधिकमासकैः कृतदिनै रहितोऽर्कदिनोच्चयः।
भवति मासगणः खगुणो ३० द्धृतो रवि १२ हृतः स च कल्पगताः समाः॥१७॥

अहर्गण से कल्पगत काल आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अभीष्ट द्युगण को कल्प अवम दिन से गुणा करके कल्प कुदिन से भाग देने से अहर्गण में गत अवम दिन संख्या प्राप्त होती है। इसको द्युगण (अहर्गण) में जोड़ने से अभीष्ट अहर्गण में चांद्र तिथियाँ प्राप्त होती हैं। इन चांद्र तिथियों को कल्प अधिमास से गुणा करके कल्पचांद्र तिथि से भाग देने से प्राप्त लब्धि अभीष्ट अहर्गण में अधिमास संख्या होती है। इस अधिमास संख्या को ३० से गुणा करने से अधिमास की चंद्र दिन संख्या होती है। पूर्व प्राप्त चांद्र तिथि में से ये चांद्र अधिदिन संख्या को घटाने से शेष सूर्य दिन बचते हैं। इन सूर्य दिनों में ३० का भाग देने से अभीष्ट अहर्गण में मासगण प्राप्त होते हैं। मासगण में १२ का भाग देने से प्राप्त लब्धि अभीष्ट अहर्गण में कल्पारंभ से गताब्द प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— पूर्व में अहर्गण आनयन में जो प्रक्रिया अपनाई गई है उसकी विलोम प्रक्रिया यहाँ करने से अहर्गण से कल्पगत काल आनयन होता है। पूर्वोक्त को यहाँ प्राप्त करते हैं—

$$\because \frac{\text{अभीष्ट द्युगण} \times \text{अवमदिन}}{\text{कल्प कुदिन}} = \text{गत अवमदिन कल्पगत}$$

अतः द्युगण + गतअवम दिन = चांद्र तिथि कल्पगत

$$\because \frac{\text{कल्प अधिमास} \times \text{चांद्रतिथि}}{\text{कल्प चांद्र तिथि}} = \text{अधिमास कल्पगत}$$

अतः अधिमास × ३० = चंद्र अधिदिन कल्पगत

और चांद्र तिथि − चन्द्र अधिदिन = सूर्यदिन कल्पगत

$$\frac{\text{सूर्य दिन}}{३०} = \text{मास गण कल्पगत}$$

$$\frac{\text{मासगण}}{१२} = \text{कल्पगत वर्ष उपपन्न हुआ।}$$

इदानीं कलिगतादप्यहर्गणादिक्रमाह—

कलिगतादथ वा दिनसञ्चयो दिनपतिर्भृगुजप्रभृतिस्तदा।
कलिमुखध्रुवकेण समन्वितो भवति तद्द्युगणोद्भवखेचरः ॥१८॥

कलिगत अहर्गण प्राप्त से ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— कलि आरंभ से इष्ट दिवस तक दिन (अहर्गण) ज्ञात करे। कलिआरंभ का दिन पति शुक्र है। कलिआरंभ पर जो ग्रह स्थित थे उनकी ध्रुवांक संज्ञा है। इन में द्युगण से प्राप्त ग्रहों को समन्वित कर देने से अहर्गणोत्पन्न ग्रह प्राप्त होते हैं।

विशेष— म.म. बापूदेव शास्त्री द्वारा : – ७२०६३४४४२७१५ द्युगण में कलिआरंभ से इष्ट दिवस का द्युगण युक्त करने से कल्पादि से द्युगण प्राप्त होता है। यथा–

"तिथ्यर्क्षयुगवेदाब्धि रामाङ्गनख भूधराः द्युगणेन कलेर्युक्ता कल्पादेर्द्युगणो भवेत्॥"

इदानीं कलिमुखग्रहानाह—

खाद्रिरामाग्नयः ३३७० कग्निरामाङ्कका: ९३३१
वेदवेदाङ्कचन्द्रा १९४४ विलिप्ताः क्रमात्।
षड्रसाङ्गाब्धयो-४६६६ऽङ्गाभ्रवेदाब्धयो ४४०६
वेदषट्काभ्रभूपाभ्रभूसंमिता: १०१६०६४॥१९॥
वेदचन्द्रद्विवेदाब्धिनागाः ८४४२१४ कर-
द्व्यब्धिवेदाब्धिशैला ७४४४२२ भवेयुः कुजात्।
द्वापरान्तध्रुवाश्चक्रशुद्धास्तथा
सूर्यतुङ्गेन्दुतुङ्गेन्दुपातोद्भवाः ॥२०॥

कलिआरंभ पर ग्रहस्थित ध्रुवाँक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने यहाँ सूर्यादि सभी ग्रहों आदि के चक्र शुद्ध ध्रुवांक पठित किये, जो इस प्रकार है—

कलिआरंभ पर ग्रह

मं.	बु.	गु.	शु.	श.	चं.	चंद्रोच्च	चंपात
११	११	११	११	११	२	४	५
२६	२७	२६	२८	२८	१७	५	३
३	२४	२७	४२	४६	४५	२६	१२
५०	२६	३६	१४	३४	३६	४६	५८

॥ इति ग्रहानयनाध्यायः ॥

॥ इति श्रीमद् भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के ग्रहआनयनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

(द) अथ कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः

तत्र खकक्षां तावदाह—

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि-१८७१२०६६२००००००००
ज्योतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।
तद् ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचिद् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥१॥
करतलकलितामलवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम्।
दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः ॥२॥

कक्षाप्रकार से ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ज्योतिषशास्त्र को जानने वाले विद्वान आकाश की कक्षा (परिधि) का मान १८,७१२,०६६,२००,०००,००० योजन कहते हैं। कडाहिनुमा इस ब्रह्माण्ड के अन्दर (की तरफ) जो यह दृश्य (लोक) अदृश्य (अलोक) तथा गिरि (पर्वत) आदि वेष्टित हैं, उसकी परिधि पौराणिक ज्ञानियों (पुराणों को जानने वाले) ने कही है। सभी पौराणिक लोग एक स्वर से निष्कपट भाव से हाथ में रखे हुए आंवले के समान ब्रह्माण्ड गोल की परिधि स्पष्ट रूप में कहते हैं। कुछ, सूर्य इस गोल (आकाश) में उदित होते हुए (भ्रमण करते हुए) अपने प्रकाश से आकाश के अंधेरे को दूर करके जितनी दूरी तक प्रकाश फैलाता है को ही (आकाश) नभ की कक्षा है।

विशेष— आचार्य ने यहाँ जो आकाश गोल की परिधि योजन माप में बताई है उसके लिए वे कहते हैं कि उन्होंने अपना मत नहीं कह कर दूसरे आचार्यों के मत के अनुसार कहा है। आकाश गोल में जितनी दूरी तक सूर्य का प्रकाश फैलता है उतने योजन दूरी तक आकाश गोल फैला हुआ है, यह अभिप्राय है।

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** में चंद्रभगण का ३२४००० गुणा आकाश कक्षा कहा है। यथा—

''अम्बर योजन परिधिः शशि भगणाः शून्यखखजिनाग्निगुणाः॥११ अ.२१॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्ति ही परिधि योजन कही है। यथा–

"द्वयङ्कर्तुखेनागधृति प्रमाणा कक्षाम्बरस्यार्बुदयोजनघ्नी॥ मध्य.श्लो.६२॥"

चतुर्वेदाचार्य ने भी यही परिधि योजन कहे हैं। यथा—

"द्विच्छिद्रषट्काम्बरनेत्रचन्द्रशैलाष्टरूपाणि गुणानि कोट्या।
व्योम्नः सधाम्नः परिधिर्दशघ्नैः कल्पे ग्रहाणां स च योजनाध्वा॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त प्रकार ही चराचर जगत की स्थिति आकाश गोल में बताई है। यथा–

"हिरण्यगर्भाण्डकटाहसंपुटप्रेवेष्टने तच्च बभाषिरे बुधाः।
अदृश्यदृश्यं च गिरिं पुरातना जगुः खकक्षामिति गोलवादिनः॥"

तथा ख कक्षा के संबंध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रविगभस्तिनिरस्ततमोनभः परिधियोजनमानमिदं भवेद्।"

वटेश्वर आचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में खकक्षा का योजन मान भास्कराचार्य से भिन्न प्रकार १२२२५१४६२०५७६००० योजन (आचार्य के योजन की परिभाषा भिन्न है) कही है। लेकिन सूर्य का प्रकाश जितनी दूर तक आकाश में जाता (फैलता) है उसे ही ख कक्षा कही है। यथा–

"गगने गग्नस्थावितयो वितयो नयत्प्रकुर्वन्ति।
यावत्तावर्दिह नभोद्दीप्ता भानवो भानोः॥" मध्य अध्या.७ श्लोक ४॥

वटेश्वराचार्य ने अनेक प्रकार से खकक्षा मान कहा है। यथा–

रविशशियुगघातः खाक्षिभक्तः खकस्या शशिभगणाहता वा दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ताः।
निजभगणविभक्ता सा ग्रहस्यस्वकक्ष्या भवति खरसनिघ्नः सूर्य कक्ष्या भकक्ष्याः॥५॥

इदानीं स्वमतमाह—

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः॥३॥

स्वमत—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्प ग्रह भगण तथा ग्रहकक्षा का गुणा तुल्य ख कक्षा का मान होता है। कल्प में जितने योजन ग्रह भ्रमण करते हैं तत्तुल्य ही खकक्षा योजन है, यह मेरा (आचार्य का) मत है, ब्रह्माण्ड चाहे सीमित हो अथवा असीमित हो।

विशेष— **वटेश्वराचार्य** ने पूर्व श्लोक की व्याख्या में कहे अनुसार ख कक्षा ज्ञात करने की विभिन्न युक्तियाँ कही हैं जो इस प्रकार हैं—

रवि तथा चन्द्र के भगणों के गुणा को २० से भाग देने से खकक्षा मान होता है। दस गणित खकक्षा कला को चन्द्र भगण से गुणा करके ग्रह के स्वभगण से विभक्त करने से ग्रह कक्षा का मान होता है। सूर्यकक्षा को ६० (साठ) से गुणा करने से भकक्षा का मान होता है अर्थात्—

$$\frac{\text{चंद्र भगण} \times \text{रविभगण}}{२०} = \text{खकक्षा};$$

$$\frac{१० \text{ ख कक्षा कला} \times \text{चंद्रभगण}}{\text{ग्रह भगण}} = \text{ग्रह कक्षा}$$

या ६० × सूर्यकक्षा = भकक्षा।

भास्कराचार्यानुसार ग्रहकल्प भगण × ग्रह कक्षा = ख कक्षा

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** में रवि कक्षा का ६० गुणा भकक्षा (नक्षत्र कक्षा) कहा है—

"………त्नहता रविकक्षिका भानाम्॥ मध्य ३२॥"

इदानीं ग्रहकक्षा आह—

ग्रहस्य चक्रैर्विहृता खकक्षा भवेत् स्वकक्षा निजकक्षिकायाम्।
ग्रहः खकक्षामितयोजनानि भ्रमत्यजस्रं परिवर्त्तमानः॥४॥

ग्रह कक्षा—

सूर्य-प्रभा टीका— ख कक्षा को जिस-जिस ग्रह की भगण संख्या से विभक्त करेंगे भागफल उस उस ग्रह की कक्षा का मान तुल्य होता है। इसकी उपपत्ति के रूप में आगे का आधा श्लोक कहा है— ग्रहों के पठित भगण में वे खकक्षा योजन भ्रमण करते हैं तो एक भगण में क्या पायेंगे? इस अनुपात से ग्रह कक्षा मान $= \frac{\text{खकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$। इस प्रकार सभी ग्रहों के कक्षा मान प्राप्त हो सकते हैं।

विशेष— ग्रहों के आचार्यो द्वारा पठित कक्षामान तथा नक्षत्र कक्षामान में भिन्नता है। कक्षा योजन मान भी भिन्न होते हैं।

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"योदोथप्रिनहनरेयचिनेननोनना खकक्षेयम्।
भगणाप्ता निजकक्षात्नहता रविकक्षिका भानाम्॥३२॥"

आचार्य ने यहाँ भास्कराचार्य के आसन्न ख कक्षा का मान = १८७१२०८०२१६०००००० योजनात्मक कहा है। यहाँ योजन के मान में अंतर हो सकता है। तथा भास्करोक्त ही कहा है कि ख कक्षा में जिस ग्रह के भगण संख्या से भाग देंगे उसी ग्रह की कक्षा का मान प्राप्त हो जावेगा।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फुट के गोलाध्याय-२१ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"यस्य भगणैर्विभक्तास्तत्कक्षाऽर्को भषष्टयंश॥११॥"

इदानीमेवं सिद्धे रवीन्दुकक्षो भकक्षाश्चाह—

सार्धाद्रिगोमनुसुराब्धिमिताऽर्ककक्षा ४३३१४९७ $\frac{1}{2}$
चान्द्री सहस्रगुणिता जिनरामसंख्या ३२४०००।
अभ्रेष्विभाङ्कगजकुञ्जरगोऽक्षपक्षाः २५९८८९८५०
कक्षां गृणन्ति गणका भगणस्य चेमाम्॥५॥

भकक्षा तथा रविचंद्र कक्षा से सिद्धि—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्यकक्षा ४३३१४९७ $\frac{1}{2}$, चंद्र कक्षा ३२४०००, तथा भकक्षा २५९८८९८५० प्रमाण गणकों ने गणना की है। इनको आगम प्रमाण से मान लिया है। यहाँ सूर्य कक्षा का ६० गुणा भकक्षा है।

विशेष— शेष ग्रहों की कक्षा प्रमाण **श्रीपति** ने **सिद्धान्त शेखर** के मध्यमाधिकार में कही है। यथा—

"अष्टयङ्कष्णमनुगजाः ८१४६९१६ क्षितिनन्दनस्य
ज्ञस्येशदन्तकृतखंन्दुमिता १०४३२११ऽथ सूरेः।
रूपाश्विनागयुगशैल गुणेन्दबाणाः ५१३७४८२१॥६४॥
खग्न्यङ्गसागररसोत्कृतयः २६६४६३० सितस्य॥
भूधराहिनगनागरसर्तुक्ष्माधराश्विशशिनः १२७६६८७८७ शनिकक्षाः॥६५॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** में सूर्यचंद्र कक्षामान आचार्य के आसन्न ही कहा है, तथा इनका मान आचार्योक्त प्रकार ही से ज्ञात किया है। यथा—

"शशिकक्षा ग्रघुनुनुना घुलुगुट्ठमनुना रवेरनांशादया॥ मध्य. श्लो. ३४॥

$$\text{चन्द्रकक्षा} = \frac{\text{खकक्षा}}{\text{चंद्रभगण}} = \frac{१८७१२०८०२१६००००००}{५७७५३३३४०००} = ३२४०००$$

$$\text{रविकक्षा} = \frac{\text{खकक्षा}}{\text{रविभगण}} = \frac{१८७१२०८०२१६००००००}{४३२००००००००} = ४३३१५०० \frac{१}{२०}$$

रवि कक्षा में अंतर ख कक्षा के मान में अंतर के कारण है।

इदानीं ग्रहगतिजनान्याह—

> **कल्पोद्भवैः क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा**
> **भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्य।**
> **पादोनगोऽक्षधृतिभूमितयोजनानि ११८५८।४५**
> **खेटा व्रजन्त्यनुदिनं निजवर्त्मनीमे॥६॥**

ग्रह योजन गति—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पकुदिन से खकक्षा योजन में भाग देने से ग्रह की एकदिन की योजन गति का मान ११८५८/४५ प्राप्त होता है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने आचार्योक्त ही युगसंबंधि कहा है। मध्यमा. अध्याय-७। यथा—

"क्वहैः खकक्ष्या विहता ग्रहाणां गतिस्तदिष्टद्युगणाहतिः स्युः।
ग्रहोपभुक्तानि तु योजनानि खवृत्तमानद्युगणाहतेर्वा॥१३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में भास्करोक्त ही कल्प संबंधि कहा है। यथा—

"कल्प भूदिनहताम्बरकक्षा स्याद् ग्रहस्य खलु योजन भुक्ति।
तद्गुणाद्दिनगणाद् द्युचराणां योजनानि हि गतानि भवन्ति॥
खकक्षया वा निहतो द्युराशिः क्वहैर्विभक्तो गतयोजनानीति"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के मध्यमाधिकार में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। आर्यभट द्वारा कथित ग्रह की योजनात्मक दैनिक गति ११८५९ भास्कराचार्य से थोड़ी ही अधिक है। उसका कारण दोनों की खकक्षा तथा कल्पकुदिन संख्या में अंतर होना है। यथा—

"अम्बरकक्षा कल्पाहर्गणभक्ता भवेद्द्युगतिः॥३३॥
कुटिदमिधा दिन भुक्तेर्योजन संख्याऽनया व्रजन्ति खगाः॥३३ $\frac{१}{२}$॥"

यहाँ कुटिदमिधा = ११८५९ है। लेकिन इस श्लोक ३३ के अनुसार ख कक्षा ÷ कल्पकुदिन के अनुसार आर्यभट के अंकों के द्वारा

$११८५८ + \frac{११३४००२९६४}{१५७७९१७५४२}$ प्राप्त होता है जिसको आर्यभट ने भी भास्कराचार्य की भांति श्लोक में ११८५९ ले लिया है।

इदानीं ग्रहानयनमाह—

अहर्गणात् क्रक्षिनवाङ्क-९९२१ निघ्नान्नवेन्दुवेदेषुहुताश-३५४१९ लब्ध्या। अहर्गणो गोऽक्षधृतीन्दु-११८५९ निघ्नो विवर्जितः स्युर्गतयोजनानि॥७॥ स्वया स्वया तानि पृथक् च कक्षया हृतानि वा स्युर्भगणादिका ग्रहाः॥७ $\frac{१}{२}$॥

ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ९९२१ से गुणा करके ३५४१९ से विभक्त करने से प्राप्त फल को अहर्गण गुणित ११८५९ फल में से घटाने से प्राप्तफल गत योजन होते हैं। इसको पृथक-पृथक अपनी-अपनी कक्ष्या से विभाजित करने से ग्रहों के भगण प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— ग्रह की दिन गति योजन को अहर्गण से गुणा करने से गतयोजन प्राप्त होते हैं, यह स्पष्ट है। यहाँ आचार्य ने सरलता के लिए पूर्वश्लोक ६ में कथित दिन योजन गति को ११८५८/४५ के स्थान पर ११८५९ गृहण कर लिया है। यहाँ जो अधिक ग्रहण कर लिया है उसको बाद में घटा दिया जायेगा, जिसको ज्ञात करते हैं। परम अहर्गण कुदिन तुल्य होता है उसको गुणक से गुणा किया है। इस प्रकार ११८५९ के बराबर खकक्ष्या अधिक हो गई (ले ली गई) है। अतः इसको खकक्षा में से घटाकर शेष से अनुपात करे कि यदि कुदिन तुल्य अहर्गण में इतना अधिक है तो इष्ट अहर्गण में कितना होगा? कुदिन और उसके शेष को ४४५५ से गुणा करके ४४५५ से अपवर्त करने से शेष के स्थान पर ९९२१ तथा कुदिन के स्थान पर ३५४१९ बचता है। यह जो त्रैराशिक से प्राप्त होता है उसको स्थूल गति से गुणित अहर्गण में से घटाने से गत योजन होते हैं। यह सभी ग्रहों के लिए इसी प्रकार होगा क्योंकि गति तुल्य होती है। अब ग्रह प्राप्त करने के लिए अनुपात करे कि यदि कक्षा तुल्य गत योजन में एक भगण हो तो इतने में कितना होगा? प्राप्त फल गत भगण पर सभी ग्रह होंगे।

$$\text{दिनगति} = \frac{\text{खकक्षा}}{\text{क.कु.}} = \frac{१८७१२०६९२००००००००}{१५७७९१६४५००००}$$

$$= ११८५८\frac{११३५९३५९०}{१५७७९१६४५} + १ - १$$

$$= ११८५९ - १ + \frac{११३५९३५९०}{१५७७९१६४५}$$

$$= ११८५९ - \frac{४४१९८०५५}{१५७७९१६४५} \times \frac{४४५५}{४४५५}$$

$$= ११८५९ - \frac{४४१९८०५५}{४४५५} \times \frac{१}{\frac{१५७७९१६४५}{४४५५}}$$

$$\text{दि.गति} \times \text{अहर्गण} = ११८५९\text{अह.} - \frac{९९२१}{३५४१९}\text{अहर्गण}$$

यही समीकरण आचार्य ने कहा है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त में आचार्य की भांति ही कहा है। आर्यभट्ट की संख्यायें उनकी ख कक्षा तथा कल्पकुदिन के भिन्न मानों के कारण भिन्न हैं। अन्यथा बात भास्कराचार्य ने आर्यभट की ही कही है। यथा—

"कलिमुखगणगतिघातोऽधो घरकणलै हृतः फलविहिनः।

द्युगणो लघुघुसिचिसै भक्तः सफलोऽथवाहनमितिः ॥मध्य.३६॥"

यहाँ आर्यभट ने अहर्गण से ग्रह लाने के लिए इस प्रकार समीकरण दिया है, इस श्लोक में—

$$\text{अध्वमितिः} = ११८५९\ \text{अहर्गण} - \frac{११८५९\ \text{अहर्गण}}{४२१५३} + \frac{\text{अह}}{३४४७६७}\ \text{है।}$$

आर्यभट द्वितीय की ख कक्षा = १८७१२०८०२१६०००००० तथा क.कु. = १५७७९१७५४२००० है। अतः अंकों में अन्तर है। भास्करोक्त खकक्षा तथा क.कु. से भास्करोक्त अंक प्राप्त हो सकते हैं। जैसे यहाँ करके बताया है।

इदानीं विशेषमाह—

ग्रहस्य कक्षैव हि तुङ्गपातयोः पृथक् च कल्प्याऽत्र तदीयसिद्धये।।८।।

अर्कस्य कक्षैव सितज्ञयोः सा ज्ञेया तयोरानयनार्थमेव।

उक्ते तयोर्ये चलतुङ्गकक्षे तत्रैव तौ च भ्रमतोऽर्कगत्या।।९।।

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका — ग्रह की कक्षा ही उसके उच्च तथा पात की कक्षा होती है। ग्रह की कक्षा में उच्च स्थान ही उसका उच्च तथा उसकी कक्षा का सूर्य विमण्डल से संपात स्थान गोल में पातसंज्ञक है। बुध शुक्र की अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में भ्रमण करते हुए इनका कलात्मक भोग अर्थात् भगण रविगति से होते हैं। अतः वे अपनी-अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में रविगति से भ्रमण करते हैं। मंगल, गुरु, शनि की कक्षा को दूसरे ग्रह भगण से गुणा करने से ख कक्षा का मान प्राप्त होता है, अतः उनका शीघ्रोच मार्ग रवि (कक्षा) है। ग्रह के मन्दोच्च तथा पात की स्थिति की गणना करने में उनकी कक्षायें ग्रह की कक्षा से भिन्न मानी जाती है।

विशेष— आचार्योक्त ही **वटेश्वर** ने **वटेश्वर सिद्धान्त** मध्यमा अध्याय १ में कही है। यथा—

"रविभगणहता बुधसितचलकक्ष्यायोजनैर्युगाब्दाः स्युः।
बुधसितयोर्यत एवं लिप्ता भोगतोऽनयोः सौरः।।१८।।
चलकक्ष्यायां भ्रमतो कुज गुरुशनैश्चराः कक्ष्याः।
इतरभगणाहता अध्वा तच्छीघ्राणामश्चार्कः।।१९।।"

।। इति श्रीमद् भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कक्षाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न।।

।। इति कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः।।

(ई) अथ प्रत्यब्दशुद्धिः

शुद्धि का अर्थ घटाना या कम करना होता है लेकिन इसका अर्थ एकीकृत करना अथवा एकत्रीकरण करना भी होता है। इष्टवर्षान्त में प्रतिवर्ष संबंधि सावनादि-अवमादियों का एकत्रीकरण करने को "प्रत्यब्द शुद्धि" कहते हैं। ऐसा वटेश्वराचार्य ने कहा है। वटेश्वराचार्य ने "प्रत्यब्द शुद्धि" नाम से अलग से अध्याय दिया है जिसमें ४९ श्लोक हैं।

तत्रादौ सावनदिनाद्यमाह—

अधोऽधस्त्रिधा कल्पयाताब्दवृन्दात् कराभ्यां कृतैः पावकैः २।४।३ सङ्गुणाच्च।
भुजङ्गैरवाप्तं फलं स्याद्दिनाद्यं तदब्दान्वितं भास्करादब्दपः स्यात्॥१॥

सावन दिन आदि—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पारंभ से गताब्द को अधो अधः २॥४॥३॥से गुणा करके योग फल में ८ का भाग देने से प्राप्त फल लब्धि दिनाद्य होता है। इसमें गताब्द को जोड़ कर सात से भाग देने से अब्दपति होता है।

उपपत्ति— आचार्य ने पूर्व में सौर वर्ष मान ३६५।१५।३०।२२।३० दिनादि प्रतिपादित किया है। इसमें से दिन के स्थान पर स्थित ३६५ को अलग रखें तो शेष ०।१५।३०।२२।३० दिनादि बचता है। इसको ८ से गुणा करने से १५।३०।२२।३०×८ = २॥४॥३॥ सवर्णित दिनादि फल हो जाता है। वर्ष मान के ३६५ दिन में ७ का भाग देने से एक शेष बचता है। अतः १।१५।३०।२२।३० का अनुपात करना पड़ता कि एक वर्ष में इतने तो ८ वर्ष में कितना? सावयन करने के लिए इष्ट वर्षों से गुणा करना पड़ता। इस क्रिया की क्लिष्टता को सरल करने के लिए आचार्य ने पूर्वोक्त (एक को अलग रखकर) सुगम उपाय बताया है। अब अनुपात किया यदि आठ वर्ष में इतने दिनाद्य तो कल्पगत में कितने? फल दिनाद्य होंगे। वहाँ आठ से (विभक्त) संस्थापित करके गताब्द युक्त करके सात से भाग देने से फल अब्दपति होता है, यह कहा गया है क्योंकि पूर्व में एक दिन गुणा गताब्द संख्या तुल्य दिन

संख्या अलग रख (छोड़) दी गई है (१।१५।३०।२२।३० के स्थान पर ०।१५।३०।२२।३० लेने से)। ८ से भाग देने से सौर वर्ष दिनाद्य होता है क्योंकि पहले ८ से गुणा किया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में वर्षपति साधन की मूल विधि दी है। यथा—

"कल्पगताब्द दिनयुतः सूर्योद्योऽब्दाधिपोऽब्द भगणवधः।
कल्पाब्दहृतो भगणादिमध्यमाः सूर्यभगणान्ते॥४२॥"

इस श्लोक की उपपत्ति इस प्रकार है—

एक वर्ष में सावनदिनादि = ३६५।१५।३०।२०।३० होते हैं।

इष्ट वर्षान्त में सावनदिन = ग.व. (३६५।१५।३०।२२।३०)

= ३६५ × ग.व.+ ग.व. (१५।३०।२२।३०)

= ३६५ × ग.व. + ग.व. संबंधि दिनादि

= कल्पादि से इष्टवर्षान्त में सावन अहर्गण।

यह साधारण तथा मूल बात है। इसमें दिनाधि बोधक द्वितीय खण्ड ही है। अतः इसको भास्कराचार्य ने प्रसिद्ध युक्ति से गुणांक ज्ञात करके विधि कही है।

वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही मूल बात कही है। यथा—

"वत्सरान्वितदिनेषु सप्तभिर्भक्तशेषमिह वत्सराधिपः।
स्युस्ततो रविभसंघकान्तिका मध्यमा दिविचराः सुखेन हि॥६॥"

आगे श्लोक २ की व्याख्या में जो विशेष विवरण में ब्रह्मगुप्त की विधि हमने दर्शाई हैं उसी के अनुरूप आचार्य ने यहाँ पठित गुणक तथा भाजक प्राप्त किये हैं। इसी प्रकार श्लोक $१\frac{१}{२}$ (आगे) की भी युक्ति आचार्य ने इसी ब्रह्मगुप्त की युक्ति के आधार पर ही की है।

विशेष— म.म. बापूदेव शास्त्री ने इस प्रकार कहा है—

**"समास्त्रिनिघ्नयः खभुजङ्गभक्ता स्वदिग्लवोनाः सहिता गताब्दैः।
चतुर्विभक्ताश्च भवेद्दिनाद्यं तदब्दयुग् भास्करतोऽब्दपः स्यात्॥"**

अर्थात्– गताब्द वर्षों को ३ से गुणा करकें ८० का भाग देकर प्राप्त फल

का १० वाँ भाग जोड़ कर उसमें चार का भाग देने से दिनाद्य भास्करोक्त होता है।

भास्कराचार्य ने वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० में ३६५ को छोड़कर शेष को ८ से गुणा करके २।४।३ दिन घटी पल प्राप्त किया है। यह गुणा भाग को सरल करने के लिए किया है। इस वर्ष मान की संपूर्ण संख्याओं को यदि गताब्द से गुणा करेंगे तो क्लिष्टता रहेगी। अतः शेष से प्राप्त २ दिन ४ घ. ३ पल को गताब्द से क्रमशः गुणा करने से क्रमश दिन, घटी तथा पल प्राप्त होंगे जो गताब्द के प्रतिवर्ष के लिए ३६५ दिन के ऊपर के १५ घ.३० प.२२ वि. ३० प्रवि. होंगे। इन्हें अधो अधः अर्थात् २ से गुणित को दिन के स्थान पर, ४ से गुणित को घटी के स्थान पर तथा ३ से गुणित को पल के स्थान पर रखकर ६० से भाग देकर शुद्ध, दिन घटी पल ज्ञात होंगे। हम ३६५ में ७ का भाग देंगे तो शेष एक बचता है, अर्थात् वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० के दिनों को ७ से विभक्त करने से शेष १।१५।३०।२२।३० रहता है। यहाँ भी आचार्य ने प्रथम अंक एक दिन को अलग रख दिया है तथा मात्र १५।३०।२२।३० को ही ८ से गुणा करके २॥४॥३ प्राप्त किये हैं। अतः प्रतिवर्ष के लिए इस एंक दिन को गताब्द से गुणा करके जोड़ना होगा और शेष १५।३०।२२।३० को ८ से गुणा किया है अतः इस गुणा को सावयव करने के लिए ८ से विभक्त करना होगा। यथा—

$\frac{\text{१५।३०।२२।३०} \times \text{८}}{\text{८}} = \frac{\text{२॥४॥३}}{\text{८}}$ । इस प्रकार करने से गताब्द के प्रतिवर्ष के लिए १५।३०।२२।३० के लिए दिनादि संख्या जिसे दिनाद्य कहा है प्राप्त होगी। इसमें गताब्द गुणा एक जोड़ने से (गताब्द × वर्षमान के) दिनादि प्राप्त होंगे।

$$\frac{(\text{३६५।१५।३०।२२।३०}) \times \text{गताब्द}}{\text{७}} = (\text{१।१५।३०।२२।३०}) \times \text{गताब्द}$$

$$= \text{१} \times \text{गताब्द} + \frac{\text{८}}{\text{८}}(\text{१५३०।२२।३०}) \times \text{गताब्द} = \left(\text{गताब्द} + \frac{\text{२॥४॥३}}{\text{८}}\ \text{गताब्द}\right)$$

= दिनाद्य

इसका अब्दपति ज्ञात करने के लिए ७ से विभक्त करना होगा तथा शेष से शनिवार अदि वार वर्ष पति होगा।

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

निजाशीति-८० भागेन युक्तं समार्धं
खषड्-६० भक्तमब्दाङ्घ्रियुग्वा दिनाद्यम्॥१$\frac{१}{२}$॥

प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— गत वर्षों के आधे में उनका ८० वाँ भाग युक्त करके ६० से विभक्त करने से प्राप्त फल में वर्ष का चतुर्थांश जोड़ने से दिनाद्य होते हैं।

उपपत्ति— वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० के दिनों के आगे के भाग १५।३०।२२।३० घट्यादि को निम्न लिखित प्रकार से लिख सकते हैं—

$$१५ \text{ घटी} = \frac{१}{४} \text{ दिन}$$

$$३० \text{ पल} = \frac{\text{घ}}{२} = \frac{\text{दिन}}{२\times६०}; \because \text{एक घटी} = \frac{\text{दिन}}{६०} \text{ होती है।}$$

$$\text{तथा } २०।३० \text{ विपलादि} = \frac{\text{दिन}}{९६००} = \frac{\text{दिन}}{२\times६०\times८०}$$

तीनों को जोड़ने से दिनाद्य (१५।३०।२०।३०)

$$= \frac{\text{दिन}}{४} + \frac{\text{दिन}}{२\times६०} + \frac{\text{दिन}}{२\times६०\times८०}$$

या वर्षमान के आद्य भाग के दिन

$$= \frac{\text{दिन}}{४} + \frac{१}{६०}\left[\frac{\text{दिन}}{२} + \frac{\text{दिन}}{२\times८०}\right]$$

यही आचार्य ने कहा है। अतः उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने अन्य अनेक प्रकार से युक्ति कही है। आचार्य ने यहाँ गणित के गौरव से वर्षमान के आद्य भाग को अन्य प्रकार से व्यवस्थित कर लिया है।

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

गताब्दा विभक्ताः समुद्रैः ४ खसूर्यैः १२०
खखाङ्गाङ्कै ९६०० र्वा फलैक्यं दिनाद्यम्॥२॥

पुनः प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— गताब्द को क्रमशः ४; १२० तथा ९६०० से विभक्त करके सबको युक्त करने से दिनाद्य होता है।

उपपत्ति— वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० के आद्य भाग को निम्नलिखित प्रकार लिखा जा सकता है—

$$१५ \text{ घटी} = \frac{\text{दिन}}{४}, \quad ३० \text{ पल} = \frac{\text{दिन}}{२ \times ६०} = \frac{\text{दिन}}{१२०};$$

$$२२\frac{१}{२} \text{ विपल} = \frac{४५}{२} \text{ विपल} = \frac{४५}{२ \times ६० \times ६० \times ६०} = \frac{\text{दिन}}{९६००}$$

$$\text{अतः दिनाध्य} = \frac{\text{दिन}}{४} + \frac{\text{दिन}}{१२०} + \frac{\text{दिन}}{९६००}।$$

यह सब पूर्व श्लोक १ की उपपत्ति से ही प्राप्त हो जाता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्योक्त दिनाद्य में ३६५ योग करके गताब्द से गुणा करने से अहर्गण प्राप्त किया जा सकता है। यह बात इस प्रकार लिख सकते हैं जो आचार्य ने नहीं कही है।

$$\text{अहर्गण} = ३६५ \times \text{गताब्द} + \text{दिनाद्य} \times \text{गताब्द}$$

$$= ३६५ \times \text{गता.} + \frac{\text{गता.}}{४} + \frac{\text{गता.}}{१२०} + \frac{\text{गता.}}{९६००} = ३६५ \text{ गता.} + \frac{७७३९}{९६००} \text{ गता.}$$

यह सूत्र शुद्ध अहर्गण साधन का होगा।

आधुनिक दिन मान ३६५।१५।२२।५७ के लिए हम सूत्र इसी प्रकार लिख सकते हैं यदि गणेश दैवज्ञ तथा केतकर महोदय की भांति ११ या १९ वर्ष का एक चक्र बनावें तो १९ वर्ष के एक चक्र के लिए—

(३६५।१५।२२।५७) × १९ = ६९३९।५२।१६।३ दिनादि।

यहाँ १९ वर्ष के चक्र के यदि ६९४० दिन मान लेवें तो—

$$\text{अहर्गण} = ६९४० \times \text{चक्र} + ३६५ \text{ च.शेष} + \frac{\text{च.शे.}}{४} - \frac{२ \text{ च.}}{१५} + \frac{\text{च.}}{२२५} + \frac{\text{च}}{७५७८९}$$

यहाँ गताब्द में १९ का भाग देकर भागफल चक्र संख्या तथा शेष चक्र शेष होगा। इस सूत्र के द्वारा यदि अहर्गण ज्ञात किया जाये तो अहर्गण का मान बिल्कुल शुद्ध आयेगा तथा अन्य आचार्यों के सूत्रों से अधिमास, अवम आदि ज्ञात करके ज्ञात अहर्गण का मान अनेक बार अशुद्ध आता है। मेरे द्वारा प्रतिपादित यह सूत्र मैंने संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में आयोजित ४२ वें ओरियंटल कान्फ्रेंस वर्ष २००४ में अपने शोध पत्र में उद्घोषित किया था। उसमें

अन्य आचार्यों द्वारा बताये सूत्रों से प्राप्त अहर्गण की अशुद्धता तथा मेरे द्वारा प्राप्त अहर्गण की शुद्धता प्रतिपादित की गई है। यह शोध पत्र मैंने इस पुस्तक के अंत में संलग्न कर दिया है। विद्वान् लोग इसका अवलोकन करें।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में मध्यमाधिकार में ब्रह्मगुप्त ने यही बात दूसरे प्रकार से कही है। यथा–

कल्पगताब्दा गुणिता रूपाष्टजिनैर्नवाग्नि सप्तनगैः।
खखरसनव भिर्भक्ता दिनावमान्यंशकाः शेषाः ॥४०॥

अर्थात् कल्पादि से गत वर्षों को पृथक पृथक ७७३९ तथा २४८१ से गुणा करके दोनों गुणनफलों को ९६०० से विभक्त करने से प्रथम स्थान पर से अवम दिन तथा दूसरे स्थान पर से सावन दिनादि प्राप्त होते हैं। यह भास्कराचार्योक्त सूत्र से प्राप्त हो जाता है अथवा भास्कराचार्य का सूत्र ब्रह्मगुप्त के सूत्र से प्राप्त कर सकते हैं—

$$\text{दिनादि} = \frac{\text{गव}}{४} + \frac{\text{गव}}{१२} + \frac{\text{गव}}{९६००} = \frac{२४८१\,\text{गव}}{९६००}$$ उपपन्न होता है।

भास्कराचार्योक्त अग्रोक्त श्लोक ४ द्वारा क्षयाहा

$$= \text{गव} - \frac{\text{गव}}{५} + \frac{\text{गव} - \frac{\text{गव}}{६०}}{१६०}$$ से क्षयाहा $= \frac{७७३९}{९६००}$ ग.व. उपपन्न होता है।

ब्रह्मगुप्त ने यहाँ जिस प्रकार युक्ति से वर्षपति ज्ञात करने के लिए ग.व × (१५।३०।२२।३०) को विभिन्न खण्डों में व्यक्त किया है, उसी प्रकार की युक्ति भास्कराचार्य ने पूर्व कथित श्लोक १, १$\frac{१}{२}$ में अपनाई है। इस श्लोक में उद्धृत ब्रह्म गुप्त की युक्ति को भास्कराचार्य ने सरल करके दूसरे रूप में व्यक्त कर दिया है।

इदानीं क्षयाहानाह—

स्वषष्ट्यंशयुक्तानि वर्षाणि वर्षैः खरामाहतैः संयुतान्यभ्रभूपैः १६०।
विभक्तानि तान्यत्र लब्धं विशुद्धं समाभ्यो गताभ्यो भवन्ति क्षयाहाः ॥३॥

क्षयाहा आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— वर्षों में उसका ६० वाँ भाग युक्त करके पुनः इसमें

वर्ष का ३० गुणा युक्त करे। योगफल में से योगफल का $\frac{१}{१६०}$ वाँ भाग हीन करने से प्राप्तफल तुल्य क्षयाहा होते हैं।

उपपत्ति— यदि यह अनुपात किया जावे कि एक कल्प में कल्पक्षयाहा इतने होते हैं तो एक वर्ष में कितने होंगे? तो हमें एक वर्ष में क्षयाहा का मान ५।४८।२२।७।३० दिनादि प्राप्त होता हैं। इसमें से ५ को हटा कर (या छोड़कर) शेष ४८।२२।७।३० को गताब्द से गुणा करने से अवमाद्य हैं। अतः लघवार्थ ४८।२२।७।३० शेष को एक दिन में घटाने से (१-४८।२२।७।३०) या वर्ष के क्षयाहा मान को ६ में से घटाने से (६।०।०।० – ५।४८।२२।७।३०) शेष ०।११।३७।५२।३० बचता है। इसको १६० से सवर्णित करने से इसका मान ३१।१।० होता है। अर्थात् १६० वर्षों में ३१ घटी तथा एक पल अधिदिन प्राप्त होते है तो गताब्द में कितने होंगे? इसके लिए वर्षों के ६० वें भाग में (क्योंकि एक घटी में ६० पल होते हैं अतः यहाँ ६० वर्ष में एक पल प्रतिवर्ष के मान से ६० वर्ष में एक घटी होगी। अतः वर्षों का ६० वाँ भाग युक्त किया है।) गत वर्षों को ३० से गुणा करके योग करने से ३१ घटी हो जाती है। इसको तुल्य करने के लिए फिर १६० फल (भाग) लेकर घटा देवें। इससे प्रत्येक गताब्द वर्ष में छठा अवम दिन पूरा नहीं होगा।

यहाँ ०।११।३७।५२।३० के दो खण्ड किये हैं, पहला ०।११।१५ तथा दूसरा ०।०।२२।३०। पहला खण्ड १६० से सवर्णित करने से घटी के स्थान पर ३० हो जाता है, जिसके लिए ३० से गुणा करने को कहा है। द्वितीय स्थान पर १६० से सवर्णित करने से पल स्थान पर १।१ आता है। अतः स्वषष्टयंश युक्त करने के लिए कहा है। इस योग फल को अंतर से तुल्य करने के लिए तुल्य हर के भाग (अंश) अर्थात् १६० वाँ भाग घटाने के लिए कहा गया है।

पुनः समझाते हैं—

११।३७।५२।३० × १६० = १७६०।५९२०।८३२०।४८०० घट्यादि इनमें ६० से भाग देकर विपल, पल, घटिआदि बनाने से ये ३१।०।५९।२८।० या ३१।१।०।० घट्यादि तुल्य प्राप्त होते हैं। यही आचार्य ने कहा है। यह मान एक वर्ष के लिए है। अतः गताब्द के लिए इसको गताब्द से गुणा करना होगा। यहाँ क्योंकि हमने क्षयाहा ५।४८।२२।७।३० के स्थान पर ६।०।०।० माना है। अतः इस प्रकार हमने ०।११।३७।५२।३० अधिक ले लिया है जो पूर्वोक्त प्रकार

से १६० से सवर्णित होता है। इसको तुल्य करने के लिए वापस इतना ही अर्थात् गताब्द का १६० वाँ भाग घटा दिया है। अतः जो क्षयाहा ६।०।०।० माना था वह वापस ५।४८।२२।७।३० हो जावेगा।

इदानीं प्रकारान्तरेण क्षयाहानाह—

दिनाद्यं त्रिनिघ्नं समाभ्राभ्रवेदां-४०० शकोनं समात्रिंशदंशेन युग्वा॥३ $\frac{१}{२}$॥

प्रकारान्तर से क्षयाहा आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वानीत दिनाद्य के तिगुणे में गताब्द का ३० वाँ भाग युक्त करने तथा ४०० वाँ भाग हीन करने से क्षयाहा का मान प्राप्त होता है।

उपपत्ति— एक वर्ष के दिनाद्य ०।१५।३०।२२।३० का तिगुणा यदि अवमाद्य ०।४८।२२।७।३० में से घटा दिया जावे तो शेष ०।१।५१ बचता है। यथा– ०।१५।३०।२२।३० ×३ = ४५।९०।६६।९० ÷ ६० = ४६।३१।७।३०; ०।४८।२२।७।३० – ०।४६।३१।७।३० = ०।१।५१।०।० प्राप्त हुआ। अर्थात् ०।१।५१ में दिनाद्य का तिगुणा जोड़ दिया जावे तो अवमाद्य का मान आ जाता है। इस शेष को १२०० से गुणा करने से १।५१ × १२०० = १२००।६।२००÷६० = ३७।० होता है। अतः गताब्द के ३७ गुणा को १२०० से भाग देकर प्राप्त फल को दिनाद्य के तिगुणे में जोड़ देवे तो वह गतावम होता है। सुविधा के लिए ३७ के स्थान पर ४० में ३ ऋण कर देवे अर्थात् ४०–३=३७। इसमें १२०० से भाग देने से एक भाग $\frac{४०}{१२००} = \frac{१}{३०}$ धन तथा दूसरा भाग $\frac{३}{१२००} = \frac{१}{४००}$ ऋण होगा। अतः कह सकते हैं कि गताब्द के तिगुणे में पृथक् पृथक् गताब्द में ३० तथा ४०० का भाग देकर प्रथम फल को धन तथा द्वितीय फल को ऋण करने से अवमाद्य प्राप्त होता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्यो श्लोक ३ तथा यहाँ जिस रूप में सूत्र दिये हैं वे वातेश्वर तथा ब्रह्मगुप्त के प्रकार की साधन विधि अनुसार है। जैसा कि पूर्व श्लोक २ की व्याख्या में हमने बताया है।

अथ प्रकारान्तरेणावमान्याह—

स्वषष्ट्यंशहीनाब्दखाङ्गेन्दु-१६० भागः स्वपञ्चांशहीनाब्दयुग्वा क्षयाहाः॥४॥

प्रकारांतर से अवमानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— गताब्द में से गताब्द का ६० वाँ भाग हीन करके शेष के १६० वें भाग को, गताब्द में से गताब्द का ५ वाँ भाग हीन करने से प्राप्त शेष में युक्त करने से क्षयाहा (अवम) प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त को सूत्ररूप

में क्षयाहा = $\text{गव} - \frac{\text{गव}}{५} + \frac{\text{गव} - \frac{\text{गव}}{६०}}{१६०}$ लिख सकते हैं।

उपपत्ति— एक सौर वर्ष के अवमाद्य ५।४८।२२।७।३० में ४८ घटी होती है। यह दिन का पाँचवाँ अंश (६० घटी ÷५= १२ घटी) एक दिन मान (६० घटी) में से घटाने से आता है। अतः गताब्द का पांचवाँ भाग गताब्द में से कम करने को कहा है। उसके पश्चात ०।०।२२।७।३० भाग शेष रहता है। इसको १६० से गुणा करने से ०।५९।० प्राप्त होता है। यह एक घटी में उसके ६० वें भाग तुल्य कम है। अतः इसको $(१ - \frac{१}{६०})$ घटी लिख सकते हैं। पहले क्योंकि १६० से गुणा करने से ०।५९ आया था अतः अब इसमें

१६० से भाग देना होगा। क्योंकि $(२२।७।३०) \times \frac{१६०}{१६०} = \frac{०।५९}{१६०} = \frac{१ - \frac{१}{६०}}{१६०}$

अतः आचार्योक्त गत वर्षों के लिए सूत्र –

$$\text{क्षयाहा} = \text{गव} - \frac{\text{गव}}{५} + \frac{\text{गव} - \frac{\text{गव}}{६०}}{१६०} \text{ उपपन्न हुआ।}$$

विशेष— आचार्य के इसी अध्याय के श्लोक २ की व्याख्या में ब्रह्मगुप्तोक्त श्लोक ४० मध्यमाधि. का दिया गया है। वहाँ ब्रह्मगुप्त ने भास्करोक्त ही को सरल रूप में $\frac{७७३९}{९६००}$ = क्षयाहा कहा है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त के सूत्र के ही एक भाग को यहाँ कहा है।

अथ गताधिमासांशछुद्धिं चाह—

दिनादिक्षयाहादिदिग्घ्नाब्दयोगः खरामैर्हृतः स्युः प्रयाताधिमासः।
भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्रावशिष्टं तदूनं सदूनाहनाड्यादिकेन॥५॥

गताधिमासां शुद्धि—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनादि, क्षयाहादि तथा दशगुणित गताब्द का योग

करके योगफल में ३० से भाग देने से लब्धि अधिमास तथा शेष शुद्धि संज्ञक होती है, यदि अधिमास शेष की तिथि की घटियों में से अवमघटिकायें शोधित करे (से क्षय घटिका होती है)।

उपपत्ति— एक वर्ष में सावनदिन ३६५।१५।३०।२२।३० तथा अवम दिन ५।४८।२२।७।३० होते हैं। इन दोनों के योगतुल्य एक वर्ष में चांद्र दिन होते हैं ३७१।३।५२।३०। एक सौर वर्ष में ३६० सौर दिन होते हैं। इन दोनों का अन्तर अधिदिन ११।३।५२।३० होता है।

एक वर्ष के सावन दिन = ३६५।१५।३०।२२।३० = ३६५ + १ वर्ष सं. दिनादि

एक वर्ष के अवम दिन = ५।४८।२२।७।३० = ५+ १ वर्ष संबन्धी क्षयाहादि

दोनों का योग करने से—

एक वर्ष के चांद्र दिन = ३७१।३।५२।३०।० = ३७०+१ वर्ष सं. दिनादि + १ वर्ष संबंधी क्षयाहा।

एक वर्ष में सौर दिन = ३६० होते हैं।

दोनों का अन्तर करने से—

एक वर्ष में अधिदिन = ११।३।५२।३०।० = १०।१वर्ष सं. दिनादि+१ वर्ष सं. क्षयाहा। इन अधिदिनों में ३० का भाग देने से अधिमास प्राप्त होंगे। यह अधिमास ज्ञात करने के लिए आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

$$\text{एक वर्ष संबंधि अधिमास} = \frac{\text{१०+वर्ष सं.दिनादि+वर्ष सं. क्षयाहादि}}{\text{३०}}$$

$$\text{अतः ग. व.सं. अधिमास} = \frac{\text{१० गव + गव सं. दिनादि + गव सं. क्षयाहादि}}{\text{३०}}$$

आचार्य ने यहाँ अधिशेष का नाम "शुद्धि" कहा है। अधिशेष से अहर्गण आनयन में शेष शुद्धि संज्ञक है। अधिमास शेष की तिथि में से अवमघटिका शोधित करने का कारण आगे कहा जावेगा।

विशेष – सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"दश गुणाब्द दिनावम संयुतिः खदहनैर्विहृता अधिमासकाः।
भवति शुद्धभिधं खलु शेषकमित्यादि॥"

वटेश्वर आचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है।

यथा–

"हीन राशिदिन संयुतिर्युता दिग्घ्नवत्सरगणेन भाजिता।
खाग्नि भिस्त्वधिकमासकाः फलं शुद्धिरत्र विकलं दिनादिकम्।।" मध्य.प्रत्य. २।।

ब्रह्मगुप्त ने भी ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

तद्दिग्गुणाब्दयोगा अधिमासास्त्रिंशता हृता लब्धम्।
शेषास्थिथयः शुद्धिर्दिनानि विकलं दिनांशेभ्यः।।४१।।"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"गुणाब्धिखाष्टेषुहताः समाहृताः खखाभ्रनासत्यनगैर्दिनक्षयाः।
ततोऽवशिष्टं कृतखेन्दुभिर्भजेद् भवेद् समादाववमावशेषकम्।।२८।।"

अथ प्रकारान्तरेणाधिमासानयनमाह—

द्विधाब्दा द्विरामैः ३२ खरामैं-३० श्च भक्ताः फलैक्यं शिवघ्नाब्दयुक्तं विभक्तम्।
खरामैस्तु ते वाधिमासाश्च शेषं भवेच्छुद्धिरूनाहनाडीविहीनम्।।६।।

प्रकारान्तर से अधिमासानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— गताब्द को पृथक-पृथक ३२ तथा ३० से विभक्त करके इनके फलैक्य (योग) में ११ से गुणित गताब्द युक्त करके प्राप्त फल में ३० का भाग देने से प्राप्तफल अधिमास होता है तथा अधिशेष में से क्षयाहा घटाने से शेष शुद्धि संज्ञक होता है।

उपपत्ति— एक वर्ष में पूर्व की भांति अधिमास शेष संबंधि दिनादि ११।३।५२।३० होते हैं तो गताब्दों में अधिमास कितने होंगे? इस के लिए इनको गताब्द से गुणा करके ३० से भाग देने से ये प्राप्त होंगे अर्थात्

$$\frac{(११।३।५२।३०)\text{ ग.व.}}{३०} = \text{फल गताब्द में अधिमास संख्या।}$$

यहाँ लघ्वार्थ ११ को अलग रख कर शेष ०।३।५२।३० दिनादि को ४८० से गुणा करने से ३१।०।० प्राप्त होता है। अतः गताब्द को ३१ से गुणा करके ४८० से भाग देवें। क्योंकि (०।३।५२।३०) × $\frac{४८०}{४८०} = \frac{३१।०।०}{४८०}$ होगा। आचार्य ने ३१ के दो खंड किये हैं एक १५ तथा दूसरा १६ दोनों का हर समान है। अतः $\frac{३१}{४८०} = \frac{१५+१६}{४८०} = \frac{१५}{४८०} + \frac{१६}{४८०} = \frac{१}{३२} + \frac{१}{३०}$

अतः आचार्य ने गताब्द को एक बार ३२ से तथा दुबारा ३० से विभक्त

करने के लिए कहा है तथा अलग रखे ११ गुणित गताब्द में इन दोनों को युक्त करने के लिए कहा है। इनके मास बनाने के लिए इन दिन योगफल में ३० का भाग देने के लिए कहा है। पूर्व श्लोक की भांति शेष को यहाँ शुद्धि कहा है।

उपरोक्त को अन्य प्रकार से भी प्राप्त कर सकते हैं। ११।३।५२।३० के तीन खंड ११, ०।२ तथा ०।१।५२।३० करके प्रथम खंड को एक से, दूसरे को ३० से तथा तृतीय को ३२ से सवर्णित करने से क्रमशः ११; $\frac{०।२ \times ३०}{३०} = \frac{१}{३०}$; $\frac{१।५२।३० \times ३२}{३२} = \frac{१}{३२}$ प्राप्त होता है। अतः इनको गताब्द से गुणा करके तीनों का योग करके योगफल को ३० से विभक्त करने से लब्धि अधिमास (गताब्द में) प्राप्त होंगे तथा शेष शुद्धि संज्ञक होगा।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त सिद्धान्त ही कहा है, लेकिन उन्होंने भास्कराचार्य की भांति सूत्र अंकों के रूप में नहीं कहा। यथा मध्यमाधिकार प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय—

"अध्यहानिशिवनिघ्नहायनैरन्वितानि खदहनोद्धृतानि तानि वा।
लभ्यतेऽधिकगणोऽवशिष्टकं शुद्धिभद्रमथवा दिनादि यत्॥३॥"

यहाँ आचार्य ने इस प्रकार कहा है—

$$\text{गताधिमास} = \frac{\text{११ गव} + (\text{३।५२।३०।०}) \text{ गव}}{\text{३०}}$$

इदानीं दिनाद्येन विनाऽप्यब्दाधिपानयनमाह—

गताब्दाधिमासान्तरं द्विघ्नमाढ्यं क्षयाहैर्गतैः सप्तभक्तावशिष्टम्।
विशुद्धश्च शुद्धेः स वर्षाधिपो वा भवेत् सप्तभक्तावशिष्टोऽर्कपूर्वः॥७॥

दिनाद्य के बिना अब्दाधिपति का आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— गतवर्षों (गताब्द) तथा गताधिमास के अन्तर को दुगुणा करके उसमें अवम दिन जोड़ने से प्राप्त फल को सात से विभक्त करके शेष को शुद्धि में से घटा कर फिर ७ का भाग देने से प्राप्त शेष की रविवार से क्रमशः गणना करने से वर्षपति होता है।

उपपत्ति— सौरवर्षाब्दान्त तक जो अहर्गण होता है उसका जो वार होता है वह वर्षपति होता है। प्रत्यब्द (प्रतिवर्ष) में सौर दिन संख्या ३६० होती है। इसको ७ से विभक्त करने से ३ शेष रहता है तथा मास के दिनों ३० को ७

से विभक्त करने से २ शेष रहता है। इस प्रकार गताब्द के तीन गुणे तथा गताधिमास के द्विगुणित के योग को ७ से विभक्त करने से जितना होता है, उतना चैत्रादि से आगे तक की तिथिगण होती है, उसको ७ से विभक्त करने से अवशेष होता है। इसमें शुद्धि तिथि जोड़ देवें तथा पूर्व प्राप्त क्षयाह घटा देवे। प्रत्यब्द में पांच दिन अधिक होते हैं, अतः इसमें से गताब्द का पांच गुणा घटा देवे। पूर्वप्राप्त त्रिगुणित में जोड़ देवे और द्विगुणित घटा देवे तथा अधिकमास का द्विगुणित जोड़ देवे। इन सब को लाघवार्थ गताब्द में से गत अधिमास घटा कर शेष का दुगुणा करके अवम जोड़ कर ७ से विभक्त करके शेष को शुद्धि में से घटा कर ७ से भाग देने से प्राप्त शेष रविवारादि क्रम से वर्षपति होता है। यह अब्दान्त का वार होता है यह भी कह सकते हैं।

उपरोक्त की गणना निम्नलिखित प्रकार से करके बताते हैं। यथा–

३६० × गताब्द = गताब्द के सौर दिन।

३० × गताब्द के अधिमास + अ.शेष = गताब्द के अधिदिन

∴ गताब्द के चांद्र दिन = ग.व. सौरदि.+ग.व. अधिदिन

= ३६० × गव + ३० × ग व सं अ. मा. + अ.शे.

∴ गव के सावन दिन = ग.व. चांद्रदिन – ग व के क्षयाहा सावयव

= ३६० × गव+३० गव संअमा +अशे. – (५ गव+क्षदि+क्षशे.)

= ३६० गव+३० गव सं अमा + अशे – ५ गव – क्षदि – क्षशे

इसको ७ से विभक्त करने से–

= ३ ग.व + २ ग.व.सं अमा. + अशे – ५ ग व – क्षदि – क्षशे

= ३ गव+२ गवसंअमा + (अशे-क्षशे) – ५ गव – क्षदि

= ३ गव + २ गव सं अ मा+ शुद्धि – ५ गव – क्षदि.

= शुद्धि – २ (ग व – गवसंअमा) – क्षदि

= शुद्धि – [२ (गव–गवसंअमा) + क्षदि]

इसको ७ से विभक्त करने से रविवार आदि क्रम गणना से शेष संख्या तक वर्तमानवार होता है। यहाँ [२(गव–गवसं अमा)+क्षदि] योगफल २६ से अधिक हो सकता है अतः इस ऋण भाग २ (गव – गवसं अमा) + क्षदि. में पहले ७ से भाग देकर प्राप्त शेष को शुद्धि (प्रथम भाग) में से घटा कर फिर सात से भाग देने के लिए आचार्य ने कहा है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वर सिद्धान्त में वटेश्वर ने इसी बात को इस प्रकार मध्यमा. प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय में कहा है। यथा—

"द्विनिघ्नेवत्सरनिकरेऽधिकोनिते युतेऽवमनिकरेण हीनिता शुद्धिः।
स्वभागहार-युतगुणैर्यथोक्तवद्दिनादितेष्वगहृतशेषमब्दपः ॥८॥"

यहाँ आचार्य ने ऋण भाग को पहले २ से विभक्त करने के लिए नहीं कहा है, लेकिन कहा है कि अपना भागहार जोड़ गुणा द्वारा पूर्ववत दिनादि फल को सात से विभक्त करने से शेष वर्षपति होता है।

सूर्यसिद्धान्त में वर्षपति तथा मासपति आनयन के लिए उपरोक्त सूत्र के अलग भाग किये हैं। यथा मध्यमाधिकार—

"मासाब्ददिनसङ्ख्याऽप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ॥५२॥"

अर्थात् अहर्गण को दो स्थानों में स्थापित करके एक स्थान पर मासदिन संख्या (३०) से तथा दूसरे स्थान पर सौर वर्षदिन (३६०) संख्या से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि को क्रमशः मास को दो से तथा वर्ष को ३ से गुणा करके गुणन फल में दोनों स्थानों पर एक जोड़ कर ७ से विभक्त करने से प्राप्त शेष से रवि आदि क्रम से क्रमशः मासेश तथा वर्षेश होते हैं'

ब्रह्मगुप्त ने भी **ब्रह्मस्फुट** में इसी प्रकार कहा है।

इदानीमवमैर्विनाऽप्यवमशेषघटिका आह—

यत् त्वधिमासकशेषकनाडीपूर्वमिदं रहितं विहितं सत्।
आद्यदिनाद्यघटीभिरथैवं स्युः क्षयशेषभवा घटिका वा॥८॥

अवम के बिना अवमशेष घटि ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— अधिमास शेष तित्थात्मक होता है उसकी आद्य घटियों में से आद्य दिनों की घटियाँ घटाने से वास्तविक क्षयाहाघटिका होती है। पूर्व में दो बार गताब्द को ३२ तथा ३० से भाग देकर दिनाद्य का फल प्राप्त किया है उसके निराकरण (अर्थात् स्थान पर) के लिए आचार्य ने यह कहा है।

उपपत्ति— जिस प्रकार दिन अवम घटियों से युक्त अधिमास शेष की घटिकाओं में से दिन घटिका घटाने से अवमघटिका शेष रहती है वैसे ही अवम घटिका घटाने से दिन घटिका शेष रहती है। यह श्लोक ५ की उपपत्ति के

समीकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है। अधिमास शेष दिनाद्य शेष तथा क्षहाद्य शेष का योग होता है।

आर्यभट (द्वि.) ने प्रश्नोत्तराध्याय अधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"खत्रीधजत्रिणेसै कल्पगताब्दान् हतान् विभजेत्॥२१॥
सरननुनैनै लब्धं याताख्योऽहर्गणो भवति।
तच्छेषाद्यद् घटिकादिफलं तदृणाभिधानं स्यात्॥२२॥"

इदानीं रव्यब्दान्तग्रहानयनमाह—

कल्पजचक्रहतास्तु गताब्दाः कल्पसमाविहृता भगणाद्याः।
स्युर्ध्रुवका दिनकृद्भगणान्ते पातमृदूच्चचलोच्चखगानाम्॥६॥

रविब्दान्त के ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पग्रहभगण को गत सौर वर्ष से गुणा करके कल्प सौर वर्षों से भाग देने से प्राप्त भगणादिक सौर वर्षांत (रविमण्डलान्तिका) के ग्रह होते हैं। ये उन ग्रहों के ध्रुवक होते हैं। पात तथा मन्दोच्च की, ग्रह की अपेक्षा अति मन्द गति होने से उनको वर्षगण से आनयन करना उचित प्रतीत नहीं होता।

उपपत्ति— यदि कल्पवर्षों में कल्पग्रहभगण होते हैं तो गताब्द में कितने होंगे? यह अनुपात करने से प्राप्त फल रविमण्डलान्तिका ग्रह होते हैं। इस प्रकार प्राप्त ग्रहों को ध्रुवक मानना चाहिये।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"कल्पगताब्ददिनयुतः सूर्याद्योऽब्दाधिपोऽब्दभगणवधः।
कल्पाब्दहृतो भगणादिमध्यमाः सूर्यभगणान्ते॥४२॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के चतुर्थ अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है।

"याताब्दाभ्यस्ता द्युचरभसङ्ख्या युगार्कवर्षहृताः।
मण्डलपूर्वः खचरः सुरासुरार्कोदयास्तसमये स्यात्॥५१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधी.वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"समाहताः खेचरमण्डलैर्हृताश्चतुर्युगाब्दैरथ तैरिनोद्धृतैः।
खरामभक्तैरनुरवाङ्गभाजितैर्भवेयुरर्काब्दमुखे ग्रहध्रुवाः॥३०॥"

इदानीं चन्द्रध्रुवकं प्रकारान्तरेणाह—

यत्तु दिनाद्यधिशेषमिनघ्नं १२ स्याद् ध्रुवकस्त्वथवा स लवाद्यः।
कैरविणीवनिताजनभर्तुः पीतचकोरमरीचिचयस्य॥१०॥

चन्द्रध्रुवाँक प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनाद्य अधिशेष (तिथियात्मक अधिमास शेष) को बारह से गुणा करने से अंशात्मक चन्द्र होता है। चन्द्रमा के लिए आचार्य ने यहाँ कैरविणी अर्थात् श्वेत कमलों का समूह, वनीताजन अर्थात् स्त्रियों का भर्तु, चकोर जिसकी किरणों को पीते हैं आदि शब्दों, अलंकारों का प्रयोग किया है।

उपपत्ति— तिथि का द्वादश गुणित रविचंद्र का अंतर अंशात्मक होता है। उसमें रवि को जोड़ने से चन्द्रमा होता है। सौर वर्षादि में भुक्त तिथि शुद्धि के बराबर होती है। अतः शुद्धि को १२ से गुणा करने पर रविचन्द्र के अन्तर अंश होंगे। परन्तु सौरवर्षों में रवि भगण पूर्ण होते हैं अतः तब रवि का राशि अंशादि मान शून्य ही होता है, अतः सूर्य के ध्रुवक शून्य होने से चंद्र रवि के अंतर के अंशादि ही चंद्र के अंशादि (भागादि) ध्रुवक होंगे।

विशेष— **वटेश्वराचार्य** ने मध्यमाधिकार प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"प्राग्वद्रविवर्षैः सिद्धि खेचराणां सूर्याहत शुद्धि र्भागादिकशशी वा॥१२॥"

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय के आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सावयवा कर गुणिता शुद्धिर्भागा भवन्ति तैर्युक्तः।
रव्यब्दादिदिनौघप्रभवो रजनीश्वरो मध्यः॥२६॥"

इदानीं कलिगतादाह—

कलेर्गताब्दैरथ वा दिनाद्यं पूर्वं यदुक्तं खलु तत् प्रसाध्यम्।
अब्दाधिपस्तत्र सितादिकः स्याद् ध्रुवाश्च युक्ताः कलिवक्त्रखेटैः॥११॥

कलिगत ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वकथित प्रकार से कलिगताब्द और दिनाद्य से ग्रह आयन करे। उसका अब्दपति (वर्षपति) चैत्र शुक्लादिक होता है। उसमें ग्रह के ध्रुवक युक्त करने से कलिगत ग्रह होते हैं। (ग्रहआनयनाध्याय में आचार्य ने कलिआरंभ पर ग्रहों के ध्रुवक कहे हैं श्लोक २० में)।

इदानीमहर्गणार्थं क्षेपदिनान्याह—

स्वीयनखांशयुताः क्षयनाड्यः क्षेपदिनानि दिवागणसिद्ध्यै।
चैत्रसितादिगतस्तिथिसङ्घः शोधितशुद्धिरधस्तु समेतः॥१२॥
स्वीयकराभ्रतुरङ्ग-७०२ लवेन क्षेपयुतः कृतषट्कविभक्तः।
लब्धदिनक्षयवर्जितशेषो रव्युदये द्युगणोऽब्दपतेः स्यात्॥१३॥

अहर्गण आनयन के लिए क्षेपदिनायन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व ज्ञात क्षयाहा में जो आगे के आद्य भाग में नाडिकायें हैं उनमें उनका २० वाँ भाग युत करने से दिनाद्य माने। घटियों से दिन तथा विघटियों से घटियाँ बनाने के लिए उन्हें साठ से विभक्त करे। इस प्रकार दिवा गण सिद्ध करके अहर्गण का साधन करे। अर्थात्

$$\text{क्षेप} = \text{क्ष} + \frac{\text{क्ष}}{२०} = \frac{२१\,\text{क्ष}}{२०}$$

चैत्र शुक्लारंभ से गत तिथियों का संचय कर उसमें से शुद्धि को घटा कर उसमें पूर्वोक्त क्षेप दिन युक्त कर देवे तथा उसका अर्थात (चै.ग.ति – शुद्धि) का ७०२ वाँ भागफल भी युक्त कर देवे। इस समस्त योगफल में ६४ का भाग देकर प्राप्त लब्धि अवम तथा शेष अवम शेष होता है, को (चै.ग.ति.–शुद्धि) में से घटाने से सूर्योदय पर अहर्गण प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरण— चैत्रादि गत तिथि में से शुद्धि को घटाकर प्राप्त शेष को तींन स्थानों पर स्थापित करे। अंतिम स्थान पर ७०२ से विभक्त करने से प्राप्त फल को मध्य स्थान पर जोड़ देवें। इसके बाद इसमें पूर्वोक्त क्षेपदिन $\left(\text{क्षद्य} \times \frac{२१}{२०}\right)$ को युक्त करने से प्राप्त फल में ६४का भाग देकर प्राप्त फल अवम का मान होता है तथा शेष अवम शेष होता है। चन्द्र आनयन के लिए उसको अलग स्थापित करे। प्रथम स्थान पर स्थित राशि में से यहाँ प्राप्त अवम को घटाने से अहर्गण प्राप्त होता है तथा इसका अब्दपति जो हो उस दिन (वार) इतनी घटी पर यह अहर्गण आरंभ होता है। उसके अगले दिन तुल्य वार की गणना कर सकते हैं।

श्लोकोक्त को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{लघ्व अहर्गण} = (\text{चै.ग.ति} - \text{शु.}) - \frac{(\text{चै.ग.ति} - \text{शु}) + \frac{(\text{चै.ग.ति} - \text{शु})}{७०२} + \frac{\text{क्ष.घ.}२१}{२०}}{६४}$$

उपपत्ति— वर्षांत से इष्ट दिन पर्यंत दिनों की संख्या को लघ्व अहर्गण आचार्य ने कहा है। अर्थात् वर्षांत कालिक अहर्गण तथा इष्ट कालिक अहर्गण का अन्तर लघ्व अहर्गण होता है। इसका आनयन करना यहाँ बताया जा रहा है।

वर्षांत कालिक अहर्गण (सावन)

= गत चां + अधिशे. – क्षयदि.+दि.घ. ....(१)

यहाँ गतचां = कल्पादि से (या युगादि से जैसा भी हो) चैत्र अमान्त तक चांद्र अहर्गण है।

दिन घटी = सूर्योदय से वर्षांत तक दिनादि घटी है।

तथा इष्ट अहर्गण = गतचां + चैति – क्ष. दि. ....(२)

समीकरण (२) तथा (१) का अंतर करने से—

लघ्व अहर्गण = चैगति. – शुद्धि + क्षदि – क्ष.दि.

= चै.ग.ति – शुद्धि – (क्ष.दि – क्षदि)

= (चैगति – शुद्धि) – क्षय दिनान्तर ....(३)

क्षय दिनान्तर लाने के लिए अनुपात करने से–

$$\frac{\text{कल्प अवम} \times \text{इ चां}}{\text{क चां}} + \frac{\text{क्षघ.}}{६०} = \text{क्षय दिनांतर}$$

$$\text{क्षय दिनांतर} = \frac{\text{कल्प अवम} \times \text{इ चां}}{\text{क चां}} \times \frac{६४}{६४} + \frac{\text{क्षघ.}}{६०} \times \frac{६४}{६४}$$

$$= \frac{\text{कल्प अवम} \times ६४}{\text{क चां}} + \frac{\text{इचां}}{६४} + \frac{\text{क्षघ.}}{६०} \times \frac{(६३+१)}{६४}$$

$$= (१+\frac{\text{शे.}}{\text{कचा.}}) \times \frac{\text{इचां}}{६४} + \frac{\text{क्षघ.}\times ६३}{६०\times ६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६०\times ६४}$$

$$= (१+\frac{१}{७०२})\ \frac{\text{इचां}}{६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६०\times ६४} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{६४\times २०}$$

$$\text{क्षय दिनांतर} = \frac{\text{इचां} + \frac{\text{इचां}}{७०२} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}$$

यह क्षयदिनान्तर मान समीकरण (३) में प्रतिस्थापित करने पर—

$$\text{लघ्व अहर्गण} = (\text{चैति} - \text{शु.}) - \frac{\text{इचां} + \frac{\text{इचां}}{७०२} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}$$

$$= (\text{चैति} - \text{शु.}) - \left\{\frac{\text{इचां} + \frac{\text{इचां}}{७०२} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}\right\}$$

$$= (\text{चैति} - \text{शु.}) - \left\{\frac{(\text{चैति} - \text{शु.}) + \frac{(\text{चैति} - \text{शु.})}{७०२} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}\right\}$$

भास्कराचार्य ने वटेश्वराचार्य की भांति ही इचां के स्थान पर (चैति–शु) लिया है। अन्य प्रकार से (पूर्व अध्याय में) अहर्गण साधन में ६४ दिन में एक अवमदिन गृहण किया। अतः यहाँ ६४ को जान बूझ कर भाग स्थान में लिया है। वटेश्वर तथा ब्रह्मगुप्त ने स्वकृत ग्रंथों में ६४ दिन में एक अवम मान से ७०३ दिवस में ११ अवम ग्रहण किया है लेकिन भास्कराचार्य ने यहाँ ७०२ दिन गृहण किया है। यह शायद अपनी विशिष्टता रखने के लिए लिखा है। पंचसिद्धान्तिका में भी ७०३ दिन ही गृहण किया है। लल्लाचार्य ने भी ७०३ दिन ही गृहण किया है। ७०४ में ६४ का भाग देने से भागफल पूर्ण संख्या ११ आता है। भास्कराचार्य ने पूर्वाचार्यों के मत से ७०३ को न लेकर ७०२ लेकर त्रुटि ही उत्पन्न की है।

विशेष— **वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त** में प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय में इसी बात को निम्नलिखित प्रकार से कहा है। यथा–

"अथवा तिथयश्चैत्राद्याः शुद्धयूनितास्त्रिरधः ॥२५ $\frac{१}{२}$॥

त्रिखनग हृतफलसहितो मध्यः कुभजहतावमघटीभ्यः ॥२६॥

खभुजाक्षयुगब्धिरसैर्लब्धावमवर्जितो द्युगणः ॥२६ $\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने यहाँ ७०२ के स्थान पर परम्परानुसार ७०३ लिया है। विद्वान् गण इस पर विचार करें कि भास्कराचार्य ने पूर्ववर्ती आचार्यों की सम्मत बात में इतना सा अंतर करके क्या अशुद्धि उत्पन्न कर दी?

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** में भिन्न समीकरण दिया है।

लल्लाचार्य ने **शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र** में आचार्योक्त सिद्धान्त ही कहा है लेकिन सूत्र को भिन्न प्रकार से लिखा है जिसे भास्कराचार्योक्त सूत्र के ही तुल्य कह सकते हैं। मध्यमाधिकार—

मधोः सितादेस्तिथयो विशुद्धयः पृथङ्मृगाङ्काभरणैः समाहताः।
समादियातावमशेषसंयुता हृतास्त्रिखागैर्द्युगणः फलोनितः॥३१॥

अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से गत तिथिगण में से शुद्धि को घटा कर फल को दो स्थानों पर स्थापित करे। प्रथम स्थान पर इसको ११ से गुणा करके अवमशेष को युत करके ७०३ से विभक्त करे तथा प्राप्तफल को द्वितीय स्थान पर स्थापित फल में से घटा देने से प्रचलित सौर वर्ष के सावन दिन लघ्व अहर्गण होते हैं।

इसको सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{लघ्व अहर्गण} = (\text{चैति} - \text{शु.}) - \left\{ \frac{११ (\text{चैति} - \text{शु.})}{७०३} + \frac{\text{अवमशेष}}{७०३} \right\}$$

श्रीपति ने भी यही लल्लोक्त ही कहा है श्लोक ४०-४१ में।

भास्कर (प्रथम) ने **महाभास्करीय** में इस बात को भिन्न प्रकार से प्रथम अध्याय के २७ तथा २८ वें श्लोक में कही है। यथा—

"वर्षेषु रन्ध्रकृत चन्द्रसमाहतेषु षट्सप्तपञ्चविहृतेषु दिनादिलाभः।
ते योजिता दशहतासु समासु संज्ञां सम्प्राप्नुवन्ति रविजा इति निश्चयो में॥२७॥
रविजदिवसयोज्याश्चावमा येऽत्र लब्धाः सततमधिकमासाञ्छोधयेत् खाग्निनिघ्नान्।
भवति यदवशिष्टं शोधनीयं समायां यदि तदधिक शुद्धं क्षेप्यमेवोपदिष्टम्॥२८॥"

आचार्य ने इन को ही टुकड़ों में श्लोक २२ तथा २३ में भिन्न रूप में ही कहा है।

इदानीं विशेषमाह—

यावत् तिथिभ्योऽभ्यधिकाऽत्र शुद्धिः प्राक्चैत्रतस्तावदहर्गणः स्यात्।
प्राक्शुद्धिपूर्वेण तथैव खेटाः प्राग्वर्षजातैर्ध्रुवकैः समेताः॥१४॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि चैत्रादि तिथि में से (पूर्वश्लोकानुसार) शुद्धि न घटे तो पूर्व के चैत्रादि आरंभ से तिथि गणना करके पूर्व वर्ष की शुद्धि तथा

क्षेप दिन से अहर्गण साधित करे। उससे आगत ग्रह में पूर्व वर्ष के ध्रुवक युक्त करे।

विशेष— वर्षारंभ से पूर्व के किसी दिन का अहर्गण साधन करना हो तब यह क्रिया करते हैं। चैत्रादि में अवमशेष यदि चैत्र शुक्लादि से पहले हो तब विलोम अहर्गण होता है।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में, यदि शुद्धि न घटे तब क्या करना चाहिए तथा अहर्गण कैसे ज्ञात करना चाहिये? इसके लिए प्रत्यब्द शुद्धि में कहा है कि अवम शेष में ७०३ जोड़ कर शुद्धि (अवमदिन) घटावें तथा पूर्वोक्त क्रिया से वर्षांत कालिक अवम शेष आता है इससे साधित अहर्गण में एक जोड़ें।

"द्विनवरसघ्नाद्भक्तात्सवच्छेदेनावमाद् विशुद्धयति न चेत्।
शोध्यं द्युगणाद्रूपेशुद्धे गुणाखागसंयुताश्छेद्याः ॥४२॥
शेषं तद्दिवसोत्थ विकलं त्ववमस्य विज्ञेयम्॥४२ $\frac{1}{2}$॥"

आचार्य का सूत्र अलग है, अतः यहाँ अंक भिन्न हैं।

लल्लाचार्य ने विपरीत शोधन से आनयन अपने ग्रंथ शिष्याधिवृद्धिद में इस प्रकार कहा है। यथा–

"यावन्न मेषं व्रजति प्रभाकरस्तावन्न पूर्वध्रुवकान् परित्यजेत्।
चैत्रे प्रविष्टेऽपि विलोमकर्म वा शुद्धया विजह्यादगते क्रियं रवौ॥
भास्वानृणाहर्गणश्च सिद्धः पात्यो भचक्रात्स्वफलानि चैवम्।
स्वस्वध्रुवादप्यथखेचराणां शोध्यानि यत्नात् प्रवदन्ति सन्तः॥"

लल्लाचार्य ने चैत्रादि में ऋण अहर्गण कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने इस प्रकार कहा है। यथा–

"शुद्धिमेव पृथगीश्वराहतां शोधयेदवमशेषकान्तिजात्।
चेन्नशुध्यति च सत्रिखाचलात् शोध्यमेकमपि शुद्धितो दिनम्॥"

यहाँ ब्रह्मगुप्तोक्त ही कहा है।

इदानीं रव्यानयनमाह—

दिनगणो निजषष्टिलवोनितो भवति तिग्मरुचिः स लवादिकः।
गुणगुणाद् द्युगणादथ भाजिताद् यमयमैः २२ कलिकादिफलान्वितः॥१५॥

रवि गति आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनगण में से उसका ६० वाँ भाग कम करने से

सूर्य (तिग्म रुचि) की गतिका पहला भाग (कला) प्राप्त होता है तथा दिनगण (द्युगण) को ३ से गुणा करके २२ से विभक्त करने से विकलादि गति के अवयव का शेष फल प्राप्त होता है।

उपपत्ति– आचार्य ने सूर्य की दैनिक गति ० अं. ५९ क. ८ वि. १० प्र.वि. २१ प्रप्र.वि. पठित की है। अतः स्पष्ट है कि यदि द्युगण को एक अंश माना जावे तो इस की तुल्य ६० कला में से साठवाँ भाग $\frac{६०}{६०}$ = १ कला कम करने से शेष ५९ कला सूर्य की दैनिक गति का आदि भाग प्राप्त होता है। शेष भाग ८।१०।२१ विकलादि के लिए आचार्य ने आसन्न भिन्न ३/२२ प्राप्त की है जिसको कला मानने से प्राप्त फल ८।१०।५५ विकलादि प्राप्त होता है। यहाँ तीसरी संख्या ५५ को आचार्य ने २१ (अभीष्ट) के स्वल्पान्तर से आसन्न ही मान लिया है। क्योंकि ३/२२ के अतिरिक्त दूसरी ऐसी भिन्न नहीं है जो ८।१०।२१ विकलादि के आसन्न मान दे सके।

आचार्य ने बालावबोधार्थ एक (रूप) अहर्गण मान के लिए अर्थात् एक दिन के लिए ग्रहों की गतियाँ निम्न लिखित कही हैं।

सू.	चं	मं	बुशी.	गु	शुशी.	श	चं.उ.	पा.
०	१३	०	४	०	१	०	०	०
५९	१०	३१	५	४	३६	२	६	३
८	३४	२६	३२	५९	७	०	४०	१०
१०	५३	२८	१८	९	४४	२२	५३	४८
२१	०	७	२८	९	३५	५१	५६	२०

विशेष– **श्रीपति तथा ब्रह्मगुप्त ने भी ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त** ही ग्रहों की दिन गति का मान दिया है। अतः भास्कराचार्य ने श्रीपति तथा ब्रह्मगुप्त के दैनिक ग्रह गतिमान ही ग्रहण किये हैं।

पंच सिद्धान्तिका में भी सूर्य, चंद्र तथा चंद्रोच्च के दैनिक गतिमान विकला तक आचार्योक्त ही कहे हैं। लल्ल ने चंद्र तथा चंद्रोच्च की विकला एक-एक अधिक ली है क्यों विकला के आगे के भाग आधे से अधिक हैं।

अथ चन्द्रानयनमाह—

रविगुणैस्तिथिभिः पृथगुष्णगुर्लवगतः सहितः स हिमद्युतिः।
स्वनगभागयुतेन दशाहतक्षयदिनोर्वरितेन कलान्वितः॥१६॥

चन्द्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— तिथि को १२ से गुणा करके फल को सूर्य में युक्त करने से चन्द्रमा होता है। अवम में अपना ७ वाँ भाग जोड़ कर १० से गुणाकरके कलायें युक्त करने से उदय कालिक चन्द्र होता है।

सूत्र रूप में—

$$\text{उदयकालिक चंद्रमा} = \text{सूर्य} + \text{१२ गति तिथि} + \left(\text{क्षशे} + \frac{\text{क्षशे}}{\text{७}}\right) \times \text{१०}$$

उपपत्ति— तिथि को १२ से गुणा करके सूर्य को जोड़ने से चन्द्रमा का आनयन उपरोक्त प्रकार से करने से प्राप्त चन्द्रमा तिथि अंत पर होता है। तिथि अंत तथा सूर्योदय के मध्य अवमशेष होता है, वह सावन होता है। इसको (चंद्र) उदय कालिक बनाने के लिए अहर्गण से साधित अवम शेष का चांद्रिकरण करना होगा। अवम शेष को ६४ से गुणा तथा ६३ से भाग देवें। यदि ६३ सावन दिन में ६४ चांद्र दिन होते हैं तो अवमशेष में कितने सावन दिन होंगे? अर्थात् $\frac{\text{६४} \times \text{अह.}}{\text{६३}} \times \frac{\text{क्षशे.}}{\text{६४}}$ प्राप्तफल तिथ्यात्मक है इसके १२ से गुणित अंश होंगे तथा इन्हें पुनः ६० से गुणा करने से कलायें प्राप्त होंगी। अतः अवमशेष का ७२० गुणा तथा ६३ का भाग करे, यथा $\frac{\text{अ.शे.} \times \text{७२०}}{\text{६३}}$। इसको ९ से अपवर्तित करने से हार स्थान पर ७ तथा गुणा के स्थान पर ८० प्राप्त होगा अर्थात् $\frac{\text{अ.शे.} \times \text{८०}}{\text{७}}$। अवमशेष में अपना सप्तमांश युक्त करने से ८ से गुणा के तुल्य हो जावेगा तथा प्राप्त फल कलायें होंगी। अर्थात् $\frac{\text{अ.शे.} \times \text{८०}}{\text{७}} = \left(\text{अ.शे.} + \frac{\text{अ.शे.}}{\text{७}}\right) \times \text{१०}$ यही आचार्य ने कहा है। इन्हें पूर्व प्राप्त अंशों (सूर्य+१२×तिथि) में युक्त करने से उदय कालिक चन्द्रमा होगा।

लीलावती का सूत्र—

स्वांशोऽधिकोनः खलु यत्र तत्र भागनुबन्धे च लवापवहि।
तलस्थहारेण हरन्निहन्यात् स्वांशाधिकोऽनेन तु तेन भागान्॥
इति खवसूनां सप्तमांश इति स्पष्टम्॥१६॥ भागानु.सूत्र

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुत ने आचार्योक्त बात को ही अन्य प्रकार से कहा है। यथा—

"त्रिगुणमवमावशेषं विभजेद् गुणस्प्तशशिभिराप्तांशं:॥
पृथगधिकोऽर्को रविगुणतिथ्यंशैः संयुतश्चन्द्रः॥"मध्य.४६ श्लो.॥

अर्थात चन्द्र = १२ गतितिथि + सूर्य + $\frac{३}{१७३}$ अशे.

इसको स्पष्ट करके बताते हैं—

अहर्गण कालिक चंद्र = (अंश) रवि+१२ (गति+क्षध सं.चां)

ब्रह्म गुप्त ने पूर्वोक्त $\frac{७२०}{६३}$ अशे. को भिन्न प्रकार से हल किया है। यथा

$\frac{७२०}{६३}$ अशे = $\frac{१२\times६०}{६३}$ अशे = $\frac{१२\times२०}{२१}$ क्षशे = $\frac{४\times२०}{७}$ क्षशे = $\frac{८०}{७}$ क्षशे

इसको अंशात्मक करने के लिए ६० से भाग दिया $\frac{८०}{७\times६०}$ क्ष. शे. अंश =

$\frac{८०\text{ क्ष शे}}{७\times६०} \times \frac{३}{३}$

ब्रह्मगुप्त कथित क्षय शेष को ११ से विभक्त करने से भास्कर कथित क्षयशेष होता है = $\frac{\text{क्षय शे}}{११}$।

अतः $\frac{८०\text{ क्ष शे}\times३}{६०\times११\times७\times३} = \frac{\text{क्ष शे}\times३}{\frac{६०\times११\times७\times३}{८०}} = \frac{\text{क्ष शे}\times३}{\frac{१३८६}{८}} = \frac{\text{क्ष शे.}\times३}{१७३}$

स्वल्पांतर से = १२ क्षय घ.सं.चां। अतः अहर्गणकालिक चंद्र = रवि+१२ ग.ति + $\frac{\text{क्ष शे.}\times३}{१७३}$। इस प्रकार ब्रह्मगुप्तोक्त तथा भास्करोक्त एक ही बात है।

इदानीं भौमानयमाह—

दिनगणार्धमधो गुणसङ्गुणं द्युगणसप्तदशांशविवर्जितम्।
लवकलादिफलद्वयसंयुतः क्षितिसुतध्रुवकः क्षितिजो भवेत्॥१७॥

भौम आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिन गण के अर्ध तुल्य कलादि माने। इसके पृथक त्रिगुणित में से द्युगण का १७ वाँ भाग घटाकर कलादि फल प्राप्त करे। इन दोनों कलादि फल के संयुक्त फल में भौम के ध्रुवक को युक्त करने से भौम होता है।

उपपत्ति— दिन गणार्ध अर्थात् ३० घटी को ३० कला माने। इसको

पृथक ३ से गुणा करने से प्राप्त फल श्लोक अनुसार १।३० कलादि को पूर्व ३० कला में जोड़ा तो ३१।३० कला विकला प्राप्त हुआ। यह कुज की गति से ३१।३०।०।० – ३१।२६।२८।७ = ०।३।३१।५३ अधिक है। इस अधिक मान ०।३।३१।५३ को १७ से गुणा करने से १।०।२।० कलादि प्राप्त होता है। अतः द्युगण÷१७ को पूर्व प्राप्त ३१।३० में से घटाने से भौम होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य दोनों की भौम गति समान है। ब्रह्मगुप्त के अनुसार दै. कुज गति

$$= \frac{\text{कल्पकुज भगण} \times १२ \times ३०}{\text{क.कु.}} = \frac{२२९६८२८५२२ \times १२ \times ३०}{१५७७९१६४५००००} \text{ है।}$$

$$\text{इससे कुज (गति)} = \frac{११}{२१} + \cfrac{११}{८७५ + \cfrac{३४१३८१२५०}{१७३५६६९०८००}}$$

$$\text{अतः कुज} = \left(\frac{११}{२१}\text{अ}\right)^{\circ} + \left(\frac{११}{८७५}\text{अ}\right)^{'}$$

भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त $\frac{११}{२१}$ को स्वल्पांतर से $\frac{१}{२}$ अंश मान कर "दिनगणाधर्मधो" कहा है तथा शेष के लिए "गुणसंगुण" आदि कहा है। श्रीपति ने $\frac{११}{२१}$ इस आसन्न मान से "अहर्गणे युगाहते" इत्यादि राश्यादि कुज आनयन किया है। लल्लाचार्य ने भी अंशात्मक भौम ब्रह्मगुप्त की भांति प्राप्त किया हैं लल्ल के कल्पकुदिन तथा कल्पभगण मानों में भिन्नता होने के कारण उनका सूत्र इस प्रकार प्राप्त हुआ—

$$\text{अहर्गण में भौम} = \frac{२२९६८२४ \times ३६० \times \text{अहर्गण}}{१५७७९१७५००}$$

$$= \frac{A}{२} - \left(\frac{A}{२} - \frac{२२,९६,८२४}{१,५७,७९,१७,५००} \times ३६० A\right) \text{अंश}$$

$$= \frac{A}{२} + \frac{A}{४२} - \left(\frac{A}{४२} - \frac{३७८९७८९}{१,५७,७९,१७,५००} A\right) \text{अंश}$$

$$= \left(\frac{A}{२} + \frac{१}{२१} \times \frac{A}{२}\right) \text{अंश} + \frac{A}{८०} \text{ कला स्वल्पांतर से।}$$

अतः लल्लाचार्य ने शिष्याधिवृद्धिद में कहा है (भौमानयन)।—

"कुज ध्रुवे दस्रहतं द्युसञ्चयं लवेषु रूपाक्षिलवेन संयुतम्।
क्षिपेद्युपिण्डाद् गगनेभभाजितात् कलादि लब्धं न भवेन्महीसुतः॥३५॥"

इदानीं बुधचलानयनमाह—

दिनगणः कृतसङ्गुणितः पृथग् गुणगुणः खगुणेन्दुभिरुद्धृतः।
फलयुतः खलु तेन लवादिना बुधचलं भवति ध्रुवकोऽन्वितः॥१८॥

बुध शीघ्रोच्च चालान आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को चार से गुणा करे फिर प्रथक से इसको ३ से गुणा करके १३० का भाग देवें। इन दोनों फलों को युक्त करने से बुध शीघ्रोच्च होता है। इसमें पूर्व की भांति ध्रुवक का क्षेप्य करें।

उपपत्ति— आचार्योक्त की उपपत्ति तीन प्रकार से कर सकते हैं—

प्रथम विधि— आचार्योक्त बुध शीघ्रोच्च गति ४°।५'।३२''।१८'''।२८'''' है।

अहर्गणोत्पन्न बु.शी. ४° अहर्गण+अहर्गण (५'।३२''।१८'''।२८'''')
अब ५'।३२''।१८'''।२८'''' का रुपान्तरण अंशों में करते हैं

$$= ५।३२।१८।\frac{२८}{६०} = ५।३२।१८।\frac{७}{१५}$$

$$= ५।३२।\frac{१८\times१५+७}{१५} = ५।३२।\frac{२७७}{१५\times६०} = ५।३२।\frac{२७७}{९००}$$

$$= ५।\frac{३२\times९००+२७७}{९००} = ५।\frac{२८८००+२७७}{९००}$$

$$= ५।\frac{२९०७७}{९००\times६०} = ५।\frac{२९०७७}{५४०००} = ५+\frac{२९०७७}{५४०००}$$

$$= \frac{२७००००+२९०७७}{५४०००} = \frac{२९९०७७}{५४०००\times६०} \text{ अंश}$$

अतः बुध शीघ्रोच्चांश

$$= ४^{\circ}\text{अ} + \frac{२९९०७७}{६०\times५४०००} \text{ अह.}$$

$$= \left(४ + \frac{१\times१२}{\frac{६०\times५४०००\times१२}{२९९०७७}}\right) \times \text{अहर्गण}$$

$$= \left(४ + \frac{१२}{१३०}\right) \times \text{अहर्गण}$$

$$= ४\text{ अ.} + ४\text{ अ.} \times \frac{३}{१३०}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

द्वितीय विधि— ३६० × बुध कल्पशीघ्रोच्च भगण = बुध शीघ्रोच्च कल्पांश। अहर्गण को ४ से गुणा करने से अंश प्राप्त होते हैं यह प्रसिद्ध है।

३६० × क.बु.शी.भगण – ४ क.कु. = कल्प में वास्तव तथा अवास्तव शीघ्रोच्चांश का अंतर

अतः अहर्गण संबंधि अंतरांश

$$= \left(\frac{३६०\times\text{क.बु.शी.भ} - ४\text{ क. कु.}}{\text{क.कु.}}\right)\text{अहर्गण}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{अहर्गण} \times १२}{\text{क.कु.} \times १२}}{(३६०\times\text{क.बु.शी.भ} - ४\text{ क.कु.})}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{अहर्गण} \times १२}{१२\times१५७७९१६४५००००}}{३६०\times१७९३६६६८६८४ - ४ \times १५७७९१६४५००००}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{अहर्गण} \times १२}{१८९३४९९७४००००००}}{६,४५७,३१९,६३३,००० - ६,३११,६६५,८००,०००}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{अहर्गण} \times १२}{१८,९३४,९९७,४००,०००}}{१४५,६५३,८३३,०००} = \frac{\text{अहर्गण} \times १२}{१३०}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ। बु.शीघ्रोच्च अंश = $४\times\text{अहर्गण} + \frac{१२}{१३०}\times$ अह.। ब्रह्मगुप्त तथा लल्लाचार्य ने $\frac{१२}{१३०}$अ = $\frac{६}{६५}$ अ. लिख दिया है जो भास्करोक्त ही है। यथा–

ब्रह्मगुप्त मध्यमाधिकार ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त—

''कृतगुणितद्युगणांशाः पञ्चरस ६५ षट्बुधः शीघ्रम् ॥४७॥''

लल्लाचार्य शिष्याधीवृद्धिद मध्यमाधिकार में—

''दिने दिने भागचतुष्टयं क्षिपेच्छरर्तुभिः षट्च बुध ध्रवेलवम् ॥३५ $\frac{१}{२}$॥''

तृतीय विधि— अंशात्मक बुध शी. दैनिक गति =

$$= \frac{\text{कल्पबु.शी. भगण} \times ३६०}{\text{क.कु.}}$$

$$= \frac{१७९३६९९८९८४ \times ३६०}{१५७७९१६४५००००} = \frac{१७९३६९९८९८४}{४३८३१०१२५०}$$

$$= ४^\circ + \frac{४०४५९३९८४}{४३८३१०१२५०} \times \frac{१२}{१२}$$

$$= ४^\circ + \frac{१२}{१३०} \text{ स्वल्पांतर से}$$

अतः अहर्गणोत्पन्न बुध शीघ्रोच्च = ४ × अहर्गण + $\frac{१२}{१३०}$ अहर्गण उपपन्न हुआ।

इदानीं गुरोरानयनमाह—

द्युमणिभिः कुनगैर्द्युगणो हृतो लवकलाः स्वमृणं ध्रवके गुरुः ॥१८ $\frac{१}{२}$॥

गुरु आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण के १२ वें अंशात्मक भाग में से अहर्गण का ७१ वाँ कलात्मक भाग घटाने से गुरु प्राप्त होता है। इसमें ध्रुव का योग करे।

उपपत्ति— गुरु की गति ५ कला से कुछ न्यून है और इसका बारह दिन में गति का एक भाग होता है। ५ कला से जितनी गुरु गति कम है वह संख्या एक में ७१ का भाग देने से ०°।०'।५०''।४२''' प्राप्त होती है। अतः ७१ दिन में एक कला घटाना सिद्ध होता है।

गुरु की एक दिन की कलादि गति = ४'।५९''।९'''।९''' आचार्य ने पूर्व में बताई है। यहाँ यदि गुरु की गति ५ कला मान लें तो ५ कला तथा आचार्योक्त गतिमान में अंतर ५' – (४'।५९''।९'''।९''') = ०'।०''।५०'''।५१''' होता है।

यहाँ ५०'''।५१'''' $= ५० + \frac{५१}{६०} = ५० + \frac{१७}{२०} = \frac{१०१७}{२० \times ६०}$

विकला $= \frac{१०१७}{१२०० \times ६०}$ कला

$= \frac{१०१७}{७२०००}$ कला $= \frac{१}{७१}$ कला स्वल्पांतर से।

अतः अहर्गण संबंधि गुरु = (५ अहर्गण)' − $\left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$

इसको अंशात्मक करने के लिये इन कलाओं को ६० से विभक्त किया।

अहर्गण सं. गुरु अंशादि = $\left(\frac{५}{६०}\text{ अहर्गण}\right)^{\circ} - \left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$

$= \left(\frac{\text{अहर्गण}}{१२}\right)^{\circ} - \left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$ उपपन्न हुआ।

विशेष— भास्कराचार्य ने जो सूत्र कहा है वह ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से ही प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मगुप्त का सूत्र अ.सं.गु. कलादि = (५ अहर्गण)' − $\left(\frac{५\text{ अहर्गण}}{३५४}\right)'$ है।

इसके प्रथम भाग के अंश बनाने से तथा द्वितीय भाग में मात्र हार रखने से स्वल्पांतर से अ.सं.गु. अंशादि = $\left(\frac{५}{६०}\text{अहर्गण}\right)^{\circ} - \left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$ भास्कराचार्योक्त उपपन्न होता है।

ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुट मध्यमाधिकार में—

"द्युगणेषु वधो लिप्ता जीवः कृतशरगुणैः शरकलोनः ॥४७$\frac{१}{२}$॥"

इसी प्रकार **लल्लाचार्य** ने ब्रह्मगुप्तोक्त ही कहा है। शिष्याधीवृद्धिद मध्यमा—

"शरघ्नमब्ध्यक्षगुणांश वर्जितं कलादि जीवध्रुवके दिवागणम्॥३६॥"

अथ शुक्रचलानयनमाह—

ऋतुभिरक्षदिनैर्दशसङ्गुणात् फललवाः स्वमृणं ध्रुवके सितः ॥१६॥

शुक्रशीघ्रोच्च आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण के दशगुणा के छठे भाग में से उसका

१५५ वाँ भाग घटाने से प्राप्तफल में ध्रुवाँक युक्त करने से शुक्र शीघ्रोच्च होते हैं।

उपपत्ति— शुक्र शीघ्रोच्च की एक दिन की गति आचार्य ने $१^\circ|३६'|७''|४४'''|३५''''$। पूर्व में कही है। इस गति को यदि स्वल्पांतर से $१^\circ|४०'$ मान लेने से $(१^\circ|४०' - १^\circ|३६'|७''|४४'''|३५'''') = ३'|५२''|१५'''|२५'''$ अधिक ग्रहण हो जाता है। अतः शुक्र शीघ्रोच्च गति के दो खण्ड बनाये—

प्रथमखण्ड = $१^\circ४०'$ तथा द्वितीय खण्ड = $३'५२''१५'''२५''''$

$$\text{प्रथमखण्ड} = १^\circ४०' = १ + \frac{४०}{६०} = १ + \frac{२}{३} = \frac{५}{३} \times \frac{२}{२} = \frac{१०}{६}$$

अंश हुए।

द्वितीय खण्ड = $३'५२''१५'''२५''''$

$$= ३|५२|१५|\frac{२५}{६०} = ३|५२ + \frac{१८०+५}{१२\times६०} \text{ विकला}$$

$$= ३|५२ + \frac{१८५}{१२\times६०} = ३|५२ + \frac{३७}{१२\times१२} = ३|५२ + \frac{३७}{१४४}$$

$$= ३ + \frac{५२\times१४४+३७}{१४४\times६०} = ३ + \frac{७५२५}{१४४\times६०} \text{ कला}$$

$$= ३ + \frac{१५०५}{१४४\times१२} = \frac{३\times१४४\times१२+१५०५}{१७२८}$$

$$= \frac{६६८९}{१७२८\times६०} \text{ अंश} = \frac{६६८९\times१०}{१०३६८०\times१०} = \frac{१०}{\frac{१०३६८०\times१०}{६६८९}} = \frac{१०}{१५५}$$

$$\text{अतः शु. शीघ्रोच्च गति} = \frac{१०}{६} - \frac{१०}{१५५}$$

$$\text{अहर्गण सं. शु.शी.} = \left(\frac{\text{अहर्गण}\times१०}{६}\right)^\circ - \left(\frac{\text{अहर्गण}\times१०}{१५५}\right)^\circ;$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

भास्कराचार्योक्त सूत्र से ही ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्रप्राप्त होता है। यथा—

$$\text{भास्करोक्त सूत्र} = \frac{१०^\circ}{६} - \frac{१०^\circ}{१५५}$$

$$= \frac{१०}{६} \times \frac{८}{८} - \frac{२}{३१} = \frac{८}{\frac{६\times८}{१०}} - \frac{२}{३१} \times \frac{२}{२}$$

$= \frac{८}{५}^{\circ} - \frac{४}{६२}^{\circ}$ यहाँ द्वितीय खण्ड को कलात्मक बनाने के लिए ६० से गुणा किया।

$$= \frac{८}{५}^{\circ} - \frac{४}{६२}^{\circ} \times ६० \text{ कला} = \frac{८}{५}^{\circ} - \frac{८}{६२}^{\circ} \times ३० \text{ कला}$$

भास्कराचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त शु. शीघ्रोच्च गति में सबसे अंतिम अंक क्रमशः ३५'''' तथा ३१'''' है अतः यहाँ $\frac{८}{६२} \times ३०$ को $\frac{८}{६२}$ ही ग्रहण कर सकते हैं। अतः ब्रह्मगुप्तोक्त शु. शीघ्रोच्च = $\left(\frac{८ \text{ अहर्गण}}{५}\right)^{\circ} + \left(\frac{८ \text{ अहर्गण}}{६२}\right)'$ उपपन्न होता है। क्योंकि

$$\frac{८}{५}^{\circ} - \frac{८}{६२} \times ३० + \frac{८}{६२} - \frac{८}{६२} = \frac{८}{५} + \frac{८}{६२} - \frac{८\times३०}{६२} - \frac{८}{६२}$$

$$= \frac{८}{५}^{\circ} + \frac{८}{६२}' - \frac{८\times३१}{६२}' = \frac{८}{५}^{\circ} + \frac{८}{६२}' - ४$$

ब्रह्मगुप्त की संख्या ४'''' कम है अतः मात्र $\frac{८}{५}^{\circ} + \frac{८}{६२}'$ ही ग्रहण किया है।

अन्य प्रकार से ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं—

$$\text{शुक्रशीघ्रोच्च गति} = \frac{\text{शुक्र.शी.क.भगण}}{\text{क.कु.}} \times ३६०$$

$$= \frac{७०२२३८६४६२}{४३८३१०१२५०} + \frac{८}{५} - \frac{८}{५} \text{ इत्यादि।}$$

विशेष— अतः ब्रह्मस्फुट मध्यमा. में ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र इस प्रकार है—

"भागकलाः सितशीघ्रं विषयैर्वसवो द्विष्ट्याष्टौ ॥४८॥"

अर्थात् शु. शीघ्रोच्च = अहर्गण $\frac{८}{५}$ + अहर्गण $\frac{८}{६२}$

यही ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद्** के मध्यमा में कहा है।

''अहर्गणः कुञ्जरताडितः पृथक्शरैर्द्विषष्ट्या च हतोऽशलिप्तिकाः।
सितस्य शीघ्रोच्चसमुद्भवे ध्रुवे क्रमेण देयाः सितशीघ्रसिद्धये॥३७॥''

इदानीं शनेरानयनमाह—

द्विघ्नो दिनौघः पृथगक्षभक्तो लिप्ता विलिप्ता ध्रुवके स्वमार्किः॥१९$\frac{१}{२}$॥''

शनि आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— द्विगुणित अहर्गण तथा उसका पृथक ५वाँ भाग शनि गति के क्रमशः कला तथा विकलादि होते हैं। इसमें ध्रुवाँक जोड़ने से शनि होता है।

उपपत्ति— शनि की गति का एक भाग दो कला है। अतः अहर्गण×२ = अहर्गण से उत्पन दो कला हुई तथा शेष गति का भाग ०''।२२'''।५१'''' है।

$$०''।२२'''।५१'''' = ०।२२।\frac{५१}{६०} = ०।२२।\frac{१७}{२०}$$

$$= ०।\frac{२२\times२०+१७}{२०} = ० + \frac{४५७''}{२०\times६०}\times\frac{२}{२}$$

$$= \frac{४५७\times२}{२४००} = \frac{२}{\frac{२४००}{४५७}} = \frac{२}{५}''$$ स्वल्पांतर से।

अतः अहर्गणोत्पन्न शनि = अहर्गण × २ + $\frac{२\ अहर्गण}{५}$, आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

अन्य प्रकार से उपपत्ति—

$$शनि\ की\ गति = \frac{कल्पशनिभगण}{क.कु.}\times ३६०\times ६०\ कला$$

$$= \frac{१४६५६७२९८\times३६०\times६०}{१५७७९१६४५००००}$$

$$= \frac{१४६५६७२९८\times६०}{४३८३१०१२५००} = \frac{८७९४०३७८८००}{४३८३१०१२५००}$$

$$= २\ कला + \frac{२७८३५३८०}{४३८३१०१२५००}\times\frac{२}{२}\times६०\ विकला$$

$= २$ कला $+ \frac{२}{५}$ विकला स्वल्पांतर से।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट में आचार्योक्त सूत्र ही कहा है लेकिन उन्होंने दोनों भाग कला मान में कहे हैं। यथा–

"द्विगुणःकला दिनगणस्तिथिरामैर्द्वे कले च सूर्यसुतः ॥४८$\frac{१}{२}$॥"

अर्थात् शनि = (२ अहर्गण)' + $\left(\frac{२}{३१५}\right.$ अहर्गण$\left.\right)'$

इसकी उपपत्ति उपरोक्त प्रकारान्तर विधि से प्राप्त हो जाती है।

लल्लाचार्य ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त ही शिष्याधिवृद्धिद ग्रंथ में कही है। यथा—

"कलाद्वयघ्नं द्युगणं शनिध्रुवे शरेन्द्ररामांशयुतं विनिक्षिपेत् ॥३७$\frac{१}{२}$॥"

इदानीं विधूच्चानयनमाह—

दिग्भिर्गजेभैश्च हृतो दिनौघः क्षेप्यो ध्रुवांशेषु भवेद्विधूच्चम् ॥२०॥

चन्द्रोच्च आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिन की घटियों में १० का भाग देने से कला तथा दिनों में ८८ का भाग देने से विकलादि शेष चन्द्रोच्च प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— एक दिन की ६० घटियों में १० का भाग देने से ६ कला प्राप्त होती है तथा शेष चंद्रोच्च गति ०।०।४०।५३।५६, एक अंश में ८८ का भाग देने से प्राप्त हो जाती है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

प्रकारांतर से उपपत्ति—

चंद्रउच्च गति $= \frac{४८८१०५८५८}{४३८३१०१२५०}$, पूर्व गणनाओं के अनुसार

$$= \frac{१}{१०} + \frac{४८८१०५८५८}{४३८३१०१२५०} - \frac{१}{१०}$$

$$= \frac{१}{१०} + \frac{४८८१०५८५८० - ४३८३१०१२५०}{४३८३१०१२५००}$$

$$= \frac{१}{१०} + \frac{४६७,६५७,३३०}{४३,८३१,०१२,५००}$$

$= \frac{१^{\circ}}{१०} + \frac{१^{\circ}}{८८}$ स्वल्पांतर से

अतः अहर्गणोत्पन्न चन्द्रोच्च $= \frac{अ.^\circ}{१०} + \frac{अ.^\circ}{८८}$

विशेष— भास्कराचार्योक्त सूत्र को ही ब्रह्मगुप्त ने प्रकारान्तर से कहा है। यथा—

"नवभिर्भागः सागरखशून्यवेदैश्य चन्द्रोच्चम्॥४६॥" मध्यमा.

यह सूत्र चन्द्रोच्च गति $= \frac{अ.^\circ}{९} + \frac{अ.^\circ}{४००४}$ है।

उपरोक्त प्रकारांतर से भास्कराचार्य के सूत्र की जो उपपत्ति की गई है उसमें $\frac{१}{१०}$ के स्थान पर यदि $\frac{१}{९}$ जोड़ तथा घटा कर गणना की जावे तो ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र उपपन्न हो जाता है।

भास्कर तथा ब्रह्मगुप्त के चन्द्रोच्च गति मान समान ही हैं।

अथ पातानयनमाह—

ताडितः खदहनैर्दिनसङ्घः षट्कषट्कशरहत् फलमंशाः।
स्वं ध्रुवे कुमुदिनीपतिपातो राहुमाहुंरिह केऽपि तमेव॥२१॥

पात आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ३० से गुणा करके ५६६ का भाग देने से प्राप्तफल अंशात्मक होता है। यह कुमुदिनी पति अर्थात् चंद्रमा का पात राहु होता है जिसको तम कहते हैं।

उपपत्ति—

$$राहु = \frac{राहुकल्पभगण}{क.कु.} \times १२ \text{ राशि}$$

$$= \frac{२३२३१११६८ \times १२}{१५७७९१६४५००००} = \frac{२३२,३११,१६८}{१३१४९३०३७५००} \text{ राशि}$$

$$अहर्गणोत्पन्नराहु = \frac{अहर्गण}{५६६} \text{ राशि} = \frac{३० \text{ अहर्गण}}{५६६} \text{ अंश}$$

राशि को अंश बनाने के लिए ३० से गुणा करेंगे। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ। ३० अंश को ५६६ से विभक्त करने से ०°।३'।१०''।४८'''।४५'''' प्राप्त होता है। यह आचार्योक्त पात गति (श्लोक-१५ प्रत्य.) के स्वल्पांतर से आसन्न ही है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में इसी सूत्र को भिन्न प्रकार से कहा है, मध्यमाधिकार। यथा–

"द्युगणो नन्दशशाङ्कै शशिशून्यस्वरयमैश्च शशिपातः।
रविमण्डलान्तिकयुता मध्या भगणान्तगाः शेषाः ॥५०॥"

ब्रह्मगुप्त ने पात = $\frac{\text{अहर्गण}}{१९} + \frac{\text{अहर्गण}}{२७०१}$ इस श्लोक में कहा है। उपरोक्त भिन्न से ही यह प्राप्त किया जा सकता है।

$$\text{राहु} = \frac{२३२३१११६८ \times १२ \times ३०}{१५७७९१६४५००००}$$

$$= \frac{२३२३१११६८}{४३८३१०१२५०} + \frac{१}{१९} - \frac{१}{१९} = \frac{१}{१९} + \frac{१}{२७०३}$$

आचार्य ने लेकिन २७०३ के स्थान पर २७०१ ग्रहण किया है।

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह—

लक्षहताद्दिनगणाच्छशिषट्कशक्र-
दिग्भि १०१४६१ र्नगाष्टनगभूतिथिभिः क्रमेण १५१७८७।
देवाष्टखाङ्कशशिभि १९०८३३ श्च रसाग्निवेद-
सिद्धैः २४४३६ खखाब्धिदहनाभ्रयमेन्दुभिश्च १२०३४००॥२२॥
भूपाब्धिलोचनरसैः ६२४१६ खखखाभ्रनन्द-
नन्दाश्विभि २९९०००० र्गगनखाभ्रगजाङ्कनागैः ८९८०००।
खाभ्राष्टषड्गजधृतिप्रमितै १८८६८०० श्च भक्ताद्
भागादिकानि हि फलानि रवे सकाशात्॥२३॥
विधोः फलं खाश्विगुणं विधेयं ग्रहध्रुवाः स्वस्वफलैः समेताः।
ते वा भवन्ति द्युचरा क्रमेण भागादिकः स्यात् फलमेव भानुः॥२४॥

प्रकारांतर से ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनगण (कल्पकुदिन) को एक लाख से गुणा करके क्रमशः १०१४६१, १५१७८७, १९०८३३, २४४३६, १२०३४००, ६२४१६, २९९०००, ८९८००० तथा १८८६८०० से भाग देकर अंशात्मक (१२ राशि × ३० अंश = ३६० अंश) बनाने से क्रमशः रवि, चंद्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, चंद्रमन्द तथा चंद्रपात के ध्रुवाँक प्राप्त होते हैं। चन्द्रमा के फल के हार को २० से गुणा करने से ध्रुवाँक होता है।

उपपत्ति— यदि कल्प कुदिन में कल्प ग्रह भगण भाग (अंश) प्राप्त होते हैं तो अहर्गण में कितने होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक से पूर्व में बताये अनुसार ग्रह आनयन करते हैं। हार की संख्या बड़ी लेने के लिए जिससे शुद्धता अधिक हो, कल्प कुदिन को एक लाख से गुणा करने के लिए आचार्य ने कहा है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो पूर्वोक्त त्रैराशिक से प्राप्त फल दशमलव में प्राप्त होता है जो भास्कराचार्यादि के समय में प्रणाली नहीं थी। अतः —

$$\text{सूर्य} = \frac{४,३२०,०००,०००\times१२\times३०}{१५७७९१६४५००००} = \frac{४३२००}{४३८३१०१२५०} = \frac{१}{१०१४६१}$$

$$\text{चंद्र} = \frac{५७७५३३००००००\times१२\times३०}{१५७७९१६४५००००} = \frac{५७७५३३}{४३८३१०१२५०} = \frac{१}{७५८९.३५}\times\frac{१}{२०}$$

$$= \frac{१}{१५१७८७}$$

$$\text{मंगल} = \frac{२२९६८२८५२२\times१२\times३०}{१५७७९१६४५००००} = \frac{२२९६८२८५२२}{४३८३१०१२५०} = \frac{१}{१९०८३३}$$

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए आचार्योक्त हार संख्यायें प्राप्त होंगी। इसी अध्याय में पूर्व श्लोकों में इसी प्रकार से आचार्य ने ग्रह आनयन के लिए ध्रुवक भिन्न-भिन्न प्रकार से क्रियायें करके अन्य पूर्ववर्ति आचार्यों की भांति ही प्राप्त किये हैं। यहाँ उन्हीं भिन्नों से एक भिन्न रूप में सीधा मान प्राप्त करके ध्रुवाँक पठित किये हैं। अतः पूर्व श्लोकों से ग्रह आनयन (अहर्गण द्वारा) तथा इन ध्रुवाँकों द्वारा ग्रह आनयन समान ही प्राप्त होंगे।

इदानीं दिनगतिसाधनमाह—

महीमितादहर्गणात् फलानि यानि तत्कलाः।
भवन्ति मध्यमा क्रमान्नभःसदां द्युभुक्तयः॥२५॥
समा गतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत्।
कलादिकल्पनावशान्मृदुद्रुता च सा स्मृता॥२६॥

इदानीमतुल्यत्वे कारणमाह—

कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्किताास्ताः
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः।
तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण॥२७॥

दिनगति साधन —

सूर्य-प्रभा टीका — एक दिन के अहर्गण में जितनी कला ग्रह की गति फल, ग्रह कल्प भगणकला को ग्रह कल्प सावन दिन से भाग देने से प्राप्त होती है, वह उसकी मध्यम गति होती है जिससे ग्रह सदा आकाश में भ्रमण करता है।

ग्रहों की कलात्मक गतियों में न्यूनाधिकता होने के कारण वे शीघ्र तथा मन्द गति से भ्रमण करते हैं, लेकिन उनकी योजनात्मक गति सदा बराबर होती है (पूर्व में कहे अनुसार)।

लघुवृत्त में भचक्र कला अर्थात् राश्यंश विभाग लघु तथा वृहद वृत्त में बड़ी होती है। इसलिये चंद्रमा अपनी लघु कक्षा का भ्रमण अल्प काल में करता है तथा शनि अपनी वृहद् कक्षा का भ्रमण अधिक समय में करता है। चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु तथा शनि क्रमशः मन्द गति से भ्रमण करते हुए इसी क्रम से आकाश में अपनी-अपनी कक्षा में रहते हैं। प्रत्येक ग्रह की कक्षा में चक्र कला संख्या तुल्य होती है।

उपपत्ति — चन्द्र कक्षा सबसे नीचे होने के कारण सबसे लघु है। इसकी वृत्ताकार कक्षा की एक कला १५ योजन के तुल्य होती है और शनि की कक्षा सबसे ऊपर होने से उसकी कक्षा की एक कला ५९२९ योजन होती है। एक योजन चार कोश के तुल्य होता है। अतः चन्द्रमा से क्रमशः ऊर्ध्व स्थित बुध, शुक्रादि की कक्षाओं में गति मन्द से मन्द क्रमश होती हैं।

ग्रह की योजनात्मक गति = ख कक्षा ÷ क. कुदिन होती है। इनके मान आचार्य ने पूर्व में कहे हैं। इस अनुपात में अंश और हर दोनों संख्यायें निश्चित (स्थिर) हैं। अतः प्रत्येक ग्रह के लिए इस अनुपात से योजनात्मक गति प्रमाण स्थिर (एक ही संख्या) रहता है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने इसके लिए आचार्योक्त ही कहा है। यथा —

"तुल्या गतिर्योजनवत्मैनैषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्रभावः।"

ग्रह किसी नक्षत्र के साथ पूर्व क्षितिज में उदित होने के पश्चात् दूसरे दिन नक्षत्र के पश्चात उदित होता है। क्योंकि नक्षत्र (तारा) की गति नहीं होती है। ग्रह का पश्चात् उदय उसकी कला उत्पन्न असु गति अनुसार होगा। अतः— भचक्र कला+ग्रह गति कला उत्पन्न असु = ग्रह स्पष्ट सावन दिन और

ग्रहमध्यम सावन = ६० घ + ग्रह गति कला या तुल्य असु

स्पष्ट सावन = ६० घ. + ग्रह गति कला उत्पन्न असु

विशेष— आचार्योक्त बात ही **वटेश्वराचार्य** ने **वटेश्वर सिद्धान्त** में कही है। मध्यमाधिकार सप्तम अध्याय प्रमाणविधि। यथा—

''अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ताः स्वल्पा महत्यो महतीन्दुरस्यात्।
अल्पेन कालेन लघु स्ववृत्तं भ्रमत्यनल्पं महतार्कसूनुः॥२३॥
प्राणेन लिप्ताभमुदेति पूर्वे भूजे हरेऽस्तं व्रजति ग्रहश्च।
स्वभुक्तिलिप्ता युत चक्र लिप्ता भोगैस्समं तेन यतो जवत्वम्॥२४॥''

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के गोलाध्याय २१ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''लघवोऽल्पे राश्यंशा महति महान्तोऽल्पवृत्तमल्पेन।
पूरयतीन्दुर्महता कालेन महच्छनैश्चारी॥१४॥''
भगणस्याधः शनिगुरु भूमिजरविशुक्रसौम्यचन्द्राणाम्।
कक्षा क्रमेण शीघ्राः शनैश्चराद्याः कलाभुक्तया॥१३॥''

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

(प) अधिक मासादिनिर्णयाध्याय

इदानीमहर्गण दौ विशेषमाह—

अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत् सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्।
तदाधिमासावमशेषके च कल्पाधिमासावमयुक्तहीने ॥१॥

अधिक मासादिनिर्णयाध्याय—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण से अभीष्ट वार प्राप्त करने के लिए अहर्गण में तब एक जोड़ना अथवा घटाना चाहिये, यदि अहर्गण से अभीष्ट वार न प्राप्त हो। तिथि में भी इसी प्रकार करे। कल्पाधिमास और अवम से क्रमशः अधिमास शेष तथा अवमशेष में भी युक्त अथवा निरेक करना चाहिये।

उपपत्ति— वटेश्वर, श्रीपति आदि सभी आचार्यों ने अहर्गण से इष्ट दिन लाने के लिए अहर्गण में एक जोड़ने के लिए ही कहा है घटाने के लिए नहीं। क्योंकि अहर्गण आनयन में अभीष्ट तिथि के एक दिवस पूर्व तक का ही अहर्गगण ज्ञात किया जाता है। अतः अभीष्ट आगे का दिवस होने के कारण एक जोड़ने के लिए ही कहा गया है। लेकिन भास्कराचार्य ने एक जोड़ने के साथ एक घटाने के लिए भी आवश्यकता होने पर वार को मिलाने के लिए कहा है क्योंकि वार ही अहर्गण का नियामक है। ग्रह आनयन अध्याय के श्लोक-५ में ''कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वै'' इत्यादि में कहे अनुसार अधिमास अवशेष से चन्द्र-रवि आनयन में १२ गुणित तिथि को जोड़ना होगा, यदि अहर्गण में एक जोड़ा है तब, और यदि अहर्गण में एक घटाया जाता है तब १२ गुणित तिथि को वहाँ घटाना होगा। अधिमास शेष (एक माह तुल्य होने पर) में एक जोड़े तो कल्पाधिमास में एक युक्त करे और अवमशेष में जोड़े (एक तिथि तुल्य होने पर) तो कल्पावम में युक्त करे। जिस प्रकार यहाँ जोड़ा है उसी प्रकार घटावे।

अहर्गण आनयन में अभीष्ट दिन और चैत्रादि के अन्तर में जो स्पष्ट चान्द्रमास होते हैं उन्हीं का प्रयोजन होता है। वहाँ उनके अन्तर में गणना द्वारा उपलब्ध मास संख्या ही ग्रहण किये जाते हैं। अतः इष्ट दिन और चैत्रादि के बीच यदि स्पष्ट अधिमास पतित हो तब तज्जनित त्रुटि अहर्गण में अवश्य

रहेगी। इष्ट तिथि अंत और सौरान्त के मध्य मासाल्प अधिशेष जो होता है वह कभी एक माह के तुल्य भी हो सकता है। यह अहर्गण आनयन की उपपत्ति से स्पष्ट हो जाती है।

यदि स्पष्ट अधिमास पतित है और अधिशेष यदि एक मास के तुल्य हो तब अधिमास साधन करने से जो अधिमास संख्या प्राप्त होगी उनमें यह एकमास तुल्य अधिशेष सम्मिलित रहने से साधित कि हुई अधिमास संख्या तथा अहर्गण शुद्ध ही होगा। अतः किसी भी प्रकार के (एक जोड़ने अथवा घटाने) संस्कार की आवश्यकता नहीं होगी।

यदि अधिशेष एक मास से न्यून हो तब अधिमास आनयन से जो गताधिमास संख्या प्राप्त हो उसमें एक जोड़कर अहर्गण साधन करना चाहिये, अन्यथा इष्टतिथ्यन्त – ३० तिथि के तुल्य तिथ्यन्त कालिक अहर्गण प्राप्त होगा जिससे अहर्गण में त्रुटि उत्पन्न होगी।

यदि स्पष्टाधिमास अपतित है तब यदि अधिशेष मासाप्ल हो तो अहर्गण शुद्ध ही होगा तथा इसमें किसी भी प्रकार का संस्कार नहीं करना चाहिये। यदि अधिशेष एक माह के तुल्य हो तो अधिमासानयन में जो गत अधिमास संख्या प्राप्त हो उनमें एक घटा कर अहर्गण का आनयन करना चाहिये, अन्यथा इष्टतिथिन्त+३० तिथि जितने तुल्य तिथ्यन्त कालिक अहर्गण प्राप्त होगा जिससे अहर्गण में त्रुटि उत्पन्न होगी।

इदानीं लघुदिनौघविषयमाह—

अथैवमेवाल्पदिवागणेऽपि सैकं निरेकं च तदावमाग्रम्।
तथाधिमासस्य तिथीर्गृहीत्वा लघुर्दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ।।२।।

लघुदिन (लघ्वहर्गण) में जोड़ना-घटना संबंधि विषय—

सूर्य-प्रभा टीका— लघ्व अहर्गण तथा तिथि में एक जोड़ना अथवा घटाना चाहिये, अवम शेष में भी एक जोड़ना अथवा घटाना चाहिये। अवम आनयन करने के लिए तिथि को एक से गुणा तथा ६४ से भाग देने के लिए कहा गया है। लघ्व अहर्गण में अभीष्ट दिवस तथा चैत्रादि के अंतर (मध्य) में यदि अधिमास होता है तो उसकी तिथियाँ (३०) को भी ग्रहण करके लघ्वहर्गण साधन करना चाहिये। यह लघुअहर्गण की रीति बृहदहर्गण में ग्रहण नहीं करनी चाहिये। वहाँ अधिमासानयन में लब्धि में वह युक्त होगा। लघ्व अहर्गण आनयन में अब्दान्त से आगे अधिमास आनयन नहीं करने के कारण

उसमें वह अधिमास अवश्य जोड़ना होगा।

इदानीमन्यदाह—

स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो यदा यदा वाऽपतितोऽपि लब्धः।
सैकेर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासैस्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥३॥
कृत्वा युतोनं क्रमशोऽधिशेषं दिनीकृतैः कल्पभवाधिमासैः।
सैकान्निरेकान्मधुयातमासांस्ततः प्रसाध्यौ खलु पुष्पवन्तौ ॥४॥

अन्य—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन में जो अधिमास प्राप्त होते हैं वे मध्यमान से होते हैं। यदि स्पष्टमान से अधिमास पतित हो लेकिन अहर्गण साधन में लब्धि एक कम मिले या स्पष्ट मान से अधिमास अपतित हो और लब्धि अधिक मिले तब ऐसी स्थिति में अधिमास संख्या में एक जोड़कर या क्रमशः घटा कर अहर्गणसाधन करना चाहिये।

अधिशेष को इस प्रकार कल्पाधिमास में क्रमशः युत तथा घटा कर प्राप्तफल के दिन बनावे (इसमें ३० दिन का अंतर पड़ता है)। इससे चान्द्र सौर दिनों का साधन करे। इसी प्रकार चैत्रादि से मासों में एक युत या कम करके ग्रहण करके चांद्र सौर दिन का आनयन करे।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्त शेखर, वटेश्वर, ब्रह्मगुप्त आदि ने इन विषयों के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। लघ्वअहर्गण का साधन भी लल्ल व वटेश्वर ने किया है।

इदानीं शुद्धौ विशेषमाह—

शुद्ध्यागमे त्वपतितोऽपि स लभ्यते चे-
च्छुद्ध्या तदा खदहनै ३० र्युतया दिनौघः।
एतद्विदन्ति सुधियः स्वयमेव किन्तु
बालावबोधविधये मयका निरुक्तम् ॥५॥

शुद्धि में विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— शुद्धि आनयन में स्पष्टअधिमास यदि अपतित हो और लब्धि एक अधिक प्राप्त हो तो उसको ग्राह्य करे। उसको ग्रहण करने से शुद्धि ३० अधिक होती है। स्पष्ट अधिमास के ग्रह ज्ञात करने में उसको अहर्गण करने में योग करे। आचार्य कहते हैं कि यह बात बुद्धिमानों को स्वयं ही समझ में आ जाती है लेकिन बालबोध के लिए मैंने यहाँ कह दी है;

इदानीमधिमासस्य क्षयमासस्य च लक्षणमाह—

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्
तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च च॥६॥

अधिमास क्षयमास के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस चांद्रमास में सूर्य संक्रान्ति नहीं होती वह अधिमास होता है यह बात प्रसिद्ध है और जब एक चांद्रमास में दो संक्रांति होती है वह क्षयमास होता है। इस प्रकार संक्रान्ति से उपलक्षित मास होता है। एक मास में दो संक्रान्ति होने से उस मास में दो मास हो जाते हैं। यह क्षय मास कदाचित कालान्तर में होता है। यह कार्तिकादि तीन मासों में ही होता है। क्षय मास के पूर्व तीन मास के अन्तर पर एक अधिक मास होता है और उसके तीन मास आगे एक और असंक्रांति मास अर्थात् अधिकमास होता है।

उपपत्ति— चान्द्रमास २९।३१।५० सावन दिनादि घटी पल मान का होता है तथा सौर मास ३०।२६।१७ सावन दिनादि घटी पल मान का होता है। इतने समय में रवि मध्यम गति से एक राशि का भोग करता है। जब रवि की गति ६१ कला होती है तब रवि एक राशि २९ दिन ३० घटी में भुक्त करता है, तब सौरमास चांद्रमास से अल्प होता है। रविमास की परमाल्पता २९।२०।४० दिनादि होती है। ६१ कला गति वृश्चिक आदि तीन राशियों में होती है। जब तक इतना अल्प सौर मास चांद्र मास से होता है तब एक-एक मास में दो रवि संक्रमण हो जाते हैं। अतः आचार्य ने कार्तिकादि तीन मास क्षयमास बताये हैं। पूर्व में जब भाद्रपद में संक्रान्ति नहीं होती तब रवि की अधिक गति के कारण मार्गशीर्ष में दो संक्रान्ति होती है। इसके बाद पुनः अल्प गति होने के कारण चैत्र में संक्रांति होती है। इस प्रकार वर्ष में जब एक क्षय मास हो तब दो अधिकमास होते हैं।

जब क्षय मास होता है तब स्पष्ट सौर मास स्पष्ट चान्द्र मास के मध्य में ही पड़ जाता है या पूरा हो जाता है तब प्रथम संक्रान्ति बिन्दु में अधिमास आनयन से अधिशेष सहित जो गताधिमास आवेगा उनमें अधिशेष बहुत अल्प होता है अतः क्षयमास पतन समय से पूर्व मासान्त में अवश्य ही अधिक मास पतन होगा। इसी प्रकार अन्त संक्रान्ति बिन्दु में जो अधिशेष आता है वह एक मास से कुछ अल्प होता है, अतः आगे मास के समीप ही अधिकमास पतित होगा। अतः वर्ष में दो अधिक मास सिद्ध होते हैं।

विशेष— ब्रह्मसिद्धान्त में इसके लिए इस प्रकार कहा है—

"मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः।
चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः॥"

वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त में—

सवैषु मासेष्वधिमासकः स्यात् तुलादिषट्केऽपि च शून्यमासः।
संसर्पकः सर्वभवो हि मासः सर्वेऽपि चैते खलु निन्द्यमासाः॥म.६२॥

आर्षवचन—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद्‌द्वौ मासावधिमासकौ।
पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादपरस्त्वधिमासकः॥
एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं लक्ष्म दृश्यते उभयोः।
तत्रोत्तरोऽधिमासः स्फुटगत्या चायमर्केन्द्वोः॥

इदानीं गणकानां प्रतीत्यर्थ क्षयमासकालान् गतागतान् कतिचिद्दर्शयति स्म—

गतोऽब्ध्यद्रिनन्दै ९७४ मिते शाककाले
तिथीशै १११५ र्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः १२५६।
गजाद्र्यग्निभूमि १३७८ स्तथा प्रायशोऽयं
कुवेदेन्दु १४१ वर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च १९॥७॥

क्षयमास का गतागत काल—

सूर्य-प्रभा टीका— ९७४ शक में क्षयमास पतित होने के पश्चात् १११५ शक तथा १२५६ शक एवं १३७८ शक में प्रायः १४१ वर्ष पश्चात् अथवा कभी-कभी १९ वर्ष पश्चात् क्षय मास पतित होता है।

उपपत्ति— अधिकमास पतन, वर्षादि अधिशेष के अर्थात् पहले-पहले के शुद्धि संज्ञक वर्षांत अधिशेष के कारण ही हो सकता है यदि वह शुद्धि न हो तो अधिमास संभव नहीं होगा। अतः जिन शुद्धियों में अधिमास पतन होता है उनमें से एक भास्कराचार्य ने २१ होने पर भाद्रपद मास अधिमास होता है यह माना है; और तब कार्तिकादि तीन मास क्षय मास संभव हो सकते हैं। जिस तरह की शुद्धि में अग्रिम वर्ष में उक्त अधिमास पतन होता है उसी तरह की शुद्धि फिर जिस वर्षांत में होती है उससे अग्रिम वर्ष में अवश्य ही उक्ताधिमास पतन से क्षयमास संभव होता है। किन्तु जितने वर्षों में पूर्ण अधिमास प्राप्त होता है उतने ही वर्ष का अन्तर उक्त शुद्धिद्वयनिष्ट दोनों वर्षांत में होता है, क्योंकि वर्ष के अन्त में अधिमास आनयन से गत अधिमास+शुद्धि = सावयव

अधिमास। उससे आगे पूर्णाधिमास उत्पन्न करने वाले वर्षान्त में अधिमास आनयन से गताधिमास+एक, दो, तीन अधिमास+शु = ग.अ.मा.+शुद्धि = सावयव अधिमास।

स्पष्ट चान्द्र मासान्त पाति सावन में चन्द्र गतिफल शेष अधोलिखित हैं।

३०।५५।३३	३१।५८।५६	३१।५७।३२	३१।२८।३५	३१।२।५२	
२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	
१।२३।४३	१।३३।६	२।५।४२	१।५६।४५	१।३१।२	अधिशेष

१।२३।४५ + १।३३।६ +२।५।४२+१।५६।४५+१।३१।२ = ८।३२।१८

सर्वअधिशेष योग स्वल्पांतर से स्पष्टभाद्रमास में २९।३१।५० – ८।३२।१८ = २१।४।३२ शुद्धि होने से भाद्रपद अधिमास होता है जो भास्कराचार्य ने ग्रहण किया है।

कितने वर्ष में पूर्ण अधिमास होगा। इसके लिए बापूदेव शास्त्री के अनुसार—

$$\frac{\text{कल्पाधिमास} \times १}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{१,५९३,३००,०००}{४,३२०,०००,०००} = \frac{५३११}{१४४००}$$

लब्धि ०, २, १, २, २, ६, १, १, ७, ३, २

आसन्नमान अधिमास $\left\{ \frac{०}{१}, \frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{३}{८}, \frac{७}{१९}, \frac{४५}{११२}, \frac{५२}{१४१}, \frac{९७}{२६३}, \frac{७३१}{१९८२}, \frac{२२९०}{६२०९}, \frac{५३११}{१४४००}, \right.$

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक तुल्य वर्ष में भाज्य तुल्य अधिमास होता है। अतः जिस वर्ष में क्षयमास होगा उससे लेकर हर तुल्य वर्षों में पुनः पुनः क्षयमास संभव होता है। यहाँ प्राप्त प्रथम चार स्थूल मानों को त्याग देने से शेष १९,११२,१४१,२६३ आदि ग्रहण किया जा सकता है। भास्कराचार्य ने इनमें से १९ तथा १४१ केवल दो को ही ग्रहण किया है तथा २६३ को तथा ११२ को छोड़ दिया है।

बापूदेव शास्त्री—

आसन्नमानं भिन्नस्य ज्ञातुमिष्टं यदा तदा।
आदावंश हरौ कार्यो दृढौ तौ च मिथो भजेत्॥
पृथक् फलानि विन्यस्य पङ्क्त्यां तेषामधः क्रमात्।
आद्यं फलं लवस्थाने हरे रूपं न्यसेत्ततः॥
द्वितीयलब्धिसंक्षुण्णं कल्पितांश युतं भुवा।
तथैव लब्ध्या भक्तं तं द्वितीयाप्तादधो न्यसेत्॥

ततस्तृतीयलब्ध्या च द्वितीयांशहरौ हतौ।
युतावाद्यांशहाराभ्यां तृतीयाप्तादधो न्यसेत्॥
चतुर्थाप्तादधोप्येषं पञ्चमाप्तादिषु क्रमात्।
लब्ध्यन्तं न भवेद्यावत्तावत्कार्य विजानता॥
न्यनानि विषमाणि स्युः स्युः समान्यधिकानि वै।
एवमासन्न मानानि स्युः सूक्ष्माण्युत्तरोत्तरम्॥

इदानीमस्य प्रश्नमाह—

यत् प्रोक्तं फलकीर्तनाय मुनिभिर्वर्षेऽधिमासद्वयं
तत् प्रब्रूहि कथं कदा कतिषु वा वर्षेषु तत्संभवः।
एवं प्रश्नविदां वरेण गणकः पृष्टो विजानाति य-
स्तं मन्ये गणकाब्जकुड्मलवनप्रोद्बोधने भास्करम्॥८॥

प्रश्न-ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षयमास-अधिक मास के फल कथन के लिए मुनियों ने जिस वर्ष में एक क्षयमास होता है उस वर्ष में दो अधिक मास होते हैं ऐसा कहा है। आचार्य ने यहाँ वे कब संभव होंगे, उसके बारे में गणकों को (इस) प्रश्न के उत्तर को जानने के लिए विस्तृत रूप से यहाँ पूर्व में बता दिया है।

विशेष– आर्षवचनः—

प्रायशो न शुभः प्रोक्तो ज्येष्ठश्चाषाढ़ एव च।
मध्यमौ चैत्रवैशाखावधिकोऽन्यः सुभिक्षकृत्॥
प्रायः कार्तिकमासस्य वृद्धिर्नेष्टेह तादृशी।
आत्यन्तिकी यदा सा स्याज्जगदौत्पातिकं तदा॥
देव कार्तिकमासोऽयं वर्धते नापि हीयते।
मासानामितरेषां वै वर्धनं प्राह नारदः॥
यां तिथिं समनुप्राप्य तुलां गच्छति भास्करः।
तयैव सर्वसंक्रान्तिर्यावन्मेषं न गच्छति॥

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के अधिकमासादि निर्णय अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

(फ) भूपरिध्याद्यध्याय

इदाननीं भूपरिधिमाह—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय-४९६७
स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवो १५८१ऽथ प्रोच्यते योजनम्।
याम्योदक्पुरयोः पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश ३६० हृत्
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्॥१॥

अधिकमासादि का निर्णय—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने भूपरिधि ४९६७ योजन तथा उसका व्यास १५८१ योजन बताया है। याम्योदकपुर (रेखापुर) और स्वपुर (स्वस्थान) के अक्षांश के अंरत को परिधि से गुणा करके ३६० अंश से विभक्त करने से दोनों पुरों (स्थानों) के अंतर योजन होते हैं।

विशेष— भूपरिधि की उपपत्ति आचार्य गोलाध्याय में बतायेंगे तथा योजन लक्षण के बारे में गणित में कही है। लेकिन भूपरिधि के संबंध में यहाँ जो कहा गया है उसके लिए आचार्य कहते हैं कि यद्यपि पृथ्वी तो एक ही है लेकिन आर्यभटादि आचार्यों ने उसके नियामक पलांश को अन्य-अन्य प्रकार से दर्शाकर उसका प्रमाण ज्ञात किया है। उन्होंने छः, सात, आठ यव की अंगुल कनिष्ठिकादि भेद से अपने-अपने शास्त्रों में मान कहे हैं। याम्योत्तर पुर के पलांश वक्ष्यमाण प्रकार से ज्ञात करके उनके अन्तर का अनुपात करते हैं। यदि ३६०° परिधि में दक्षिणोत्तर मण्डल में इतना पलान्तर है तो भूपरिधि पुरान्तर में कितने होंगे? जो लब्धि हो उतने विभाग पुरान्तर के करते हैं फिर उसके एक विभाग के योजन ज्ञात कर लेते हैं। उस योजन के सदृश देशान्तर के ज्ञात कर लेते हैं।

आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि सबके योजन की माप भिन्न होने से उनके (अन्य आचार्यों के) भूपरिधि मान तथा भूव्यास मान भिन्न-भिन्न आते हैं। इसी कारण से सूर्यसिद्धान्त, वटेश्वर सिद्धान्त, ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त आदि में इनके

मान भिन्न-भिन्न दिये हैं। आचार्य ने लीलावती में अपने योजन की माप इस प्रकार कही है। लीवती अध्याय १ श्लोक ५-६ में ८ यव का एक अंगुल, २४ अंगुल = १ हाथ, ४ हाथ = एक दण्ड, २००० दण्ड = एक क्रोश, ४ क्रोश = एक योजन होता है।

श्रीपति ने अपनी माप अलग प्रकार से बताई है तथा उन्होंने रज, परमाणु, यूका आदि के द्वारा यव का माप बताकर शेष मापें भास्करोक्त ही कही है।

विशेष— श्रीपति सिद्धान्त शेखर के मध्यमाधिकार में—

''वेश्मान्तः पतितेषु भास्करकरेष्वालोक्यते यद्रजः
स प्रोक्तः परमाणुरष्टगुणितैस्तैरेव रेणुर्भवेत्।
तैर्बालाग्रमथाष्टभिः कचमुखैर्लिक्षा च यूकाष्टभिः
स्यात ताभिश्च तदष्टकेन च यवोऽष्टाभिश्च तैरङ्गुलम्॥६९॥
तैः स्याद् द्वादशभिर्विवस्तिरुदितो हस्तश्च ताभ्यां पुन-
श्चापं हस्तचतुष्टयेन धनुषां क्रोशः सहस्तद्वयम्।
एवं क्रोशचतुष्टयेन गदितं सांवत्सरैर्योजनं
कक्षा तद्ग्रहधिष्ण्य भूपरिधितो व्यासादि संसिद्धये॥७०॥''

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. में मध्यमा. अध्याय ८ में भास्करोक्त प्रकार ही पुरान्तर योजन ज्ञात करना बताया है।

''तिर्यक् लेखा पत्तनपलनिजपलर्योविशेषशेषांशैः।
क्षितिपरिणाहो निघ्नश्चक्रांशहृदध्ववाहः स्यात्॥४॥''

ब्रह्मगुप्त ने भी ब्र. स्फु. सिद्धान्त में योजनान्तर आचार्योक्त ही कहा है।

ब्रह्मगुप्ने ने पृथ्वी की परिधि ५०० योजन कही है जबकि भूव्यास ७९०×२=१५८० या १५८१ ही ग्रहण किया है। वटेश्वराचार्य ने मध्यमाधिकार अध्याय १० में कहा है कि ब्रह्मगुप्त ने भूव्यासार्ध ७९० लिया है। यथा–

''त्यक्ते भूव्यासार्धे सहस्रप्रसंमिते गणितसौक्ष्म्यात्।
कर्तव्यं व्यासार्ध खनवमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम्॥२८॥''

और **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सि.** के गणिताध्याय में π का मान $\sqrt{१०}$ लिया है जो स्थूल है फिर भी उसे सूक्ष्म कहा है। यथा–

''व्यासव्यासार्धकृति परिधिफले व्यावहारिके त्रिगुणे।
तद्वर्गोभ्यां दशभिः सङ्गुणिताभ्यां पदे सूक्ष्मे॥१०॥''

अर्थात् सूक्ष्म वृत्त परिधि $=\sqrt{\text{व्या}^2 \times 10} = \sqrt{10} \times$ व्यास होती है। इससे भूवृत्त परिधि = २ × ७९० × $\sqrt{१०}$ = २×७९०×३.१६२३ = ४९९६.३९६ आता है जिसे आचार्य ने स्वल्पांतर से ५००० योजन ले लिया है। भास्कराचार्य ने $\pi = \frac{3927}{1250}$ सूक्ष्म मान कर भूव्यास १५८१ लेकर जो ब्रह्मगुप्तोक्त के आसन्न ही है भूपरिधि सूक्ष्ममान = $1580 \times \frac{3927}{1250}$ = ४९६७ कहा है। अतः भास्कर ने ब्रह्मगुप्त का ही भूपरिधि मान स्वीकार किया लेकिन ब्रह्मगुप्त का π का मान अशुद्ध होने से उसकी भूपरिधि माप अशुद्ध हो गई जिसे वटेश्वर ने भी गलत बताया। भास्कराचार्य ने उसे वटेश्वर के इंगित करने पर π का शुद्ध मान लेकर शुद्ध भूपरिधि मान स्वयं का ४९६७ कहा। π का मान $\frac{3927}{1250}$ भी वटेश्वर ने ही बताया है अपने **वटेश्वर सिद्धान्त** अष्टम अध्याय में। यथा—

"कृतनगदिग्भिर्भूमेर्व्यासः स्याद्योजनैर्भगोऽग्निहतः।
खशशर्कहृत परिधिः स्पष्टोऽतो दशकरणिका स्यात्॥३॥"

अर्थात् १०७४ योजन भूव्यास है, भूव्यास को ३९२७ से गुणा तथा १२५० से विभक्त करने से भूपरिधि मान होता है। यहाँ वटेश्वर ने भी $\sqrt{१०}$ को स्पष्ट भूपरिधि का मान कह दिया है। उन्होंने भूपरिधि $\frac{1074 \times 3927}{1250} = \frac{537 \times 3927}{625} = \frac{2108799}{625} = 3374 + \frac{49}{625}$ = ३३७४ ग्रहण करके शेष $\frac{49}{625}$ को त्याग दिया।

$$\text{अतः } \frac{\text{भूपरिधि}}{\text{भूव्यास}} = \frac{3374}{1074} = 3 + \frac{152}{1074}$$

$$\text{या } \frac{\text{भूपरिधि}^2}{\text{भूव्यास}^2} = \left(3 + \frac{152}{1074}\right)^2 = 10 \text{ स्वल्पांतर से}$$

अतः भूपरिधि = भूव्या. × $\sqrt{१०}$ वटेश्वर ने π का शुद्ध मान ग्रहण कर लिया जबकि प्रारंभ में इसका शुद्धमान $\frac{3927}{1250}$ ही ग्रहण किया था लेकिन अंक

पटु भास्कराचार्य ने इसे पहचान कर ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वर एवं आर्यभट ($\pi = \frac{३९२७}{१२५०}$)तीनों के सिद्धान्तों तथा निष्कर्षों का उपयोग कर लिया।

श्रीपति ने सि.शे. में भी भूपरिधि ५००० योजन ही दी है तथा व्यास १५८१ दिया है। अध्याय २ श्लोक ६४।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्य. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"कुमध्यरेखाविषयं स्वपत्तनादवस्थितं तिर्यगवेत्य योजनम्।
स्वकीयतंत्रत्यपलांशकान्तरं खखामरघ्नं विभजेत् खषड्गुणैः॥४४॥
पलकृतिरथ यावद्वर्गयो यावद्वर्गतो योजनानां
पदमृजु निजधामक्ष्मार्धयोरन्तरं स्यात्।
ग्रहगतिहतमेतत् स्पष्टभूवृत्तभक्तं।
धनमृणमपरैन्द्रयोर्लिप्तिकादि क्षमार्घात्॥४५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फ.सि. के गोलाध्याय २१ में अंतर योजन आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"अक्षांश कुपरिधिवधान्मण्डल भागातप्त योजनैर्विषुवत्" ॥$९\frac{१}{२}$॥

इदानीं भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखां चाह—

**लम्बज्यागुणितो भवेत् कुपरिधिः स्पष्टस्त्रिभज्याहृतो
यद्वा द्वादशसंगुणः स विषुवत्कर्णेन भक्तः स्फुटः।
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥२॥**

भूपरिधि स्फुटीकरण के लिए मध्य रेखा—

सूर्य-प्रभा टीका— भूपरिधि को स्वदेशीय लम्बज्या (केंद्र से ज्यार्ध की दूरी) से गुणा करके भूत्रिज्या से विभक्त करने से स्पष्ट भूपरिधि (स्वस्थान की) प्राप्त होती है।

अथवा भूपरिधि को १२ से गुणा करके विषुवकर्ण से विभक्त करने से भी स्पष्ट भूपरिधि प्राप्त होती है।

लंका, उज्जयिनी पर कुरुक्षेत्रादि प्रदेशों को स्पर्श करती हुई जो रेखा (सूत्र) दोनों ध्रुवों तक जाती है वह पृथ्वी की मध्य रेखा है।

विशेष— विषुव दिन पर मध्यान्ह में १२ अंगल शंकु के उच्च बिंदु

(शीर्ष) स्थान से छाया (पलभा) अग्र बिंदु तक की कर्णवत दूरी विषुव कर्ण अथवा पल कर्ण कहलाती है।

श्रीपति ने मध्यान्ह रेखा इस प्रकार कही है। सिद्धान्त शे. मध्यमा :–

"लङ्का कुमारी नगरी च काञ्ची पानाटमद्रिश्च सितः षडास्यः।
श्रीवत्सगुल्मं च पुरी ततश्च माहिष्मतीचोज्जयिनी प्रसिद्धा॥६५॥
स्यादाश्रमोऽस्मान्नगरं सुरम्यं ततः पुरं पट्टशिवाभिधानम्।
श्रीगर्गराटं च सरोहितार्क्षस्थानेश्वरं शीतगिरिः सुमेरु॥६६॥
इतीव याम्योत्तरगां धराया रेखामिमां गोलविदो वदन्ति।
अन्यानि रेखास्थितिभाजि लोके ज्ञेयानि तज्ज्ञैः पुटभेदनानि॥६७॥"

सूर्य.सि. में भूपरिधि ज्ञान के लिए आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः॥५९ $\frac{1}{2}$॥" मध्यमा.।

वटेश्वराचार्य ने भी यही सूत्र कहा है। अगले श्लोक की व्याख्या में देखें।

लल्लाचार्य ने भी शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त विधि ही श्लो. ४३-४५ में बताई है।

**दिवाकरघ्नं पलकर्णभाजितं स्फुटं महीगोलकवेष्टनं भवेत्॥४३॥
कुमध्यरेखाविषयं स्वपत्तनादवस्थितं तिर्यगवेत्य योजनम्।
स्वकीयतत्रत्यपलांशकान्तरं खखामरघ्नं विभजेत् खषड्गुणैः॥४४॥
पलकृतिरथ यावद्वर्गतो योजनानां पदमृजु निजधामक्ष्मार्धयोरन्तरं स्यात्।
ग्रहगतिहतमेतत् स्पष्टभूवृत्तभक्तं धनमृणपरैन्द्रयोर्लिप्तिकादि क्षमार्धात्॥४५॥"**

उपपत्ति— आचार्य ने इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में बताई है। अतः वहाँ देखें।

इदानीं देशान्तरमाह—

**यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्यः पलस्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनैः।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टनेनोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद् ग्रहे॥३॥**

देशान्तर ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्य रेखा से स्वस्थान के अक्षांश पर जितने पल तुल्य योजन दूरी हो उतने देशांतर योजन पल को ग्रह गति कला से गुणा करके स्वदेशीय स्पष्टपरिधि से भाग देने से प्राप्त कलादिफल को मध्य रेखा देश से

पूर्व में स्वस्थान स्थित हो तो घटाने पर तथा पश्चिम में हो तो जोड़ने पर स्वस्थान के मध्यम ग्रह होते हैं।

विशेष— स्फुट परिधि पर एक ही अक्षांश पर स्थित दो प्रदेशों के बीच की पूर्वापर दूरी को देशान्तर कहते हैं। देशांतर योजन को ६० से गुणा करके स्पष्ट भूपरिधि से भाग देने पर घटी आदि देशांतर समय होता है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में मध्यमा. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भूपरिधिः खखखशरारेखा स्वाक्षान्तरांशसङ्गुणिताः।
भगणांशहृताः फलकृतिहीना देशान्तरस्य कृतिः॥३७॥
शेष पद गुण भुक्तिर्भूपरिधिहृता कलादिलब्धमृणम्।
उज्जयनीयाम्योत्तररेखायाः प्राग् धनं पश्चात्॥३८॥
मध्यग्रहे स्फुटे वा भूपरिधिहृतात् पदात् गुणात् षष्ट्या।
लब्धं घटिका अथवा कर्मतिथिवृणधनं ग्रहवत्॥३९॥"

अर्थात् ५००० योजन भूपरिधि को रेखा देश तथा स्वदेश के अक्षांश के अंतर से गुणा करके (३६०) भगणांश से भाग देने से प्राप्तफल के वर्ग को देशांतर (योजनात्मक अंतर) के वर्ग में से घटाने से प्राप्त फल के मूल से ग्रह गति को गुणा करके स्पष्ट भूपरिधि से भाग देने से कलात्मक फल उज्जयनि याम्योत्तर रेखा के पूर्व के प्रदेश में मध्यम या स्फुट ग्रह में ऋण करे तथा पश्चिम के प्रदेश में धन करे। देशांतर योजन को ६० से गुणा कर स्प. भूपरिधि से विभक्त करने से प्राप्त घट्यात्मक फल को पूर्व तथा पश्चिम स्थित देश में ग्रहवत् तिथि भुक्त घटी में संस्कार करना चाहिये।

इसी प्रकार **वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त** में मध्या. अध्याय ८ में कहा है—

"लेखा स्वपुरान्तर्योजन संख्या श्रुतिस्तु लोकोक्ता।
तद्दो कृतिविरपदं कोटिदेशांतर प्रोक्तम्॥५॥
देशान्तरगतिघातात्कुवृत्तलब्धं विशोधयेत्पुरतः।
देयं कलादिपश्चाल्लेखाया मध्यमे द्युचरे॥६॥"

आचार्य ने स्प. भूपरिधि = $\frac{\text{भू.परि} \times \text{लंबज्या}}{\text{त्रि.}}$ यहाँ कहा है।

इदानीं देशान्तरघटिका आह—

प्राग्भूविभागे गणितोत्थकालादनन्तरं प्रग्रहणं विधोः स्यात्।
आदौ हि पश्चाद्विवरे तयोर्या भवन्ति देशान्तरनाडिकास्ताः ।।४।।
तद्घ्नं स्फुटं षष्टिहृतं कुवृत्तं भवन्ति देशान्तरयोजनानि।
घटीगुणा षष्टिहृता द्युभुक्तिः स्वर्णं ग्रहे चोक्तवदेव कार्यम् ।।५।।
अर्कोदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवत्तिः।
ऊर्ध्वं तथाधश्चरनाडिकाभी रवावुदग्दक्षिणगोलयाते ।।६।।

देशान्तर घटिका—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्णग्रास चंद्र ग्रहण के दिन स्वस्थान में, यदि चंद्रमा के मध्य रेखा स्थान पर गणितागत उन्मीलन काल के बाद (वेध सिद्ध) उन्मीलन दृश्य हो तो स्वस्थान मध्य रेखा देश से पूर्व में स्थित जानना चाहिये, और यदि गणितागत काल से पहले ही उन्मीलन दृश्य हो तो स्वस्थान मध्य रेखा से पश्चिम में स्थित जानना चाहिये, अर्थात् मध्य रेखा पर किसी पूर्ण ग्रास चंद्रग्रहण के समय की गणित से गणना करे। उसी चंद्र ग्रहण का स्पर्श काल स्वस्थान पर भी वेध से देखे यदि स्वस्थान पर चंद्र ग्रहण स्पर्श मध्य रेखा पर गणित द्वारा ज्ञात चंद्र ग्रहण स्पर्श से पूर्व में हो तो (अपना) स्वस्थान मध्य रेखा से पश्चिम में स्थित होता है। (यदि उन्मीलन पहले हो तो पश्चिम में स्थित होता है)। इसके विपरीत होने पर पश्चिम में स्थित होता है। इन दोनों कालों का (स्वस्थान पर तथा मध्य रेखा दोनों पर स्पर्श या दोनों पर उन्मीलन काल का) अन्तर देशांतर काल होता है।

इस देशांतर काल को स्वस्थान की स्पष्ट भूपरिधि से गुणा करके ६० (साठ) से विभक्त करने से प्राप्त फल देशांतर योजन होते हैं। यदि ६० घटी में इतनी ग्रह गति कला प्राप्त होती है तो देशांतर घटी में कितनी होगी? यह करनेसे जो फल प्राप्त हो उसको पूर्व होने पर ऋण तथा पश्चिम में धन करे। देश पूर्व में होने पर इतने घटी बाद दिन प्रवृत्ति होती है तथा देश पश्चिम में होने पर पूर्व में होती है। उत्तर गोल में सूर्य के रहने पर चरार्ध घटी तुल्य उन्मण्डल, क्षितिज से ऊपर स्थित होता है तथा दक्षिण गोलमें नीचे स्थित होता है जिससे वहाँ क्रमशः सूर्य पहले तथा पश्चात उदित होता है एवं वार प्रवृत्ति पश्चात् तथा पूर्व होती है। यहाँ वार प्रवृत्ति लंकोदय से मानी गई है।

विशेष— वार प्रवृत्ति के लिए **शि.शे. में श्रीपति** ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"लंकोदग्याम्यसूत्रात् प्रथममपरतः पूर्वदेशे च पश्चा-
दध्वेत्थाभिर्वटीभिः सवितुरुदयतो वासरेशप्रवृत्ति।
ज्ञेया सूर्योदयात् प्राक् चरशकलभवैश्चासुभिर्याम्यगोले
पश्चात्तैः सोम्य गोले युतिवियुतिवशाच्चोभयोः स्पष्टकाल॥३६॥
सृष्टेर्मुखे ध्वान्तमये हि विश्वे ग्रहेषु सृष्टेष्विनपूर्वकेषु।
दिन प्रवृत्तिस्तदधीश्वरस्य वारस्य तस्मादुदयात्प्रवृत्ति॥"

इन्होंने आर्यभट के मत का खंडन किया है तथा ब्रह्मगुप्तोक्त को स्वीकार किया है।

भगवान मनु कहते हैं कि सृष्ट्यादि से पूर्व विश्व अंधकारमय स्थिति में रहने से वारप्रवृत्ति संभव नहीं थी क्योंकि उस समय वार के स्वामी ग्रह ही नहीं थे। अतः रात्रि में वार प्रवृत्ति होने के लिए कहना सही नहीं है। अतः रवि उदय काल से वारप्रवृत्ति मानना ठीक है।

"आसीदिदं तमोभूतम् प्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रत्तर्क्यमनाधृष्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥"

इसको श्रीपति ने पूर्व कथित श्लोक में स्पष्ट कर दी है।

पञ्चसिद्धान्तिका में वराहमिहिर ने वारप्रवृत्ति के संबंध में कहा है कि वार प्रवृत्ति के समय के संबंध में आचार्यों में बहुत मतभेद है। आर्यभट, सिंहाचार्य आदि अर्ध उदित सूर्यबिंब से दिनआरंभ काल मानते हैं। लाटदेव आदि आचार्य सूर्य के अर्धस्त काल से वार प्रवृत्ति मानते हैं। यवन राज रात्रि में दशमुहूर्त पश्चात् मानते हैं। लाटाचार्य ने अर्धरात्रि से वार प्रवृत्ति कही है।

"दिनवार प्रवृत्तिर्न समा सर्वत्र कारणे कथिता।
नेहापि भवति यस्माद्विप्रवदन्तेऽत्र दैवज्ञाः॥
द्युगणाद्दिन वाराप्तिर्द्युगणोऽपि च देश काल सम्बन्धः।
लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरे चास्तगे सूर्ये॥
वूयुदये लंकायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहितः।
यवना निशीह दशभिर्गतैर्मुहूर्तैश्च तद् गुरुणा॥
लंकाऽर्धरात्रसमये दिनप्रवृत्ति जागद चार्यभटः।
भूयः स एव चाकोदयात्प्रभृत्याह लङ्कायाम्॥"

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धा. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

मध्यमाधिकार श्लोक ९ से १३$\frac{१}{२}$ अध्याय ८ में—

"गणितागतशीतांशोः प्रग्रहकालं प्रसाध्य निजविषये।
प्रत्यक्षेण तदन्तरकालो देशान्तरं स्पष्ट॥९॥
तत्खेचरगतिघातात् षष्ट्याप्तकलोन संयुतः प्राग्वत्।
खचरः स्वधाम्नि मध्या मध्यमतिथिनाडिकास्वेवम्॥१०॥
षष्टिहृतः क्षितिपरिधिर्देशान्तरनाडिकाहतः स्पष्टा।
योजनसंख्याऽध्वमितौ फलमस्याः पूर्वत्खचरे॥११॥
षष्ट्यभ्यधिकोने संख्यागतकाले रेखापरपूर्वे द्रष्टा।
क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिः प्राग्लेखाया इनोदये प्रश्चात्॥१२॥
वार प्रवृत्तिरुक्ता पश्चात्स्वार्कोदयात्पूर्वम्।
दक्षिणगोले पूर्व लेखायाश्चरदलेन वारादिः॥१३॥
उत्तर गोले पश्चाद्दिनोदयाच्चरदलेनैव॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। यथा मध्य.—

"दिनवारादिः पश्चादुज्जयिनी दक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
देशांतरघटिकाभिः पश्चात्प्राग् भवति रव्युदयात्॥३६॥"

सूर्यसिद्धान्त में वार प्रवृत्ति अर्धरात्रि से मानी है लेकिन इष्ट कालिक ग्रहसाधन आचार्योक्त ही बताये हैं।

महाभास्करीय में भास्कर प्रथम ने देशांतर काल चंद्रग्रहण से आचार्योक्त प्रकार ही से ज्ञात करना कहा है। यथा अध्याय २—

"सूर्योन्द्वोरकृतसमाध्वनोर्विधानात्
सम्प्राप्तस्थितिदलदृष्टकालयोश्च।
विश्लेषः स्फुटतर उच्यतेऽत्र कालो
गोलज्ञैर्विदित भटप्रणीततन्त्रैः॥७॥"

मुंजालाचार्य ने लघुमानस में देशान्तर ज्ञात करने के लिए आचार्योक्त कहा है।

"अवन्तीसमयाम्योद्ग्रेखापूर्वापराध्वना।
ग्रहगत्यंश षष्ट्यंशो हतो लिप्तारवृणं धनम्॥२०॥"

लल्लाचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १६ में श्लोक ६ से ११ में देशांतर के लिए आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं ग्रहाणां बीजकर्माह—

खाभ्रखार्कैर्हृताः कल्पयाताः समाः शेषकं भागहारात् पृथक् पातयेत्।
यत्तयोरल्पकं तद्द्विशत्या २०० भजेल्लिप्तिकाद्यं फलं तत् त्रिभिः सायकैः ॥७॥
पञ्चभिः पञ्चभूभिः कराभ्यां हतं भानुचन्द्रेज्यशुक्रेन्दुतुङ्गेष्वृणम्।
इन्दुना दस्रबाणैः कराभ्यां कृतैर्भौमसौम्येन्दुपातार्किषु स्वं क्रमात् ॥८॥

बीजकर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पगत वर्षों में बारह हजार से भाग देने से प्राप्त लब्धि तथा उसको हार अर्थात १२००० में से घटाने से प्राप्त शेष में (इन दोनों में) से जो अल्प हो उसको (२००) दो सौ से भाग देने से प्राप्त लब्धि को तीन तथा पांच से गुणा करने से प्राप्त कलात्मक फल को क्रमशः रवि तथा चंद्र में ऋण करे। चंद्र में किये गये तुल्य ही गुरु में ऋण करे तथा उसी फल को दुगुणा करके चन्दमन्दोच्च में ऋण करे, पंद्रह से गुणा करके शुक्र शीघ्रोच्च में ऋण करे, ५२ से गुणा करे बुध शीघ्रोच्च में धन करे। उसी फल को दो, एक और चार से पृथक-पृथक गुणा करके प्राप्तफल को क्रमशः पात, मंगल तथा शनि में धन करना चाहिये।

विशेष— भास्करोक्त बात को ही **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के मध्य. में कहा है। यथा—

"खखखार्कहृताब्देभ्यो गतगम्याल्पाः खशून्ययमल हृताः।
लब्धं त्रिसायकहतं कलाभिरूनौ सदाऽर्केन्दु ॥६०॥
शशिवत् जीवे द्विहतं चन्द्रोच्चे तिथिहतं तु सितशीघ्रे।
द्वीषु ५२ हतं च बुधोच्चे द्वि २ कु १ वेद हतं च पातकुजशनिषु ॥६१॥"

लेकिन ब्रह्मगुप्त ने चंद्रपात, मंगल, शनि में भास्कराचार्य के विरुद्ध ऋण संस्कार करने के लिये यहाँ कहा है जबकि भास्कराचार्य ने इनके संस्कार धन करने के लिए कहा है।

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त में मध्यम ग्रह से स्फुट क्रिया करने से वास्तविक स्फुट ग्रह नहीं प्राप्त होते। मध्यग्रह में बीजकर्म संस्कार करके उनसे स्फुट ग्रह प्राप्त करने की क्रिया करने से वास्तव स्फुट ग्रह प्राप्त होते हैं, ऐसा आगम ही प्रमाण है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण नहीं कह सकते, यह भास्कराचार्य ने कहा है। आचार्य कहते हैं कि जिन कारणों से बीज कर्म की छः हजार वर्षों में परम वृद्धि होती है तथा फिर आगे के छः हजार वर्षों में परम ह्रास होता

है, उसका आगम ही प्रमाण है। इस प्रकार १२००० वर्षों में यह एक चक्र पूरा होता है। अतः अभीष्ट वर्ष तक जो कल्पारंभ से वर्ष गत हो चुके हों उनमें १२००० का भाग देने से बीज कर्म के पूर्ण चक्र प्राप्त होंगे तथा प्राप्त शेष यदि ६००० छः हजार से अल्प हो तो उपचित मान बीज कर्मफल होता है तथा ६००० से अधिक हो तो अपचीयमान होता है। यदि शेष ६००० से अल्प हो तब भी वह (१२०००–शेष) से अल्प ही होगा और यदि शेष ६००० से अधिक हो तब वह १२००० – शेष से अधिक ही रहेगा। अतः आचार्य ने १२००० – शेष से ही अनुपात करना ठीक समझ कर इसी से अनुपात करने के लिए श्लोक ७ में कहा है।

$$\text{अतः अनुपात } \frac{\text{परम उपचय फल} \times \text{शेष}}{६०००} = \frac{\frac{\text{परम उच्चफल}}{३०} \times \text{शेष}}{२००}$$

परम उपचय फल जो रवि आदि ग्रहों तथा पातादि के हैं उनमें ३० का भाग देने से क्रमशः ३, ५, ५, १५, २, १, ५२, २, ४ प्राप्त होते हैं। इन फलों को ग्रह, मन्दोच्चादि में आचार्योक्त प्रकार से संस्कार करने से पूर्व, आचार्य ने शेष को २०० से विभक्त करके इन अंकों से गुणा करने के लिए कहा है।

सिद्धान्त तत्त्व विवेक में श्री कमलाकर भट्ट ने बीज कर्म का खंडन किया है। मध्यमा. कक्षावर्णन में यथा–

"वेलहोनेऽन्तरं यत्तद्बीजं मत्वैककालजम्॥२$\frac{१}{२}$॥
कर्माहखचरं शुद्धं नाशयन्त्यधमा बलात्।
इत्थं संक्षेपतः प्रोक्तं विस्तरोऽस्यान्यशास्त्रतः॥२।३॥"

अथाधिकारोपसंहारे श्लोकद्वयं युक्तियुक्तमाह—

यद्ग्राम्यैरपि विस्तृतं बहुतरैस्तन्त्रं प्रकारान्तरै-
र्मन्दानन्दकरं तदत्र निपुणैः प्राज्ञैरवज्ञायते।
आख्याते पृथुता सगोलगणिते व्यर्था हि तस्मान्मया
संक्षिप्तं न च विस्तृतं विरचितं रञ्ज्यो हि सर्वो जनः॥९॥
रूपस्थानविभागतो दृढगुणच्छिद्भ्यां च संचारतो
नानाच्छेदविभेदभिन्नगुणकैर्नानाप्रकारेष्वपि।
आद्याद्यत्र विचित्रभङ्गिभिरभिप्रेतप्रसिद्ध्यै क्रिया
लघ्वी वाथ समा तदेव सुधिया कार्यं प्रकारान्तरम्॥१०॥

उपसंहार के लिए युक्तियुक्त दो श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि यदि यहाँ कही युक्तियों, सिद्धांतों की अनेक छोटी-छोटी विधियों का उल्लेख करके ग्रंथ को विस्तृत कर दिया जाये तो विद्वान् लोगों को वह व्यर्थ लगेगा। ग्रंथ की महानता उसके विस्तार या आकार से नहीं होती इसी कारण से मैंने (भास्कराचार्य ने) अपने ग्रंथ को न अधिक विस्तृत किया है और न अधिक संक्षिप्त कहा है जिससे ज्ञानीजन तथा सामान्यजन दोनों के लिए यह आनन्ददायक हो सके। विषय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न सरल विधियों का इस प्रकार से उपयोग किया गया है कि यह ग्रंथ पूर्व ग्रंथों की सीमा से अधिक न हो। इसमें अधिकांश रूप में अंश को इकाई रखा गया है तथा भिन्न के अंश तथा हर को उत्तम (Prime) रखा गया है। अंतरवेशन (Interpolation) तथा न्यूनीकरण की विधि अपनाई गई है। विभिन्न प्रकार के अंश तथा हर का उपयोग अनेक प्रकार से किया गया है। आचार्य कहते हैं उनके द्वारा रचित इस प्रकार के ग्रंथ की रचना करने में इन सब का उपयोग एक विदुषि द्वारा करना चाहिये, जो उन्होंने किया है।

।। इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के भूपरिध्याद्यध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न।।

—

अथ स्पष्टाधिकारः

इदानीं स्पष्टगतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या।।१।।

स्पष्टाधिकार—

सूर्य-प्रभा टीका— यात्रा, विवाह, जातक आदि के फल कथन स्फुट ग्रहों से किये जाते हैं, इस लिए आकाशीय ग्रहों की स्फुट क्रिया दृग्तुल्य गणितैक्य करने वाली होनी चाहिये जिसे आचार्य इस अध्याय में बता रहे हैं।

विशेष— जातक सारदीप, वसिष्ठ सिद्धान्त, ब्रह्मसिद्धानत, सिद्धान्त सुन्दर, दामोदरपद्धति तथा अन्यत्र भी सभी ने दृग्तुल्य ग्रह स्पष्ट करके ही उनका उपयोग करने की महत्त्वता स्थापित की है। यही बात आचार्य ने यहाँ अपने श्लोक में कही है।

इदानीमर्धज्याकरणं ताश्चाह—

अर्धज्याग्रे खेचरो मध्यसूत्रात् तिर्यक्संस्थो जायते येन तेन।
अर्धज्याभिः कर्म सर्वं ग्रहाणामर्धज्यैव ज्याभिधानात्र वेद्या।।२।।
तत्त्वाश्विनो नन्दसमुद्रवेदाश्चन्द्राद्रिषट्का गगनाङ्गनागाः।
पञ्चाभ्ररुद्रास्तिथिविश्वतुल्या आद्यैर्निरुक्ता नखबाणचन्द्राः।।३।।
नन्दावनीशैलभुवो दिगङ्कचन्द्रा हुताशग्रहपूर्णदस्राः।
तुरङ्गषट्काकृतयः कुरामसिद्धाः शराष्टेषुयमाः क्रमेण।।४।।
गजाश्विभान्यङ्कशराष्टदस्रास्तुरङ्गसप्तग्रहलोचनानि।
अम्भोधिकुम्भ्यभ्रगुणास्तुरङ्गशैलेन्दुरामा रसभूतदन्ताः।।५।।
कुदन्तलोका द्वितुरङ्गदेवा गोऽभ्राब्धिलोकाः कुगुणाब्धिरामाः।
भुजङ्गलोकाब्धिगुणाः क्रमज्या अथोत्क्रमज्या मुनयोऽङ्कदस्राः।।६।।
रसर्तवो भूधरभूमिचन्द्रा द्व्यष्टेन्दवो भूरसलोचनानि।
कृतेषुरामाः शशिषट्कवेदा नन्दाद्रिबाणा गगनेन्दुशैलाः।।७।।

गुणेषुनागा नगखाभ्रचन्द्राः कुशैलरुद्राः शरवेदविश्वे।
भुजङ्गनेत्रेषुभुवो नवेन्दुसप्तेन्दवोऽथो धृतिनन्दचन्द्राः ॥८॥
त्रिसूर्यनेत्राण्यमरत्रिदस्रा वस्वब्धितत्त्वानि नगर्तुभानि।
गोऽष्टाङ्कदस्त्रा दहनेन्दुदन्ता नागाग्निवेदाज्यभुजस्त्रिभज्या ॥९॥
स्याद्व्यासखण्डं खलु खण्डकानि प्रोक्तानि जीवाविवराणि तज्ज्ञैः ॥९ $\frac{1}{2}$॥

अर्धज्याकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहों को स्पष्ट करने के सभी कर्म करने के लिए ज्यार्ध का प्रतिपादन यहाँ करते हैं। ग्रह अपने वलय में भूगर्भ से देखने से जहाँ स्थित होता है उसको मध्य शब्द से उच्चारित करते हैं। वलय मध्य स्थान से वलय के गर्भगामि सूत्र को मध्यसूत्र कहते हैं। मध्यसूत्र से तिर्यक्स्थ ग्रह अर्धज्या अग्र पर स्थित होता है। अतः अर्धज्या से सभी कर्म होते हैं। ग्रह की कक्षा में भगण कला ३६०×६०= २१६०० होते हैं। इसके एक पाद चतुर्थांश में २४ ज्यायें होती हैं जिनके अंतर का नाम ज्याखण्ड है। इनकी उपपत्ति सूर्य सिद्धान्त, आर्यभट्ट आदि तन्त्रों में गोल में अनेक विधि से कही है।

आचार्य ने वृत्त का व्यास ३४३८ मान कर क्रमज्या, उनका अन्तर, उत्क्रमज्या तथा उनका अंतर को मान इन श्लोकों में कहे है। वृत्त के एक पाद में २४ ज्यायें, उत्क्रमज्या तथा उनके अंतर इस प्रकार कहे है—

क्रम	क्रमज्या	अंतर	उत्क्रमज्या	अंतर
१	२२५	२२४	७	२२
२	४४९	२२२	२९	३७
३	६७१	२१९	६६	५१
४	८९०	२१५	११७	६५
५	११०५	२१०	१८२	७९
६	१३१५	२०५	२६१	९३
७	१५२०	१९९	३५४	१०७
८	१७१९	१९१	४६१	११८
९	१९१०	१८३	५७९	१३१
१०	२०९३	१७४	७१०	१४३
११	२२६७	१६४	८५३	१५४

१२	२४३१	१५४	१००७	१६४
१३	२५८५	१४३	११७१	१७४
१४	२७२८	१३१	१३४५	१८३
१५	२८५६	११८	१५२८	१९१
१६	२९७७	१०७	१७१९	१९९
१७	३०८४	९३	१९१८	२०५
१८	३१७७	७९	२१२३	२१०
१९	३२५६	६५	२३३३	२१५
२०	३३२१	५१	२५४८	२१९
२१	३३७२	३७	२७६७	२२२
२२	३४०९	२२	२९८९	२२४
२३	३४३१	७	३२१३	२२५
२४	३४३८	०	३४३८	०

आचार्योक्त पठित इन अंकों में तथा सूर्य सिद्धान्तोक्त अंकों में कहीं-कहीं एक-एक का अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

विशेष— ज्या मान के लिए विस्तृत वर्णन मेरे (टीकाकार) स्वकृत ''ज्या तत्त्व विवेक'' ग्रंथ का अवलोकन करें। भारतीय सिद्धान्तग्रंथों में पूर्वोक्त ही ज्यामान ग्रहण किये हैं। वटेश्वर ने एक पाद में ९६ ज्यामान पठित किये हैं। भिन्न-भिन्न वृत्त व्यास भी ग्रहण करके आचार्यों ने ज्यामान पठित किये हैं। लल्लाचार्य, आर्यभट (प्रथम एवं द्वितीय), सूर्यसिद्धान्त आदि में आचार्योक्त मान ही पठित किये हैं।

इदानीं ज्यासाधनमाह—

तत्त्वाश्विभक्ता असवः कला वा यल्लब्धसंख्या गतशिञ्जिनी सा।।१०।।
यातैष्यजीवान्तरशेषघातात् तत्त्वाश्विलब्ध्या सहितेप्सिता स्यात्।

ज्यासाधन—

सूर्य-प्रभा टीका— जितने चाप कला की ज्या साधित करनी हो उसमें २२५ से भाग देवें। यदि २२५ से अल्प कला हो तो वही ज्या होती है। भाग देने प्राप्त लब्धि संख्या तुल्य गत ज्या होती है। उस गत ज्या तथा ऐष्य ज्या के अन्तर को शेष कला से गुणा करके २२५ से भाग देने से प्राप्त लब्धि को गतज्या में जोड़ने से अभीष्ट कला की ज्या प्राप्त होती है।

उपपत्ति— वृत्त के एक पाद में आचार्य ने २४ ज्या कही हैं जिसके प्रत्येक खण्ड ९०×६०=५४००÷२४ = २२५ कला के होते हैं। अभीष्ट चाप कला में एक खंड के मान २२५ से भाग देने से गतज्या खंड प्राप्त होता है। इस गत एवं ऐष्य खण्ड की ज्यामानों का अंतर २२५ कला के ज्या खंड के लिए होता है। अतः अभीष्ट शेष कला खंड के लिए कितना होगा? इस अनुपात से प्राप्त फल शेष कला की ज्या का मान होगा। इस फल को गत खण्ड की ज्या मान में युक्त करने से प्राप्तफल अभीष्ट कला की ज्या का मान होगा।

जैसे ४७ अंश की ज्या का मान ज्ञात करने के लिए $\frac{४७\times६०}{२२५}$ कला = १२ लब्धि तथा १२० शेष। अतः १२ वें तथा १३ वें ज्या खंड के ज्या मान का अंतर १५४ है अतः $\frac{१५४\times१२०}{२२५}$ = ८३ स्वल्पांतर से। १२ वें गतज्या का मान २४३१ है। इसमें शेष खंड १२० कला की ज्या का मान ८३ युक्त करने से अभीष्ट ४७ अंश की ज्या का मान २४३१+८३=२५१४ होगा।

विशेष— आचार्योक्त विधि ही अन्य आचार्यों ने भी कही है।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में **ब्रह्मगुप्त** स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। **यथा**—

"लिप्तास्तत्त्वयमहृता लब्धज्या ज्यान्तराहताच्छेषात्।
तिथिकृतिहृतात्फलयुता लब्धज्या ज्याग्रहणमेवम्॥१०॥"

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

लिप्तास्तत्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्।
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत् तत्त्वलोचनैः॥३१॥
तदत्वाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके।
स्यात् क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः॥३१॥

शिष्याधीवृद्धिद में **लल्लाचार्य** ने अध्याय दो में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

कलीकृते तत्र शराक्षिबाहुभिर्हृते गतज्यासु गता च जायते।
गतागतज्यान्तरनिघ्नशेषकादिषुद्विदस्राप्तसमन्विता सती॥१२॥

वटेश्वर ने **वटेश्वर सिद्धान्त** में आचार्योक्त ही कहा है। स्पष्टाधिकार प्रथम अध्याय। यथा–

अक्षांश φ
क्षितिज
अहोरात्र वृत्त
ध्रुव प्रोक्त वृत्त
90 - δ
कुज्या
इष्ट कला
उन्मण्डल
शंकु
नतांश
इष्ट यष्टि
नाडीवृत्त
90
चरज्या
पर्वापर या सममण्डल
क्रान्ति
इष्ट सूत्र
6 O clock Circle
लम्ब ज्या
अक्षांश
लम्बांश = (90 - अक्षांश)
क य = अन्त्या = सूत्र ± चरज्या
र य = इष्ट अंत्या = इष्ट सूत्र ± चरज्या
(उत्तर गोल में + तथा दक्षिण गोल में - लेवें)
अ त = कला
ग्र त = इष्ट कला
इन पर समय की गणना होती है।
अ ज = यष्टि
ग्र थ = इष्ट यष्टि
स ग्र = नतांश
त ह = कुज्या
∠स ध्रु ग्र = होरा कोण
अ न = महाशंकु
त ल = उन्मण्डल शंकु
ग्र श = उन्नतांश
अ ह = हृति
ग्र ह = इष्ट हृति
क पू = सूत्र या त्रिज्या
र पू = इष्ट सूत्र
ग्र ब = इष्ट शंकु
पू ब = भुज
ब ह = शंकुतल
पू ह = अग्रज्या = अग्रा
पू य = चरज्या
क स = अक्षांश
सध्रु = क द = 90 - अक्षांश
क द = लम्बांश
ग्र र = क्रांति
उ द = क्षितिज
ध्रु पू ध्रु = उन्मण्डल
ख पू = अक्षज्या
क ख = लम्बज्या
क पू = अक्ष कर्ण
न र = 12 अंगुल शंकु
न पू = पलभा
पू त = क्रांति ज्या

क प = अन्त्या

र च = इष्ट अन्त्या

अ त = कला

ग्र त = इष्ट कला

क प = सूत्र

र प = इष्ट सूत्र

अ न = महाशंकु

ग्र ब = इष्ट शंकु, यही ग्रह की उन्नतांश ज्या है।

ग्र थ = इष्ट यष्टि = ग्र ब + ब थ

ब थ = उन्मण्डल शंकु = त ल

अ ज = यष्टि

त ल = उन्मण्डल शंकु

(1) Δ क ख प

क ख = लम्बज्या

प ख = अक्षज्या

प क = त्रिज्या

(2) Δ प हो त

प हो = अग्रा

त हो = कुज्या

प त = क्रा.ज्या

धनुषाहृतास्त्वभीष्टा लिप्ता ज्या ज्यान्तराहताच्छेषात्।
धनुषाहृतात्फलयुता ज्या कोटिज्या भुजज्या वा॥५५॥

अथ धनुःकरणमाह—

ज्यां प्रोज्झ्य तत्त्वाश्विहतोवशेषं यातैष्यजीवाविवरेण भक्तम्॥११॥

जीवा विशुद्धा यतमात्रतद्घ्नैस्तत्त्वाश्विभिस्तत् सहितं धनुः स्यात्॥ $\frac{1}{2}$॥

ज्यामान से धनु ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— अभीष्ट ज्यामान में से जितनी ज्या के मान घट सकें उतने घटा कर प्राप्त शेष को २२५ से गुणा करके गत और गम्य ज्या के अंतर मान से भाग देने से प्राप्त लब्धि को शुद्ध ज्या खण्ड संख्या जो पूर्णरूप से घट चुकी है के २२५ से गुणनफल में युक्त करने से इष्ट ज्या का चाप होता है।

उपपत्ति— इष्ट ज्या में से जितनी ज्यायें घट सकें घटा देवें तथा शेष के लिए अनुपात करे कि यदि गतज्या और ऐष्य ज्या के अन्तर में २२५ कला का चाप होता है तो शेष में कितना होगा? प्राप्त लब्धि को पूर्व प्राप्त विशुद्धज्या खण्ड संख्या गुणित २२५ में युक्त कर देने से इष्ट ज्या का अभीष्ट चाप मान होगा।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** में आचार्योक्त ही कहा है, स्पष्टा। यथा—

"ज्यां प्रोह्य शेषगुणितास्तत्त्वयमा ज्यान्तरोद्धृता लब्धम्।
क्षेप्यं विशुद्धजीवासंख्या तिथिकृतिवधे चापम्॥११॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी आचार्योक्त ही कहा है, स्पष्टाधिकार। यथा—

"ज्यां प्रोज्झय शेषं तत्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्।
सङ्ख्यातत्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते॥३३॥"

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद्** अध्याय २ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"विशोध्य जीवां शरदृग्गाहते हृतेऽवशेषे विवरेण जीवयोः।
विशुद्धजीवा यतिथा तदाहतैः शरद्विदस्रैः सहिता धनुर्भवेत्॥१३॥"

वटेश्वर ने **वटेश्वर सिद्धान्त** में स्पष्टाधिकार अध्याय प्रथम में आचार्योक्त कहा है। यथा–

ज्यां प्रोज्झयं वासरकृतिः शेषगुणा ज्यान्तराब्धि हति भक्ता।
फलयुक् स्याद्रसशर शुद्धसंख्या हतिश्चापम्॥५६॥

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ज्यां प्रोज्झय शेष निहता ररमाभोग्यान्तरेण संभक्ताः।
फललिप्ताढ्यः पिण्डकसंख्याररमाहतश्चापः॥१२॥"

इदानीं परमक्रान्तिज्यामाह—

**अश्वाङ्कविश्वे १३९७ऽत्र जिनांशजीवा यद्वा सुखार्थं लघुखण्डकैर्ज्या॥१२॥
रूपाश्विनो विंशतिरङ्कचन्द्रा २१।२०।१९
अत्यष्टितिथ्यर्कनवेषुदस्राः १७।१५।१२।९।५।२
ज्याखण्डकान्यंशमितेर्दशाप्तं
स्युर्यातखण्डान्यथ भोग्यनिघ्नाः॥१३॥
शेषांशकाः खेन्दुहता यदाप्तं तद्यातखण्डैक्ययुतं लघुज्या।
जिनांशजीवाङ्कृताविपादाः ४८।४५ स्यादुत्क्रमज्यात्र विलोमखण्डैः॥१४॥
विशोध्य खण्डानि दशघ्नशेषादशुद्धलब्धं धनुरंशकाद्यम्।
विशुद्धसंख्याहतदिग्युतं स्याद् भोग्यात् स्फुटाज्ज्यातिपरिस्फुटात्र॥१५॥**

परमक्रांतिज्या आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— २४ अंश (परमक्रांति मान) की ज्या का मान १३९७ होता है। आचार्य ने त्रिज्या का मान १२० मान कर दशदश अंश के दश ज्याखण्ड (के ज्या मान अंतर) क्रमशः २१।२०।१९।१७।१५।१२।९।५।२ कहे है अतः ज्यामान २१।४१।६०।७७।९२।१०४।११३।११८।१२० क्रमशः है। जिस (ग्रह या केन्द्र के) अंश की ज्या साधन करनी है उसके भुजांश बनाकर १० (दश) से विभक्त करने से प्राप्त गत खंड संख्या होती है तथा शेष भोग्य खंड होता है। शेष को भोग्य खण्ड के मान (ऐष्य तथा गत ज्या खण्ड की ज्याओं का अंतर)से गुणा करके दश से विभक्त करने से प्राप्तफल को गत ज्याखण्ड मान में युक्त करने से अभीष्ट लघुखंड की ज्या होती है। यहाँ वही विधि कही है जो पूर्व श्लोक में वृहद्ज्या के लिए कही है।

पूर्वोक्त प्रकार से (वृहद्ज्या के लिए) यहाँ भी इष्ट लघुखण्ड ज्या मान से उसका धनुसाधन करना कहा है जिसका धनु साधन करना हो उसमें से आद्यखण्ड से लेकर जितने ज्या खण्ड की ज्या घट सके उतने घटावें। शेष को

१० से गुणा करके गुणनफल को अशुद्ध ज्या खण्ड के ज्यामान से भाग देने से प्राप्त फल को शुद्ध खण्ड संख्या के दशगुणित में जोड़ देने से इष्टज्या का धनु होता है। इसकी विपरीत क्रिया करने से पुनः धनु से ज्या प्राप्त होती है।

उत्क्रमज्या का मान पृथक पूर्व में कहे अनुसार ज्ञात कर लेवे। लघुखण्ड में २४ अंश की ज्या का मान ४८।४५ होता है (लेकिन वास्तविक मान ४८।४८ होता है यहाँ आचार्य की अशुद्धि है)।

विशेष— भास्कराचार्य ने लल्लाचार्य के शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ की स्वकृत टीका की थी। लल्लाचार्य अपने ग्रंथ में लघुज्या, खण्डज्या तथा पिण्डज्या वृत्त की त्रिज्या १५० लेकर कही है तथा इनसे ग्रहों के स्पष्ट स्थान ज्ञात करना बताया है। अतः भास्कराचार्य ने भी उनसे प्रभावित होकर इन्हें इस ग्रंथ में कहा है जो पूर्वोक्त श्लोक में बताया है। लल्लाचार्य ने जो अपने ग्रंथ में कहा वह तेरहवें अध्याय में इस प्रकार है। यथा—

खण्डज्या—

षडविशति २६ शरयमा २५ युगलोचनानि २४
रूपश्विनो २१ नवभुव १९ स्तिथय १५ स्त्रिनेत्राः ११
शैला ७ यमौ २ च कथितानि नव क्रमेण
ज्याखण्डकानि कथयाम्यथ पिण्डितानि॥२॥

पिण्डज्या—

अङ्गाश्विनः २६ कुविषया ५१ विषयस्वराः ७५ स्यु-
-स्तस्माच्चतुर्विरहितं ९६ च शतं शरेशाः ११५
व्योमाग्निशीतकिरणाः १३० शशिवेदचन्द्राः १४१
स्तम्बेरमाब्धिशशिनो १४८ गगनेषुचन्द्रा १५०॥३॥

पंचसिद्धान्तिका में भी १२० त्रिज्या मान से ही ज्या का अनयन किया गया है। प्राचीन आचार्य प्रायः १२० त्रिज्या मान ही ग्रहण करते थे।

इदानीं भोग्यखण्डस्पष्टीकरणमाह—

यातैष्ययोः खण्डकयोर्विशेषः शेषांशनिघ्नो नखहृत् तद्नम्।
युतं गतैष्यैक्यदलं स्फुटं स्यात् क्रमोत्क्रमज्याकरणेऽत्र भोग्यम्॥१६॥

भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— गत और ऐष्य खण्ड का जो अन्तर है उसकी ज्यासाधन करने के लिए उस अन्तर को दश से विभक्त करके जो शेष हो उस शेष के अंशों से गुणा करके २० (बीस) से विभक्त करने से प्राप्तफल (प्रथम)

को गत और ऐष्य खण्ड के योगार्ध (द्वितीय) फल में से घटाने से स्फुट भोग्य खंड होता है। (इसको शेष से गुणा करके दश से भाग देने से प्राप्तफल को गत खण्ड की ज्या में युक्त करने से क्रमज्या प्राप्त होती है।) उत्क्रमज्याकरण के लिए स्फुट भोग्य खंड के लिए युत करे।

$$\text{भोग्य खंड} = \frac{\text{ग खं + ऐ.खं}}{२} - \frac{(\text{ग खं} - \text{ऐ.खं.}) \times \text{शे.}}{२०}$$

$$\text{इष्ट अंशज्या} = \text{भो.खं.} \times \frac{\text{शे.}}{१०}$$

उपपत्ति— गत और ऐष्य खण्डों के योगार्ध से खण्ड की संधि खंड प्राप्त होता है। अतः अनुपात किया कि दश अंशों में इतना अन्तरार्ध प्राप्त होता है तो शेषांश में कितना होगा? इस प्रकार त्रैराशिक करने से फल गत और ऐष्य खण्ड का अंतर, शेष से गुणित तथा २० से विभक्त होगा $\frac{(\text{ग खं} - \text{भो.खं.}) \times \text{शेष}}{२ \times १०}$। इस फल को क्रमज्या प्राप्त करने के लिए गत और ऐष्य के योगार्ध में से घटाना होगा क्योंकि खण्डों का मान घट रहा है २१, २०, १९, ...९, ५, २ आदि और उत्क्रमज्या प्राप्त करने के लिए क्योंकि वह उपचित होती है अतः योग करना होगा। इससे भोग्य खण्ड प्राप्त होगा। इससे $\frac{\text{भो.खं.} \times \text{शे.}}{१०}$ (श्लोक १३ से १५ के अनुसार) करने से इष्ट ज्या प्राप्त होगी।

उदाहरण– (१) माना हमें २४ अंश की ज्या का साधन करना है। इसके लिए इसमें १० का भाग दिया तो लब्धि २ तथा शेष ४ हुआ। आचार्योक्त ज्या खंड तथा ज्या पिंड इस प्रकार है—

	प्र.	द्वि.	तृ	च.	पं.	ष	स	अ	नवम.
ज्याखंड	२१ –	२० –	१९ –	१७ –	१५ –	१२ –	९ –	५ –	२
ज्यापिंड	२१ –	४१ –	६० –	७७ –	९२ –	१०४ –	११३ –	११८ –	१२०

यहाँ देखा २४ अंश द्वितीय तथा तृतीय खण्ड के बीच स्थित है क्योंकि लघुज्या में प्रत्येक खण्ड १० अंश का है।

अतः गत खण्ड २० तथा ऐष्य खण्ड १९ का योग ३९ इसका आधा १९।३० अर्थात् $\frac{\text{ग खं + ऐ.खं}}{२} = \frac{२०+१९}{२} = १९।३०$

तथा $\frac{\text{ग. खं} - \text{ऐ.खं}}{२०} \times \text{शेष} = \frac{(२० - १९) \times ४}{२०} = \frac{१}{५} = ०।१२$

१९।३० में से ०।१२ घटाने से = १९।१८, यह भोग्यखंड हुआ।

$\frac{\text{शे.} \times \text{फल}}{१०} = \frac{४ \times १९।१८}{१०}$ = ७।४३ यह शेष खण्ड की ज्या है।

इसको गतखंड की ज्या ४१ में युक्त करने से २४ अंश की ज्या का मान ४१+७।४३ = ४८।४३ प्राप्त होता है।

आधुनिक विधि से २४ अंश की ज्या का मान ४८।४८ होता है।

(२) माना ५ अंश की ज्या का साधन करना है। यह आचार्योक्त प्रथम खंड में स्थित है। अतः इसका ऐष्य खंड २१ हुआ क्योंकि ५ में १० का भाग देने से लब्धि ० तथा शेष ५ होगा। इसका पूर्व खंड से अंतर २१ – ० = २१ होगा। अब आचार्योक्त सूत्र से—

$\frac{(\text{ग. खं} - \text{ऐ.खं})}{२०} \times \text{शेष} = \frac{२१ \times ५}{२०} = ५।१५$

$\frac{\text{ग. खं} + \text{ऐ.खं}}{२} = \frac{० + २१}{२} = १०।३०$

दोनों का अंतर करने से १०।३० – ५।१५ = ५।१५ हुआ, यह भोग्यखंड हुआ। अब इस भोग्यखंड को शेष से गुणा करके १० से विभक्त करने से शेष खंड की ज्या प्राप्त होगी। अतः $\frac{५।१५ \times ५}{१०} = \frac{२६।५}{१०}$ = २।३७।३० शेष खंड की ज्या का मान प्राप्त हुआ। क्योंकि गत खंड से ऐष्य खंड की ज्या अधिक है अतः ५।१५ में इसको युक्त करने से लघुज्या ७।५२।३० हुई। यह बापुदेव शास्त्री द्वारा दिया गया उदाहरण है।

विशेष— भास्कराचार्य के इस श्लोक में कही गई विधि मूलतः ब्रह्मगुप्ताचार्य की है जिन्होंने विश्व इतिहास में प्रथम बार अन्तर्वेशन विधि (method of Interpolation to the second order) का उपयोग ब्र.स्फु.सि. के "उत्तर खण्डकाध्याय" ग्रंथ में किया है। बाल (Ball) की गोलीय खगोल शास्त्र (Spherical Astronomy) में यह विधि दी हुई है। **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २५ "ध्यानाग्रहोपदेशाध्याय" में पूर्वोक्त श्लोक इस प्रकार कहा है। यथा—**

''त्रिशत्सनवरसेन्दुर्जिनतिथिविषया गृहार्धचापानाम्।
अर्धज्या खण्डानि ज्या भुक्तैक्यं सभोग्यफलम्॥१६॥
गत भोग्यखण्डकान्तरदलविकलवधाच्छतैर्नवभिराप्तैः।
लघुतिदलं युतोनं भोग्यादूनाधिकं भोग्यम्॥१७॥''

अर्थात् तीस में ९,६ तथा १ युक्त करने से जो ३९,३६,३१ प्राप्त होता है, यह २४।१९।५ ग्रह अर्धचाप का १५ वाँ ज्याखण्ड है। चाप कला को ९०० से भाग देने से प्राप्त भागफल तुल्य ज्यार्ध खण्ड के योग को ही ज्या का भुक्तैक्य जाने। इसका तथा भोग्यफल का योग इष्ट ज्या होती है। यहाँ इस प्रकार बताये स्फुट भोग्यखण्ड से ज्या साधन सूक्ष्म होता है तथा अन्य विधि से स्थूल होता है।

सूक्ष्म भोग्य खण्ड की युक्ति बताते हुए कहते हैं किः—

भुक्त (गत) और भोग्य खण्ड के अन्तर को आधा करके उसके और शेष के गुणनफल को (९००) से विभक्त करने से प्राप्तफल को गतैष्यखण्ड के योग के आधे में जोड़ देवें, यदि योगार्ध भोग्य खण्ड से अल्प हो; और यदि अधिक हो तो उसे घटा देवें। क्रमज्या प्रकार में घटावें तथा उत्क्रमज्या प्रकार में जोड़ें।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त विधि ही कही। अंतर त्रिज्या के मान का है, भास्कराचार्य ने १२० तथा ब्र.गु. ने १५० लिया है।

इदानीं भोग्यखण्डस्य धनुःकरणाय स्फुटीकरणमाह—

विशोध्य खण्डान्यवशेषकार्धनिघ्नं गतैष्यान्तरमेष्यभक्तम्।
फलोनयुगेष्यगतैक्यखण्डं चापार्थमेवं स्फुटभोग्यखण्डम्॥१७॥

भोग्यखण्ड का धनु ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस का धनु करना हो उसमें से शुद्ध खंडों को घटाने से प्राप्त शेष के आधे से गतऐष्य खंडान्तर से गुणा करके ऐष्य खंड से विभक्त करे। प्राप्तफल को गत एवं ऐष्य खंड योगार्ध में से पूर्ववत घटाने से स्फुट भोग्य खंड का धनु बनाने के लिए फल प्राप्त होता है। इससे पूर्ववत क्रम से धनु बनावे।

उदाहरण— जैसे, माना कि ४८।४३ का धनु ज्ञात करना है। यह १९ तथा २० ज्या खंड के मध्य स्थित है। अतः विशुद्ध खण्ड २० के ज्यामान ४१ को इसमें से घटाने से ४८।४३ – ४१ = ७।४३ प्राप्त हुआ। इसके आधे ३।५२ को ऐष्य-गत के अंतर २०–१९ = १ से गुणा करने से ३।५२ आया। इसमें

ऐष्य खंड (अशुद्ध) १६ का भाग दिया तो फल ०।१२ आया। धनु करने के लिए इसको गतैष्य योगार्ध १६।३० में से घटाने से १६।१८ स्फुट भोग्य खंड प्राप्त हुआ। १६।३० तथा १६।१८ का अंतर ०।१२ है। इसमें ६० का भाग देने से $\frac{१२}{६०} = \frac{१}{५}$ अंश प्राप्त हुआ अर्थात् $\frac{१}{५} \times \frac{४}{४} = \frac{१ \times ४}{२०} =$ $\frac{\text{(ग. खं – ऐ.खं) शेष}}{२०}$। अतः शेष ४ प्राप्त हुआ। यह ४ गतचाप द्वितीय ज्या खंड २० में युक्त करने से इष्ट चाप २४° अंश प्राप्त हुआ।

इदानीं केन्द्रमभिधीयते ततो धनर्णकल्पनां भुजकोटिकल्पनाञ्च श्लोकचतुष्टयेनाह—

मृदूच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रं चलोच्चं ग्रहोनं भवेच्छीघ्रकेन्द्रम्।
तुलाजादिकेन्द्रे फलं स्वर्णमेवं मृदु ज्ञेयमस्माद्विलोमं च शीघ्रम्।।१८।।
त्रिभिर्भैः पदं तानि चत्वारि चक्रे क्रमात् स्यादयुग्युग्मसंज्ञा च तेषाम्।
अयुग्मे पदे यातमेष्यन्तु युग्मे भुजो बाहुहीनं त्रिभं कोटिरुक्ता।।१९।।
ये दोःकोट्योः स्तः क्रमज्ये तदूने त्रिज्ये ते वा कोटिदोरुत्क्रमज्ये।
ये दोःकोट्योरुत्क्रमज्ये तदूने त्रिज्ये ते वा कोटिदोष्णोः क्रमज्ये।।२०।।
दोःकोटिज्यावर्गहीनौ त्रिभज्यावर्गौ मूले वा तयोः कोटिदोर्ज्ये।
एवं द्युज्याक्रान्तिजीवे मिथः स्तो दृग्ज्याशङ्कू यच्छुतिर्वा त्रिभज्या।।२१।।

केन्द्र के नाम तथा उनकी धन ऋण कल्पना और भुज कोटि—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम ग्रह में से मंदोच्च घटाने से मंद केन्द्र तथा शीघ्रोच्च में से मंद स्पष्ट ग्रह घटाने से शीघ्रकेंद्र होता है। तुलादि तथा मेषादि में केंद्र के रहने से मंद फल क्रमशः धन तथा ऋण होता है एवं शीघ्रफल इसके विपरीत ऋण तथा धन होता है। तीन-तीन राशि अंतर पर वृत्त में एक-एक पद होता है जिसकी क्रमशः अयुग्म तथा युग्म संज्ञा होती है। अयुग्म पद में गत चाप का भुज तथा युग्म पद में ऐष्य चाप का भुज, बाहु होता है। इसको तीन राशि (९० अंश) में से हीन करने से शेष कोटि होती है। धनुष का ज्या रूप क्रमज्या होती है। इन भुज तथा कोटि की ज्या को त्रिज्या में से हीन करने से उनकी कोटि तथा भुज की उत्क्रमज्या होती है। भुज और कोटि की उत्क्रमज्या को त्रिज्या में से घटाने से कोटि तथा भुज की क्रमज्या होती है। भुजज्या और कोटिज्या के वर्गों को त्रिज्या के वर्ग में से हीन करके मूल लेने से क्रमशः कोटिज्या तथा ज्या प्राप्त होती है। द्युज्या, क्रांतिज्या तथा दृग्ज्या शंकु को

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवद्धिद** के रविचन्द्र स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''ग्रहो मृदूच्चेन चलोच्चमूनितं ग्रहेण केन्द्रं कथितं तदाह्वयम्।
त्रिभिस्त्रिभिः केन्द्रगृहैः पदं क्रमादयुग्मयुग्मे भुजकोटिसंज्ञिते॥१०॥
त्रिभाधिकं चक्रदलाद्विशोधिते षड्निते चक्रदलाधिके सति।
नवधिकेऽस्मिन् पतिते भमन्डलाद्भुजीकृतं शेषमुशन्ति तद्विदः॥११॥''

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्यो कहा है। इसमें केन्द्र की परिभाषा समान दी है मध्यम, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च के घटाने का क्रम एक समान है जिससे मन्द और शीघ्र क्रियायें भी एक ही नियम से की गई हैं।

''ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद् विशोध्य च।
शेषं केन्द्रं पदं तस्माद् भुजज्या कोटिरेव च॥२९॥
गताद् भुजज्या विषमें गम्यात् कोटि पदे भवेत्।
युग्मे तु गम्याद् बाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत्॥३०॥
अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्माणि।
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च॥४५॥''

मुञ्जालाचार्य ने भी लघुमानस में सूर्य सिद्धान्त की भांति ही केन्द्र की समान परिभाषा दी है तथा भास्करोक्त ही कहा है, यथा—

''ग्रहः स्वोच्चोनितः केन्द्रंषड्रूर्धाधोऽर्धजो भुजः।
धनर्णं पदशः कोटी धनर्णर्णधनान्मिका॥११॥
ओजे पदे गतैष्याभ्यां बाहुकोटी समेऽन्यथा॥११$\frac{1}{2}$॥''

श्रीपति ने **सिद्धान्त शेखर** में स्फुटाध्याय में भास्करोक्त कहा है, स्पष्टा.–

''खेचरो निजमृदूच्चवर्जितः खेचरेण च चलोच्चमूनितम्।
केन्द्रमुक्तमृषिभिस्तदाह्वयं तद्गृहैः खलु पदं त्रिभिस्त्रिभिः॥१२॥''

इस प्रकार केंद्र की परिभाषा के भिन्न-भिन्न प्रकार से कहने के कारण आचार्यो ने मंद और शीघ्र फल का संस्कार भिन्न रूप में कहा है। लेकिन सभी का अभीप्राय समान होने से मंद तथा शीघ्रफल से संस्कृत ग्रह में कोई अंतर नहीं होता।

पंचसिद्धान्तिका का अध्याय १७ में सूर्यसिद्धान्तानुसार आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

शीघ्रान्मध्यमहीनाद् (रा) शित्रितये गतैष्यदं (श)ज्ये।
भुजकोटी तत्परतः षड्(भिः) प (ति) ते स एव विधिः॥४॥
स्वपरिधिंगुणिते भ्ज्ञोज्ये 'खर्तुगुणै' (स्ते) विप (रिण) ते तच्च।
कोटिफलं व्यासार्धे मृगकर्क्यादौ चयापच (यम्)॥५॥
तद्भुज (कृति) योगपदैर्भा (ज्यं भुजजं 'ख) सूर्य'घ्नम्।
तच्चापार्धं मन्दे हानिधनं शीघ्रकेन्द्रवशात्॥६॥

अथ मन्दोपरिधीनाह—

मन्दोच्चनीचपरिधिस्त्रिलवोनशक्र १३।४०
भागा रवेर्जिनकलोनरदा ३१।३६ हिमांशोः।
खाश्वा ७० भुजङ्गदहना ३८ अमरा ३३ भवाश्च ११
पूर्णेषवो ५० निगदिताः क्षितिजादिकानाम्॥२२॥

मन्दपरिधी—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की मंद परिधि १३।४०, चंद्र की ३१।३६, मंगल की ७०, बुध की ३८, गुरु की ३३, शुक्र की ११, शनि की ५० होती है।

उपपत्ति— ग्रह के यन्त्र से वेध करने से मध्यम ग्रह तथा मन्द स्पष्ट ग्रह के अंतर को मंदफल कहते हैं तथा परममंदफलज्या को मन्दान्त्यफलज्या कहते हैं। मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्ध से मध्यम ग्रह को केंद्र मानकर जो वृत्त बनता है उसको नीचोच्च वृत्त कहते हैं। इसकी परिधि को ज्ञात करने के लिए त्रैराशिक से अनुपात करते हैं कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में ३६० अंश परिधि होती है तो मन्दान्त्यफल्ज्या व्यासार्ध में कितनी प्राप्त होगी? सूर्यादि ग्रहों के मन्दान्त्यफलज्या को वेध से ज्ञात करके आचार्य ने इस प्रकार अनुपात करके श्लोकोक्त उनके मन्द नीचोच्च वृत्त परिधि के मान कहे हैं।

आचार्य ने आगे श्लोक ३० की उपपत्ति में परम मंदफल सूर्य के लिए २°१०'३१'' कहा है और इसकी ज्या का मान १३०.४९ होता है। आचार्योक्त सूत्र के अनुसार सूर्य नीचोच्च वृत्त परिधि = $\frac{१३०.४९ \times ३६०^{\circ}}{३४३८}$ = १३.६६ =१३।४० आचार्योक्त परिधि प्राप्त होती है। इसी प्रकार चंद्र की परिधि के लिए आचार्य ने उसी श्लोक ३० की उपपत्ति में परम मंदफल ५°२'८'' कहा

है। इससे चंद्र नीचोच्च वृत्त परिधि = $\frac{३०.७७\times३६०^\circ}{३४३८}$ = ३१.६० = ३।३६ आचार्य ने कही है।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त में समपद में रविमंद परिधि अंश = १४ तथा चंद्र के ३२ हैं, विषमपद में २० कला कम होते हैं जिससे सूर्य के मं.प. अंश = १३।४० तथा चंद्र के ३१।४० होते हैं। भौमादि के मं.प.अं.सम तथा विषम पद में भिन्न कहे हैं। खंडखाध्यायका तथा वराह के सूर्य सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त मन्द परिधि के आसन्न ही म.परिधि कही है। यथा सूर्य १४, चं.३१, बु. २८, गुरु ३२, शु. १४ तथा शनि ६०।

वराहोक्त सूर्य सिद्धान्त अध्याय १७ में—

शीघ्राख्योऽर्कोऽन्येषां भौमादीनां तु परिधयो द्विगुणाः।
पक्षस्वरा (श्च खं षड्यमाः) खकृताश्चकुंजादीनाम्।।३।।

मुञ्जालाचार्य के लघुमानस की टीका में यल्ल ने ग्रहों के मंद परिध्यंश सूर्य १३°४१', चंद्र ३१°२१', मंगल ७०°, बुध ३८°, गुरु ३३°, शुक्र ११°, शनि ४८° कहे हैं। इन के द्वारा मुंजालाचार्य ने भुजज्या को लिप्ता में बदल कर जिन ग्रह भाजकों से विभक्त करके मंद फलांश प्राप्त करने के लिए कहा है, वे प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् मुंजालाचार्योक्त भाजकों से उपरोक्त ग्रह मंद परिध्यंश प्राप्त हो जाते हैं।

"सूर्य्याज्जिनाश्विनो (२२४) ऽगाङ्का (९७)
शरवेदाः (४५) खखेन्दवः (१००)।
द्वयङ्का (९२) खदन्ता (३२०) स्त्रिरसा (६३)
श्द्देदाः कोट्यर्धसंस्कृताः।।१३।।

भुजो लिप्तोकृतश्चेदभक्तो ग्रह फलांशकाः।।१३$\frac{१}{२}$।।"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में भास्करोक्त ही मं.प. अंश कहे हैं। शनि के लिए ३० अंश कहा है। भास्कराचार्य के शनि के मं.प. अंश आर्यभट के आसन्न हैं।

श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त अनुसार ही कहा है।

अथ भौमादीनां चलपरिधीमाह—

एषां चलाः कृतजिनास्त्रिलवेन हीना २४३।४०
दन्तेन्दवो १३२ वसुरसा ६८ वसुबाणदस्राः २५८।

पूर्णाब्धयो ४०८थ भृगुजस्य तु मन्दकेन्द्र-
दोःशिञ्जिनी द्विगुणिता त्रिगुणेन ३४३८ भक्ता॥२३॥
लब्धेन मन्दपरिधी रहितः स्फुटः स्यात्
तच्छीघ्रकेन्द्रभुजमौर्व्यथ बाणनिघ्नी॥
त्रिज्योद्धृताशुपरिधिः फलयुक् स्फुटः स्या-
द्भौमाशुकेन्द्रपदगम्यगताल्पजीवा॥२४॥
त्र्यंशोनशैल ६।४० गुणितार्धयुतस्य राशे-
र्मौर्व्योद्धृताप्तलवहीनयुतं मृदूच्चम्।
भौमस्य कर्किमकरादिगते स्वकेन्द्रे
लब्धांशकैर्विरहितः परिधिस्तु शैघ्र्यः॥२५॥

भौमादि की शीघ्रपरिधि—

सूर्य-प्रभा टीका— कुज के शीघ्र परिधि अंश २४३°४०', बुध शीघ्रोच्च परिधि १३२°, गुरु शीघ्र परिधी ६८, शुक्र शीघ्रोच्च परिधी २५८° तथा शनि के शीघ्रपरिधि ४० होती है। शुक्र के मंद केंद्र की ज्या के दुगुणे को ३४३८ से भाग देने से प्राप्त फल को उसकी मंद परिधी में से घटाने से शुक्र की स्फुट मंद परिधी होती है। और शुक्र के शीघ्र केंद्र की ज्या को पांच से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को शीघ्र परिधी में युक्त करने से स्फुट शीघ्र परिधी होती है। मंगल के लिए प्रथमतः शीघ्रकेंद्र बना कर वह जिस पद में स्थित हो उसके गत और गम्य में से जिसकी ज्या अल्प हो उसकी ज्या को एक अंश के तृतीयंश (२० कला) रहित सात अर्थात् ६°४०' से गुणा करके ४५ अंश की ज्या २४३१ से भाग देने से प्राप्त लब्धि अंशादि को अलग रखे तथा इसको मकरादि केंद्र होने पर मंगल के मंदोच्च में जोड़ने से तथा कर्कादि केंद्र होने पर घटाने से स्फुट मन्दोच्च होता है। कुज के यहाँ पठित शीघ्र परिधी २४३।४० में से इस (अलग रखे) फल को सदैव घटाने से स्फुट शीघ्र परिधी प्राप्त होती है।

उपपत्ति— शुक्र के मंद परिधी अंश जो पूर्व श्लोक में ११ कहे हैंवे सम (युग्म) पद में होते हैं तथा अयुग्म (ओज) पद में ९ होते हैं। इनके अंतर से अनुपात करते हैं कि त्रिज्या परिधी में अन्तर २ अंश का प्राप्त होता है तो इष्ट दोर्ज्या में कितना होगा? प्राप्त फल को परिधी के अपचीयमान होने पर वर्जित करते हैं। उसकी शीघ्र परिधी युग्म पदांत में २५८ तथा ओज पदांत में

इससे पांच अधिक (२६३) होती है। इसके अंतर से अनुपात करने से प्राप्त फल को उसके उपचीयमान होने से धन करते हैं। भौम के चारों शीघ्र केंद्र पदांत में तथा गणितागत मंदोच्च एक रूप होता है। पद मध्य में एक अंश का तीसरा भाग रहित (२० कला) सात अंश अर्थात् ६°४०' से अल्प होता है। अतः अनुपात किया कि यदि ४५° (पदमध्य) शीघ्रकेन्द्र की ज्या, २४३१ में ६°४०' मंदोच्च का अन्तर होता है, तो इष्ट शीघ्र केंद्र पर में गत और गम्य में अल्प शीघ्र केंद्र ज्या में कितना होगा? यह अनुपात करने से जो फल आता है उसको मकरादि केंद्र में और कर्कादि केंद्र में गणितागत मंगल के मंदोच्च में युत और हीन करने से (फल उपचय तथा अपचय होने के कारण) स्फुट मंदोच्च होता है। आचार्य ने स्वकृत व्याख्या में कहा है कि इसका आगम ही प्रमाण है।

विशेष— भास्करोक्त प्रकार ही **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के स्पष्टाधिकार में कहा है। यथा—

मन्दोच्चनीचवृत्तस्य परिधिभागाः सितस्य विषमान्ते।
नवयुग्मान्ते रुद्राः ११ शीघ्रोजान्तेऽग्निरसयमला २६३ ॥३४॥
युग्मान्तेऽष्टशरयमा २५८ मन्दफलान्मध्यमः स्फुटो मध्यः।
शीघ्रफलात् स्पष्टोऽसकृदेवं स्वफलैर्ज्ञगुरुसौराः ॥३५॥
बुधमन्दपरिधिभागा वसुरामा ३८ सुरगुरोस्त्रयस्त्रिंशत्।
रविजस्य शून्यरामाज्ञशीघ्रपरिधिद्विगुणचन्द्राः १३२ ॥३६॥
देवगुरोरष्टरसा ६८ भास्करपुत्रस्य शरगुणाः ३५ स्पष्टाः।
कुज शीघ्रकेन्द्रपदगतये याल्पज्या त्रिभागोनैः ॥३७॥
सप्तभिरंशै ६।४० र्गुणिता दलाद्यराशिज्ययाप्तांशैः॥
अधिकोनः कुजमन्दो मृगकर्क्यादौ स्फुटो भवति ॥३८॥
तत्स्फुटपरिधिः खनगाः ७० शीघ्रस्फुटपरिधिराप्त भागोनाः।
वेदजिनास्त्रयंशोनाः २४३।४० स्पष्टीकरणं कुजस्यैवम् ॥३९॥
मन्दफलं मध्येऽर्ध तच्छीघ्रफलस्य मध्यमे सकले।
मध्येऽसकृत् क्षितिसुतः स्पष्टो भुक्तिः स्फुटा ग्रहवत् ॥४०॥

यहाँ ब्रह्मगुप्त तथा भास्करोक्त शनि शीघ्र फल में २ अंश का अंतर है। **सिद्धान्त शेखर** में **श्रीपति** ने आचार्योक्त मंगलादि की स्फुट विधि ही कही है। यथा—

"भौमोनिते दिन करे पदयातयेयन्यूनज्यका युगहताऽङ्ककृतेन्द्र १४४९ भक्ता।
लब्धांशकैर्युत विहीनमसृङ्मृदूच्चं स्पष्टं भवेन्मकरकर्कटकादिकेंद्रे॥
नीचोच्चवृत्त क्षितिजस्य मान्दं स्फुटं वदन्तीह खशैल ७० भागान्।
त्र्यंशोनिताम्भोधिजिना २४३।४० श्चशैध्यमवाप्तभागै रहितं सदैव॥
मृदुफलदलमादौ मध्ये मेदनीजे तदनुचलफलस्याप्यर्धमस्मिन् विधेयम्।
पुनरपि परिपूर्णे मान्दशैध्येच मध्ये ह्यसकृदवनिसूनोरेवमाहुः स्फुटत्वम्॥"

श्रीपति ने यहाँ $\frac{२०}{३}$ गुणक ६°४०' तुल्य ही कहा है तथा ४५ अंश ज्यात्मक तुल्य भाजक के स्थान पर अपनी त्रिज्या मान के अनुसार २१४५ तुल्य भाजक को $\frac{५}{३}$ से अपवर्तित करके गुणक स्थान पर ४ तथा भाजक स्थान पर १४४९ कहा है।

अलग-अलग आचार्यों ने जो ग्रहों के मंद परिधि तथा शीघ्र परिधियों के अलग-अलग मान दिये हैं उसका कारण इनका समय के अनुसार बदलते रहना है। इस कारण से आचार्यों ने अपने-अपने समय के मंद तथा शीघ्र परिधि अंश अपने-अपने सिद्धान्त ग्रंथों में कहे हैं। अन्य आचार्यों के अपने-अपने ग्रंथों में दिये गये इनके भिन्न-भिन्न मान यहाँ व्यर्थ समझ नहीं दिये जा रहे हैं, क्योंकि ये अलग-अलग समय वर वेध से ज्ञात किये जाकर कहे गये थे।

इदानीं भुजकोट्यो फलानयनमाह—

स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवे
भांशैः ३६० हते च भुजकोटिफलाह्वये स्तः।
त्रिज्योद्धृते च यदि वान्त्यफलज्यकाघ्न्यौ
त्रिज्योद्भवं फलमिहान्त्यफलस्य जीवा॥२६॥

भुज-कोटि फल आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह केंद्र की भुज कोटि जीवा को स्व परिध्यंश से गुणा करके ३६० का भाग देने से स्व परिधि में भुज कोटिफल प्राप्त होता है। अथवा त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी केंद्र कोटिज्या होती है तो इतने अंत्यफलज्या व्यासार्ध में कितनी होगी? इस प्रकार प्राप्त दोनों फल तुल्य होते हैं। केंद्र भुज कोटिज्या को अन्त्यफलज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से त्रिज्योद्भवफल होता है।

उपपत्ति— प्रतिमंडल में जो ग्रह का केंद्र होता है वही नीचोच्च वृत्त में भी होता है। अतः प्रतिमंडल में ज्या कोटिज्या का अनुपात करने से नीचोच्च वृत्त में उसका परिमाण प्राप्त होता है। अतः यदि ३६० अंश में इतनी ज्या कोटिज्या होती है तो परिध्यंश में कितनी होगी? यह अनुपात करते हैं। त्रिज्या को पृथक्-पृथक् ग्रहों के मन्द शीघ्र परिधि अंशों से गुणा करके ३६० से विभक्त करने से प्राप्त फल अन्त्य फलज्या होती है।

विशेष— आर्यभट्ट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त सूत्र ही रविमन्द फल साधन के लिए कहा है। यथा–

क्ला भागा द्व्या लिप्ता रविमृदुपरिधिः स कोटिदोर्ज्याघ्नः।
चक्रांशहृतो दोः फलकोटिफले स्तो भुजफलस्य धनुः॥१४॥

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ३ मे आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"परिधिगुणास्त्रिभजीवा भगणांशविभाजिताऽन्त्यफलजीवा।
नीचोच्चव्यासदलं शरासनं चास्य परमफलम्॥१२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"तद्गुणिते ज्ये भांशैर्हृते फले कोटिफलयुता त्रिज्या।
आद्यन्तयोर्विहीना पदयोर्द्वितृतीययो कोटिः॥१४॥"

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते।
तद्भुजज्याफलं धनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम॥३९॥"

महाभास्करीय में भास्कर प्रथम ने अध्याय ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्यात् स्फुटो मतः। तेनाहतेष्टकेन्द्रज्यां छित्वाऽशीत्या फलं विदुः॥३९॥"

लघुभास्करीय अध्याय २ में इसी प्रकार कहा है। "तेपरिध्याहतेऽशीत्या लब्धे कोटिभुजाफले॥३॥

भास्कर (प्रथम) ने इन दोनों ही ग्रंथों में लल्लाचार्य की भांति ८० से विभक्त करने को कहा है।

लल्लार्य ने भी शि.वृ.ग्रंथ के अध्याय ३ में भाजक स्थान पर ८० दिया है लेकिन ग्रहों की शीघ्र तथा मंद परिधि को ४$\frac{१}{२}$ से विभक्त करके कहा

है यदि ऐसा न करे तो भाजक स्थान में ८० × ४$\frac{१}{२}$ = ३६० प्राप्त हो जाता है। लल्लाचार्य ने आर्यभटोक्त प्रकार ही से उसके तुल्य कहा है।

"दोर्ज्यावर्गविवर्जितत्रिभवनज्यावर्गमूलं भवेत् कोटिज्या भुजभाग वर्जितनवत्यं शोत्थजीवाथवा। स्पष्टस्वस्वगुणाहते खवसुभिर्दोः कोटिजीवे हते स्यातां दोः फलकोटिसंज्ञकफलताभ्यां श्रुतिं साधयेत्॥३॥"

पंचसिद्धान्तिका अध्याय १७ में सूर्यसिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एवं स्फुटमध्याख्यं शीघ्रात् संशोध्य पूर्वविधिनैव।
आदिवदा (प्तं) चापं स्फुटमध्या (ख्ये) चयापच (यम्)॥६॥"

इदानीं कर्णानयनं प्रकारचतुष्टयेनाह—

स्वकोटिजीवान्त्यफलज्ययोर्यो योगो मृगादावथ कर्कटादौ।
केन्द्रेऽन्तरं तद्भुजजीवयोर्यद्वर्गैक्यमूलं कथितः स कर्णः॥२७॥
त्रिज्या तथा कोटिफलेन युक्ता हीना च तद्दोः फलवर्गयोगात्।
मूलं श्रुतिर्वान्त्यफलत्रिमौर्व्योर्वर्गैक्यराशेश्च तथा युतोनात्॥२८॥
त्रिभज्यया कोटिफलद्विनिघ्न्या कोटिज्यया वान्त्यफलद्विनिघ्न्या।
मूलं श्रुतिर्वा मृदुदोः फलस्य चापं बुधा मन्दफलं वदन्ति॥२९॥

प्रकारान्तर से कर्ण आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— मृगादि (मकरादि) केंद्र होने पर केंद्र कोटिज्या तथा अंत्यफलज्या का योग तथा कर्क्यादि केंद्र होने पर इनका अंतर स्पष्ट कोटी होती है और दोनों ही केंद्र होने पर इस स्पष्ट केंद्र कोटिज्या तथा भुजज्या के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है।

मकरादि में शीघ्र केंद्र हो तो त्रिज्या में शीघ्रकोटीफल का योग और कर्क्यादि में शीघ्र केंद्र हो तो इनका अन्तर स्पष्ट शीघ्र कोटि होती है। भुजफल तथा इस स्पष्ट शीघ्र कोटी के वर्गों के योग का मूल स्पष्ट शीघ्र कर्ण होता है।

त्रिज्या तथा अंत्यफलज्या के वर्गों के योग में, मकरादि केंद्र में त्रिज्या और कोटिफल के दुगुणे को जोड़ कर मूल लेने से तथा कर्क्यादि केंद्र में केंद्र कोटिज्या तथा अंत्यफलज्या के दुगुणे को घटा कर मूल लेने से कर्ण प्राप्त होता है।

मंदफलज्या के चाप को ही ज्ञानि लोग मंदफल कहते हैं।

उपपत्ति— समतल की हुई भूमि पर एक बिंदु **भू** कल्पित करके उसको भूमि मान कर तथा इसको केंद्र **के (=भ्)** मान कर कर्कटक (गोला प्रकार) की सहायता से (मध्यकर्ण को व्यास मानकर) त्रिज्या तुल्य एक वृत्त बनावे यह वृत्त ग्रह की कक्षा मंडल है। इस पर ३६० अंश अंकित करे। मेषारंभ तथा ग्रह के उच्च बिंदु **उ'** को इसमें चिन्हित (इंगित) करे। भूमि तथा उच्च बिंदु को एक सीधी रेखा से मिला देवे यह **उ'भू** उच्च रेखा होती है। **भू** बिंदु से ऊपर अंत्यफलज्या तुल्य दूरी पर उच्च बिंदु की ओर एक बिंदु **झ** लेकर उसको केंद्र मान कर त्रिज्या तुल्य गोला प्रकार से एक प्रतिमंडल (वृत्त) बनावें, इसका नाम शीघ्र प्रतिवृत्त है। यह वृत्त उच्च रेखा पर जहाँ संपात करे उसको प्रतिमंडल में शीघ्रोच्च बिंदु **उ** जाने। वृत्त के नीचे के भाग में जहाँ ऊर्ध्वाधर रेखा लगती है वह बिंदु **नी** शीघ्र नीच है। भूकेंद्र से कक्षा वृत्त के उर्ध्वाधर व्यास रेखा के ऊपर लंबवत रेखा **क' ब'** कक्षामध्यगत तिर्यक रेखा है। इसी प्रकार प्रतिमंडल के केंद्र **झ** से इस रेखा के समानान्तर (चित्र में बताये अनुसार) तथा ऊर्ध्वाधर व्यास रेखा के ऊपर लंबवत रेखा **क ब** खींचे। इन दोनों तिर्यक रेखाओं के मध्य सर्वत्र अंतर अन्त्यफलज्या तुल्य होता है।
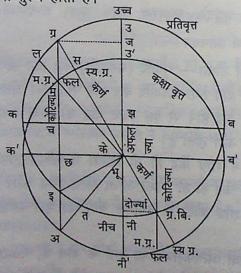
ग्रह **ग्र** तथा उर्ध्वाधर उच्च रेखा का अंतर **ग्र ज** दोर्ज्या है तथा ग्रह तथा तिर्यक रेखा का अंतर **ग्र च** कोटिज्या है। प्रतिमंडल में स्थित ग्रह तथा भू बिंदु को मिलाने वाली रेखासूत्र **ग्रभू** कर्ण है। यह कर्ण सूत्र जहाँ पर कक्षा वृत्त को

स बिन्दु पर काटता है वहाँ स्फुट ग्रह होता है। कक्षा मंडल में स्फुट ग्रह तथा मध्यम ग्रह म का अंतर मस फल होता है। जहाँ मध्यम ग्रह से स्फुट ग्रह आगे स्थित होता है वहाँ पर यह फल मध्यम ग्रह में धन तथा पीछे स्थित होने पर उसमें ऋण करने से ग्रह स्थान प्राप्त होता है।

कक्षा वृत्त तथा प्रतिवृत्त में तिर्यक रेखाओं का अंतर अन्त्यफलज्या होता है। प्रतिमंडल में कोटिज्या ग्रच अंत्यफलज्या के अग्रभाग पर होती है। मकरादि केंद्र में इनका योग स्फुट कोटि द्दग्र होता है तथा कर्क्यादि केंद्र में कोटिज्या अंत्यफलज्या के नीचे स्थित होती है। अतः इनका अंतर करने से स्फुट कोटि होती है। स्फुट कोटी के मूल द्द से भू बिंदु जितने अंतर द्दके = ग्रज पर होती है वह भुजज्या तुल्य होती है। अतः इन भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। यह उपपन्न हुआ।

श्लोक २६ की उपपत्ति—

चित्र में उ ग्र = उ'म = केंद्रांश; के छ = ज्या केंद्रांश; म छ = कोज्या केंद्र तथा के म = त्रिज्या। त्रिभुज के म छ तथा म ग्र ल सजातीय हैं।

$$\because \frac{\text{छ के}}{\text{के म}} = \frac{\text{ग्र ल}}{\text{म ग्र}} \text{ अतः ग्र ल} = \frac{\text{छ के} \times \text{म ग्र}}{\text{के म}}$$

$$\text{अतः भुजफल} = \frac{\text{ज्या केंद्र} \times \text{ज्या अंत्यफल}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

यह श्लोक २६ उपपन्न हुआ।

$$\text{और} \because \frac{\text{म छ}}{\text{के म}} = \frac{\text{म ल}}{\text{म ग्र}} \text{ अतः मल} = \frac{\text{म छ} \times \text{म ग्र}}{\text{के म}}$$

$$\text{अतः कोटिफल} = \frac{\text{कोज्या केंद्र} \times \text{ज्या अं.फल}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

अतः श्लोक २६ में कहा उपपन्न हुआ।

यदि ज्या केंद्र = त्रिज्या हो तो समीकरण (१) से–

$$\frac{\text{त्रि.} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} = \text{ज्या अं.फ.}$$

$$\text{अतः} \frac{\text{परिधि}}{\text{भांश}} = \frac{\text{त्रि.} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}}$$ यह मान समीकरण (१) में रखने से–

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{ज्या केंद्र} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{ज्या केंद्र} \times \text{परिधि}}{\text{भांश}}$$

$$\text{तथा कोटिफल} = \frac{\text{कोज्या केंद्र} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{कोज्या केंद्र} \times \text{परिधि}}{\text{भांश}}$$

यह श्लोक २६ में कहा उपपन्न हुआ।

श्लोक २७ से २६ की उपपत्ति—

चित्र में मकरादि केंद्र में केग्रछ त्रिभुज में के ग्र = कर्ण = भू तथा प्रतिमंडल में स्थित ग्रह का अंतर।

ग्र छ = कोटि = ग्र म + म छ

अथवा कोटि = अंत्यफलज्या + कोज्या केंद्र

तथा भुज = छ के = ज्या केंद्र। इन भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होगा। उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार कर्क्यादि केंद्र में–

$$\text{कर्ण} = \text{के इ} = \sqrt{\text{के छ}^२ \times \text{छ इ}^२} = \sqrt{(\text{छ अ} - \text{अ इ})^२ \times \text{छ के}^२}$$

$$\text{कर्ण} = \sqrt{(\text{कोज्या कें.} - \text{अं फ. ज्या})^२ + \text{भुजफल}^२}$$ अतः उपपन्न हुआ।

$$\text{कर्ण} = \text{के ग्र} = \sqrt{\text{के ल}^२ \times \text{ग्र ल}^२} = \sqrt{(\text{म के} + \text{म ल})^२ + \text{ग्र ल}^२}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रि.} + \text{को. फ.})^२ + \text{भुजफल}^२}$$

और कर्क्यादि केंद्र में–

$$\text{कर्ण} = \text{के ई} = \sqrt{\text{के त}^२ + \text{त इ}^२} = \sqrt{(\text{के अ} - \text{अ त})^२ + \text{त इ}^२}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रि.} - \text{को.फ.})^२ + \text{भु.फ.}^२}$$

उपपन्न हुआ।

क्योंकि को.^{२}+केंद्र ज्या^{२} = कर्ण तथा मकरादि व कर्क्यादि में को.कें.$\pm$ अन्य फ.ज्या. = स्प. कोटी होता है, यह कहा जा चुका है।

अतः स्प.को.^{२} + को.कें.^{२} = (को.कें.$\pm$ अं.फ.ज्या.)^२ + के. ज्या^{२} = को.कें.^{२} $\pm$ २ को.कें. $\times$ अंफ.ज्या.+ अं.फ. ज्या^{२} + कें.ज्या^{२}

$$= \sqrt{\text{त्रि} + \text{अं.फ.ज्या}^२ \pm \text{२ के को.ज्या} \times \text{अं.फ.ज्या}} = \text{कर्ण}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''द्विघ्नाग्रज्याऽभ्यस्ता परमफलज्या मृगादिके योज्या।
त्रिजया परमफलमौर्व्योः कृतियोग कर्कटादिके शोध्या॥६॥
केन्द्रे तस्मान्मूलं कर्णो वा स्याद् विनैव बाहुज्याम्॥६ $\frac{1}{2}$॥
मृगकर्क्यादौ केन्द्रे कोट्यन्त्यफल्ज्ययोर्युतिविशेषः।
तद्बाहुज्या कृत्योः समासमूलं श्रुतिर्भवति॥३॥

अध्याय २ में—

''अग्राफलत्रिगुणयोर्विवरैक्यमुक्ता केन्द्रे कुलीरमकरादिगतेऽत्र कोटिः।
तद्वर्ग बाहुफल वर्गयुतेः पदं स्यात्कर्णौ भुजाफलहतत्रिगुणस्य हारः॥३॥

वटेश्वराचार्य ने अन्य श्लोकों द्वारा अनेक प्रकार से कर्ण के आनयन की विधियाँ कही है।

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कर्णसाधन प्रकार कहा है। यथा—

''चलकेंद्राद्दोः कोट्योः फले प्रसाध्ये परिधिगुणागज्या॥२३॥
चक्रांशाप्ताऽन्त्यज्या तत्कोटिज्यैक्यमन्तरं केंद्रे।
मृगकर्काद्ये तत्कृतिदोर्ज्यावर्गैक्यतः पदं कर्णः॥२४॥
गज्याकोटिफलैक्यं मकरादौ त्वन्तरं कुलीरादौ।
तद्भुजफलवर्गयुतात् मूलं स्वाभीष्टकर्णो वा॥२५॥''

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त शीघ्रकर्णानयन कहा है। यथा—

''शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः॥४० $\frac{1}{2}$॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''अन्त्यफलज्याग्रात् स्यात् पदयोराद्यन्त्योरूपरिकोटिः।
द्वितृतीययोरधस्तात् तदन्तरैक्यं ततः कोटिः॥१३॥
तद्बाहुज्याकृत्योः संयोगपदं भवति कर्णः॥१४॥

कोटिज्यया द्विगुणयाऽन्त्यफलज्यया गुणितया यतोनायाः।
मृगकर्क्यादौ त्रिज्यान्त्यफलज्या कृतियुते पदं कर्णः॥८॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—
''कोटिज्यया द्विगुणितान्त्यफलोत्थजीवा प्रक्षुण्णयेन्दुभमृगादिषु हीनयुक्ता।
कृतयोर्तुतिः परफलोत्थगुणित्रिमौर्व्यास्तस्याः पदं भवति वा प्रतिवृत्त कर्णः॥
नीचोच्च संज्ञवलयस्य च विस्तरार्धकोटिज्यकाऽन्त्यफलजेनगुणेनकार्या।
युक्तोनहीनसहिता च पदक्रमेणे................॥
स्वकोटि जीवान्त्य फलज्ययोर्यो योगो मृगादावथ कर्कटादावि...॥''

इदानींमर्केन्द्वोः फलानयनं लघुज्यया लघुप्रकारेणाह—

**ये केन्द्रदोर्ज्ये लघुखण्डकोत्थे क्रमाद्रवीन्द्वोर्नखसंगुणे ते।
भक्ते त्रिखेशैः ११०३ मुनिसप्तवेदैः ४७७ यद्वा तयोर्मन्दफले लवाद्ये॥३०॥**

सूर्यचंद्र का लघुज्या द्वारा लघुप्रकार से फल आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य तथा चंद्र के केंद्रों की लघुखण्ड से प्राप्त दोर्ज्याओं को २० से गुणा करके क्रमशः ११०३ तथा ४७७ से भाग देने से उनका मंदफल प्राप्त होता है। सूर्य चंद्र के केन्द्रों की दोर्ज्या का साधन पूर्व कथित लघुखण्ड से करे यह विशेष कहा है।

उपपत्ति— सूर्य की बृहज्या से परमफल मान २°।१०'।३१'' = ७८३१ होता है। अनुपात किया कि १२० त्रिज्या में केंद्र दोर्ज्या तुल्य फल प्राप्त होता है तो ७८३१ में कितना अंश तुल्य होगा?

$$= \frac{\text{दोर्ज्या} \times ७८३१}{१२० \times ६० \times ६०} \times \frac{२}{२} \text{ अंश} = \frac{\text{दोर्ज्या} \times २}{११०.३} = \frac{\text{दोर्ज्या} \times २०}{११०३}।$$

अतः आचार्य ने केंद्र दोर्ज्या को २० से गुणा करके ११०३ का भाग देने के लिए कहा है, जो उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए परममंदफल ५°।२'।८'' = १८१२० विकला होता है। अतः $\frac{\text{दोर्ज्या} \times १८१२०}{१२० \times ६० \times ६०} \times \frac{२}{२}$ अंश $= \frac{\text{दोर्ज्या} \times २}{४७.२} = \frac{\text{दोर्ज्या} \times २०}{४७७}$।

अतः यहाँ आचार्य ने चंद्रमा के लिए दोर्ज्या को २० से गुणा करके ४७७ से भाग देने के लिए कहा है, जो उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्य ने कर्ण कुतुहल (स्वकृत ग्रंथ) में इसी प्रकार मंद फल साधन किया है।

भास्कराचार्य ने यहाँ जो भाजक, गुणक ज्ञात कये हैं, लल्लाचार्य ने अन्य प्रकार से गुणा भाग करके अन्य गुणक-भाजक ज्ञात किये हैं। साथ ही लल्लाचार्य की लघुज्या खण्ड, पिंड के लिए त्रिज्या १५० है तथा भास्कराचार्य की १२० है। भास्कराचार्य ने यहाँ कही हुई विधि लल्लाचार्य द्वारा उक्त विधि के अनुरूप ही कही है। दोनों के परिध्यंशों में भी अंतर है।

इदानीमर्केन्द्वोर्गतिस्पष्टीकरणम्—

तत्कोटिजीवा कृतबाणभक्ता रवेर्विधोर्वेदहताद्रिभक्ता।
लब्धाः कलाः कर्किमृगादिकेन्द्रे गतेः फलं तत् क्रमशो धनर्णम्॥३१॥

सूर्य चंद्र की गति स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि (मंद) की लघु कोटिज्या को ५४ से विभक्त करने से रविगति फल होता है और चंद्र की लघु कोटिज्या को ४ से गुणा करके ७ से विभक्त करने से चंद्र गतिफल प्राप्त होता है। इन गति फल को कर्क्यादि तथा मकरादि में केंद्र होने पर क्रमशः धन तथा ऋण करना चाहिये। इस प्रकार तात्कालिक स्फुट गति होती है।

उपपत्ति— वक्ष्यमाण प्रकार से कोटीफल गुणा मंद केंद्र भुक्ति इत्यादि द्वारा साधित सूर्य तथा चंद्रमा के परम गतिफल क्रमशः २।१४ तथा ६८।४८ कलादि क्रमशः होते हैं। इससे गतिफल ज्ञात करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि १२० लघु त्रिज्या तुल्य कोटिज्या हो तो रवि गतिफल २ क. १४ वि. = १३४ विकला होता है तो इष्ट कोटिज्या में कितना होगा ? =

$$\frac{१३४}{१२०} \times \text{केन्द्र कोटिज्या विकला} = \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या}}{५४'} \text{ कलादि।}$$

$$\text{इसी प्रकार चंद्र के लिए गतिफल} = \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या} \times ४१२८}{१२०}$$

$$= \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या}}{\frac{१२०}{४१२८} \times ६०} = \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या} \times \frac{४}{७}}{\frac{७२००}{४१२८} \times \frac{४}{७}} = \frac{\text{के. को.} \times \frac{४}{७}}{\frac{२८८००}{२८८९६}}$$

$= \text{के. कोटि.} \times \frac{४}{७}$ स्वल्पांतर से। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय)ने महासिद्धान्त के स्पषटाधिकार में

आचार्योक्त प्रकार विधि दी है। भास्कराचार्य ने रवि-चंद्र के परम गतिफल से के.कोटि. का गुणन तथा भाजक ज्ञात कर लिया है।

"मन्दफलं केंद्रवशात् स्वर्णं सूर्ये स्फुटो भवति।

कोटिफलघ्नी भुक्तिर्गज्या भक्ता कलादिफलम्।।१५।।

भुक्तौ कर्किमृगाद्ये केन्द्रे स्वर्णं भवेत् स्पष्टा।।१५ $\frac{१}{२}$।।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अधयय १३ में इसी प्रकार से अपने परिध्यंश तथा लघुज्या खण्डों द्वारा फल ज्ञात करना बताया है। भास्कराचार्य ने उसी का अनुसरण किया है।

इदानीं भौमादीनां शीघ्रफलानयनम्—

द्राग्दोः फलात् संगुणितात् त्रिमौर्व्या घाताद्भुजज्यान्त्यफलज्ययोर्वा।
कर्णोद्धृताद्यत् सममेव लब्धं तत् कार्मुकं शीघ्रफलं ग्रहाणाम्।।३२।।

भौमादि का शीघ्र फलानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रतिमंडलस्थ दोर्ज्या की नीचोच्च वृत्त परिणामित दोर्ज्याफल (भुजफल) से त्रिज्या को गुणा करके कर्ण से विभक्त करके उसका चाप ग्रह का शीघ्रफल होता है, अथवा भुजज्या (ज्या.शी.के) को अंत्यफल्ज्या से गुणा करके कर्ण से भाग देने से प्राप्त फल का चाप करने से ग्रह का शीघ्रफल होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि कर्णकोटि सूत्र का यदि कर्णाग्र पर भुजफल तुल्य अन्तर होता है तो त्रिज्याग्र पर कितना होगा? =

$\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{कर्ण}}$ = शीघ्रफलज्या। इसका चाप करने से शीघ्रफल प्राप्त होगा। उपपन्न हुआ।

अन्य प्रकार से क्योंकि $\frac{\text{दोर्ज्या} \times \text{अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ = भुजफल होता है।

अतः पूर्वोक्त से, शीघ्रफल = $\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{कर्ण}} \times \frac{\text{दोर्ज्या} \times \text{अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}}$

अर्थात्, शीघ्रफल = $\frac{\text{दोर्ज्या} \times \text{अंत्यफलज्या}}{\text{कर्ण}}$। उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटे. सि. के स्पष्टाधिकार के अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है।

"यलमन्ददोर्गुणौवा निजान्त्यफलजीव या हतौ भक्तौ।
कर्णव्यासार्धभ्यां फलधनुषी शीघ्रमन्दजे फले स्याताम्॥१७॥"

अर्थात् शीघ्र तथा मन्द केंद्र ज्या को स्व.स्व अन्त्यफलज्या से गुणा करके क्रमशः कर्ण तथा त्रिज्या से भाग देने से प्राप्त फलों की ज्या क्रमशः शीघ्रफल तथा मंदफल होता है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। स्पष्टाधिकार—
"तच्चापं मन्दफलं फलयोगान्तरवशात् धनमृणं वा।
शीघ्रफलं तद्गुणिताद् व्यासार्धात्कर्णलब्धधनुः॥१७॥"

कमलाकर भट ने सिद्धान्त तत्व विवेक के स्पष्टाधिकार श्लोक २०६ व २०७ में इन्हीं विषयों को स्पष्ट करके कहा है।

सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—
"त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णाविभाजितम्॥४१॥
लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शीघ्रयमिदं स्मृतम्॥४१$\frac{1}{2}$॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में इसी प्रकार मंद तथा शीघ्रफल कहा है। बीजासनाधिकार अध्याय १३ —
"स्पष्टेन वा स्वगुणकेन हता त्रिमौर्वी खाष्टोद्धृता भवति चान्त्यफलस्य जीवा।
सा दोर्ज्यया विगुणिता विहता त्रिमौर्व्या काष्ठी कृता भवति मन्दफलं ग्रहणाम्॥७॥
बाहुज्याकृतितः पदं श्रुतिरतः कर्णेन भक्तो वधो
बाहुज्यान्त्यफलज्ययोः फलधनुः स्याच्छीघ्रसंज्ञं फलम॥८॥

इदानीं प्रकारान्तरेण फलमाह—

त्रिज्याहता कर्णहता भुजज्या तच्चापबाह्वोर्विवरं फलं वा।
ज्ञेयोऽत्र बाहुः प्रतिमण्डलस्य चापेन शीघ्रान्त्यफलज्यकायाः॥३३॥

त्रिभं युतोनोनयुतं पदानि दोस्तेषु यातैष्यमयुग्मयुग्मे।३३$\frac{1}{2}$।

प्रकारान्तर से शीघ्रफलानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— भुजज्या को त्रिज्या से गुणा करके कर्ण से भाग देने से प्राप्त लब्धि का जो चाप होता है उसके तथा (भुजज्या) बाहु के अंतर तुल्य ग्रह का शीघ्र फल होता है। प्रतिमंडल में इसकी बाहु को ज्ञात करने के

लिए ग्रह के (परम) शीघ्रफल को तीन राशि में चार स्थानों पर जोड़ने तथा घटाने से प्रतिमंडल में पद होते हैं। यथा ९० + शी. अन्त्यफलज्या =प्रथमपद; ९० – शी.अ.फं.ज्या = द्वितीय पद; ९० – शी.अं.फ.ज्या = तृतीय पद तथा ९०+ शी.अं. फ.ज्या = चतुर्थ पद। अयुग्म पद में भुजज्या भुक्त तथा इसकी कोटि युग्म पद में भुक्त केंद्र होती है।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि कर्ण का उच्च रेखा से यदि कर्णाग्र पर **र इ** भुजज्या तुल्य अंतर होता है तो त्रिज्या अग्र पर कितना होगा? प्राप्त फल स्फुट ग्रह का उच्च रेखा से अंतर **क ल** ज्या रूप होगा। उसके चाप **क उ** का प्रतिमंडल में बाहु **र उ** से जो अन्तर है वह उसका शीघ्रफल **म र** होता है। यह प्रतिमंडल में बाहु है। प्रतिमंडल में ओज पदांत तक में इसका फल जितना उपचित होता है उतना ही फिर अपचित होता है।

शीघ्रफल, शीघ्र केंद्र अंशांतर के तुल्य होता है। यथा **म उ – र उ = म र** = शीघ्रफल। यहाँ **क उ = म उ** = शीघ्र केंद्रांश। अब **के र इ** तथा **के क ल** सामान्य त्रिभुजों में–

$$\frac{\text{क ल}}{\text{क के}} = \frac{\text{र इ}}{\text{के र}}$$

$$\text{या र इ} = \frac{\text{क ल} \times \text{के र}}{\text{क के}} = \frac{\text{ज्याशी.कें.} \times \text{त्रिज्या}}{\text{स्प. कें.}} = \text{स्पष्ट कें.ज्या।}$$

यहाँ त्रिज्या = कर्ण, अतः ज्या स्प. के. = ज्या शी. कें। अतः स्प. के. = शी. के। तथा शी.फ = ०। इसी प्रकार शी. कें. = उ व य; तथा स्प. के. = उ य, ग्राह्य किया है। इनका अंतर करने से फल प्राप्त होता है। अतः उ क व य च = प्रथम पद माना क्योंकि व च = अंत्य फल।

अतः ९०+अं.फ. = प्रथम पद; द्वितीय पद = ९० – अं. फ., ९० – अं.फ. = तृतीय पद; ९०+अं.फ. = चतुर्थ पद। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

आचार्य ने बुध का परम शीघ्रफल २१ अंश ३१ कला ४३ विकला कहा है। इसके प्रतिमंडल में पद करने से ९०°+२१°।३१'।४३''। = ३ रा.।२१°।३१'।४३''; ९०° – २१°।३१'।४३'' = २ रा.।८°।२८'।१७''; ९०° – २१°।३१'।४३'' = २ रा.।८°।२८'।१७'' तथा ९०°+२१°।३१'।४३'' = ३ रा.।२१°।३१'।४३'' पदों में चाप क्रमशः हुए। प्रतिमंडल में भुज करेंगे तब अयुग्म पद में गत तथा युग्म पद में ऐष्य होगा।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कर्णहृतं व्यासार्ध भुजज्यया गुणितमाप्तधनुराद्ये।
प्रोह्यभदलाद् द्वितीयेषड्राशियुतं तृतीयपदे॥१७॥
चक्रात् प्रोह्य चतुर्थे स्फुटोच्चयोरन्तरं स्वमन्दोच्चे।
क्षेप्यं शीघ्रेशोध्यं तत् स्पष्टः पूर्ववत् शेषम्॥१८॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"बाहुज्या त्रिभजीवया विनिहता कर्णोद्धृता
तादृक् पूर्वपदे भषट्क पतिता षड्भान्विता प्रोज्झिता।
चक्रादुक्तपदक्रमेण भवति स्पष्टोच्चयोरन्तरं
मंदोच्चे विनियोजयेदपनयेच्छीघ्रोच्चतः स्यात् स्फुटः॥"

इत्येवं फलानयनमुक्त्वेदानीं ग्रहस्पष्टीकरणमाह—

स्यात् संस्कृतो मन्दफलेन मध्यो मन्दस्फुटोऽस्माच्चलकेन्द्रपूर्वम्॥३४॥
विधाय शैघ्र्येण फलेन चैवं खेटः स्फुटः स्यादसकृत् फलाभ्याम्।
दलीकृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यां ततोऽखिलाभ्यामसकृत् कुजस्तु॥३५॥
स्फुटौ रवीन्दू मृदुनैव वेद्यौ शीघ्राख्यतुङ्गस्य तयोरभावात्।३५ $\frac{1}{2}$।

पूर्वोक्त फल आनयन करके ग्रह स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम ग्रह में मंदफल का संस्कार करने से मंद

स्फुट ग्रह होता है और मंद स्फुट ग्रह को शीघ्रोच्च में से शोधित करके शीघ्र केंद्र बनाकर उसके शीघ्रफल का संस्कार मंदस्फुट ग्रह में करने से वह स्फुट ग्रह होता है। पुनः उसको स्फुट मन्दोच्च में से विशोधित करके उसका फल प्राप्त करके उसको गणितागत मध्य ग्रह में संस्कार करने से ग्रह मंद्रस्फुट होता है। इससे पुनः शीघ्रकेंद्र ज्ञात करके उसका शीघ्रफल मंद स्फुट ग्रह में संस्कार करने से स्फुट ग्रह होता है। इस प्रकार जब तक करते रहे जब तक स्थिर मान न प्राप्त हो जावे। कुज में पहले मंद तथा शीघ्रफल के आधे का संस्कार करके फिर उसे मध्य ग्रह मान कर दोनों फल पुनः प्राप्त करके उनके पूरे का संस्कार करने से वह स्फुट होता है। रवि चंद्र मंद स्पष्ट ग्रह ही स्पष्ट ग्रह होते हैं, उनमें शीघ्रोच्च नहीं होता।

उपपत्ति– इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में बताई गई है।

विशेष— यदि यंत्र से वेध किया हुआ ग्रह, स्पष्ट मंदोच्च तुल्य दिखाई देता है तो सर्वदा गणितागत मध्यम ग्रह का वेधोपलब्ध ग्रह से स्पष्ट अंतर शीघ्रफल तुल्य दिखता है जिससे स्पष्ट मंदफल का संस्कार मध्यम ग्रह में करने से वह मंदस्पष्ट होता है। मंदस्पष्ट का शीघ्रफल ज्ञात करके मंदस्पष्ट ग्रह में उसका संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह होता है।

मंगल के स्पष्ट के लिए पहले गणितागत मध्यम ग्रह के शीघ्रफल का साधन पूर्व प्रकार से करे। इस फल के आधे का संस्कार मध्यम ग्रह में करने से वह गणितागत मन्द होता है। उसके पश्चात उसका मंदफल साधन करके उसके आधे का संस्कार शीघ्रफलार्ध संस्कृत मध्यम ग्रह में करे। इसमें फिर संपूर्ण मंदफल ज्ञात करके उसका संस्कार करने से वह मंद स्पष्ट ग्रह होता है। पुनः इसका शीघ्रफल ज्ञात करके उसका संपूर्ण संस्कार इस मंद स्पष्ट साधित ग्रह में करने से वह स्पष्ट होता है। सूर्य चन्द्र के लिए किसी आर्ष शास्त्र में उनके शीघ्रोच्च भगण नहीं कहे हैं, अतः इनमें शीघ्रफल का संस्कार नहीं करते, वे मंदफल संस्कार से ही स्फुट होते हैं।

सूर्य सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में सभी ग्रहों के लिए (सू.,चं. के अतिरिक्त) यहाँ बताये मंगल के लिए संस्कार के अनुसार ही संस्कार चार बार करने के लिए कहा है। यथा–

''मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोभौमादीनाथोच्यते।
शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुकमात्॥४३॥

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्र्यमेव च।।४४।।''

भास्कर (प्रथम) ने भी महाभास्करीय में सूर्य सिद्धान्त की भांति ही (सूर्य चंद्र बुध शुक्र के अतिरिक्त) अध्याय ४ में कहा है। यथा–

''स्वमन्दकेन्द्रसंप्राप्तफलचापार्धमिष्यते।
पदक्रमाद्यथा भानोः स्वमध्ये तद्विधीयते।।४०।।
शीघ्रकेन्द्रफलाभ्यस्तं विष्कम्भार्धं विभज्यते।
स्वकर्णेनाप्तचापार्धं कार्यं तस्मिन्विपर्ययात्।।४१।।
तस्मान्मन्दफलं कृत्स्नं कार्यमिष्टं स्वमध्यमे।
एवं भौमार्किजीवानां विज्ञेयाः स्फुटमध्यमाः।।४२।।
तद्विहीनचलोत्पन्नफलचापेन संस्कृतः।
स्फुटमध्यः स्फुटो ज्ञेयः शेषयोरुच्यते विधिः।।४३।।''

लघुभास्करीय अध्याय २ में भास्कर (प्रथम) ने बाह्य ग्रहों के लिए इसी प्रकार संस्कार करने के लिए श्लोक ३३ से ३६$\frac{१}{२}$ में कहा है।

लल्लाचार्य ने भी बाह्य ग्रहों के लिए संस्कार इसी प्रकार कहे हैं जिस प्रकार भास्कर (प्रथम) तथा सूर्य सिद्धान्त में कहे हैं। तथा भास्कर प्रथम की भांति बुध शुक्र के लिए अलग विधि कही है। यथा–

''शीघ्रोद्भवेन दलितेन फलने पूर्वं संस्कृत्य वा ग्रहमतो विदधीत मान्दम्।
तेनाखिनेन सकलेन च शीघ्रजेन प्राग्वत् स्फुटो भवति संस्कृतिभाग्ग्रह सः।।८।।''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में भास्करोक्त तथा लल्लाचार्य, भास्कर (प्रथम), सूर्य सिद्धान्तादि में उक्त दोनों ही विधियों को ग्रह स्फुटीकरण के लिए कही है। भास्कराचार्य ने मंगल के लिए अन्य आचार्यों की (दूसरी) विधि को अपना कर उसका आनयन अलग कहा है। स्पष्टाधिकार अध्याय ५ यथा —

''मन्दोद्भवं मध्यखगे समस्तं सुसंस्कृतं स्पष्टखगोहि मन्दः।
ततस्तदूनात् स्वचलाच्चलोत्थं तस्मिन् समस्तं त्वसकृत् स्फुटः स्यात्।।३।।
मध्यमश्चलदलार्धसंस्कृतो मन्दजेन दलितेन चैव हि।
मन्दजं सकलमेव मध्यमे शीघ्रजं च निखिलं परिस्फुटः।।४।।''

वटेश्वर ने इन दोनों श्लोकों में दोनों ही विधि कही है जिनका अर्थ उपरोक्त कथित ही है।

पंच सिद्धान्तिका के सौर सिद्धान्त के अध्याय १७ में भास्करोक्त प्रकार से सू चं बुध शुक्र के अतिरिक्त ग्रहस्फुट करना कहा है। यथा–

"मध्यात् पु (न) र्विशोध्य (त) स्मादवा (हुर्न) तस्य यच्चापम्।
तन्मध्यमे क्षयधनं कर्तव्यं मन्दकेन्द्रवशात्॥८॥
एवं स्फुटमध्याख्यं शीघ्रात् संशोध्य पूर्वविधिनैव।
आदिवदा (प्तं) चापं स्फुटमध्या (ख्ये) चयापच (यम्)॥९॥"

इदानीं गतिस्फुटीकरणमाह—

दिनान्तरस्पष्टखगान्तरं स्याद् गतिः स्फुटा तत्समयान्तराले॥३६॥
कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादिकेन्द्रे।
तया युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्॥३७॥
समीपतिथ्यन्तसमीपचालनं विधोस्तु तत्कालजयैव युज्यते।
सुदूरसंचालनमाद्यया यतः प्रतिक्षणं सा न समा महत्वतः॥३८॥

गति स्फुटीरकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— गत और आगत (आज और कल) दिनों के स्पष्ट ग्रहों का अंतर उसकी कलादि स्फुटगति उनके समयान्तराल में होती है। (यदि आज की गति से आगे (कल) की गति कम हो तो ग्रह की गति वक्र जाने। जितने काल में मध्यम ग्रह इस गति से जितना चलता है वह उसमें (आरंभ स्थान जोड़ देने से यह उसकी स्थूल गति होती है।) अब आचार्य सूक्ष्म तात्कालिक गति कहते हैं। उच्च में से चन्द्र गति घटाने से केंद्र गति होती है, इसी प्रकार ग्रहों की केंद्र गति होती है। मन्द केंद्र की कोटिफल को उसकी मंद केंद्र गति से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से प्राप्त लब्धि को कर्क्यादि में केंद्र होने पर ग्रह गति में युक्त करे तथा मकरादि में रहने पर घटाने से तात्कालिक मन्द स्फुट गति होती है।

चंद्र की तात्कालिक गति विशिष्ट प्रयोजन की होती है। तिथि अंत के समीप की चंद्र की गति उसकी तात्कालिक गति से ज्ञात करे। इसी प्रकार जिस काल की चन्द्र की गति हो उससे आगे अथवा पीछे आसन्न किसी काल की गति चंद्र की तात्कालिक गति से ज्ञात करे और चंद्रमा के दूर चालन अथवा तिथ्यन्त दूर स्थित होने पर चंद्र की गति उसकी दैनिक (स्थूल) गति से साधित करके लगभग तिथ्यन्त ज्ञात करे। (इस प्रकार स्थूल चंद्र गति साधन करके वास्तव तिथियन्त के समीप सूक्ष्म तात्कालिक गति से तिथियन्त साधित करे)।

क्योंकि चंद्रमा की दैनिक गति वृहद् होती है तथा क्षण-प्रतिक्षण बदलती रहती है समान नहीं रहती।

गतिफल उपपत्ति— आज तथा कल (पूर्व तथा पश्चात्) के दिन के ग्रह का अंतर उसकी दैनिक स्थूल गति होती है। ग्रहफल का अंतर गतिफल होता है। यहाँ उसका साधन करते हैं। पूर्व तथा पश्चात् के ग्रह के केंद्र का अंतर ग्रह की केंद्र गति होती है। इस की भुजज्या ज्ञात करने के लिए जो भोग्य खंड है उससे इसको गुणा करके २२५ से भाग देना होगा। अब तात्कालिक भोग्य खंड के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य कोटिज्या हो तो आद्य खंड २२५ तुल्य होता है, तो इष्ट कोटि में कितनी होगी? प्राप्त फल तात्कालिक

भोग्य खंड = $\frac{\text{मंदकेंद्र कोटिज्या} \times २२५}{\text{त्रिज्या}}$ होगा। अब इस फल को तात्कालिक स्फुट करने के लिए भोग्यखंड को केंद्र गति से गुणा करके २२५ से भाग देना होगा

$$= \frac{\text{केंद्र कोटिज्या} \times २२५}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{केंद्र गति}}{२२५} = \frac{\text{केंद्र कोटिज्या} \times \text{केंद्र गति}}{\text{त्रिज्या}}$$

यह आद्य तथा अग्रिम केंद्र की दोर्ज्या का अंतर है। इसका फल साधन करने के लिए इसको स्वपरिधि से गुणा करके ३६० से भाग देना होगा। अतः इसको स्वपरिध्यंश से गुणा करके ३६० से भाग देने से कोटिफल प्राप्त होगा। अतः आचार्योक्त ''कोटिफलघ्नी मृदुकेंद्र भुक्ति'' इत्यादि उपपन्न हुआ।

इस प्रकार आद्यतनश्वस्तन ग्रह फलांतर जो गति फल है, को कर्क्यादि केंद्र होने पर ग्रह में फल अपचीय मान होने से ऋण करे तथा तुलादि केंद्र होने पर उपचीय मान होने से धन करे। मकरादि में धनफल अपचीय मान होने से तथा मेषादि में ऋण फल उपचीय मान होने से ऋण करे। यह उपपन्न हुआ।

उपरोक्त को अग्र लिखित प्रकार लिख सकते हैं, यह वटेश्वरादि कथित प्रकार है—

प्रतिक्षण जो भिन्न-भिन्न गति होती है वह स्पष्ट गति है तथा जो समान रहती है बदलती नहीं वह मध्यम गति होती है। स्पष्ट गति दैनिक तथा तात्कालिक दो प्रकार की होती है। यही आचार्य अपने-अपने ग्रंथों में साधन करते हैं।

$$\frac{\text{मंद केंद्रज्या} \times \text{मंद अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{अद्यतन मंदफलज्या} = \text{मं.फ.ज्या.}$$

$$\frac{\text{मंद केंद्रज्या}' \times \text{मंद अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{श्वस्तन मंद फलज्या} = \text{मं.'फ.ज्या.}$$

दोनों का अंतर करने से—

$$\frac{\text{मं.अं.फ.ज्या}}{\text{त्रिज्या}} (\text{मं कें.ज्या}' \sim \text{मं.के.ज्या})$$

$$= \frac{\text{मं.अं.फ.ज्या} \times \text{मं.कें.ज्यान्तर}}{\text{त्रिज्या}} = \text{मंद फलांतर} = \text{मंद गतिफल।}$$

$$\text{परन्तु } \frac{\text{मं. के. गति}}{\text{प्रथम चाप}} \times \text{भोग्य खंड} = \text{मं. के.अन्तर}$$

यह मान उपरोक्त में प्रतिस्थापित करने से—

$$\frac{\text{मं. अं.फ.ज्या}}{\text{त्रि.}} \times \frac{\text{मं. के.गति} \times \text{भो.खं.}}{\text{प्रथम ज्या}} = \text{मं.ग.फल}$$

$$\text{लेकिन क्योंकि } \frac{\text{मं. अं.फ.ज्या}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{मं. परिधि}}{\text{भांश}} = \frac{\text{मं. परिधि}}{\text{३६०}}, \text{ यह मान}$$

ऊपर प्रतिस्थापित करने पर—

$$\frac{\text{मं. परिधि}}{\text{३६०}} \times \frac{\text{मं. के.गति} \times \text{भो.खं.}}{\text{प्रथम ज्या}} = \text{मंद गतिफल}$$

यह (ब्रह्मगुप्तादि) आचार्योक्त है।

$$\frac{\text{मं. अं.फ.ज्या} \times \text{मं.के.ज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{मं.फ.ज्या}$$

दोनों पक्षों की तात्कालिकिकरण करने से (चलन कलन गणित द्वारा)—

$$\frac{\text{मं. अं. फलज्या}}{\text{त्रि.}} \times \frac{\text{मं. के. कोज्या}}{\text{त्रि.}} \times \text{मं.कें.ग.}$$

$$= \frac{\text{मं.ग.फ.} \times \text{मं. फ. कोज्या}}{\text{त्रि.}}$$

$$\text{या } \frac{\text{मं.को.फल} \times \text{मं. के .ग}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{मं.फ.कोज्या} \times \text{मं.फ.ग.}}{\text{त्रि.}}$$

या मं.को.फ. × मं. के. ग = मं.फ. कोज्या × मं.फ.ग

$$\text{या मं.फ. गति} = \frac{\text{मं.को.फल} \times \text{मं. के .ग}}{\text{मं.फ.कोज्या}} \times \frac{\text{त्रि.}}{\text{त्रि.}}$$

$$= \frac{\text{भास्कर कथित मं.ग.फ.} \times \text{त्रि.}}{\text{मं.फ.कोज्या}}$$

अतः यहाँ से भास्कराचार्य तथा वटेश्वर, लल्लार्य आदि द्वारा कथित प्रकार में जो अंतर है वह स्पष्ट हो जाता है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने स्पष्टाधिकार अध्याय १ में वटेश्वर सिद्धान्त में इस प्रकार कहा है—

"ह्यः श्वस्तनाद्यतनयोर्विशेषजा सूर्ययोर्गतिः स्फुटगतिर्गतागता।
श्वस्तनाद्यतनयो रवेर्विद्योरेवमिष्टखचरस्य वा भवेत॥६६॥
मन्दतुङ्गगतिवर्जिता गतिः केंद्रभुक्तिरिह खेचरस्य सा।
दोर्गुणान्तर हताद्यजीवया भाजिताः स्वपरिणाहसंगुणा॥६७॥
भगणांशहृता फलं गतौ निजकेन्द्रे मकरादिके क्षयः।
धनमिन्दुगृहादिके स्फुटा श्रवणाग्रे खलु चान्तमानिका॥६८॥
निज केंद्र जह्यादोज भोज्यधनुर्गुणः शकलम्।
धनुषा ग्राह्या जीवा विषमपदे व्युत्क्रमाद् युग्मे॥७१॥
धनुरल्पे धुनर्हृते निजभोज्यगुणान्तराभ्यस्ते।
तन्मध्यशुद्धमौर्वी वृद्धिः परिधिसंगुणा हृताभांशैः॥७२॥
लब्धधनुः स्वमृणं वा गतौ स्फुटा ह्यस्तनाद्यतनान्तः॥७२$\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने जो स्थूलता मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेंद्र गति स्वल्पांतर से स्वीकार करके श्लोक ६६-६८ में कही थी उसको दूसरी विधि से आगे के ७१ से ७२$\frac{१}{२}$ श्लोक में शुद्ध करने का प्रयास किया है लेकिन फलज्यान्तर = फलगति मानने की स्थूलता यहाँ भी रह गई है। इन सबको भास्कराचार्य ने यहाँ से जानकर उनको शुद्ध करके श्लोक पढ़ा है।

ब्रह्मगुप्त, लल्लाचार्य ने भी वटेश्वराचार्य के अनुरूप ही कहा है।

मुंजाल आचार्य ने लघुमानसम् में प्रथम बार दैनिक ग्रह गति में मंद फलसंस्कार करने के लिए कोटिज्या गति का उपयोग किया था जिसको भास्कराचार्य ने यहाँ उक्त श्लोक में ग्रहण किया। लघुमानसम् स्पष्टाधिकार में—

"कोटिर्गतिघ्नी छेदाप्तं व्यस्तं गतिकलाः फलम्॥१४॥"

आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मन्दफलं केन्द्रवशात् स्वर्णं स्फुटो भवति।
कोटिफलघ्नी भुक्तिर्गज्याभक्ता कलादिफलम्॥११५॥
भुक्तौ कर्किमृगाद्ये केन्द्रे स्वर्णं भवेत् स्पष्टा। $\frac{1}{2}$।"

इदानीं गतेः शीघ्रफलमाह—

फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक्केन्द्रभुक्तिः श्रुतिहृद्विशोध्या।
स्वशीघ्रभुक्तेः स्फुटखेटभुक्तिः शेषं च वक्रा विपरीतशुद्धौ॥३६॥

शीघ्रगतिफल ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के जो शीघ्रफल अंश आवे उन्हें ९० में से घटाने से शेष अंश की ज्या को शीघ्र केंद्र गति से गुणा तथा शीघ्रकर्ण से भाग देने से प्राप्त लब्धि को शीघ्रोच्च गति में से शोधित करने से प्राप्त शेष स्फुट गति होती है। यदि वह न घटे तो विपरीत शोधित करने से वक्र गति होती है।

उपपत्ति— भास्कराचार्य कथित श्लोक को सूत्र रूप में निम्नलिखित प्रकार से लिख सकते हैं—

स्पष्ट गति = शीघ्रोच्च दैनिक गति –

$$\frac{\text{दो क्रमागत दिनों के केंद्रशों का अंतर} \times \text{शीघ्रफलकोज्या}}{\text{(शी) कर्ण}}$$

अर्थात् स्पष्ट गति = शीघ्रोच्च गति – स्फु. कें. गति

मुंजाल आचार्य ने प्रथम बार मध्यम गति में संस्कार कोटिज्या के रूप में स्थापित किया था। लघुमानसम् स्पष्टाधिकार—

"कोटिर्गतिघ्नी छेदाप्तं व्यस्तं गतिकलाः फलम्॥१४॥"

भास्कराचार्य ने इसी को गृहण किया। **मुंजालाचार्य** ने पुनः आगे ग्रह की स्पष्ट गति साधन करने के लिए सूत्र कहा। (चंद्र के अतिरिक्त के लिए)–

"व्यासं शीघ्रफलार्कांश (१२) भागोनं ग्रहशीघ्रयोः।
गत्यन्तरघ्नं छेदाप्तं व्यक्त्वा शीघ्रगतेर्गतिः॥१७॥"

इस श्लोक कथित बात को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

स्पष्ट गति = शीघ्रोच्च दैनिक गति –

$$\frac{(\text{शीघ्रोच्च गति} - \text{ग्र.म.गति})\left(\text{स्पष्ट व्यास} - \frac{\text{शीघ्रफल}}{१२}\right)}{\text{हार}}$$

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार के श्लोक ५० में जो कहा है उसको समीकरण रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

"मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झय शीघ्रोच्च भुक्तितः।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात् त्रिज्यान्त्यकर्णयोः॥५०॥"

अर्थात् स्पष्टगति = म.ग. +

$$\frac{(\text{शीघ्रोच्च गति} - \text{ग्र.म.गति})(\text{कर्ण} - \text{शी.क. कोज्या})}{\text{कर्ण}}$$

। भास्कर आचार्य के इस श्लोक ३९ की उपपत्ति के लिए अगला श्लोक ४० भी देखें।

इन्हीं से भास्कराचार्य ने अपना सूत्र लिखा है। सूर्य सिद्धान्त के सूत्र को भास्कराचार्य के सूत्र के तुल्य ई. बर्गेस ने अपनी सूर्यसिद्धान्त की टीका में बताया है।

भास्कराचार्य का यह सूत्र आर्य भट (द्वितीय) का महासिद्धान्त में कथित सूत्र ही है, उनका स्वयं का नहीं है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने भास्कराचार्योक्त सूत्र ही स्पष्टाधिकार में कहा है। यथा–

"बाहुफलं गज्याघ्नं दोर्ज्यान्त्यज्याबधं यद्वा।
कर्णहृतं तच्चापं शीघ्रफलं भवति खचरस्य॥२६॥
फलकोटिज्यानिघ्नि चलकेंद्रगतिं विभाजयेत् श्रुत्या।
फलहीना चल भुक्तिः स्पष्टा वक्रा विलोमशुद्धौ स्यात्॥२७॥"

इदानीं लल्लोक्तगतिफलस्य दूषणमाह—

धीवृद्धिदे चलफलं द्युगतेर्यदुक्तं
लल्लेन तन्न सदिदं गणकैर्विचिन्त्यम्।
केन्द्रे त्रिभे च नवभे च फलस्य नाशा-
द्भावात् तथा गतिफलस्य धनर्णसन्धौ॥४०॥

लल्लाचार्योक्त गतिफल सूत्र में दूषण—

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य ने अपने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में दैनिक शीघ्र गतिफल का जो कथन किया है वह सही नहीं है, इस पर गणक विचार करें। तीन (९०°) तथा नौ (२७०°) राशि केंद्र होने पर गतिफल का अभाव होता है तथा धन ऋण संधि पर गतिफलाभाव होने के स्थान पर भी फल उत्पादित होता है।

उपपत्ति— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में निम्नलिखित श्लोक कहा है। ग्रह गति स्पष्टाध्याय श्लोक ४५-४६—

"त्रिज्याहता ग्रहगतिर्मृदुकर्णहृद्वामन्दस्फुटा भवति तद्रहिताशु भुक्तिः।
त्रिज्याहता स्वचलकर्णहृताशुचापभोग्यज्यया विगुणिता विहृताद्यमौर्व्या॥
लब्धं त्यजेत् स्वचलतुङ्गगतेः सदैव शेषं स्फुटा भवति च ग्रह भुक्ति रेवम्।
लब्धं भवेद्यदधिकं चलतुङ्गभुक्तेर्व्यस्तं भुनक्ति खचरः प्रतिवासरं तत्॥

इस श्लोक को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं। (भास्कराचार्य के अनुसार)—

$$\text{शीघ्रगति फल} = \frac{(\text{शी.ग.} - \text{मं. स्फुट गति}) \times \text{त्रिज्या}}{\text{शी. कर्ण}} \times \frac{\text{शीघ्रफल भोग्यखण्ड}}{२२५}$$

यदि हम अनुपात करें कि आद्यखंड २२५ के लिए त्रिज्या (R) होती है तो भोग्यखंड [ज्या (शी.फ + २२५) – ज्या शी.फ.] के लिए कितनी होगी?

$$\text{लब्धि} = \left[\frac{\text{ज्या (शी.फ} + २२५) - \text{ज्या शी.फ.)}}{\text{त्रि.}}\right] \times \frac{\text{त्रिज्या}}{२२५}$$

$$= (\text{ज्या शी.फ. कोज्या } २२५ + \text{कोज्या शी.फ. ज्या } २२५ - \text{ज्या शी.फ.}) \times \frac{\text{त्रिज्या}}{२२५}$$

यह त्रिकोणमिति के सूत्र द्वारा लिखा है।

यहाँ कोज्या २२५ = १ तथा ज्या २२५ = २२५ मान लेने पर—

$$\left[\frac{\text{ज्या शी.फ} + २२५\,\text{कोज्या शी.फ.} - \text{ज्या शी.फ.}}{\text{त्रि.}}\right] \times \frac{\text{त्रि.}}{२२५}$$

$= \text{कोज्या शी.फ.}$

अतः लल्लाचार्य के सूत्र से भास्करोक्त सूत्र उपपन्न हो जाता है।

$$\text{शी.ग.फ.} = \frac{(\text{शी.ग.} - \text{मे.स्फु.ग.})\ \text{त्रि.}}{\text{शीघ्रकर्ण}} \times \text{कोज्या शी.फ.}$$

लल्लाचार्य ने ''आशु(फल)चाप'' कहा जिसे भास्कराचार्य ने ''आशुकेंद्रचाप'' समझा इसलिए भास्कराचार्य ने उसे दूषण दे दिया।

इदानीं वक्रतासंभवमाह—

द्राक्केन्द्रभागैस्त्रिनृपैः १६३ शरेन्द्रै-१४५
स्तत्त्वेन्दुभिः १२५ पञ्चनृपै १६५ स्त्रिरुद्रैः ११३।
स्याद्वक्रता भूमिसुतादिकाना-
मवक्रता तद्रहितैश्च भांशैः ३६०॥४१॥

वक्रता संभावित शीघ्र केंद्रांश—

सूर्य-प्रभा टीका— भौम (बु.गु.शु.श.) आदि के क्रमशः १६३°, १४५°, १२५°, १६५° तथा ११३° शीघ्र केद्रांश होने पर वे (क्रमशः) वक्रि होते हैं और इनको भांश (३६०°) में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य शीघ्र केद्रांश होने पर वे अनुवक्र अर्थात् मार्गी होते हैं।

विशेष— आचार्योक्त ही शीघ्र केंद्रांश ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वराचार्य ने कहे हैं। वटेश्वराचार्य के गुरु के शी. केंद्रांश १२६ है जो इन से एक अंश अधिक है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में—

''आग्न्यष्टिभि (१६३) रिषुमनुभिः (१४५) शरसूर्यै (१२५)
रिषुरसेन्दुभि (१६५) स्त्रिभवैः (११३)
शीघ्रान्त्यकेंद्रभागैर्भौमादिनां भवति वक्रम्॥४८॥
चक्रांशकैस्तदूनैरनुवक्रं तदधिकोनभागकलाः।''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में अध्याय में कहा है—

''रामाष्टिभिः (१६३) क्षितिसुतश्चलकेंद्रभागैर्वक्रीन्दुजोऽक्षमनुभि (१४५)
गुरुरङ्गसूर्ये (१२६)।
शुक्र शरर्त्तुशशिभि (१६५) शनिरग्निरुद्रै (११३)
श्चक्रुच्तुरैरकुटिलाः कथितास्त्वमीभिः ॥१६॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के कुजादिस्पष्टीकरणाधिकार में इसी प्रकार कहा है। यथा-

"गुणनृपतिभि (१६३) र्वाणाब्ध्येकैः (१४५) शराक्षिनिशाकरैः (१२५)
शररसकुभि (१६५) र्विश्वक्ष्माभिर्लवै (११३) श्चलकेन्द्रजैः।
भवति नियतं वक्रारम्भः कुजादिनभः सदां
पुनरपि भवेद्वक्रत्यागश्च्युतैस्तु भमण्डलात्॥२०॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"चलकेन्द्रांशा यतला (१६३) कढणाः (१४५) पठमा (१२५) त्तताः (१६६) कपिला (११३) वक्रारम्भे भौमात् मार्गा गतनात् (३६०°) परित्यागे॥३१॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है।

पैतामह सिद्धान्त में क्रमशः १६४, १४६, १२५, ११३ तथा वृद्ध वशिष्ट में १६४, १४४, १३०, १६३ तथा ११५ वक्र शी. केंद्रांश कहे हैं।

नीच स्थान से जितने अंतर पर वक्रांरभ होता है उससे विपरीत दिशा में उतने ही अंतर पर वक्र त्याग होता है अतः वक्रांरभ केंद्रांश को भगणांश ३६० में से घटाने से वक्रत्याग कर मार्गी होने के केंद्रांश होते हैं।

इदानीमुदयास्तसंभवमाह—

प्राच्यामुदेति क्षितिजोष्टदस्रैः २८
शक्रैः १४ गुरुः सप्तकुभिश्च १७ मन्दः।
स्वस्वोदयांशोनितचक्रभागै-३३२। ३४६।३४३।
स्त्रयो व्रजन्त्यस्तमयं प्रतीच्याम्॥४२॥
खाक्षैः ५० जिनैः २४ ज्ञसितयोरुदयः प्रतीच्या-
मस्तश्च पञ्चतिथिभिः १५५ मुनिसप्तभूभिः १७७।
प्रागुद्गमः शरनखैः २०५ त्रिधृतिप्रमाणै-१८३
रस्तश्च तत्र दशवन्हिभि ३१० रङ्गदेवैः ३३६॥४३॥

उदयास्त संभावना—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व दिशा में मंगल २८ अंश, गुरु १४ अंश तथा शनि १७ अंश तुल्य शीघ्र केंद्रांश होने पर उदित होते हैं। इन केंद्रांशों को चक्र (३६०°) में से घटाने से प्राप्त अंश तुल्य केद्रांश होने पर वे पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। बुध तथा शुक्र क्रमशः ५० तथा २५ अंश तुल्य शीघ्र क्रेंद्रांश होने पर पश्चिम दिशा में उदित होते हैं तथा क्रमशः १५५, १७७ तुल्य केंद्रांश होने पर वे पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। बुध शुक्र (के इन अस्त केंद्रांशों

को चक्र ३६०° में से घटाने से वे) क्रमशः २०५ तथा १८३ तुल्य केंद्रांश होने पर पूर्व में उदित होते हैं तथा ३१० और ३३६ शीघ्र केंद्रांश होने पर वे (क्रमशः) पूर्व दिशा में अस्त भी होते हैं।

उपपत्ति— स्फुट सूर्य तथा ग्रह में जब उदयास्त कालांश जो आचार्य ने आगे उदयास्ताध्याय में कहे हैं, तुल्य होते हैं तब उनका उदयास्त होता है। शीघ्र केंद्र मंदस्फुट ग्रह से जब जैसे मंगल के लिए २८ अंश होगा तब इन २८ अंश केंद्र का (शीघ्र) फल ११ अंश होगा। इतने से अधिक मंदस्फुट ग्रह को सूर्य में घटाने से २८° – ११° = १७° तुल्य सूर्य से दूर पृथ्वी से मं दिखेगा। यही कालांश मंगल के लिए उदयास्ताध्याय में कहे हैं। ३६० अंश में से केंद्रांश जो कहे हैं वे घटाने से प्राप्त अंश तुल्य सूर्य मंगल का अंतर होने पर वह अस्त होता है। इसी प्रकार गुरु के लिए शीघ्रकेंद्र १४ का (शीघ्र) फल ३ होता है। इतना अधिक तुल्य दूरी १४ – ३ = ११° पर पृथ्वी से गुरु सूर्य से दूर दिखाई देगा। ये ही गुरु के कालांश उदयास्ताध्याय में कहे हैं। इसी प्रकार शनि के लिए भी केद्रांश १७° – फल २° = १५° कालांश कहे हैं। इसी प्रकार बुध शुक्र के केद्रांश क्रमशः ५० तथा २४ होने पर उनके फलांश क्रमशः १३ तथा ११ प्राप्त होते हैं। यही इनके कालांश होंगे। पुनः इनके शीघ्र केंद्रांश क्रमशः १५५ तथा १७७ होने पर इनका शीघ्रफल उतना ही होगा अतः वे उतने कालांश पर पश्चिम में अस्त होंगे।

मध्यम सूर्य से स्थूल स्फुट ग्रह इन कथित क्षेत्रांशों के तुल्य अंतर पर होते हैं तब उन्हें स्थूल उदयास्त होना कहते हैं। इतने शीघ्रकेंद्र अंतर पर मंदस्फुट ग्रह तथा सूर्य होता है। गुरु, मंगल, शनि का शीघ्रोच्च होता है तथा उसी के आसन्न वे परम अस्त होते हैं। शीघ्रगति के कारण जब सूर्य उनसे श्लोकोक्त कालांश (उदयास्ताध्याय) तुल्य दूरी पर आगे चला जाता है तो वे उदित हो जाते हैं। अतः कालांश तुल्य स्पष्ट केंद्रांश में जो फल चाप होता है उसको कालांश में जोड़ने से उनके उदय केंद्रांश होते हैं। अनुपात करने से, त्रिज्या में कालांश तुल्य स्पष्ट केद्रांश की ज्या प्राप्त होती है तो अंत्यफलज्या में कितनी होगी? यह कालांश तुल्य स्पष्ट केंद्रांश ज्या से प्राप्त फलज्या प्राप्त होती है $= \frac{\text{अं.फ.ज्या} \times \text{कालांश ज्या}}{\text{त्रि.}}$ इसके चाप को कालांश में जोड़ने से बाह्य ग्रहों के उदय केंद्र प्राप्त होते हैं। जैसे कुज की अंत्य फलज्या = ८१, कालांश =

१७, कालांश ज्या = ३५, त्रिज्या = १२०। अतः उपरोक्त सूत्र द्वारा फलज्या

$$= \frac{\text{कालांश ज्या} \times \text{अं.फ.ज्या}}{१२} = \frac{३५ \times ८१}{१२}$$

। इसका चाप ११° हैं इसको कालांश १७ में युत्त करने से ११+१७ = २८ मंगल के उदय केंद्रांश प्राप्त हुए।

गुरु के कालांश ११°, शनि के १५° है। इनकी लघुज्या क्रमशः २२ तथा ३० है तथा अंत्य फलज्या ३३ तथा १६ है। अतः पूर्वोक्तानुसार शीघ्रफलज्या

$$= \frac{२२ \times ३३}{१२०}$$

= ६ का चाप ३° तथा शी.फ. ज्या शनि = $\frac{३० \times १६}{१२०}$ = ४ का चाप २° है।

अतः गुरु के केंद्रांश ११+३ = १४ तथा शनि के १५+२ = १७ होते हैं।

मध्यम रवि के तुल्य ही बुध तथा शुक्र होते हैं अतः सूर्य के तुल्य ही बुध तथा शुक्र को मंदस्पष्ट मान कर गणना करते हैं। इनका उदय पश्चिम दिशा में होता है। अतः इनके लिए स्पष्ट केंद्रज्या = $\frac{\text{कालांश ज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अंत्यफलज्या}}$ होता है। इसके चाप को कालांश में जोड़ने से प्रथम पद में पश्चिम उदय के केंद्रांश होते हैं तथा द्वितीय पद में वे सूर्य के अल्प गति होने से वहीं पर अस्त होते हैं। नीच स्थान में परम अस्त होकर वे पुनः तृतीय पद में शेष रात्रि में उदित होते हैं। चतुर्थ पद में वे अपने कालांश अंतर पर रहने पर अस्त होते हैं। अतः पूर्वोदय केंद्रांश = चाप – कालांश + १८०।

जैसे बुध की अंत्यफलज्या ४४, त्रिज्या = १२०, पश्चिमोदय कालांश = १३ तथा कालांश ज्या = २७ है।

$$\text{अतः } \frac{\text{कालांश ज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अंत्यफलज्या}} = \text{स्पष्ट केंद्रां.ज्या} = \frac{२७ \times १२०}{४४} = ७३।$$

अतः इसका चाप ३७° को कालांश १३ में युक्त करने से पश्चिमोदय केंद्रांश ३७+१३ ५० आर्योक्त हुआ।

पर्व य कालांश = १२ है अतः पूर्वोदय केंद्रांश = १८० – कालांश+चाप= २७+ (१८०–१२) = २७+१६८ = २०५ आचार्योक्त प्राप्त हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। स्पष्टाधिकार—

''अष्टयमै (२८) कृतचंद्रै (१४) र्मुनीन्दुभि (१७) भौमजीवरविजानाम्।
उदयः प्रागस्तमयस्तदूनचक्रांशकैः पश्चात्॥५२॥
खशरै (५०) र्जिनै (२४) र्ज्ञसितयोरिषुतिथिभि १५५ र्मुनिनगेन्दुभिः १७७ पश्चात्।
उदयास्तमयौ व्यस्तौ मण्डलभागैस्तदूनैः प्राक्॥५३॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''वस्वस्विभि (२८) र्युगकुभि (१४) र्नगचन्द्रमोभिः (१७)
प्राच्युद्गमः क्षितिजजीवशनैश्चराणाम्।
शीघ्राख्यकेन्द्रजलवैर्भगणांशशुद्धैरेभिः
पुनर्नियतमस्तमयः प्रतीच्याम्॥
द्राककेन्द्रजैः खविषयैश्च (५०) जिनेश्च (२४)
भागैरुद्गच्छतो बुधसितौ दिशि पाशपाणेः।
तस्यामपीषुतिथिभिः (१५५) स्वरशैलचन्द्रैः (१७७)
भागैस्तयोर्निगदितोऽस्तमयो ग्रहज्ञैः॥''

अवक्रवक्रास्तमयोदयोक्तभागाधिकोनाः कलिका विभक्ताः।
द्राक्केन्द्रभुक्त्याप्तदिनैर्गतैष्यैरवक्रवक्रास्तमयोदयाः स्युः॥४४॥

उदयास्त दिवस—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के शीघ्रकेंद्रांश तथा पूर्वश्लोक पठित ग्रह (वक्रवक्रया उदयास्त) केंद्रांश के अन्तर की कलायें बनाकर प्राप्तफल में शीघ्रकेंद्र गति से भाग देने से प्राप्तफल ग्रह के उदयास्त दिवस अथवा वक्रऽवक्र दिवस प्राप्त होते हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है—

''मन्दफल स्फुट युक्त्यूनशीघ्रभुक्त्या हृता दिवसाः॥४८॥''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ४ में आचार्योक्त ही कहा है—

''एष्यातीत कलाभ्यः स्वकेन्द्रभुक्त्या दिनानि स्युः॥१३॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त ही कहा है। कुजादिस्पष्टाधिकार—

''उदयास्तविलोमयानसीम्नामधिकोनाः कलिका हृता दिनानि।
मृदुसंस्कृतया ग्रहस्य गत्यारहिताशूच्चजभुक्तिलिप्तिकाभिः॥२६॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है।

स्पष्टाधिकार–

''न्यूनाभ्यधिका लिप्ता भक्ता निजकेंद्रभुक्ति लिप्ताभिः।
लब्धैरेष्य गतदिनैर्वक्राद्याः स्पष्टतां यान्ति॥३४॥''

इदानीं स्फुटग्रहान्मध्यग्रहानयनमाह—

स्फुटग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्य कृत्वा फले मन्दचले यथोक्ते।
ताभ्यां मुहुर्व्यस्तधनर्णकाभ्यां सुसंस्कृतो मध्यखगो भवेत् सः॥४५॥

स्फुट ग्रह से मध्यम ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— स्फुट ग्रह को मंदस्पष्ट ग्रह मान कर शीघ्रोच्च को घटाकर शीघ्र केंद्र ज्ञात करके यथोक्त प्रकार से उसका शीघ्रफल ज्ञात करे तथा उसका संपूर्ण का विलोम संस्कार स्पष्ट ग्रह में करे। इस प्रकार बार-बार तब तक करे जब तक फल स्थिर न हो जावे। इस प्रकार मंद स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है। फिर मंदोच्च में से मंद स्पष्ट ग्रह घटाकर मंदकेंद्र से मंदफल साधन करे तथा उस संपूर्ण फल को मंद स्पष्ट ग्रह में विलोम संस्कार करे (मंदफल धन हो तो ऋण तथा ऋण हो तो धन)। इस प्रकार बार-बार जब तक करे जब तक स्थिर फल प्राप्त न हो। इस प्रकार मध्यम ग्रह स्पष्ट होता है।

उपपत्ति— ग्रह के शीघ्रोच्च तथा स्फुट ग्रह का अंतर मंद स्पष्ट ग्रह के लिए उपयुक्त शीघ्रकेंद्र नहीं होता है अतः उसको मंद स्पष्ट तुल्य मानकर उसके शी.फ. का आनयन कहा गया है तथा उसका संस्कार मंद ग्रह से स्फुट ग्रह ज्ञात करने की विधि के विपरीत (विलोम) करना चाहिये।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है—

''शीघ्रात्स्पष्ट ग्रहोनाच्चलफलमखिलं खेचरः स्यादनष्टे
व्यत्यासात्स्पष्टसंज्ञे धनमृणमसकृत् स्यान्मृदुस्पष्टसंज्ञः।
तस्मान्मन्दोच्चहीनान्मृदुफलमपि च व्यत्ययादेव कृत्स्नं।
तत्रानेष्टक्षयस्वं गदितवसकृन्मध्यमोऽन्यश्च तस्मात्॥१८॥''

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है।

यथा—

"स्वोच्चाद्विशोध्य कृत्वा प्राग्वत् फलमृणधनं विपर्यस्तम्।
कार्यमनष्टस्पष्टे पुनः पुनर्निश्चलो मध्यः॥२८॥"

इदानीं पलभाज्ञानमाह—

**क्रियतुलाधरसंक्रमपूर्वतोऽयनलवोत्थदिनैर्विषुवद्दिनम्।
मकरकर्कटसंक्रमतोऽयनं द्युदलभा विषुवद्दिवसेऽक्षभा॥४६॥**

पलभा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अयनांश की कला में रवि भुक्ति (गति) से भाग देने से प्राप्त फल दिन तुल्य पूर्व में (सूर्य की) मेष या तुला संक्रांति होती है (निरयण)। इसी प्रकार एतत् दिवस पूर्व मकर तथा कर्क संक्रांति होती है। उन विषुवद् दिनों में मध्यान्ह समय पर (१२ अंगुल) शंकु की छाया को पलभा कहते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"अयनांशसंस्कृत इने गोलादिस्थे दिनार्धभे ये स्तः।
तद्योगार्धं विषुवच्छाया तच्छङ्कुवर्गैक्यात्॥३॥
मूलं विषुवत्कर्णस्तत्क्रा (१२) ढयोनाहतेः पदं भा वा।"

अन्य आचार्यों ने भी पलभा की यही परिभाषा दी है।

सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्ना. में—

"एवं विषुवती छाया स्वदेशे या दिनार्द्धजा॥१२॥
दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा।"

इदानीं पञ्चज्यासाधनमाह—

**युक्तायनांशादपमः प्रसाध्यः
कालौ च खेटात् खलु भुक्तभोग्यौ।
जिनांशमौर्व्या १३९७ गुणितार्कदोर्ज्या
त्रिज्यो ३४३८ द्धृता क्रान्तिगुणोऽस्य वर्गम्॥४७॥
त्रिज्याकृतेः ११८१९८४४ प्रोह्य पदं द्युजीवा
क्रान्तिर्भवेत् क्रान्तिगुणस्य चापम्।
अक्षप्रभासंगुणितापमज्या
तद्द्वादशांशो भवति क्षितिज्या॥४८॥
सा त्रिज्यकाघ्नी विहता द्युमौर्व्या चरज्यकास्याश्च धनुश्चरं स्यात्।४८½।**

पांच ज्या साधन—

सूर्यप्रभा टीका— जहाँ ग्रह होता है वहाँ उसकी क्रांति साधन करने के लिए उसके भुक्तांश (Longitude) तथा अयनांश के योग तुल्य (अर्थात् सायन) ग्रह लेते हैं। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त पर ग्रह के उदय से पूर्व अथवा पश्चात् का समय ज्ञात करने के लिए सायन ग्रह (ज्ञात करते हैं) लेते हैं।

सायन रवि की भुजज्या को परमक्रांति ज्या १३९७ से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से रवि की इष्ट क्रांतिज्या होती है। इसका चाप क्रांति होती है। त्रिज्यावर्ग (=११८१९८४४) में से इष्ट क्रांतिज्या के वर्ग को घटा कर शेष का मूल लेने से द्युज्या (अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध) प्राप्त होती है। इसकी दिशा क्रांति ज्या की दिशा के अनुरूप होती है।

क्रांतिज्या को पलभा से गुणा करके बारह से भाग देने से क्षितिज्या (कुज्या) होती है। इस क्षितिज्या को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है तथा चरज्या का चाप चर कला (असु) होता है।

उपपत्ति— विषुवद् तथा क्रांतिवृत्त का याम्योत्तर अंतर क्रांति होता है। इनके संपात बिंदु (मेष तथा तुला) पर क्रांति का अभाव होता है। संपात से तीन राशि अंतर (कर्क तथा मकर) पर परम क्रांति २४ अंश तुल्य होती है। अतः संपात बिन्दु से आरंभ करके क्रांतिसाधन करते हैं। राशि का उदयास्त मेषारंभ से पूर्व अयनांश तुल्य अंतर पर होता है। अतः सायन अंश युक्त ग्रह की भुक्त भोग्य क्रांति काल के लिए कहा गया है। यदि त्रिज्या तुल्य भुजज्या में (२४ अंश) जिनांश ज्या तुल्य क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट ज्या में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से प्राप्तफल क्रांतिज्या, विषुवद् वृत्त में तिर्यगरूप में होती है। क्रांतिज्या भुज तथा त्रिज्याकर्ण के वर्गों का अंतर का मूल अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध साधित होता है। इसको द्युज्या कहते हैं। कुज्या के लिए द्वादश अंगुल कोटि में पलभा तुल्य भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या कोटि में कितनी होगी? प्राप्तफल क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्र वृत्त की ज्या रूप कुज्या होती है। इसका धनु बनाने के लिए इसको त्रिज्या वृत्त में परिणित करते हैं। यदि द्युज्याव्यासार्ध में इतनी कुज्या होती है तो त्रिज्याव्यासार्ध में कितनी होगी? प्राप्तफल चरज्या होती है। इसका धनु चर होता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"जिनभागज्या गुणिता सूर्यज्या व्यासदलहृता लब्धम्।
इष्टापक्रमजीवा विषुवदुदग्दक्षिण सवितुः॥५५॥
इष्टापक्रमवर्ग त्रिज्यावर्गाद्विशोध्य शेषपदम्।
विषुवदुदग्दक्षिणतः स्वाहोरात्रार्धविषकम्भः॥५६॥
क्रान्तिज्या विषुवच्छायया गुणा द्वादशोद्धृता क्षितिजा।
स्वाहोरात्रेऽनष्टा व्यासार्धेनाहता भक्ता॥५७॥
स्वाहोरात्रार्धेन क्षयवृद्धिज्याधनुश्चरप्राणाः।
ते षड्हृता विनाडयो विनाडिका नाडिकाः षष्ट्या॥५८॥"

सूर्यसिद्धान्त में द्युज्या का आनयन कुछ भिन्न प्रकार से बताया है, स्फुट क्रांति से ज्या तथा उत्क्रमज्या का साधन करके त्रिज्या में से उत्क्रमज्या को घटाने से अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध द्युज्या प्राप्त होता है। शेष का आनयन आचार्योक्त प्रकार ही से है। यथा स्पष्टाधिकार—

"परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः (१३९७)।
तदगुणा ज्या त्रिजीवाप्ता (३४३८) तच्चापं क्रांतिरुच्यते॥२८॥
क्रांतिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता।
त्रिज्यागुणाऽहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजा ऽसवः॥६१॥"

भास्कर (प्रथम) ने **महाभास्करीय अध्याय ४** में क्रांतिसाधन के लिए आचार्योक्त सूत्र ही कहा है लेकिन उन्होंने १३९७÷३४३८ = $\frac{१३}{३२}$ ले लिया है। यथा—

"त्रयोदशहता जीवा त्रिस्फुटस्य विवस्वतः।
द्वात्रिंशता हृता क्रांति परिशेषस्तु पूर्ववत्॥२५॥

तथा अध्याय ३ में क्रांतिज्या, द्युज्या, अक्षज्या तथा चर साधन आचार्योक्त ही बताया है। यथा—

"इष्टज्यां मुनिरन्ध्र पुष्कर शशि क्षुण्णां सदा संहरेद्
व्यासार्धेन भवेदपक्रमगुणस्तात्कालिकस्तत्कृतिम्।
विषकम्भार्धकृतेर्विशोध्य च पदं द्युव्यासखण्डं विदुः
स्वेष्टक्रान्तिहतं पलं प्रविभजेल्लम्बेन जीवा क्षितेः॥६॥

व्यासखण्डगुणितं क्षितेर्गुणं संहरेद् दिवसजीवया पुनः।
काष्ठितं च यदवाप्तमत्र तु प्राच्यते चरदलं सतां वरैः ॥७॥''

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''जीवा क्रान्तिज्याघ्नी गज्या भक्ताऽपमज्या स्यात ॥११॥
रव्यपमज्या पलभाघातः परभाजितः कुज्या।
क्रांतिज्यावर्गोनाद्गज्यावर्गात् पदं द्युज्या ॥१७॥
द्युज्या भक्तः कुज्या गज्याघातश्चरज्या स्यात्।
तच्चापकलाः प्राणास्तैर्निघ्नी मध्यमाभुक्तिः ॥१८॥''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

क्रांतिज्या आनयन—

''क्रांन्तिः परा जिनांशाः पराक्रमज्या जिनांशकज्योक्ता।
तद्गुणितऽर्कभुजज्या त्रिगुणहृदिष्टापमज्या स्यात् ॥१॥

अध्याय ४ में द्युज्या आनयन—

''क्रांतिज्यावर्गोनास्त्रिज्यावर्गात्पदं स्यात्।''१॥

अध्याय ५ में कुज्याआनयन—

''विषुवच्छाया गुणिता क्रान्तिज्याऽर्कोद्धृता वा (कुज्या) स्यात् ॥१॥''

अध्याय ८ में चरज्या आनयन—

''कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता चरार्धजीवा स्यात ॥१॥''

इस प्रकार वटेश्वर ने अनेकों विधियों से इन पांच ज्याओं तथा अग्रादि को साधन करने के लिए अलग-अलग पूरे-पूरे अध्याय दिये हैं।

अथ प्रकारान्तरेण चरानयनमाह—

स्वदेशजस्तच्चरखण्डकैर्वा लघुज्यकावद्रविदोस्त्रिभागात् ॥४९॥
मेषादिराशित्रितयस्य यानि चराण्यधोऽधः परिशोधितानि।
तानि स्वदेशे चरखण्डकानि दिङ्नागसत्र्यंशगुणैः १०।८। $\frac{10}{3}$ विनिघ्नी ॥५०॥
पलप्रभा तोयपलात्मकानि स्थूलानि वा स्युश्चरखण्डकानि।
स्थूलं चरं चाम्बुपलात्मकं तैस्तत्प्राणचापं यदि वापि सूक्ष्मम् ॥५१॥

प्रकारांतर से चर आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— स्वदेश के तीन चर खण्ड ज्ञात करने के लिए

लघुज्या प्रकार से सायन रवि के लिए तीन राशियों की ज्या ज्ञात करे, फिर पूर्व श्लोक ४७ – ४८ – ४८$\frac{१}{२}$ द्वारा चर ज्ञात करे। मेषादि तीन राशियों (३०°, ६०°, ९०°) के चर को अधो अद्यः स्थापित करके घटाने (द्वितीय में से प्रथम, तृतीय में से द्वितीय) से प्राप्त तीन चर खण्डों को क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ से गुणा करके स्वदेश की पलभा से गुणा करने से वे स्वदेश के स्थूल चर खण्ड होते हैं। चाप में ६ का गुणा देने से प्राण प्राप्त होते हैं जिन की ज्या ज्ञात करे। ये सूक्ष्म होने से वही इनके चाप होते हैं।

उपपत्ति— एक अंगुल पलभा मान कर एक, दो तथा तीन राशियों की पृथक्-पृथक् चर प्राण ज्ञात करके ६ से विभाजित करने से प्राणों को पलात्मक बनाकर उनको अधोअद्यः स्थापित करके घटाने से क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ उत्पन्न होते हैं। एक अंगुल पलभा के चर असु क्रमशः एक राशि के ६०, दो राशि के १०८ तथा तीन राशि के १२८ होते हैं। इनको अद्यो अधः घटाने से क्रमशः ६०, (१०८–६०) = ४८, (१२८–१०८) = २० प्राप्त हुए। इनमें ६ से भाग देने से क्रमशः १०, ८, १०/३ प्राप्त होते हैं।

सूर्य का चर इसके स्वक्षितिज तथा उन्मंडल के मध्य भाग के उदय काल के तुल्य होता है। अतः निरक्ष में राशि उदय काल में स्वदेशी चरखण्ड घटाने से स्वदेशी राशि उदयकाल आ जाते हैं। मेष राशि का चर, मेष राशि द्वारा स्वक्षितिज तथा उन्मण्डल से ऊपर उदय होने में लगने वाला काल है। क्योंकि मेष राशि इन दोनों क्षितिजों पर एक साथ उदित होती है अतः मेष राशि का चर मेष के अंतिम बिंदु का पहले स्वक्षितिज फिर (बाद में) उन्मंडल तक उदय का काल है। इसी प्रकार दो राशियों का चर काल मेष तथा वृषभ दोनों के पूर्ण उदय होने का काल है। अतः इसमें से मेष का उदय काल घटाने से वृषभ राशि का उदय काल आता है। इसी प्रकार तीन राशि का उदयकाल मेष, वृष तथा मिथुन तीनों का पूर्ण उदय होने का चरकाल है। अतः इनमें से प्रथम दो राशि का उदय काल घटाने से मिथुन राशि का उदयकाल शेष रहता है।

अतः अनुपात किया कि यदि एक अंगुल पलभा के इतने चर खंड प्राप्त होते हैं तो इष्ट पलभा के कितने होंगे? इस प्रकार इष्ट स्थान की पलभा के चरखंड प्राप्त होते हैं। उनकी ज्या ज्ञात कर लेते हैं और यही (लघु होने से) स्वल्पांतर से उनके धनु होते हैं। अतःआचार्य ने "तत्प्राण चापं यदि वापि

सूक्ष्मम्'' कहा है। चर खण्डों की ज्या करने के लिए आचार्य ने लघुज्या साधन वासना के अनुसार करने को कहा है। वहाँ लघुज्या के नो खण्ड है जो तीन खण्ड के तुल्य है। अतः तीन-तीन खंड पर एक-एक भुज होगा अतः इस प्रकार तीन खंड होंगे। इसीलिए आचार्य ने ''रवि दोस्त्रि भागात्'' कहा है। कर्क्यादि में चरखंड उपचीयमान होने के कारण चर खंड को धन करते हैं तथा तुलादि में अपने क्षितिज से उन्मंडल नीचे हो से चरखंड को ऋण करते हैं।

विशेष— भास्कर (प्रथम) ने **महाभास्करीय** के अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है। परन्तु वंही बात कुछ अलग ढंग से कही है।

''जिना दशघ्ना यमरन्ध्रशालिनो निशाकराष्टौ गुणिताः पलाङ्गुलैः।
हृताश्चतुर्भि क्रिय-गो-नरान्तजा भवन्ति निः श्वासलवाः चरोद्भवाः॥८॥''

अर्थात् ''चौबीस का दश गुणा (अर्थात् २४०), १६२ तथा ८१ को पलभा अंगुल से गुणा करके ४ से विभक्त करने से मेषादि तीन राशियों के चर असु प्राप्त होते हैं।

यहाँ आचार्य ने जो २४०, १६२ तथा ८१ गुणांक बताये हैं वे एक अंगुल पलभा स्थान के मेषादि तीन राशियों के चरासु के चतुर्गुणा हैं। यथा ६०×४, ४८×४, २०×४। इनको २४ से विभक्त करने से ये क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ चरपल होते हैं। यही भास्कराचार्य (द्वि) ने गुणा करने के लिए अंक कहे हैं। यहाँ असु को ६ से विभक्त करने से पल प्राप्त होते हैं। आचार्य ने यहाँ श्लोक में ४ से अलग से विभक्त करने को कहा है अतः ६×४=२४ का भाग दिया है।

पंचसिद्धान्तिका अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''विंशति' –'रष्टिः सार्धा' पादोनाः सप्त 'चाजपूर्वाणाम्।
विषुवच्छायागुणिताः क्रमोत्क्रमाच्च रविनाड्योऽर्धे॥१०॥''

यहाँ २०, १६$\frac{१}{२}$ तथा ६$\frac{३}{४}$ गुणांक कहे हैं जो आचार्योक्त के तुल्य (स्वल्पांतर) ही हैं। ये १०, ८$\frac{१}{४}$ तथा ३$\frac{३}{८}$ के तुल्य है जो स्वल्पांतर से १०, ८, ३$\frac{१}{३}$ के तुल्य हैं।

ब्रह्मगुप्त ने **खंडखाध्याय** के **अध्याय** १ श्लोक २१ में १५६/१६, ६५/८ तथा१०/३ च.खं. गुणांक कहे हैं जो स्वल्पांतर से १०, ८, १०/३ के तुल्य ही हैं।

"नवतिथयो (१५९)ऽष्टि (१६) विभक्ताः
पंचरसा (६५) वसु (८) हता दश १० त्रिहताः।
विषुवच्छायागुणिताः स्वदेशजाश्चरदलविनाडयः॥"

मुंजालाचार्य ने लघुमानस त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त खंड ही कहे हैं —

"नख (२०) घ्नी विषुवच्छाया स्वाक्षांशों (१/५) ना त्रि (३) भाजिता।
उदग् विषुवदाद्यर्क भुजराशि गुणाश्चरे॥२२॥"

यहाँ आचार्य ने कहा है कि पलभा को २० से गुणा करो; फिर इस गुणनफल में से इसका ५ वाँ भाग हीन करो; गुणनफल में ३ का भाग दो। इस से स्वस्थान के तीन चर खंड प्राप्त होते हैं।

आचार्योक्त कथन को इस प्रकार कह सकते हैं पलभा × २०; पलभा × २० − $\frac{\text{पलभा} \times २०}{५}$; $\frac{\text{पलभा} \times २०}{३}$ तीन चरखंड होते हैं (अर्थात् प.×२०; प.×२०−४ = प.१६; तथा $\frac{\text{पलभा} \times २०}{३}$। इनमें दो का भाग देने से प.×१०, प.×८, प.×$\frac{१०}{३}$ भास्कराचार्योक्त प्राप्त होते हैं।

इदानीं दिनरात्रिमानमाह—

चरघटीसहिता रहिताः क्रमात्तिथिमिता घटिकाः खलु गोलयोः।
भवति तद्द्युदलं निजसावनं खगुणतः पतितं रजनीदलम्॥५२॥

दिनरात्रि मान—

सूर्य-प्रभा टीका— १५ (पंद्रह) घटी में चरघटी को उत्तर गोल में योग करने से तथा दक्षिण गोल में हीन करने से स्वदेश का सावनदिनार्ध प्राप्त होता है। दिनार्ध को ३० घटी में से घटाने से रात्रिर्ध होता है (दोनों गोलों में)

उपपत्ति— उन्मंडल तथा याम्योत्तर वलय के मध्य १५ घटी का समय होता है। उत्तर गोल में उन्मंडल के नीचे स्वक्षितिज होता है अतः चरार्धकाल तुल्य १५ घटी से अधिक उत्तर गोल में दिनार्ध होता है। दक्षिण गोल में इससे विपरीत स्थिति होने के कारण वहाँ चरार्ध को १५ घटी में से घटाया जाता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"दिनमान रात्रिघटिकाश्चरार्धघटिकाभिरुत्तरे गोले।
पञ्चदश युक्तहीना याम्ये हीनाधिका द्विगुणाः॥६०॥"

सूर्य-सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में भी आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहानि पृथक् स्थिते।
स्वारोहात्र-तुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते॥६२॥
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनज्ञपे।
विक्षेपयुक्तोनितया क्रान्त्या भानामपि स्वके॥६३॥"

मुंजालाचार्य ने भी लघुमानस त्रि.प्र. में यही कहा—

"व्यस्तं चरविनाडिभिः खाग्नय संस्कृता दिनम्।
मध्याह्नान्नतनाड्यः स्युर्दिनार्धद्युगतान्तरम्॥२५॥"

महाभास्करीय में भास्कर (प्रथम) ने आचार्योक्त ही कहा है। अध्याय ४—

"उदक्चरार्धसंयुक्तः पादोऽहोरात्रसम्भवः।
दिनार्ध दक्षिणे हीनं रात्र्यर्ध तद्विपर्ययात्॥२८॥"

इदानीं ग्रहाणां चरकर्माह—

चरघ्नभुक्तिर्द्युनिशासु भक्ता तयोनयुक्तः खचरो विधेयः।
क्रमादुदग्दक्षिणगोलगेऽर्के सूर्योदये व्यस्तमतोऽस्तकाले॥५३॥

ग्रहों के चर कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— चर खण्ड असु से ग्रह (गति) भुक्ति को गुणा करके २१६५६ से विभक्त करने से प्राप्त कलादिफल को, ग्रह यदि उत्तर गोल में हो तो ग्रह में ऋण करे तथा दक्षिण गोल में उदित हो तो धन करे। ग्रहों के अस्त काल में विपरीत क्रिया करे और सूर्य (सूर्योदयास्त पर) के लिए भी ऐसे ही करें।

उपपत्ति— लंकोदय कालिक ग्रह को स्वोदयकालिक करना है। उन्मंडल तथा स्वक्षितिज का अंतर ग्रह अहोरात्र वृत्त में चरार्धासु होते हैं। अतः अनुपात किया कि यदि अहोरात्र असु २१६५६ में ग्रह गतिकला पाते हैं तो चरासु में कितनी पायेंगे? प्राप्तफल कला रूप को उत्तर गोल में उन्मंडल से स्व क्षितिज नीचे रहने से, उन्मंडल कालिक ग्रह में से घटाने से वह स्वक्षितिजोदय कालिक ग्रह बन जाता है। लंका का जो क्षितिज है वह अन्य देश का उन्मण्डल है।

दक्षिण गोल में उन्मंडल से स्वक्षितिज ऊपर स्थित होने से पूर्व प्राप्त चरार्ध घटी/असु संबंधि ग्रह गतिकला को उन्मंडल कालिक ग्रह में जोड़ने से स्वक्षितिजोदय कालिक ग्रह होता है। अस्तकाल में यह स्थिति विपरीत होने से संस्कार इसके विपरीत करते हैं।

यहाँ आचार्य ने दिनरात्रिमान के २१६५९ तुल्य उसु से विभक्त करने के लिए कहा है यह ६० घटी के तुल्य है। अतः चर घटी को ६० से भी विभक्त कर सकते हैं। चर असु में २१६५९ असु से भाग देने से भी तथा चर घटी में ६० घटी से भाग देने से भी कलादिफल प्राप्त होता है। अहर्गण से साधित ग्रह लंकाक्षितिजोदय कालिक होता है। देशांतर संस्कार से उन्मंडल कालिक होता है, यहाँ प्रक्रिया द्वारा ग्रह को स्वक्षितोदय कालिक किया है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''चरदलघटिका गुणिता भुक्तिः षष्ट्याहृता कलाद्याप्तम्।
ऋणमुदयेऽस्तमये धनमुत्तरगोलेऽन्यथा याम्ये॥५९॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के स्पष्टाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''ग्रहगति चर खण्डप्राणपिण्डाभिघातादहरसुभिरवाप्तं ताश्च लिप्ता ग्रहेषु।
धनमृणमुदये स्युर्याम्यसौम्येऽर्क गोले न दिनरजनिमध्ये व्यस्तमस्ते विधेयम्॥६९॥''

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''(चरकला) तच्चाप कलाः प्राणास्तेनिघ्नी मध्यमा भुक्तिः॥१८॥
चक्रकलाप्ता लिप्ताः सायन भानौ तुलाजपूर्वस्थे।
उदये स्वमृणं ताः स्युर्व्यस्ताश्चास्ते ग्रहेषु निखिलेषु॥१९॥
स्फुटरव्युदयेऽस्ते वा स्पष्टीकरणोचिताः स्युरिन्द्राद्याः।
नैतद्द्युरात्रिदलयोः प्राणाश्चक्रांशभाजिता नाडयः॥२०॥''

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय में आचार्योक्त ही कहा है—

''चरप्राणहता भुक्तिरहोरात्रासुभाजिता।
उदयास्तमयोः शुद्धि क्षेपश्चोत्तरगे रवौ॥२६॥
वृयत्ययो दक्षिणे भानावन्येषामनुपाततः।
फलं च तद्वशाद्वृद्धि क्षेपः शोधनमेव वा॥२७॥''

पंच सिद्धान्तिका अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"देशान्तरनाडीभ्यश्चरनाड्यर्धं क्षयस्तु पूर्वाऽर्धे।
चक्रस्याऽर्धे चान्त्ये वृद्धिस्तद्भोगमपि जह्यात्॥१५॥"

अथ लङ्कोदयसाधनमाह—

एकस्य राशेर्बृहती ज्यका या द्वयोस्त्रिभस्यापि कृतीकृतानाम्।
स्वस्वापमज्याकृतिवर्जितानां मूलानि तासां त्रिगुणा ३४३८ हतानि॥५४॥
स्वस्वद्युमौर्व्या विभजेत् फलानां चापान्यधोऽधः परिशोधितानि।
क्रमोत्क्रमस्थानी निरक्षदेशे मेषादिकानामुदयासवः स्युः॥५५॥

राशियों के लङ्कोदयमान साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— एक, दो एवं तीन राशि अंत की वृहद्ज्या के वर्गों में से उनकी स्वस्व क्रांतिज्या के वर्गों को घटाकर प्राप्त शेष के मूल को त्रिज्या से गुणा करके स्वस्व द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्त चाप फलों को अधो अधः शोधित करने से (तृतीय में से द्वितीय तथा द्वितीय में से प्रथम) लंका पर क्रमशः मेषादि तीन राशियों के उदय असु प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— राशियों के उदित होते समय क्रांतिवृत्त तिरछा स्थित होने के कारण तीनों राशियों के तीन क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। मेषान्त की ज्या क्रांतिवृत्त में कर्ण होती है, उसकी क्रांति की ज्या लंका क्षितिज में भुज होती है। इनके वर्गों के अंतर का मूल मेषांत पर अहोरात्र वृत्त की कोटि होती है। ऐसे ही दो राशि की ज्या कर्ण, उसके क्रांति भुज तथा इनके वर्गांतर का मूल वृषांत पर अहोरात्र वृत्त की कोटि होती है। इसी प्रकार तीन राशि की ज्या कर्ण, परम क्रांतिज्या भुज तथा परमाल्प द्युज्या कोटि होतीं है। इन कोटि के चाप बनाने के लिए इनको त्रिज्या वृत्त में परिणामित करते है, जिसके लिए इनको त्रिज्या से गुणा करके स्वस्वद्युज्या से भाग देने से इनके चाप प्राप्त होते हैं। प्रथम मेष राशि का, दूसरा मेष तथा वृषभ दोनों का तथा तीसरा मेष से मिथुन तीन राशि का होता है। इनको अधोअधः घटाने से प्रत्येक राशि का मान प्राप्त हो जाता है।

विशेष— पंचासिद्धान्तिका अध्याय ४ में आचार्योक्त विधि ही कही है। यथा–

"(राशिज्या)ऽपक्रमज्या (कृ)तिवि (श्ले) षमूल (हत) वि(स्ता)रात्।
द्यु(व्या) स (ह्) ता (च्चापं) 'दिग्ध्नं' राश्यु (द्ग) मविनाड्यः॥२६॥"

वटेश्वर सिद्धान्त में वटेश्वराचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ८ में आचार्योक्त कहा है—

"क्रान्तिज्या राशिज्या कृतिविवरपदैर्हता त्रिभज्याप्ताः।
स्वस्वद्युज्ययाऽप्तधनुषो विवराण्यथवा निरक्षराश्युदयाः॥२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ज्यावर्गात् क्रान्तिज्या वर्गोनात्तत्पदाहता त्रिज्या।
स्वहोरात्रार्धहताचाधश्चापान्तराण्यथवा॥१६॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"तत्क्रांतिज्याकृतिविरहिताच्छिञ्जिनी वर्गतो वा मूलं यत् स्यात् त्रिभवनगुणस्ताडितस्तेनभक्तः।
स्वद्युज्याभिविहितधनुषां तत्फलानामधोऽधः संशुद्धानांमितिरसुमयास्ते निरक्षोदयाः स्यु॥"

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

**कीटादिराश्यन्तजकोटिजीवास्त्रिज्या ३४३८ गुणाः स्वस्वदिनज्ययाप्ताः।
चापीकृताः प्राग्वदधो विशुद्धाः कीटादिकानामुदयासवो वा॥५६॥**

प्रकारान्तर से लंकोदय—

सूर्य-प्रभा टीका— कर्क्यादि राशियों की कोटिज्या को त्रिज्या से गुणा करके स्वस्व दिनज्या (द्युज्या) से विभक्त करने से प्राप्तफल के चापों को अधोअधः घटाने से कर्क्यादि के उदय असु प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त में वृषभ के अंत से कर्क के अंत तक एक सूत्र बांधने से उस सूत्र का आधा एक राशि की ज्या होती है। मेषांत से सिंह राशि अत तक सूत्र बांधने से उस सूत्र का आधा दो राशि की ज्या होती है तथा मेष तथा तुला के आरंभ पर सूत्र बांधने से उसकी आधी तीन राशि की ज्या होती है। इस प्रकार वृषांत, मेषांत तथा मीनांत पर अहोरात्र वृत्त परिणत चापान्तर कर्क्यादि के उदय मान होते हैं। यह गोल से स्पष्ट है।

कर्क्यादि तीन राशि अंत की जो कोटिज्या है वह एक, दो, तथा तीन राशि की ज्या १७१९, २९७७, ३४३८ क्रमशः होती है। इनको त्रिज्या से गुणा करके स्वस्व द्युज्या से विभक्त करना है। वृषभ के अंत में जितनी दुज्या है वही कर्क्यान्त की ३२१८ है। मेषांत पर द्युज्या है वही सिहांत की ३३६६ है। कन्यांत

पर द्युज्या है वही त्रिज्या ३४३८ है। इनसे भाग देने से प्राप्तफल के चापों को अधोअद्य: घटाने से कीटादि राशि के निरक्ष देश पर उदय असु होते हैं। दो तथा एक राशि की कोटिज्यायें एक तथा दो राशि की क्रमश: ज्यायें होती हैं।

इदानीं पुन: प्रकारान्तरेणाह—

मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या ३१४१ क्षुण्णा हृता: स्वस्वदिनज्यया वा।
चापीकृता: प्राग्वदधो विशुद्धा मेषादिकानामुदयासव: स्यु:॥५७॥

पुन: प्रकारांतर से लंकोदय मान साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— मेषांत, वृषभांत तथा मिथुनांत राशियों की ज्या से मिथुनांत द्युज्या परमक्रांतिज्या (३१४१) से गुणा तथा स्वस्वद्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल के चापों को अधो अध: विशुद्ध करने से मेषादि राशियों के लंकोदय उसु प्राप्त होते हैं।
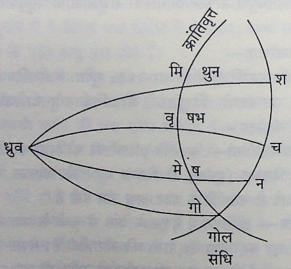
उपपत्ति— चित्र में गोन = मेषनिरक्षोदय। न च = वृषाराशि निरक्षोदय। चश = मिथुन निरक्षोदय। ध्रुमे = मेषांतद्युज्या चाप, ध्रुवृ = वृषांतद्युज्या चाप, ध्रुमि = मिथुनांतद्युज्या चाप = परमाल्पद्युज्याप

चापीय त्रिभुज ध्रुगोमे में $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{मेषांतज्या}}{\text{मेषांतद्युज्या}}$ = मेष निरक्षोदय ज्या।

इसी प्रकार ध्रु गो वृ त्रिभुज में $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{वृषांतज्या}}{\text{वृषांतद्युज्या}}$ = ज्या (मेष+वृष) उदय।

ध्रु गो मी त्रिभुज में $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{परमाल्पद्युज्या}}$ = (मे.+वृ+मि) उदय ज्या।

इन तीनों का चाप करने से एक,दोनों, तीनों राशियों के उदयमान प्राप्त होंगे। इन्हें अधोअधः घटाने से मेष,वृषभ तथा मिथुन राशि के उदय मान प्राप्त होंगे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में अष्टम अध्याय त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योकत्त ही कहा है। यथा—

"अजवृष मिथुनान्तज्या मिथुनान्तद्युज्यया हता भक्ताः।
स्वरूपद्युज्यायाप्तधनुरन्तराणि लङ्कोदयप्राणाः॥१॥"

सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः॥४२॥
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक्।
स्वाधोधः परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः॥४३॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"मिथुनाहोरात्रार्ध क्रियाद्यहोरात्रदलहृतं गुणितम्।
तज्ज्याभिराप्तचापान्तराणि लङ्कोदयप्राणाः॥१५॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्त्यद्युज्याविनिघ्नाः क्रियवृषमिथुनज्या हृताः स्वद्यु-
मौर्व्या प्राणानां चापलिप्ता विरचितविवराः स्युनिरक्षोदयास्ते।"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"द्रेष्काणज्याः सर्वाः मिथुनान्तद्युज्या निघ्न्यः॥३८॥
स्वस्वद्युज्या भक्तास्तच्चापकला भावन्त्यसवः।
तोऽधो विशोधिताः स्युनिरक्षदेशोदयाः क्रमशः॥३९॥"

अर्थात् १०-१० अंश (द्रेष्काण) की ज्या ६ राशि के बीच १८ द्रेष्काण ज्या होंगी। सभी द्रेष्काण ज्या को मिथुनांतद्युज्या अर्थात् परम क्रा. ज्या ३१४१ से गुणा करके प्रत्येक राशि की स्वस्वद्युज्या से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि की चाप कला असु प्राण को अधो अधः विशोधित करने से क्रमशः निरक्ष देश पर राशियों के उदय असु होते हैं।

भास्कर (प्रथम) ने **महाभास्करीय** अध्याय तीन में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''शशिकृतशशिरामैराहता राशिजीवाः स्वकदिवसगुणार्धैर्भाजिताः काष्ठिताश्च।
पतितसमतिरिक्ताः पूर्व चापैरजाद्यैर्विषुवदुदयराशिप्राणपिण्डाः क्रियाद्याः॥६॥''

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद** ग्रंथ में त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''मेषस्य गोः पृथगतो मिथुनस्य मौर्व्या क्षुण्णो गृहत्रय भवो द्युगुणो विभक्तः।
स्वद्युज्यया फलधनुंषि विशेषितानि लङ्कोदयासव इति प्रवदन्ति सन्तः॥८॥''

अथ निष्पन्नांस्तानसूनाह—

तेऽभ्राद्रिभूपा १६७० गुणगोऽद्रिचन्द्राः १७९३
सप्ताग्निनन्देन्दुमिता १९३७ अथैते।
क्रमोत्क्रमस्थाश्चरखण्डकैः स्वैः
क्रमोत्क्रमस्थैश्च विहीनयुक्ताः॥५८॥
मेषादिषण्णामुदयाः स्वदेशे तुलादितोऽमी च विलोमसंस्थाः।
उदेति राशिः समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तं समुपैति तेन॥५९॥

राशि उदयअसु मान—

सूर्य-प्रभा टीका— मेषादि तीन राशियों के (सायन) लंकोदय मान क्रमशः १६७०, १७९३ तथा १९३७ असु होते हैं। इन चर खण्डों को क्रम-उत्क्रम से स्थापित करके स्वस्थान के चर खण्डों को इनमें क्रम उत्क्रम से हीन और युक्त करने से स्वस्थान के मेषादि छः राशियों के उदय असु होते हैं। इन छः राशियों के उदय असुओं को विलिम क्रम से स्थापित करने से तुलादि छः राशियों के उदय असु होते हैं। उदित होने वाली राशि के अदयमान के तुल्य उससे सातवीं राशि का अस्त समय होता है।

उपपत्ति— निरक्ष तथा स्वदेश का उदयान्तर चर है। मेषोदय का आरंभ निरक्ष तथा स्वदेश पर एक साथ होता है। मेषांत पहले स्व क्षितिज पर तथा उसके पश्चात उन्मंडल पर होता है, अतः चरखण्ड को लङ्कोदय मान में से कम करने से स्वदेश का मेषोदय मान होता है। इसी प्रकार वृषभ तथा मिथुन का होता है। कर्क्यादि में चरखण्ड उपचीय मान होने से उनको धन करने से फल प्राप्त होते हैं। तुलादि में उन्मण्डल स्वक्षितिज के नीचे स्थित होने से चरखण्ड

धन करते हैं। मकरादि में चरखण्ड अपचीय मान होने से उसको ऋण करने से फल प्राप्त होता है। यह गोल को देखने से स्पष्ट होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"स्वचरासुभिरुनयुताः क्रमोत्क्रमस्थै क्रमोत्क्रमस्थास्ते।
उदयप्राण व्यस्ताश्चार्क तात्कालिकं कृत्वा॥१७॥"

आचार्य ने लंकोदय मान के अंक नहीं कहे हैं केवल विधि कही है। क्योंकि शायद वह यह जानते थे कि परमक्रांति का मान बदलता रहता है। अतः इनके मान स्थिर नहीं रह सकते हैं। इसी प्रकार सभी आचार्योक्त मान में अंतर है।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में लंकोदय मान भास्कराचार्य से बहुत भिन्न कहे हैं लेकिन शेष बातें भास्करोक्त ही कही है। त्रिप्रश्नाधिकार अष्टम अध्याय यथा—

"ते चङ्कागाङ्ग भुवो (१६७९)ऽङ्गगोऽगशशिनः (१७९६) शराग्निगोचन्द्रः (१९३५)।
व्यस्तास्तथा चरदलोनयुता निजधाम्नि षट्सु चोत्क्रमतः॥५॥
निजसप्तम उदयासुभिरस्तं राशिः समेति नियमेन।
लङ्कोदयासुभिः स्वैर्याम्योत्तरवृत्तमायाति॥६॥"

भास्कर (प्रथम) ने **महाभास्करीय** के त्रिप्रश्नाध्याय ३ में राशि लंकोदय असु भास्कराचार्य के अधिक आसन्न कहे हैं तथा अन्य बातें आचार्योक्त कही हैं। यथा—

"खनगरसशशाङ्काः पञ्चरन्ध्राद्रिरूपा विषयशिखिनवैकास्ते च दृष्टा विधिज्ञैः।
चरदलपरिहीणा योजिता व्युत्क्रमेण प्रतिविषयसमुत्थास्तूदया मेषपूर्वाः॥१०॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** में त्रिप्रश्नाधिकार में लंकोदयमान भिन्न कहे हैं लेकिन उदयमान ज्ञात करने की विधि आचार्योक्त ही कही है। यथा—

"मभिधाः (५४९) मममाः (५५५) मतमाः (५६५) मदनाः (५८०) मधुहा (५९८) त्कथा (६१७) त्रीचा (६२६)।
चढिजाः (६४८) चरमाः (६२५) प्राणाश्चक्रादिमपदभवा द्दकाणानाम्॥४०॥
व्यस्ताः कुलीरतोऽमी स्वचरासुभिरुनसयुताः कार्याः।
क्रमजोत्क्रमजैरुदयानिजदेश्याः स्युर्घटाद्व्यस्ताः॥४१॥"

अर्थात् मेषोदयमान (५४९+५५५+५६५=) १६६९,

वृषभोदय मान (५८०+५९८+६१७ =) १७९५

तथा मिथुनोदयमान (६२६+६४८+६२५=) १८९९ होते हैं। शेष पूर्वोक्त प्रकार ही से।

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानसम त्रिप्रश्नाधिकार में उदयमान पलों में कहे हैं तथा क्रम उत्क्रम से राश्योदयमान आचार्योक्त प्रकार से कहा है। यथा--
''वसुभान्य (२७८)ङ्ग्रोदग्रा (२९९) स्त्रिदन्ता (३२३) श्च क्रमोत्क्रमात्।
तत्तचरगुणार्धोना मध्यषट्केऽन्यथोदयाः ॥२३॥'' ये मान पंचसिद्धांतिकोक्त हैं। यहाँ मेषोदय २७८ पल = १६६८ असु; वृषभोदय २९९ पल = १७९४ असु, मिथुनोदय ३२३ पल = १९३८ असु हैं। ये मान आचार्योक्त मान के अधिक निकट हैं।

सूर्यसिद्धान्त में राशिउदयसुभिन्न कहे हैं लेकिन उनके साधन की विधि आचार्योक्त प्रकार ही कही है। यथा त्रिप्रश्नाध्याय—
''खगाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः (१६७०) (१७९५) शरत्र्यङ्कहिमांशव (१९३५)।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥४४॥
व्यस्ताव्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः।
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः॥४५॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धीद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में लंकोदय मान भिन्न कहे हैं लेकिन अन्य उदय मान विधि आचार्योक्त ही कही है। यथा–

''तेचासवो गगनभूधरषट्कचन्द्राः (१६७०) पञ्चाङ्क सप्तशशिनो
(१७९५)ऽक्षगुणाङ्कचन्द्राः (१९३५)।
व्यस्तास्तथा निजचरार्धविहीनयुक्ताः
षण्णं क्रमात् स्वविषये पुनरुत्क्रमाच्च॥९॥''

उद्गच्छतः परिमितिर्भवनस्य यास्यादस्तंगते जलपतेर्दिशि सास्तराशेः।$\frac{1}{2}$।''

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका में लंकोदय मान पलों में कहे हैं लेकिन क्रम उत्क्रम प्रकार राशिउदयमान की विधि आचार्योक्त ही है। यथा–
'''वसुमुनिपक्षा' 'व्येकं शतत्रयं' 'त्रिद्विकाग्नय (श्चाङ्का) (तु)।
परतस्त एव वामाः षड्डुत्क्रमात्ते तुलाद्यर्धे ॥३०॥''

यहाँ हमने देखा सभी आचार्योक्त राशि उदय मान भिन्न-भिन्न हैं। इसका

एक कारण तो परमक्रांति मान भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न होना है तथा दूसरा कारण भास्कराचार्य ने अगले श्लोक में कहा है।

इदानीं नैपुण्यमाह—

क्षेत्राणां स्थूलत्वात् स्थूला उदया भवन्ति राशीनाम्।
सूक्ष्मार्थी होराणां कुर्याद्दृक्काणकानां वा।।६०।।

कुशलता से सूक्ष्म मान ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— राशि उदय के (चाप) क्षेत्र मान बडे होने के कारण उनके उदय मान स्थूल प्राप्त होते हैं। इनके मान सूक्ष्म ज्ञात करने के लिए होरा अथवा द्रेष्काण भागों से उदय मान ज्ञात करने चाहिये।

उपपत्ति— जैसे राशि उदयमान पूर्व में ज्ञात किये हैं उसी प्रकार होरोदय के उदय मान ज्ञात करे। उत्तर गोल के १५ अंश के भाग करने से उनके छः होराभाग तीन राशि अंत तक प्राप्त होंगे जिनकी छः ज्यायें होंगी। इनको पृथक-पृथक् मिथुनांत द्युज्या ३१४१ से गुणा करके स्व-स्व द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल के धनु को अधोअधः शुद्ध करने से (पांचवे को छठे में से, पांवचें में से चौथे को इस प्रकार) प्राप्त शेष होरादि उदय के असुमान होंगे। इसी प्रकार उत्तरगोल में दश अंश के भाग करने से द्रेष्काण भाग के उदय असु प्राप्त होंगे। ये नो भाग मिथुनांत तक होंगे। जिस प्रकार होरांशों के चर खण्डों को अधोअधः घटाया है, उसी प्रकार क्रिया करके द्रेष्काण के चरखंड ज्ञात करे।

इनको क्रम-उत्क्रम से स्थापित करके जोड़-घटाने से स्वदेश के होरोदय तथा द्रेष्काणोदय होते हैं। मेषादि से कन्यान्त तक १२ होरोदय तथा इनका व्यत्क्रम तुलादि से १२ होरोदय, इस प्रकार एक दिन में २४ होरा होंगे और द्रेष्काण एक-एक दिनार्ध में ९ होने से संपूर्ण अहोरात्र में ३६ होंगे।

सायन सूर्य के अंशों में १५ का भाग देने से गत होरा संख्या होगी। शेष वर्तमान होराके अंश भुक्त होंगे। इनको १५ में से घटाने से भोग्य अंश होंगे। भोग्य अंश को स्वदेश के होरोदय मान से गुणा करके अशुद्ध होरा उदयमान से भाग देने से प्राप्तफल को अशुद्ध से पूर्व उदित हो चुके होरा संख्या को १५ से गुणा करके गुणन फल में युक्त करने से लग्न के अंश होते हैं। इस लग्न के इष्ट काल का साधन करे। इसी प्रकार द्रेष्काणोदय से लग्नसाधन करे। यहाँ १५ के स्थान पर १० से गुणा भाग करे। इस प्रकार होरोदय तथा द्रेष्काणोदय से साधित लग्नादि के तथा उदयान्तर के कर्म सूक्ष्म होते हैं, अन्यथा स्थूल होते हैं।

यहाँ जो आचार्य ने लग्नानयन की विधि बताई है वह सूर्य सिद्धान्तादि में बताई पूर्ण राशि उदयमान के अनुसार लग्न साधन विधि के अनुरूप है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

"द्रेष्काणज्याः सर्वा मिथुनान्तद्युज्यया निघ्न्यः ॥३८॥
स्वस्वद्युज्याभक्तास्तच्चापकला भवन्त्यसवः।
तोऽधो विशोधिताः स्युर्निरक्षदेशोदयाः क्रमशः ॥३९॥
तत्कालर्रवेरयनसंस्कृतमूर्त्तेर्द्दकाण भोगलवाः।
तदुदयहतायनहृता भोग्याः प्राणाः भवन्तितान् जह्यात् ॥४२॥
इष्टप्राणेभ्योऽन्यानुदयांश्चाथाऽवशेषयेनबधात्।
अविशुद्धोदय लब्धा भागास्तात्कालिके रवौ क्षेप्याः ॥४३॥
शुद्धोदय भागाश्चासौ लग्नं संस्फुटं भवति।
रात्रौ भगणार्धयुताद्भानोर्भोग्यं विधाय संशोध्यम ॥४४॥
भोग्यः शुध्यति न यदा प्रश्नासुन्काहतिं तदा विभजेत्।
भानुद्दकाणप्राणैर्लब्धांशाढ्यो रविर्लग्नम् ॥४५॥
अयन संस्कृतभानोर्भोग्यं तद्वाद्विलग्न भुक्तं च।
क्षेप्यं मध्योदयजप्राणयुतं तत्तनोर्भवेत् समयः ॥४६॥
एकस्मिन् द्दक्काणे लग्नार्कौचेत् तदान्तरांशहताः।
पीनै भक्ता उदयासव इष्टास्ते भवन्त्यसवः ॥४७॥"

इस प्रकार आर्यभट ने बहुत विस्तार पूर्वक वह सब कुछ कहा है जिसका भास्कराचार्य ने मात्र इशारा किया है।

इदानीं भुजान्तरमाह—

भानोः फलं गुणितमर्कयुतस्य राशेर्व्यक्षोदयेन खखनागमही १८०० विभक्तम्।
गत्या ग्रहस्य गुणितं द्युनिशासुभक्तं स्वर्णं ग्रहेऽर्कवदिदं तु भुजान्तराख्यम् ॥६१॥

भुजान्तर संस्कार—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य के भुजफल को जिस राशि में सूर्य हो उस राशि के निरक्षोदय काल से गुणा करके एक राशि कला मान १८०० से विभक्त करने से प्राप्तफल को पुनः ग्रहगति से गुणा करके अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से जो फल प्राप्त हो उसको उस ग्रह में सूर्य के भुज फल के धन-ऋण के अनुसार धन-ऋण करे।

सूत्र रूप में भुजांतर संस्कार =

$$\pm \frac{\text{सू.भुजफल} \times \text{सूर्य स्थित राशि निरक्षोदय असु} \times \text{दैनिक ग्रहगति}}{१८०० \times २१६५९}$$

उपपत्ति— यहाँ बताये अनुसार भुजांतर संस्कार करके सूर्योदय कालिक ग्रह को स्फुट स्र्योदय कालिक किया जाता है। मध्यम तथा स्फुट सूर्य का अंतर सूर्य का भुजांतर होता है। यहाँ सूर्य के मंदफल को असु में बनाने के लिए अनुपात किया कि यदि एक राशि कला १८०० उदित होने में निरक्ष देश में इतने असु लगते हैं तो फल कला में कितने लगेंगे? लब्धि फल असु में होता है। फिर दूसरा अनुपता किया कि यदि अहोरात्र असु में इतनी ग्रह गतिकला होती है तो अभीष्ट मंद भुजफल कला असु में कितनी होगी? ये कला मध्य सूर्य से पूर्व स्फुट सूर्य होने पर ऋण तथा बाद में होने पर धन करने होंगे।

विशेष— **सूर्यसिद्धान्त** में रविमंदफल कला को रविमंदफल असु के स्वल्पांतर से तुल्य मान कर सूत्र कहा है। शेष सभी बात आचार्योक्त ही है। स्पष्टाधिकार—

"अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत्॥४६॥"

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में **ब्रह्मगुप्ताचार्य** ने सूर्य सिद्धान्तानुसार ही रविमंदफल कला को रविमंदफल असु माना है। अतः दोनों की गणना में अशुद्धता है। स्पष्टाधिकार यथा—

"अर्कफलभुक्तिघाताद् भगणकलाप्तं भुजान्तरं रविवत्।
स्फुट भुक्तिरतीतैष्यग्रहान्तरं वर्त्तमानेऽह्नि॥२६॥"

वटेश्वराचार्य ने **वटेश्वर सिद्धान्त** के स्पष्टाधिकार में भास्करोक्त प्रकार ही से ग्रह के सावनार्गत गति को भुजांतरासु से गुणा करके ग्रहाहोरात्रासु से भाग देने के लिए कहा है। यथा—

"मध्यादधिके स्पष्टे स्वमृणं चोने भुजान्तरं चैतत्।
तदुदयगास्तदहोगतयस्तज्जासुपलेन हताः॥२६॥
तदहोरात्रहता हीनयुता व्योमवासिनः सर्वे।
अश्विन्यौदयिकास्तदश्विनी दर्शनान्तरोन युताः॥२७॥"

इदानीमुदयान्तरमाह—

युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य भुक्तासवोऽर्कस्य निरक्षदेशे।
मेषादिभुक्तोदयसंयुता ये यश्चापनांशान्वितमध्यभानोः॥६२॥

लिप्तागणस्तद्विवरेण निघ्नी गतिर्ग्रहस्य द्युनिशासुभक्ता।
स्वर्णं ग्रहे चेदसवोऽधिकोना इदं ग्रहणामुदयान्तराख्यम् ॥६३॥

उदयांतर संस्कार—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यमरवि को सायन बनाकर उसकी राशि के भुक्तांशों के निरक्ष देश पर भुक्त असु ज्ञात करके उनमें मेष से आरंभ करके सूर्य की पिछली भुक्त राशियों के निरक्षोदय असु मान युक्त देने से मेष से लेकर सूर्य की भुक्त राशि अंश तक के उदय असु प्राप्त होंगे। फिर सायन रवि की कला बनावें तथा इन दोनों फलों के अंतर को ग्रह गति से गुणा करके अहोरात्र असु (२१६५९) से विभक्त करके लब्धि उदयांतर कला फल को ग्रह में यदि कला से असु अधिक हो तो युक्त करे और यदि अल्प हो तो ऋण करे। अर्थात् रवि विषम पद में हो तो ऋण तथा सम पद में हो तो धन करे।

सूत्र रूप में उदयांतर =

$$\pm \frac{(\text{रवि निरक्षोदयसु} - \text{रविउदय कला}) \times \text{ग्रह की दैनिक गति}}{२१६५९}$$

उपपत्ति— यह संस्कार सूर्य के क्रांतिवृत्त तथा नाडी वृत्त में स्थिति के अंतर के कारण उत्पन्न होता है।

अहर्गण से उत्पन्न ग्रह मध्यम सावन मान से लिया जाता है जो स्फुट सावनमान से चलता है, अतः यहाँ अंतर उत्पन्न होता है। रवि की मध्यम गति की कला तुल्य असु को नाक्षत्र काल में युक्त करने से साठ घटी होता है, ६०।५९।८ यह मध्यम सूर्य सावन है। नाक्षत्र दिन २१६०० असु तुल्य होता है, (२३ घं. ५६ मि.) और सावन दिन २४ घंटे का होता है जो २१६५९ असु तुल्य होता है। अतः इनका अंतर ५९ असु (लगभग ४ मिनट) होता है। सूर्य की मध्यम सावन दिन गति ५९।८ कलादि के तुल्य होती है जो ६० घटी में होती है। इस प्रकार प्रतिदिन गति में इतना अंतर पड़ने से प्रतिमास राशि उदय अन्य समय पर होता है। उतना अंतर अहर्गण से साधित करने से मध्यम ग्रह करने में नहीं आता जिससे सूर्योदय कालिक ग्रह प्राप्त नहीं होते, कभी सूर्योदय से कुछ आगे अथवा कभी कुछ पीछे ग्रह में अंतर होता है। अतः ग्रंथ के आचार्य ने आगे कहा है कि लंकापुरि पर मध्यम सूर्य क्षितिज के आसन्न होता है "दशशिरःपुरि मध्यम भास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः।"

अब स्फुट और मध्यम अहर्गण से प्राप्त ग्रह में अंतर का आनयन बताते

हैं। मेष से आरंभ करके सूर्य जो राशियाँ भुक्त करता है उनके उदय असु का योग कर लेते हैं। उस असुवात्मक काल में दिनात्मक अहर्गण उत्पन्न होता है। फिर मेषादि से भुक्त कला तुल्य अंतर ज्ञात करते हैं। इन असु और कला में जितना असु अंतर होता है उतना ही असु अन्तर अहर्गण में पड़ता है। यदि अहोरात्र असु में इतनी गति प्राप्त होती है तो उन अन्तर असु में कितनी होगी? प्राप्तफल ग्रह में असु अधिक होने पर योग करते है अन्यथा ऋण करते हैं।

हमने ग्रह की स्थिति में सूर्य स्पष्ट तथा विषुवांश के अंतर से उत्पन्न संस्कार को भुजांतर के नाम से किया है। दूसरा यह **संस्कार उदयांतर के नाम से किया जाता है।** यह संस्कार नाडीवृत्त तथा क्रांतिवृत्त तिर्यक् स्थिति के कारण उत्पन्न होता है। श्रीपति तथा भास्कराचार्य के परवर्ति आचार्यों ने इस संस्कार को अपने ग्रंथों में कहा है।

विशेष— यह उदयान्तर संस्कार प्रथम बार श्रीपति ने अपने सिद्धान्त शेखर ग्रंथ में किया है। उसके पश्चात् भास्कराचार्य ने इसको अपने इस ''सिद्धान्त शिरोमणि'' ग्रंथ में उपयोग कर लिया है।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में अध्याय ११ में यह संस्कार इस प्रकार कहा है। यथा—

''अन्त्यभ्रमेण गुणिता रविबाहुजीबाऽभीष्टभ्रमेण विहृता,
फलकार्मुकेण बाहोः कलासु रहितास्ववशेषकं ते,
यातासवो युगयुजोः पदयोः धनर्णम्।''

सूत्र रूप में—

$$\text{ज्या (मध्यम तथा स्पष्ट सूर्य विषुवांशंतर)} = \frac{\text{ज्या सूर्य} \times \text{परम क्रांति}}{\text{कोज्या क्रांति}}$$

श्रीपति ने मात्र इसका उल्लेख किया है, इसके उपयोग के लिए स्पष्ट रूप से मौन हैं। लेकिन भास्कराचार्य ने इसके संस्कार के लिए स्पष्ट रूप से कहा है तथा इस कर्म को 'उदयान्तर कर्म' के नाम से कहा। जब तक सिद्धान्त शेखर की अनुपलब्धि रही तब तक आधुनिक गणकों ने यही माना हुआ था कि यह कर्म भास्कराचार्य का मौलिक है। इस उदयान्तर को ध्यान में रखकर सर्वप्रथम श्रीपति ने ही अपने विचार व्यक्त किये थे—

''त्रिभविरहित चन्द्रोच्चेन भास्वद् भुजज्या
गगननृपविनिघ्नी भत्रयज्याविभक्ता।

भवति चर फलाख्यं तत् पृथक्स्थं शरघ्न
हृतमुडुपति कर्णत्रिज्ययोरन्तरेण॥१॥
परमफलमवाप्तं तद्धनर्णं पृथक्स्थे
तुहिनकिरणकर्णे त्रिज्याकोनाधिकेऽथ।
स्फुटदिनकर हीनादिन्दुतो या भुजज्या
स्फुट परमफलघ्नी भाजिता त्रिज्ययाऽऽप्तम्॥२॥
शशिनि चरफलाख्यं सूर्यहीनेन्दुगोलात्
तदृणमुत धनं चेन्दुच्चहीनार्क गोलम्।
यदि भवति हि साम्यं व्यस्तमेतद्विधेयं
स्फुटगणित दृगैक्यं कर्त्तुमिच्छुभिरत्र॥३॥"

इन तीनों श्लोकों के द्वारा श्रीपति ने दृग्गणितैक्य के लिए चन्द्र में संस्कार विशेष को कहा। किसी भी प्राचीन ग्रंथ में यह संस्कार नहीं लिखा है। यद्यपि–

"इन्दुच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुणो व्यर्केन्दुदोः कोटयोरूप पञ्चाप्त्योः क्रमात्॥
फले शशाङ्कतद्‍गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा॥"

के द्वारा श्रीपत्युक्त चन्द्र संस्कार की भांति के चन्द्रसंस्कार का उल्लेख मुञ्जालाचार्या ने 'लघुमानस' नामक अपने करण ग्रंथ में किया है। परन्तु इन दोनों में सादृश्याभाव के कारण श्रीपति ने वेध द्वारा देखकर उस लघुमानसोक्त से भिन्न कहा है, ऐसा ज्ञात होता है लेकिन मूल विचार तो मुञ्जालाचार्य का ही था। भास्कराचार्य ने श्रीपतत्युक्त संस्कार को बारबार देखकर विचार करने से प्राप्त ज्ञान को विस्तार से प्रतिपादित करने के लिए सि.शि.ग्रंथ में इसको कहा। इसके एक वर्ष पश्चात् ५९ श्लोकों का 'बीजोपनय' नामक ग्रंथ वा.भा. सहित लिखा तथा उसमें भी इसका उल्लेख किया।

इदानीं येऽस्योदयान्तरस्य वासनां न बुध्यन्ति तेषां प्रतीत्यर्थमन्यदप्याह—

चेत् स्वोदयैः स्फुटरवेरसवः कृतास्ते
विश्लेषिताश्च यदि मध्यरवेः कलाभिः।
बाह्वन्तराख्यमुदयान्तरकं चराख्यं
कर्मत्रयं विहितमौदयिके तदा स्यात्॥६४॥

उदयान्तर के अन्य प्रकार से व्याख्या—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि हम स्फुट रवि के स्वस्थान के स्वोदय मान असु प्राप्त करने के लिए मेषादि से सावन स्फुट रवि के भुक्तासुओं का योग करें और उनका अंतर मध्यम सूर्य कला से करके उनके अंतर को ग्रह भुक्ति (गति) से गुणा करके अहोरात्र असु से विभक्त करें। ये फल यदि अधिक हो तो ग्रह में युक्त करे अन्यथा ऋण करे। इस संस्कारसहित भुजान्तर, उदयांतर तथा चरांतर तीनों कर्मों से युक्त स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष— हम मध्यम सावन अहर्गण की गणना करते हैं स्फुट सावन अहर्गण की नहीं करते। जब हम यह कहते हैं कि मध्यम सूर्योकाल तक अमुक अहर्गण दिवस गत हो चुके हैं उस समय तक वास्तव में अमुक अहर्गण से कुछ अधिक भिन्न तुल्य समय व्यतीत हो चुका होता है जो स्फुट सावन अहर्गण होता है। इस "अधिक भिन्न" संख्या के मान तुल्य यह उदयान्तर संस्कार किया जाता है।

इदानीं प्रकारान्तरेणौदयिककर्माह—

मध्याद्रवेरयनभागयुताद्द्विनिघ्नाद्
दोर्ज्या लघुर्गतिगुणा खनगाश्वि २७० भक्ता।
स्वर्णं ग्रहे युगयुजोः पदयोर्विलिप्ता-
स्त्वेवं स्फुटं खलु भवेदुदयान्तरं वा॥६५॥

प्रकारांतर से औदयिक कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम सूर्य के सायन अंशादि के द्विगुणित की लघु (खण्ड) ज्या ज्ञात करके उसको ग्रहगति से गुणा करके २७० से विभक्त करने से प्राप्तफल विकलादि को सूर्य युग्म पद में होने पर ग्रह में धन करे तथा अयुग्म पद में होने पर ऋण करे।

$$\text{सूत्ररूप में उदयांतर फल} = \frac{\text{ग्र.गति} \times \text{ज्या २ (सायन सूर्य)}}{\text{२७०}}$$

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त के चारों पद पृथक-पृथक १५ घटी में उदित हो जाते हैं लेकिन प्रत्येक राशि ५-५ घटी में उदित नहीं होती। यह उदयान्तर कर्म पद मध्य तक जितना उपचित होता है उतना ही पद के अंत में समाप्त हो जाता है। पद के मध्य में इसकी परमता होती है। यहाँ जो निरक्षोदय कर्म आचार्य ने प्रदर्शित किया है वह सरलता से समझने के लिए किया है। यह स्थूल है

क्योंकि उदयमान स्थूल है। अतः इसीलिए आर्यभट(द्वि.) आदि ने सूक्ष्मता के लिए द्रेष्काण उदयमान कहे हैं, जैसा कि पूर्व में श्लो-६० में कहा गया है।

उदयान्तर कर्म जिस प्रकार सम्यग हो उसको यहाँ आचार्य कहते हैं कि मध्यम सूर्य के सायन अंशों की दोर्ज्या तथा द्युज्या ज्ञात करके उस द्युज्या का भाग दोर्ज्या में देकर मिथुनांत द्युज्या से गुणा करे = $\frac{\text{ज्या सा.सू.} \times \text{मिथुनांतद्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$,

इसका धनु करने से प्राप्त असु में से मध्यम सूर्य के सायन अंशों की भुज कला घटाने से स्फुट अंतर असु प्राप्त होते हैं। ये उदय के अंतर तुल्य हैं। पद मध्य में यह अंतर २६ पल से कुछ अधिक होता है। इसको ज्या प्रकार से साधित करके पदमध्य में सूर्य को द्विगुणित करे। पर मध्य में द्विगुणित सूर्य के सायन अंश का भुज ज्या २×४५° = ज्या ९०° पदान्त में तीन राशि पर होती है। उसकी ज्या का २६ से अनुपात किया कि यदि १२० तुल्य त्रिज्या में २६ पल परमांतर होता है तो अभीष्ट में कितने होंगे? अर्थात्

$$\frac{\text{२६} \times \text{अभीष्ट ज्या}}{\text{१२०}} = \frac{\text{अभीष्ट ज्या २ (सा.सू.)}}{\text{४}\frac{\text{१}}{\text{२}}} \text{ स्वल्पांतर से।}$$

अतः हार स्थान पर ४$\frac{\text{१}}{\text{२}}$ प्राप्त होता है। पुनः अनुपात किया कि यदि ६० में ग्रह गति कला तुल्य विकला चलता है तो इतने पल में कितना चलेगा?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{अभीष्ट ज्या २ (सा.सू.)}}{\text{४}\frac{\text{१}}{\text{२}}} \times \frac{\text{ग्र.ग. विकला ज्या}}{\text{६०}}$$

$$= \frac{\text{ग्र.ग.विकला ज्या}}{\text{२७०}}$$ विकलादिफल। यहाँ हार के स्थान पर आचार्योक्त २७० प्राप्त हुआ। अतः उपपन्न हुआ। ओज पद में असु, कला से अल्प होते हैं अतः ग्रह में ऋण करे तथा युग्म पद में वह अधिक होता है अतः वहाँ धन करने के लिए आचार्य ने कहा है।

आधुनिक एस्ट्रोनॉमी से उदयांतर = स्प.$^{\text{२}}\left(\frac{\text{परमक्रांति}}{\text{२}}\right)$ज्या २ सा. सूर्य होता है। यहाँ परमक्रांतिमान २४° होने से स्प$^{\text{२}}\left(\frac{\text{२४}}{\text{२}}\right)$ = ०.०४५१९ = १५५

कला = १५५ असु = १५५ ÷ ६ = २६ असु ही आता है जिसको स्वविवेक से भास्कराचार्य ने ज्ञात किया। बापूदेव शास्त्री ने इस सब को इस प्रकार कहा है—

"मध्यात्खरांशोरयनांशयुक्तादद्विघ्नाद्भुजज्या बृहती विनिघ्नी।
परापमव्यस्तगुणेन दृग्घन्या द्युजीवयाप्ता ग्रहभुक्तिनिघ्नी॥
हृता द्युरात्रासुभिराप्तलिप्ता ग्रहे विधेयाः स्वमृंण क्रमेण।
सहस्ररश्मौ युगयुक्पदस्थे सुसूक्ष्मेवं ह्युदयान्तरं स्यात्॥"

इदानीं तिथिकरणभयोगानां साधनमाह—

रवि १२ रसैः ६ विरवीन्दुलवा हृताः फलमितास्तिथयः करणानि च।
कुरहितानि च तानि बवादितः शकुनितोऽसितभूतदलादनु॥६६॥
ग्रहकलाः सरवीन्दुकला हृताः खखगजैश्च ८०० भयोगमिति क्रमात्।
अथ हृताः स्वगतैष्यविलिप्तिकाः स्वगतिभिश्च गतागतनाडिकाः॥६७॥

तिथि, करण तथा योग साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र में से सूर्य को घटाकर दो स्थानों में स्थापित करे। एक स्थान पर १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल गत तिथि तथा अन्य स्थान पर ६ से विभक्त करने से प्राप्तफल गत करण होते हैं। शेष एक आदि से बव आदि होते हैं। कृष्ण चतुर्दशी के आधे के पश्चात अंतिम तीन तथा चौथा शुक्ल प्रतिपदा के प्रथम अर्ध, इस प्रकार चारों क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग तथा किंस्तुघ्न होते हैं तथा शेष बवादि क्रम से करण होते हैं। जिस ग्रह के नक्षत्र व योग का ज्ञान करना हो उसकी कला बना लेवे तथा चन्द्र सूर्य के योग की भी कला बना लेवें। इन दोनों में पृथक-पृथक ८०० से भाग देने से प्रथम स्थान में गत नक्षत्र तथा द्वितीय स्थान में गत योग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विभक्त करने से प्राप्त शेष वर्तमान के गत (भुक्त) भाग होते हैं तथा अपने अपने हार से उनका अंतर गम्य भाग होता है। उन गत भागों की विकला में स्वस्वगति से भाग देने से प्राप्तफल गत घटिका होती है। उनकी ऐष्य विकला में स्वस्व गति से भाग देने से प्राप्त फल ऐष्य घटिका होती है।

उपपत्ति— यदि चंद्र सूर्य के ३६० अंश अंतर में ३० तिथि प्राप्त होती है तो एक तिथि कितने अंश में प्राप्त होगी? यहाँ ३० से ३६० को अपवर्तित करने से हर में १२ प्राप्त होता है। अतः एक तिथि में १२ अंश तुल्य चंद्र सूर्य का अंतर होता है और यदि ३६० अंश में ६० करण होते हैं तो एक करण

कितने अंश में होगा? यहाँ भी ६० से ३६० को अपवर्तित करने से हार में ६ प्राप्त होता है। अब यदि चक्रकला २१६०० में २७ योग प्राप्त होते हैं तो एक योग कितनी कला में प्राप्त होगा? यहाँ भी २७ से २१६०० को अपवर्तित करने से हार में ८०० प्राप्त होता है। अतः ८०० कला का एक योग होता अर्थात् चंद्र सूर्य का योग ८०० कला होने पर एक योग होता है। घटी बनाने के लिए यदि गति कला ६० घटी में प्राप्त होती है तो गत तथा ऐष्य की कितनी होगी? प्राप्तफल घटिकायें होंगी और कला को ६० से गुणा करने से विकला होती है। अतः आचार्य ने ''हृताः स्वगतैष्य विलिप्तिकाः'' कहा है।

ब्रह्मगुप्तादि सभी आचर्यों ने इसी प्रकार नक्षत्र, तिथि करण योग आदि के लिए कहा है। ये आधारभूत परिभाषायें हैं।

इदानीं नतकर्माह—

तिथ्यन्तनाडीनतबाहुमौर्व्या लघ्व्यार्कशीतांशुफले विनिघ्ने।
क्रमेण भक्ते नखगोसमुद्रैः ४९२० ककुङ्गाग्निवेदैः ४३६१ फलहीनयुक्तः ॥६८॥
प्राक्पश्चिमस्थस्तरणिर्विधुः प्रागृणे फले युक्त इतोऽन्यथोनः।
मुहुः स्फुटातो ग्रहणे रवीन्द्वोस्तिथिस्त्विदं जिष्णुसुतो जगाद॥६९॥

नतकर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र तथा सूर्य स्पष्ट के तिथ्यन्त काल की नत नाडियों को ६ से गुणा करने से नतांश प्राप्त होते हैं। इनकी लघुज्या साधित करे तथा उसको सूर्य तथा चंद्र के भुजफल से गुणा करे। सूर्य के गुणनफल को ४९२० से तथा चंद्र के गुणनफल को ४३६१ से विभक्त करे। इस प्रकार प्राप्तफल यदि मंदफल अंशादि गुणा करने से अंशादिलब्धि हो तो अंशादि तथा कलादि होने पर कलादि ग्रहण करे। लब्धि को रवि पूर्व कपाल में स्थित होने पर रवि में से हीन करे और पश्चिम कपाल में होने पर युक्त करे। चंद्रमा के प्राप्तफल को पूर्वकपाल में चंद्र होने पर ऋण फल होने पर उसमें युक्त करे अन्यथा पूर्व-पश्चिम दोनों में हीन करे। इस प्रकार सूर्य चंद्र स्पष्ट से पुनः तिथि साधित करे तथा पुनः नतकर्म उसी प्रकार करे। यह क्रिया ग्रहण काल के लिए पुनः पुनः करे जब तक स्थिर फल न प्राप्त हो।

इस प्रकार यह कर्म जिष्णु सुत ब्रह्मगुप्त के बताये अनुसार करना चाहिये। यह आचार्य ने कहा है। इसके लिए आचार्य ने आगम को ही प्रमाण मान कर ऐसा लिखा है।

उपपत्ति— भास्कराचार्य ने स्व कृत वासना में कहा है कि चतुर्वेदाचार्य ने भी इस कर्म को स्वीकार करके गणना से दृश्य तुल्य प्राप्त किया है। अतः उन्होंने इसे स्वीकार किया है। आधुनिक खगोल विज्ञान में इस नतकर्म को 'Refraction Correction' कहा जाता है जिसकी आचार्य ने यहाँ स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं की है।

नतकर्म संस्कृत रवि चंद्र से उत्पन्न तिथ्यन्त काल तथा गणितागत नतकर्म बिना तिथ्यन्त काल का अंतर माना (य) है। इसको ६ से गुणा करने से (६य) नत अंश होंगे। गणितागत तिथ्यन्त काल में रवि का नतकालांश यदि (न) हो तो इन दोनों का संस्कार करने से वास्तव नत कालांश = न ± ६य हुआ। अब

आचार्योक्त कर्म करने से सूर्य का नतकर्म = $\frac{\text{रविफल} \times \text{ज्या (न} \pm \text{६य)}}{\text{४६२०}}$ तथा

चंद्र का नत कर्म = $\frac{\text{चंद्रफल} \times \text{ज्या (न} \pm \text{६य)}}{\text{४३६१}}$। इनका संस्कार करने के लिए कहा है।

सूर्य के परिध्यंश १३°४०' तथा चंद्रमा ३१°३६' मध्यान्ह समय के कहे हैं। अधिक विवरण के लिए यहाँ श्लोक २४ की व्याख्या देखें। अनुपात किया कि त्रिज्या (१२०) तुल्य नत भागज्या में तीसरा भाग (२० कला) परिधि में अंतर होता है तो इष्ट नत भाग ज्या में कितना होगा? नतभागज्या × २० ÷१२० = $\frac{\text{नत भागज्या} \times \text{२०}}{\text{१२०} \times \text{६०}}$ अंश = $\frac{\text{नत भागज्या}}{\text{३६०}}$ अंश यह फल स्फुट परिधि अंतर है। इसका फिर से अनुपात किया कि यदि १३°४०' परिधि अंश तुल्य फल (मंदफल) प्राप्त होता है तो स्फुट परिधि अंतर से कितना होगा?

$\frac{\text{परिध्यंश} \times \text{नतभागज्या}}{\text{१३°२०'} \times \text{३६०}}$ = $\frac{\text{परिध्यंश} \times \text{नतभागज्या}}{\text{४६२०}}$। यह आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार त्रिज्या तुल्य (१२०) नत भागज्या के परिध्यंतर $\frac{\text{५२}}{\text{६०}}$ है तो इष्ट नतज्या में कितनी होगी? यहाँ चंद्रमा के लिए मध्यान्ह के पठित परिध्यंश में ५२ कला कम करने से ऋण तथा धन मंदफल में पूर्व उन्मंडल में कहे गये परिधि अंश प्राप्त होते हैं तथा पश्चिम उन्मंडल में धन तथा धन मंदफल में ऋण

करने से परिध्यंश प्राप्त होते हैं। ५२ कला में ६० का भाग देने से अंश प्राप्त होते हैं। अतः $\frac{५२}{६०}$ परिधि अंतर कहा है।

अतः इष्ट नतज्या में $\frac{५२'}{६० \times १२०} = \frac{१}{१३८}$ स्वल्पांतर से परिध्यंतर हुआ।

अतः ३१°३६', परिध्यंश प्राप्त होते हैं तो स्फुट परिध्यंतर $\frac{इष्टनतज्या}{१३८}$ में कितना

होगा = $\frac{परिध्यंश \times नतभागज्या}{१३८ \times १३°३६'} = \frac{परिध्यंश \times नतभागज्या}{४३६१}$ अतः हार में आचार्योक्त अंक प्राप्त हुए। उपपन्न हुआ।

उदयांतर तथा भुजांतर आदि संस्कारों से संस्कृत ग्रह वास्तविक स्फुट ग्रह नहीं होते। यह बात भास्कराचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त इस श्लोक में कहे गये संस्कार से स्पष्ट होती है। इन आचार्यां के पूर्ववर्ति आचार्यों ने इस संस्कार के लिए कुछ भी नहीं कहा है। चंद्र ग्रहण में पूर्णांतकाल में मध्यान्ह काल से पूर्व या पश्चात जितनी घटी रवि नत होता है वह सूर्य का नतकाल होता है, इसको ३० घटी में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य चंद्र का नत होता है। किन्तु अर्धरात्रि में तिथ्यन्त काल जितनी घटी रवि का नत होता है उसमें से ३० घटी घटाने से प्राप्त शेष तुल्य चन्द्र का नत होता है। यदि सूर्य का पूर्व नत है तो चंद्रमा का पश्चिम नत तथा रवि का पश्चिम नत हो तो चंद्र का पूर्व नत अर्धरात्रि से होता है। सूर्य ग्रहण में सूर्य तथा चंद्रमा दोनों एक ही कपाल में होते हैं तथा उनकी नतघटी, तुल्य होती है। सिद्धान्त शेखर तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में इस प्रकार कहा गया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में स्फुट परिधि के लिए इस प्रकार कहा है—

''तद्द्युदल परिध्यन्तगुणा हृता त्रिज्यया स्वनतजीवा।

ऊने धन ऋणमधिके दिनार्ध परिधौ स्फुट परिधिः।।२२।।

अर्थात् अभीष्ट नतज्या और पूर्व पश्चिम उन्मण्डल में जो सूर्य चंद्र के रहने से परिधि अंश कहे गये हैं उनसे दिनार्ध परिधि के अंतर को परस्पर गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल को दिनार्ध परिधि में धन अथवा ऋण करने से अभीष्ट स्थान की स्फुट परिधि प्राप्त होती है। दिनार्ध परिधि से जिस

जिस परिधि का अंतर करते हैं वह दिनार्ध परिधि से अधिक हो तो दिनार्ध परिधि में धन करे तथा कम होने पर प्राप्तफल को ऋण करे।

ब्रह्मगुप्त ने इसके आगे २४ वें श्लोक में कहा है—

''देशान्तराद्यमेवं स्पष्टीकरणं दिनार्ध परिधिभ्याम्।
कृत्वा तत्तिथ्यन्त स्फुटपरिधिभ्यां स्फुटावसकृत्॥२४॥''

अर्थात् रवि चंद्र को (पूर्वोक्त प्रकार से) दिनार्ध परिधियों द्वारा, देशांतरादि संस्कार द्वारा स्फुट करके उनके द्वारा (ग्रहण काल में) तिथ्यन्त साधन करना चाहिये। फिर उन तिथ्यंत काल के सूर्य चंद्र की स्पष्ट परिधियों द्वारा पुनः रविचंद्र को स्पष्ट करे। पुनः इनके द्वारा तिथ्यन्त साधन करे। इस प्रकार पुनः पुनः क्रिया करके ग्रहण के लिए उपयुक्त चंद्र तथा सूर्य स्पष्ट करना चाहिये।

भास्कराचार्य ने उक्त श्लोक ६८ में ब्रह्म गुप्तोक्त इसी बात को ''मुहुः स्फुटाप्तो ग्रहणे रविन्द्वो स्थिति......जगाद'' द्वारा कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''तद्दिनार्ध परिधिद्वयान्तरेणाहता स्वनतशिञ्जिनीहृता।
त्रिज्जयाऽथ परिधौदिनार्धजे हीन के स्वमधिके त्वृणं स्फुटम्॥''

आर्यभट ने महासिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''तिथ्यन्तकालिक नतप्राणेभ्यो बाहुशिञ्जिनी क्रमजा।
साध्या तद्घ्नयौ मध्ये भुक्ती भक्ते भवघरननै॥१॥
लिप्तादिफले प्राक् स्वं पश्चादृणमर्कचन्द्रयोः कार्ये।
भानुग्रहणे रगुणे ताभ्यां स्पष्टा तिथिर्भवति॥२॥''

इदानीं स्फुटग्रहस्य तात्कालिकीकरणमाह—

**यातैष्यनाडीगुणिता द्युभुक्तिः षष्ट्या ६० हृता तद्रहितो युतश्च।
तात्कालिकः स्यात् खचरः शशीनौ तिथ्यन्त एवं समलिप्तिकौ स्तः॥७०॥
पूर्णान्तकाले तु समौ लवाद्यैर्दर्शान्तकालेऽवयवैर्गृहाद्यैः।७० $\frac{1}{2}$।**

स्फुट ग्रह का तात्कालिकिकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पर्व अथवा अग्रिम इष्ट घटियों को ग्रह दिन गति से गुणा करके ६० से विभक्त करने से प्राप्तफल को ग्रह में क्रमश घटाने तथा युक्त करने से तात्कालिक ग्रह होते हैं। सूर्य चन्द्रमा की तिथ्यंत में कलादि तथा पूर्णांत काल में अंश कलादि तुल्य होते हैं केवल राशि में अंतर होता है, लेकिन

दर्शांत काल अर्थात अमावस्या के समय दोनों के राशि अंश कलादि सभी अवयव तुल्य होते हैं।

विशेष— आचार्य ने जो यहाँ कहा है वह साधारण बात है जो सभी आचार्यों ने कही है। यहाँ शिष्याधीवृद्धिद का एक उदाहरण देते हैं। यह बात स्वतः स्फुट है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में लल्लाचार्य ने रविचंद्रस्फुट करणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"गततिथिघटिकाघ्ने सूर्यशीतांशुभुक्तीगगनरसविभक्ते शोधयेत् तत् कलाभ्यः।
धनमपि च विदध्याद् भोग्यनाडीभिरेवं समग्रहलवलिप्तालिप्तिकौ तौ भवेताम्॥२६॥
मासान्ते रविशशिनौ समौ भवेतां पक्षान्ते लवकलिकाविलिप्तिकाभिः।
अन्यस्यामपि च तिथौ तदावसाने तुल्यौ स्तः खलुकलिकाविलिप्तिकाभिः॥२७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त स्पष्टाधिकार अध्याय ६ में आचार्योक्त ही कहा है।

"तिथिगतायेय घटीघ्न्यौ रविन्दुभुक्ती विभाजिते षष्टया।
फललिप्ताावियुतयुतौ तिथ्यन्ते समकलौ भवतः॥२४॥
गतयेय विकलघ्ने गती रवीन्द्वोर्गमान्तरेण हते।
फल लिप्ताभिः प्रागूवद्वियुतयुतौ समकालौ स्तः॥२५॥
तिथियेय यातघटिकातुल्यकलाभिर्युतोनितेन्दुरवी।
तिथिलिप्ताभिश्चैव समलिप्तौ वा विधूर्णकरौ॥२६॥
करणान्ते तिथ्यन्ते समौ कलाभिस्तथा न पूर्णान्ते।
समभागौ मासान्ते समराशी भास्करेन्दुस्तः॥२७॥"

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यातैष्यघटीगुणिता दिनकर शशिपात भुक्तयो भक्ताः॥४॥
तीनै लिप्ताः शोध्या योज्यास्तात्कालिकाः क्रमात् स्युस्ते॥$\frac{9}{2}$॥"

इदानीं सूक्ष्मनक्षत्रानयनमाह—

स्थूलं कृतं भानयनं यदेतज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः॥७१॥
सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै।
अध्यर्धभोगानि ११८५।५२ षडत्र तज्ज्ञाः।
प्रोचुर्विशाखादितिभध्रुवाणि॥७२॥

षडर्धभोगानि च ३९५। १७ भोगिरुद्र-
वातान्तकेन्द्राधिपवारुणानि।
शेषाण्यतः पञ्चदशैकभोगा-
न्युक्तो भभोगः शशिमध्यभुक्ति ७९०।३५ ॥७३॥
सर्वर्क्षभोगोनितचक्रलिप्ता वैश्वाग्रतः स्यादभिजिद्भभोगः।
कलीकृतादिष्टखगाद्विशोध्य दास्रादिभोगान् गतभानि विद्यात्॥७४॥
विशुद्धसंख्यानि गतं तु शेषमशुद्धभोगात् पतितं तदेष्यम्।
गतागते षष्टिगुणे विभक्ते ग्रहस्य भुक्त्या घटिका गतैष्या॥७५॥

सूक्ष्म नक्षत्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अभी तक पूर्व में जो नक्षत्र का आनयन करना बताया है वह स्थूल है उसको मात्र लोक व्यवहारार्थ के लिए कहा गया है। अब पुलिश, वशिष्ठ, गर्गादि आचार्यों के अनुसार विवाह, यात्रादि के सम्यक फल सिध्यर्थ के लिए उनके सूक्ष्म आनयन को कहते हैं। विशाखा, पुनर्वसु, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्र अध्यर्ध-भोग संज्ञक हैं। आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती, भरणी, ज्येष्ठा तथा शतभिषा ये छः नक्षत्र अर्ध-भोग संज्ञक हैं तथा शेष १५ नक्षत्र समान भोग संज्ञक हैं। इनका चंद्र गति ७९०/३५ के तुल्य भोग होता है। चंद्रगति में इसकी अर्ध गति युक्त भोग ११८५।५२ तुल्य वाले नक्षत्र अध्यर्ध संज्ञक हैं। चंद्र गति से अर्धगति के भोग तुल्य नक्षत्र अर्ध भोग संज्ञक हैं। सर्वर्क्षभोग २१३४६ को चक्र कला २१६०० में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य अभिजित नक्षत्र का भोग २५४।१८ होता है।

ग्रह की कला बनाकर अश्विन्यादि से नक्षत्रों की भुक्त कला को घटाने से जो शुद्ध संख्या घटे वह गत नक्षत्र जाने तथा शेष कला वर्तमान नक्षत्र की कला होती है। जो अशुद्ध नक्षत्र भोग का शेष है वह उसका भोग्य है तथा उसकी ऐष्य संज्ञा है। उस गत तथा ऐष्य कला को ६० से गुणा करके ग्रह गति से विभक्त करने से प्राप्त फल गत तथा ऐष्य घटियाँ होती हैं।

उपपत्ति— इनकी उपपत्ति का आगम ही प्रमाण है। क्योंकि इस प्रकार नक्षत्रानयन पौलिश-रोमक-वसिष्ठ-सूर्य-ब्रह्म सिद्धान्तोक्त प्रकार से कहे गये हैं।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार के अध्याय ६ में पूर्णरूप से भास्करोक्त ही कहा है। यथा—

''स्थूलोऽयं स्पष्टोऽसावध्यर्ध समार्धभोगो यः।
तं वच्म्यधुनाऽभिजितः स्फुटभोगोऽहं विशेषेण॥३॥

ब्राह्मोत्तरा विशाखादित्यान्यध्यर्धभोगसंज्ञानि।
वारुण सार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्रान्यर्ध भोगीनि॥४॥
समभोगीन्यन्यानि समभोगो मध्यमा गतिः शशिनः।
स्वदलयुताऽध्यर्धाख्यो भागो दलिताहिखण्डमध्यः॥५॥
भगणाश्चक्राच्छुद्धा भोगोऽभिजितोऽथवेन्दु भगणहृताः।
क्ष्महाः फलं भहीनं घटिकाद्यो भघ्नशशि भगणाः॥६॥
वियुक्ताः क्वहाद्‌गतिघ्ना भगणविभक्ताः विधोः कलादिर्वा।
भगणकला शशिभुक्त्या भजिताः शेषोऽथवा प्रोक्तः॥७॥
द्युचरो भभोगहीनो गतयेया लिप्तिकाः स्वभुक्तिहृताः।
भवति दिवसादिभोगो द्युचराक्रान्तस्य धिष्ण्यस्य॥८॥"

यहाँ आचार्य ने कुछ विशेष भी कहा है। वटेश्वर ने ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है।

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुट गत्युक्तराध्याय में कहा है कि पौलिश-रोमक-वसिष्ठ-सूर्य तथा ब्रह्म सिद्धान्त में जो नक्षत्रानयन कहे गयेहैं वे आर्यभट कथित आनयन नहीं हैं। अतः उन सभी आचार्यों की उक्ति उचित है तथा सूक्ष्मनक्षत्रानयन उन्हीं के अनुसार करना चाहिये। यथा—

"पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु प्रोक्तम्।
तन्नक्षत्रानयन नार्यभटोक्तं तदुक्तिरतः॥४६॥"

आगे के श्लोक में भास्करोक्त तथा वटेश्वरोक्त ही कहा है। यथा—

"अध्यर्धानि भवन्ति षड्नक्षत्राण्युडूषडर्धानि।
पञ्चदश समक्षेत्राण्यभिजिद् भोगो भवत्येकः॥४७॥
केशादित्य विशाखा प्रोष्ठपदार्यम्णवैश्वदेवानि।
षड् षड् ज्येष्ठा भरणी स्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषाः॥४८॥
पञ्चदशात्रानुक्तान्येकोऽभिजिदुक्त ऋक्षभोऽन्यः।
सस्मात्रन्नक्षत्रं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्॥४९॥
अध्यर्धार्धसमक्षेत्राणं मध्यगति लिप्तिकाः शशिनः।
अध्यर्धार्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योनाः॥५०॥
मण्डललिप्ताः शेषोऽभिजितो भोगः शशाङ्कभगणा वा।
त्रिघनगुणाः संशोध्याः कल्पदिनेभ्यो यदवशेषम्॥५१॥
तदभगणैर्दिनभोगोऽभिजितो भोगो भभोगलिप्तोनाः।
भानिग्रहभुक्तकला गतगम्या गतिहता दिवसाः॥५२॥"

इदानीं ग्रहाणां राशिसंक्रान्तिमानं भतिथिकरणयोगानां सन्धिमानं चाह—

षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तं संक्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये।
रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसंक्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते।।७६।।
शशितनुविकलाभ्यश्चन्द्रभुक्त्येन्दुभान्वो-
र्गतिविवरकलाभिर्भूय एताभिरेव।
पृथगथ गतियुत्या नाडिकाः सन्धिराप्ता
भतिथिकरणयोगानां फलं तत्र मिश्रम्।।७७।।

ग्रहों के राशि संक्रान्तिमान; नक्षत्र, तिथि, करण, योगों के सन्धिमान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह बिंब कला को ६० से गुणा करके ग्रह भुक्ति से विभक्त करने से प्राप्तफल ग्रह की राशि संक्रांति की घटियाँ होती हैं। ये सभी धर्म कर्मों के लिए शुभ होते हैं। राश्यन्त काल से पूर्व की आधि तथा पश्चात की आधि इस अर्थ में गत-गम्य होती है। इन संक्रान्ति घटियों में रवि की संक्रांति नाड़ी पुण्यतम होती है तथा जब ग्रह संक्रांति पर स्थित होता है तब उन दोनों राशियों से उत्पन्न फल को करता है। ६० गुणित शशि बिंब विकला में चंद्र सूर्य के गति अंतर से भाग देने से प्राप्त घटियाँ तिथिकरण सन्धि प्रान्त होता है। साठ से गुणित चन्द्र बिम्ब को चंद्र रवि गति योग से भाग देने से योगान्त संधि होती है। इन संधियों में स्थित ग्रह मिश्रफल देते हैं।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही से **वटेश्वराचार्य** ने **वटेश्वर सिद्धांत** के स्पष्टाध्याय ६ में कहा है। यथा

''गत्यंशहृतबिम्बं संक्रमकालो ग्रहस्य घटिकादिः।
पुण्यतमोऽर्कस्यायं राश्यन्तंत्यजति रविबिम्बे।।२८।।
शशिबिम्बं षष्टिगुणं गतिविवरहृतं च करणतिथ्यन्तम्।
गति युति हृदंयोगान्तं मिश्रफलमत्र स्थितो द्युचरः।।२९।।
अत एवानिष्टानामाद्यन्तौ तिथिकरणयोगानाम्।
नेष्टौ विष्टिर्वारस्तिथिस्त्र्यहस्पृक् दिनं भवति।।३०।।''

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** में इसी प्रकार कहा है—

''मानार्घात् षष्टिगुणा भुक्तिहृतान्नाडिकादिलब्धेन।
राश्यान्तात्प्रागादिः पश्चादन्तोऽर्कसंक्रान्ते।।
संक्रान्तिपुण्यकालो यल्लब्धं नाडिकादितद्द्विगुणम्।
स्नानजपहोमदानादिकोऽत्र धर्मो विशिष्टफलः।।

एवं नक्षत्रान्तात् तिथिकरणान्ताच्छशिप्रमाणघ्नात्।
षष्टि गुणाद्रविशशिनोर्भुक्त्यन्तरलब्धघटिकाभिः॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''षष्ठिघ्नं सूर्यबिम्बं स्फुटगतिविहतं सोऽर्कसंक्रातिकालः।
पुण्यः स्मृत्यादिषूक्तस्त्यजति दिनमणिर्मण्डले भान्तमेवम्।
षष्ठिघ्नं चन्द्रबिम्बेऽप्युडुकरणतिथिप्रान्तमन्तं युतेर्वा।
चान्द्रया भुक्त्येन्दुभान्वोर्गति युतिवियुतिभ्यांक्रमान्नाडिकादि॥२८-३०॥''

स्पष्टीकरण— संधि वह काल है जितने समय में ग्रह बिंब राशि तथा नक्षत्र विभाग से होकर गुजरता है। तिथि, करण तथा योग आकाश में कोई स्थान विशेष न होकर काल्पनिक बिंदु है तथा इनके लिए चंद्रबिंब का संक्रमण होता है सूर्य का नहीं होता लेकिन इनकी परिभाषा के अनुसार सूर्यचंद्र गति का अंतर लिया जाता है। इन संधियों में होकर ग्रह बिंब का संक्रमण तब तक होता है जब तक उसके बिंब का कुछ भाग उस विभाग बिंदु के आगे तथा कुछ भाग पीछे रहता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के स्पष्टाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

अथ त्रिप्रश्नाधिकारः

अथ त्रिप्रश्नाध्यायं विवक्षुस्तावत् तदारम्भप्रयोजनमाह—

जगुर्विदोऽदः किल कालतन्त्रं दिग्देशकालावगमोऽत्र यस्मिन्।
त्रिप्रश्ननाम्नि प्रचुरोक्तिधाम्नि ब्रुवेऽधिकारं तमशेषसारम्।।१।।

त्रिप्रश्नाध्याय कहे जाने का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— विद्वान लोग जिस कालप्रदिपादक शास्त्र को जानते हैं, उस कालतन्त्र के दिग् अर्थात् दिशा, देश अर्थात् स्थान तथा काल अर्थात् समय को बताने वाले त्रिप्रश्न नामक इस अध्याय को, जो अनेक युक्तियों तथा ज्ञान से पूर्ण है तथा जो समस्त गणित शास्त्र का सार है, कहता हूँ।

इदानीं लग्नसाधनमाह—

तात्कालिकार्केण युतस्य राशेरभुक्तभागैर्गुणितोदयात् स्वात्।
भोग्यासवः खाग्निहतादवाप्ता भुक्तासवो भुक्तलवैः स्युरेवम्।।२।।
इष्टासुसङ्घादपनीय भोग्यांस्तदग्रतो राश्युदयांश्च शेषम्।
अशुद्धहृत् खाग्निगुणं लवाद्यमशुद्धपूर्वैर्भवनैरजाद्यैः।।३।।
युक्तं तनुः स्यादयनांशहीनमिष्टासवोऽल्पा यदि भोग्यकेभ्यः।
त्रिंशद्गुणाः स्वोदयभाजितास्ते लवांशयुक्तो रविरेव लग्नम्।।४।।

लग्न साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस इष्टकाल का लग्न साधन करना हो उस काल का तात्कालिक सूर्य (सायन) ज्ञात करे। वह सूर्य जिस राशि में स्थित हो उसके उदय असुकाल से सूर्य के भुक्त भाग को गुणा करके तीस से विभक्त करने से प्राप्तफल भुक्त भाग के असु होते हैं। इष्टकाल के असु में से उससे आगे (सूर्य भुक्त भाग से) के उदयासु तथा अग्रिम राशियों के उदय असु घटावे। अशुद्ध राशि के उदयासुओं से, शेष को तीस से गुणित में भाग देने से प्राप्त अशुद्ध भाग के उदय फल में पूर्व में मेष से आरंभ करके भुक्त राशि अंशों में

युक्त करने से प्राप्त फल में से अयनांश हीन करने से इष्ट काल का लग्न होता है। यदि इष्ट काल के असु भोग्य राशि असु से अल्प हो तो इष्ट के असुओं को तीस से गुणा करके सूर्य राशि स्वोदय (राशि) मान से विभाजित करने से प्राप्तफल में सायन सूर्य के राशि अंश युक्त करके अयनांश घटाने से इष्टकाल का लग्न होता है।

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त तथा स्वस्थान के उदय क्षितिज के संपता बिन्दु को लग्न कहते हैं। अभीष्ट इष्ट काल पर रवि के भोग्य असु और लग्न के भुक्त असु तथा रवि एवं लग्न के बीच की उदित राशियों के उदय असु इन सबका योग ही इष्ट काल होता है।

रवि के भोग्यांश के उदय (भोग्य) असु प्राप्त करने के लिए त्रैराशिक से अनुपात किया कि यदि सूर्य स्थित राशि के ३० अंश उदय होने में इतने उदयासु लगते हैं तो रवि स्थित राशि के भोग्य अंशों में कितने असु लगेंगे =

$$\frac{\text{रविस्थिराशि के उदय असु} \times \text{रवि के भोग्यांश}}{३०^{\circ}} = \text{रवि की वर्तमान राशि}$$

के भोग्य असु प्राप्त होंगे। इनको इष्ट काल के असुओं में से घटाने से जो शेष बचेगा वह लग्न के भुक्त असु तथा सूर्य एवं लग्न के बीच की भुक्त राशियों के उदय असुओं के योग के तुल्य है, जैसा कि पूर्व में बताया गया है। इस प्राप्त शेष में से रवि स्थित राशि के पश्चात की जिन राशियों के उदय असु घट सके उतने घटा देने के पश्चात बचने वाले शेष में जिस राशि के उदयमान पूर्ण रूप से न घटसके वह अशुद्ध राशि कहलाती है। फिर अनुपात किया कि अशुद्ध राशि के उदय असु मान समय में उसके ३० अंश उदित होते हैं तो इन शेष बचे असुओं में उसके कितने अंश उदित होंगे? क्योंकि इन शेष असुओं में अशुद्ध राशि पूरी तो नहीं उदित (घट) हो सकी लेकिन इसका कुछ भाग उदित हुआ है। इन प्राप्त अंशादि को पूर्व पूर्ण उदित हो चुकी राशियों के अंशों तथा सूर्य के भोग्य अंशों में जोड़ देने से प्राप्त राश्यादि लग्न का प्रमाण होगा।

क्योंकि भास्कराचार्य ने पूर्व में कहा है कि पूर्ण राशि उदयमान जो ज्ञात किये जाते हैं वे क्षेत्र बड़े होने के कारण स्थूल होते हैं। अतः ये जो आचार्योक्त प्रकार से लग्न आनयन किया गया है वह स्थूल होगा (होना चाहिये)। पंडित सुधाकर द्विवेदी जी ने इसमें संशोधन करके लग्नानयन किया है जो अधिक शुद्ध है। यथा—

"आकाशमध्यविंषुवांशवशात्प्रकुर्याद्यष्टिं दिवाकरमक्रमकोटिभागान्।
यष्टिं जिनांशजगुणं विषुवांशकं च स्वाक्षाद्व्य हीनदिनभागमितं क्रमेण॥
सौम्यानुदग्गोलगते प्रकल्प्य साध्यो भुजांशोऽथ भुजांशरव्योः।
युतेर्मितं सायनलग्नमानं भवेत्स्फुटं गोलविदां बुधानाम्॥"

विस्तार से व्याख्या तथा उदाहरण आदि के लिए मेरे द्वारा (टीकाकार) लिखित "बृहद् भारतीय कुण्डली विज्ञान" का अवलोकन करें।

प्रकारांतर से उपपत्ति—
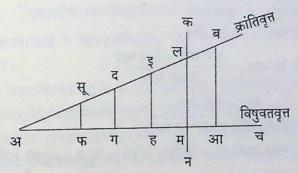
माना अ द ब = क्रांतिवृत्त है तथा अ ह च विषुवद्वृत्त है तथा अ इनका संपात बिन्दु है। द इ ब माना तीन राशियों के अंत बिंदु हैं। सूर्योदय के पश्चात माना क असु समय पश्चात सूर्य की स्थिति 'सू' है। माना उस समय पर क ल म न क्षितिज स्थान है जो क्रांतिवृत्त को ल बिंदु पर तथा विषुवतवृत्त को म बिंदु पर काटता है। ल इष्ट समय पर लग्न की स्थिति है जो हमें ज्ञात करना है।

माना विषुवद्वृत्त पर क्रां.वृ. के बिंदु सू, द, इ, ल तथा ब के प्रतिच्छाया (Corresponding) बिंदु क्रमशः फ, ग, ह, म तथा आ हैं। इस प्रकार अं ग, ग ह तथा ह आ क्रमशः क्रांतिवृत्त पर अ द, द इ तथा इ ब राशि के उदय काल के तुल्य भाग हैं।

लग्न ल स्पष्ट = अ सू चाप + सू ल चाप

= सूर्यस्पष्ट+सू द चाप + द इ चाप + इ ल चाप

= सूर्यस्प. + (३०° – सू.स्प.) + दूसरी राशि+ इ ल चाप

विषुवत वृत्त पर—

$$\frac{\text{फ ग चाप}}{\text{अ ग चाप}} = \frac{\text{सू द चाप}}{\text{अ द चाप}}$$

$$\text{या फ ग चाप} = \frac{\text{सूद चाप} \times \text{अ ग चाप}}{\text{अ द चाप}}$$

$$= \frac{(३०^{\circ} - \text{सूर्य स्प.}) \times \text{प्रथम राशि का उदय मान}}{३०^{\circ}\ (\text{एक राशि मान})}$$

चाप ह म = चाप फ म – चाप फ ग – चाप ग ह

अतः ह म चाप = क असु – चाप फ ग – दूसरी राशि के उदय असु

इसी प्रकार

$$\frac{\text{इ ल चाप}}{\text{इ ब चाप}} = \frac{\text{ह म चाप}}{\text{ह आ चाप}}$$

$$\text{या इ ल चाप} = \frac{\text{इ ब चाप} \times \text{ह म चाप}}{\text{ह आ चाप}}$$

$$= \frac{३०^{\circ} \times \text{चाप ह म}}{(\text{तीसरी राशि का स्वोदय मान})}$$

अतः लग्न स्पष्ट ल = सूर्यस्प.+(३० – सू.प.)+दूसरी राशि उदयमान + इ ल

यहाँ इ ल चाप का मान प्रतिस्थापित कर देंगे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ८ में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

"द्युगताद्दिवा विलग्नं निशिषड्भयुताद्रवेः साध्यम्।
भोग्यात्तात्कालिकरविभवनागतकलागुणिताः ॥७॥
स्वोदयकाला विभक्ता राशिकलाभिः फलाऽसवोऽसुभ्यः।
प्रोह्येष्टेभ्यो भोग्यं क्षिपेद्रवौ तदनु यावन्तः ॥८॥
शुद्धयन्त्युदया राशीन् क्षिपेद्रवौ तावतोऽवशेषं च।
खगुणघ्नमशुद्धोदयहृद् भागादौ क्षिपेद्विलग्नं प्राक् ॥९॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"रविभुक्तहीनराशेः कलागुणाः स्वोदयासुभिर्भक्ताः।
राशिकलाभिर्लब्धाः प्रश्नासुभ्योऽसवः शोध्याः ॥१८॥
प्रक्षिप्य राश्य भुक्तं शेषासुभ्यः क्रमेण यावन्तः।
शुद्धयन्त्युदयाः सूर्ये तावन्तो राशयः क्षेप्याः ॥१९॥

शेषात् त्रिंशद्गुणितादविशुद्धस्योदयासुभिर्विभजेत्।
लब्धं भागादिरवौ प्रक्षेप्य स्यात्तथा कृते लग्नम्॥२०॥"

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा —

"स्वोदयैः प्रश्ननाडिभिर्वधितोऽर्कोऽनुपाततः॥२३ $\frac{१}{२}$।

खण्डखाध्यायका अध्याय ३ में ब्रह्मगुप्त ने इसी प्रकार कहा है। यथा–

"इष्टघटिकाभिरुदयैरनुपातादवर्द्धितो रविर्लग्नम्।४ $\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"भोग्यान सहस्रकिरणेन गृहस्य भागान् सन्ताडयेत् तदुदयेन हरेत् खरामैः।
लब्धं त्यजेदसुसमूहमभीप्सितेभ्योऽसुभ्यः क्षिपेद् दिनकरेऽपि च राशिभुक्तम्॥११॥
यावन्त एवमुदया निपतन्त्यसुभ्योराशीन् क्षिपेत् तदनु तावत एव सूर्ये।
शेषात् खरामगुणितादविशुद्धलब्धं भागादिकं च भवतीष्टविलग्नमेवम्॥१२॥"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय ३ में लग्नानयन आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा –

"गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः॥४६॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासूनू प्रविशोधयेत्।
तद्वत् तदेष्यलग्नासूनेवं यातान् तथोत्क्रमात्॥४७॥
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्।
भागहीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा॥४८॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा —

"तत्कालरवेरयनसंस्कृतमूर्त्तेर्द्दकाण भोगलवाः।
तदुदयहतायनहृता भोग्याः प्राणा भवन्तितान् जह्यात्॥४२॥
इष्टप्राणेभ्योऽन्यानुदयांश्चाथाऽवशेषयेनबधात्।
अविशुद्धोदयलब्धा भागास्तात्कालिके रवौ क्षेप्याः॥४३॥
शुद्धोदय भागाश्चासौ लग्नं संस्फुटं भवति।
रात्रौ भगणार्धयुताद्भानोर्भोग्यं विधाय संशोध्यम्॥४४॥

भोग्यः शुध्यति न यदा प्रश्नासुन्काहतिं तदा विभजेत्।
भानुद्दकाण प्राणैर्लब्धांशाढ्यो रविर्लग्नम्॥४५॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सूर्यागतसमभ्यस्ताः तद्राशीष्टासवो हताः।
राशिभागैः कलाभिर्वा लब्धा रव्यगतासवः॥३०॥
इष्टासुभ्यो विशोध्यैतान् रवौ चाप्यगतं क्षिपेत्।
राशिप्राणांस्ततोऽपास्य देयाभानौ च राशयः॥३१॥
शेषं त्रिंशत्समभ्यस्तमिष्टराश्यसुभिर्हृतम्।
लब्ध भागादिसंयुक्तमिष्टकालोदयं विदुः॥३२॥"

इदानीं लग्नात् कालानयनमाह—

अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्यः समयो विलग्नात्।
यदैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभागः॥५॥
लग्नेऽल्पके तु द्युनिशात् स शोध्यस्तात्कालिकार्कादसकृच्च कालः।
चेत् सावनाः प्रष्टुरभीष्टनाड्यस्तदैव तात्कालिकतिग्मरश्मेः॥६॥
आक्ष्र्यो यदेष्टा घटिका विलग्नं कालश्च तत्रौदयिकात् सकृच्च॥६ $\frac{1}{2}$॥

लग्न से काल का आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि के भोग्य काल तथा लग्न के सायन अंशों के भुक्तकाल के योग में रवि से आगे की लग्नपर्यंत के मध्य गत राशियों के उदयाकाल को जोड़ देने से सूर्योदय से इष्ट काल होता है।

यदि लग्न तथा रवि एक ही राशि में हो तो दोनों के अंतर अंशों को रवि स्थित राशि के स्वोदय मान से गुणा करके तीस से भाग देने से इष्टकाल प्राप्त होता है।

लग्न यदि रवि से अल्प हो तो रवि और लग्न एक राशि में रहने से जो इष्टकाल आया है उसे रात्रि शेष में होने के कारण अहोरात्र में से घटाने से तात्कालिक रवि से असकृत कर्म से इष्ट काल होता है।

तात्कालिक रवि केंद्रोपरिगत अहोरात्रवृत्त और क्षितिजवृत्त के संपात से तात्कालिक रविकेंद्र तक सावनात्मक इष्ट काल होता है। उदय काल में स्थित रवि औदयिक है। वह इष्टकाल में प्रवहगति से जहाँ पहुँचते हैं उस पर जो अहोरात्र वृत्त क्षितिज वृत्त से जहाँ पर मिलेगा वहाँ से उदय कालिक रवि तक

नाक्षत्रात्मक इष्टकाल होता है और इष्टलग्न साधन में सावन इष्टकाल ग्रहण करते हैं लेकिन राशि उदयमान नाक्षत्रात्मक होता है। तब इष्टासु में राश्युदय काल क्यों घटाते हैं? जबकि वे दोनों विजातीय होते हैं। अतः असकृत्कर्म के कारण भी तात्कालिक रवि को ही ग्रहण करना ही होता है, इसके लिए आचार्य ने गोलाध्याय में "लग्नार्थ मिष्टघटिका....." आदि कहा है।

स्पष्टीकरण— आचार्य का सकृत कर्म करने का तात्पर्य यह है कि हमें सावन इष्ट घटी ज्ञात है लेकिन नाक्षत्र इष्ट घटी ज्ञात नहीं है। अतः सकृत् कर्म द्वारा इष्ट घटी को स्थिर किया जाता है। ब्रह्मगुप्तादि ने भी इसी प्रकार कहा है।

उपपत्ति— चित्र में सं रवि पर से जाने वाले अहोरात्र वृत्त तथा क्षितिज वृत्त का संपात है। ल = लग्न है। सू = तात्कालिक सूर्य है। अ = लग्न राशि का आरंभ बिंदु है। र = रवि की राशि का अंत बिन्दु है। अ र = र तथा अ के अंतराल में राशियाँ हैं। सू सं = सावन इष्ट घटी है।
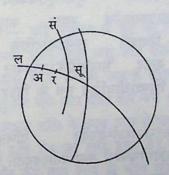
चित्र से स्पष्ट है कि तात्कालिक रवि केंद्र के ऊपर से अहोरात्रवृत्त होता है तथा इष्टकाल, रवि भोग्य असु और लग्न के भुक्तासु तथा इनके अंतर्गत स्थित राशियों के उदयअसु का योग होता है।

$$\text{अ ल} = \frac{\text{लग्न भुक्त कला} \times \text{लग्न राशि उदय असु}}{१८००}$$

$$\text{र सू} = \frac{\text{रवि राशि के भुक्त कला} \times \text{सूर्य स्थित राशि के उदय असु}}{१८००}$$

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"रविराश्य भुक्तलिप्तास्तदुदयगुणिता हृता गृहकलाभिः।
लब्धं प्राणाः स्थाप्याः प्रक्षिप्यार्के गृहाभुक्तम्॥२१॥
तावत्सूर्ये राशीन् क्षिपेत् समं राशिभैर्यावत्।
क्षिप्तग्रहाणां प्राणान् प्रक्षिप्य स्थापितेष्वसुषु॥२२॥
तदधिक कालोदयवधं राशिकलाभिर्भजेत् फलप्राणान्।
प्रक्षिप्य प्राणेषु प्राणाः सूर्योदयादसकृत्॥२३॥"

वटेश्वराचार्य ने **वटेश्वर सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार के अध्याय ८ में आचार्योक्त प्रकार ही से इष्टकाल आनयन कहा है। यथा–

"एकस्मिन् यदि भवने विलग्नसूर्यौ तदातयोर्विवरे।
भागाः स्वोदयगुणिता वियदग्निविभाजिताः कालः॥१३॥
रजनीशेषाल्लने रव्यूने साधितः कालः।
द्युनिशाच्छोध्यः कालस्तत्कालरविवशादसकृत्॥१४॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी जो कहा है वह आचार्योक्त ही है। त्रिप्रश्नाधिकार–

"भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च।
सम्पिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात् कालसाधनम्॥५०॥
सूर्यादूने निषाशेषे लग्नेऽकोदधिके दिवा।
भचक्रर्ध युताद् भानोरधिकेऽस्तमयात् परम्॥५१॥"

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद** ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"चक्रार्धयुक्तमिदमस्तविलग्नमाहुर्लग्नोदयेन गुणितास्तनुभुक्तभागाः।
खाग्न्युद्धृताः स्युरसवो रविभोग्यकाले तन्मध्यगोदययुताः समयो विलग्नात्॥१३॥
भानोरभुक्तसमयाल्पतरेष्टकालात् त्रिंशद्गुणात् तदुदयाप्तलवान्वितोऽर्कः।
लग्नं तदर्कविवरांशहृतोदयात् स्वात् त्रिंशोद् घृतात् समय एकगृहेऽर्कतन्वो॥१४॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त को ही द्रेष्काण प्रकार से कहा है। यथा–

"अयनसुसंस्कृतभानोर्भोग्यं तद्वाद्विलग्नभुक्तं च।
क्षेप्यं मध्योदयजप्राणयुतं तत्तनोर्भवेत् समयः॥४६॥
एकस्मिन् दृक्काणे लग्नार्कौ चेत् तदान्तरांशहताः।
पीनै भक्ता उदयासव इष्टास्ते भवन्त्यसवः॥४७॥"

मुंजालाचार्य ने **लघुमानसम त्रिप्रश्नाध्याय** में तथा **ब्रह्मगुप्त** ने **खण्डखाध्याय** में सूक्ष्म में आचार्योक्त कहा है।

''लग्नं तद्वद्विद्धेऽर्के लग्नतुल्ये तुनाडिकाः॥ लघु.मान. २४॥''

''अनुपातावर्द्धितेऽर्के लग्नसमे स्वौदयैर्घटिकाः॥

खण्डखाध्याय अ. ३ श्लोक ५॥''

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त कहा है–

''उदयस्य गता भागाः स्वोदयेनहता हृताः।
त्रिंशता प्राणलब्धिः स्यात् लग्नराश्यसवः पुनः॥३४॥
आहार्या यावदर्कस्य राशिभिस्तुदयासवः।
जायन्ते पुनरर्कस्य गन्तव्यांशासुभिर्युताः॥३५॥
प्राणाः दिवसशर्वयोर्विज्ञेयाः शङ्विभाजिताः।
षष्ट्या भूयोऽपि येलब्धा घटीविघटिकासवः॥३६॥''

इदानीं विलोमलग्नमाह—

भुक्तासुशुद्धेर्विपरीतलग्नं भुक्तांशगेहाप्तलवोनितोऽर्कः॥७॥

विलोम लग्न—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि सूर्योदय से पूर्व का लग्न ज्ञात करना हो तो तात्कालिक सूर्य ज्ञात करके उसके भुक्त असु ज्ञात करके उनको इष्ट असु में से घटा देवें तथा शेष असु में से जितनी अभुक्त राशियों के (सूर्य राशि से पूर्वराशियों के) उदय असु घट सके घटा देवें। शेष बचे (अशुद्ध राशि के) असु को तीस से गुणा करके अशुद्ध राशि के उदय असु से भाग देकर अंशादि लब्धि को सूर्य में से घटाने से रात्रि शेष का लग्न होता है। इस रात्रि शेष लग्न के अभुक्तांश (भोग्यांश) और सूर्य तथा लग्न के बीच की राशियों के उदयमानों के योग से असकृत् कर्म करने से रात्रि शेष में स्फुट इष्टकाल होता है।

उपपत्ति— इसकी भाष्य (टीका) ही उपपत्ति है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–
''प्रागुद्गमादपि रविर्गतराशिभागैः प्राग्भोदयैर्विरहितश्च विलग्नमेवमूने रवौ तनुसमे च कृते स कालः।''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

''प्रागुदये प्रश्नासुभिरुनोऽर्को भुक्तराशिभिर्लग्नम्।
कृत्वैवमूनमर्क लग्नसमं प्राग् भवेत्कालः॥२४॥''

इदानीं दिग्ज्ञानमाह—

वृत्तेऽम्भः सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमा-
द्भागं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरैन्द्र्यौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता-
ल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता॥८॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्या ध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा॥९॥

दिशा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जल से सुसमीकृत अर्थात् समान की हुई भूमि में (इष्ट दिन मध्यान्ह छाया व्यासार्ध) इष्ट प्रमाण का वृत्त बनावें जिसके केंद्र में द्वादश अंगुल नाप का शंकु स्थापित करे। उसकी छाया पूर्वाह्ण में वृत्त को जहाँ प्रवेश करे (पश्चिम) तथा अपराह्न में जहाँ निर्गत हो (पूर्व) उन बिंदु गत रेखा की दिशा में पूर्व पश्चिम स्थूल दिशा होती है। जिस समय छाया प्रवेश तथा निर्गम करती है उस काल की सूर्य की क्रांतिज्या साधित करे तथा उनके अंतर को छायाकर्ण से गुणा करके लम्ब ज्या से विभक्त करने से लब्धि अंगुलादि फल तुल्य पश्चिम बिंदु को स्थिर करके स्थूलपूर्वपश्चिम रेखा को यदि सूर्य उत्तर अयन में हो तो उत्तर की ओर और यदि दक्षिणायन में रवि हो तो दक्षिण की ओर घुमाने से स्फुट पूर्व-पश्चिम रेखा (दिशा) होती है। अन्यथा स्थूल पूर्व-पश्चिम दिशा होती है।

ध्रुवतारा उत्तर की ओर होता है अतःउसकी ओर उत्तर दिशा तथा उसके विरुद्ध दिशा में दक्षिण दिशा होती है। इस प्रकार दक्षिणोत्तर रेखा के अर्ध बिंदु के ऊपर जो लम्ब रेखा होगी वही वास्तव पूर्वापर रेखा होती है। इस तरह से भी प्रकारांतर से पूर्वपश्चिम रेखा का ज्ञान कर सकते हैं।

इष्ट छाया कर्ण, भुज तथा कोटि से निर्मित त्रिभुज के कर्ण के तुल्य जहाँ इष्टच्छाया होती है वहाँ कोटि पूर्वापर होती है।

उपपत्ति— अहोरात्र वृत्त इष्टउन्नतघटीअग्र पर पूर्वाह्ण में सममंडल से जितने अंतर पर रहता है उतना ही इष्ट उन्नत घटी अग्र पर अपराह्ण में रहता है, अतः उनकी छायाग्र बिंदुओं से दिग्ज्ञान होता है। उनको तात्कालिक करने

के लिए उनकी सूर्य क्रांति में जितना अंतर रहता है वह साधित करते हैं। क्योंकि पूर्व तथा पश्चिम कपाल में दोनों तुल्य छायाग्र की जो क्रांति होती है वह समान नहीं होती उनमें अंतर होता है। उस समय में जितने कर्णवृत्ताग्र अंगुल पूर्वाह्न में रहती है तथा इसी प्रकार जितनी अंगुल अपराह्न में रहती है, उनका अंतर कर लेते हैं। इसको लघु रीति से करने के लिए उनके तत्काल की क्रांतियों का अंतर कर लेते हैं। उससे अग्रान्तर करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि लम्बज्या कोटि में त्रिज्या कर्ण होती है तो क्रांतिज्या अंतर में कितनी होगी? प्राप्तफल अग्रा का अंतर होगा। इससे फिर अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना अंतर रहता है तो कर्णव्यासार्ध में कितना होगा?

$$\frac{\text{त्रि.} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{ज्या लं.त्रि.}} (\text{ज्या क्रां} - \text{ज्या क्रां}')$$

त्रिज्या जहाँ गुणा तथा भाग में होने से परस्पर कट जाती है तथा

प्राप्तफल $\frac{\text{छाया कर्ण}}{\text{ज्या लं.}} (\text{ज्या क्रां} - \text{ज्या क्रां}'.) =$

$\frac{\text{तात्कालिक क्रांति अंतर} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{लंबज्या}}$ = अग्रान्तर उत्तरायन में सूर्य उत्तर की ओर चलता है तब शंकुअग्र दक्षिण की ओर से उत्तर की तरफ चलता है। इस प्रकार ''यैन्द्री स्फुटा चालिता'' आदि उपपन्न हुआ।

भुज कोटि की उपपत्ति आगे कही गई है।

ऊपर प्राप्त अग्रांतर से पूर्व बिंदु के चालन से वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान होता है। केंद्र बिंदु से उसकी समानान्तर रेखा वास्तव पूर्वापर रेखा होती है। इसके अर्ध बिंदु पर से पूर्वापर रेखा पर लम्बवत रेखा दक्षिणोत्तर रेखा होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। ब्रह्मगुप्त प्रथम भारतीय खगोलविद् थे जिन्होंने यह सूक्ष्मविधि कही जिसको अन्य आचार्यों ने ग्रहण किया। यथा—

''पूर्वापरयोबिन्दु तुल्यच्छायाग्रयोर्दिगपराद्यः।
पर्वान्यः क्रान्तिवशात् तन्मध्याच्छङ्कुतलमितरे॥१॥''

वटेश्वराचार्य ने **वटेश्वर सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय १ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"समभुवि वृत्तेशङ्कोर्मध्यस्य प्रभाक्रामद्यत्र।
प्रविशत्यपैति ककुभौ क्रान्तिवशात्तौऽपरैन्द्राख्ये।।२।।
तुल्य प्रभाग्रयोर्वा पूर्वापरयोः कपालयोर्बिन्दू।
कार्यावपक्रमवशादैन्द्राख्यौ दिशौ भवतः।।३।।
वृत्तं रवौ प्रविष्टे सममंडलसंज्ञितं प्रभा या स्यात्।
समपूर्वापरगा सा सौम्या यत्र ध्रुवः सा स्यात्।।४।।
इष्टाभा भुजकोटिरचितत्रिभुजस्य वा श्रवणतुल्या।
यत्रेष्टाभा यावत्तावत्पूर्वापरा कोटिः।।५।।"

श्रीपति ने **सिद्धान्त शेखर** में आचार्योक्त ही कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार–

"छायानिर्गमन प्रवेश समयार्कक्रान्ति जीवान्तरं
क्षण्णं स्वश्रवणेन लम्बकहृतं स्यादङ्गुलाद्यं फलम्।
पश्चाद्बिन्दुमनेन रव्ययनतः सञ्चालयेद्व्यत्ययात्
स्पष्टा प्राच्यपराथवायनवशात् प्राग्बिन्दुमुत्सारयेत्।।३।।"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के त्रिप्रश्नाध्याय ३ में मत्स्य द्वारा उत्तर-दक्षिण रेखा साधन करके शुद्ध पूर्वापर रेखा ज्ञात करना बताया है। यथा–

"अद्भिः समत्वमवगम्य धरातलस्य वृत्तं लिखेत् स्फुटतरं खलु कर्कटेन।
सूत्रैश्चतुर्भिरवलम्बकसन्निबद्धैर्ज्ञातार्जवोरूसवृत्तगुरुर्नरः स्यात्।।१।।
छाया प्रवेश निर्गम बिन्दुभ्यां मीनमालिखेद् व्यक्तम्।
तद्वक्त्रपुच्छनिः सृतं सूत्रं याम्योत्तरं शङ्कोः।।२।।"

वराहमिहिर ने **पंचसिद्धान्तिका** में आचार्योक्त कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार–

"(शङ्कुचतुर्वि) स्तारे वृत्ते छायाप्रवेशनिर्गमनात्।
नपरैन्द्रीदिक्सिद्धि (र्य) वा (च्च) याम्योत्तरे कार्ये।।१६।।"

इदानीमेतत्सम्बन्धमाह—

दिक्सूत्रसंपातगतस्य शङ्कोश्च्छायाग्रपूर्वापरसूत्रमध्यम्।
दोर्दोः प्रभावर्गवियोगमूलं कोटिर्नरात् प्रागपरा ततः स्यात्।।१०।।

इनका संबंध—

सूर्य-प्रभा टीका— दिक्सूत्र (पूर्वापर रेखा) तथा शङ्कुछायाग्र जहाँ वृत्त

परिधि पर पड़ता है उसके मध्य की दूरी (भुज) दोः होती है। इसके वर्ग का शुङ्कछाया वर्ग से अंतर का मूल कोटि होती है जो पूर्वापर रेखा में होती है।

स्पष्टीकरण — उपपत्ति — चित्र में शं बिंदु पर शंकु है। शं छा छाया है तथा छा छाया अग्र बिंदु है। छा की पूर्व पश्चिम रेखा पू प से दूरी छा दो भुज है। तथा छाया छा शं कर्ण है।

$$\text{अतः दो शं} = \text{कोटि} = \sqrt{\text{छा शं}^2 - \text{छा दो}^2}$$
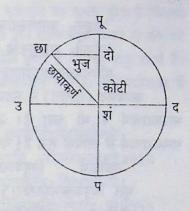
$$\text{कोटि} = \sqrt{\text{छायाकर्ण} - \text{भुज}^2}$$ यह पूर्वापर रेखा में है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त हीं कहा है।

"शङ्क प्राच्यपरायाश्छाया भुजकृतिविशेषमूलं यत्।
तत् प्राच्यपरा छाया भुजाग्रयोरन्तरं कोटिः॥५॥"

इदानीं छायातः कर्ण, कर्णाच्छायां चाह—

भाकृतीन १२ कृति १४४ संयुतेः पदं स्याच्छ्रुतिः श्रुतिकृतीनवर्गयोः १४४। अन्तराद्रवियुतोनकर्णयोराहतेश्च यदि वा पदं प्रभा॥११॥

छाया से कर्ण और कर्ण से छाया ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— छाया के वर्ग में बारह के वर्ग (१४४) को जोड़ कर मूल लेने से कर्ण होता है। कर्ण के वर्ग में से बारह के वर्ग को घटाकर मूल लेने से छाया होती है। कर्ण में बारह जोड़कर तथा घटाकर दोनों के गुणा का मूल लेने से छाया होती है।

सूत्र रूप में—

$$\text{छायाकर्ण} = \sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2} \; ; \; \text{छाया} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - १२^2} \; ;$$

$$\text{छाया} = \sqrt{(\text{कर्ण} + १२)\,(\text{कर्ण} - १२)}$$

उपपत्ति— सरल है तथा और उपपत्ति गोलाध्याय में बताई जायेगी।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय १ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"शङ्कु प्रमाणवर्गाच्छायावर्गान्वितात्पदं कर्णः।
कर्णकृतेः शङ्कूकृति विशोध्य मूलं प्रभाभवति॥११॥
श्रुतिशङ्क्वन्तरगुणितात्तद्योगान्मूलमक्षा भा॥१३॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में जो कहा वह भास्कराचार्य ने भी कहा है। आर्यभट की विधि (पलभा ज्ञान-छाया) भास्कराचार्य से अधिक शुद्ध है। यथा–

"तद्योगार्ध विषुवच्छाया तच्छङ्कुवर्गैक्यात्॥३॥
मूलं विषुवत्कर्णस्तत्क्रा(१२) द्र्योनाहतेः पदं भावा ।
दोर्भाशंकुः कोटिर्विषुवत्कर्णो भवेत् कर्णः॥४॥"

मुञ्जालाचार्य ने **लघुमानसम** के त्रिप्रश्नाध्याय में जो कहा है वह भी भास्कराचार्य ने कहा है। यथा—

"छायार्क वर्गसंयोगान्मूलं कर्णस्ततोऽपिभा॥२८$\frac{१}{२}$॥"

भास्कर (प्र.) ने **महा.भा.** के तृतीय अ. में कर्ण अनयन आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नृच्छायाकृतियोगस्य मूलमाहुर्मनीषिणः।
विषकम्भार्ध स्ववृत्तस्य छायाकर्मणि सर्वदा॥४॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के मध्यमाधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा–

"मध्यच्छायाकर्ण द्वादशकृत्यन्तरपदं वा॥४६॥"

पंचसिद्धान्तिका अध्याय-४ में आचार्योक्त छायाकर्ण साधन कहा है।

"विषुवद्दिन (सममध्य) च्छायावर्गात् सवेदकृतरूपात्।
मूलेन....................॥२०॥"
लब्धाङ्गुलानि (को) टिस्त (च्छा) या वर्गविवरमूलं (यत्)
सच (बाहुर्दिगग्र)हणे सममितिः को(ट्या) तु देयमृजु॥५४॥"

इदानीं संज्ञाविशेषमाह—

शङ्कुर्नरो ना कथितः स एव खार्धाद्रवेर्या विषुवद्दिनार्धे।
नतिः पलोऽक्षश्च स एव तज्ज्ञैस्तत्रोन्नतिर्यास्य स एव लम्बः॥१२॥

संज्ञा विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— शङ्कु को "नर" अथवा "ना" भी कहते हैं। विषुवद् दिनार्ध पर खस्वस्तिक तथा निरक्षखस्वस्तिक का अंतर ख अक्ष होता

है। इन दोनों का अंतर करने से खस्वस्तिक तक रवि का नतांश होता है जिसको ख अक्ष (अक्षांश) भी कहते हैं। नतांश को तीन राशि में से घटाने से शेष को उन्नतांश कहते हैं। इसकी ज्या लम्ब रूप कोटि होती है जिसको शंकु कहते हैं।

विशेष— **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद्** ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार में नतउन्नत कहा है।

"क्रांतिलम्बधनुषोरुदग्रवौ संयुतिर्वियुतिरन्यगोलके।
उन्नतिस्त्रिभविशेषिता नतिस्तिग्मभासि नभसोऽन्तरागते॥१५॥
क्रांतिचापपलयोः समागमो याम्यगोलयुजि तिग्मदीधितौ।
सौम्यभाजि विवरं भवेन्नतिः सोन्नतिस्त्रिभविशेषिताथ वा॥१६॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार के नवें अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"क्रान्त्यक्षान्तरयोगः समान्यककुभोर्नतांशकाः खाक्षाः।
तज्जया दृग्ज्या दोर्ज्या नतांशकोनास्त्रिगृहभागाः॥१॥
उन्नतभागाः कोटिस्तज्ज्या दोर्ज्यान्तरं तथा शङ्कुः।
उन्नतजीवा त्रिज्या कर्णो यष्टिस्तथा नलकाः॥२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में नत-उन्नत को इस प्रकार कहा है। यथा–

"दिनमध्यार्कक्रान्त्यक्ष भागयोगान्तरं समान्यदिशोः।
नतभागा नतभागान्नवतेः प्रोह्योन्नताः शेषाः॥४७॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में भास्कराचार्योक्त प्रकार ही से शंकु को नर कहा है तथा इष्टशंकु तथा नत-उन्नत क्रमज्या ज्ञात करना बताया है। यथा–

"यष्ट्युद्वृत्तनृयोगान्तरतो गोलक्रमाद भीष्टनरः।
अन्त्या नत्या हीना नतबाणः शेषमुक्तवत् कार्यम्॥३०॥"

इदानीमक्षक्षेत्राण्याह—

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलो ना कर्णोऽक्षकर्णः खलु मूलमेतत्।
क्षेत्राणि यान्यक्षभवानि तेषां विद्येव मानार्थयशः सुखानाम्॥१३॥
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा भुजोऽत्र कर्णस्त्रिभुजे त्रिभज्या।
कुज्या भुजः कोटिरपक्रमज्या कर्णोऽग्रका च त्रिभुजं तथेदम्॥१४॥

तथैव कोटिः समवृत्तशङ्कुरग्रा भुजस्तद्धृतिरत्र कर्णः।
भुजोऽपमज्या समना च कर्णः कुज्योनिता तद्धृतिरत्र कोटिः॥१५॥
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटिरुद्धृत्तना दोः श्रवणोऽपमज्या।
उद्धृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या॥१६॥
खण्डं यदूर्ध्वं समवृत्तशङ्कोर्यत् तद्धृतेस्तावथ कोटिकर्णौ।
अग्रादिखण्डं भुज एवमष्टौ क्षेत्राण्यमून्यक्षभवानि तावत्॥१७॥

अक्ष क्षेत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— ध्रुव क्षितिज के आसक्त होता है। निरक्ष देश से दृष्टा जैसे-जैसे उत्तर की तरफ जाता है वैसे-वैसे उसको ध्रुव ऊँचा उठाता हुआ दिखाई देता है। जितने अंश ध्रुव उन्नत होता है उतनी उस स्थान की अक्षांश संज्ञा होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण की ओर विषुवन्मण्डल नीचा दिखाई देता है। विषुवन्मडल की तिर्यक् स्थिति के कारण उसके (समानान्तर) आश्रित अहोरात्र वृत्त स्वस्थान पर तिरछा होता है। अतःसाक्ष देश खगोल वलन तथा तिरछे भगोल वलन के संपात से तीन ओर से क्षेत्र उत्पन्न होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की अक्ष क्षेत्र संज्ञा है। इन क्षेत्रों की उपयोगिता आचार्य कहते हैं।

(१) अक्षभा अर्थात पलभा भुज, १२ अंगुलात्मक शंकु कोटि तथा अक्षकर्ण कर्ण से मूलभूत अक्षक्षेत्र बनता है। यह क्षेत्र ज्ञान के समान, मूलभूत क्षेत्र है, जिससे (ज्ञान से) संसार की सभी मान, अर्थ, यश तथा सुख आदि मूलभूत अच्छाईयाँ प्राप्त होती है।

(२) दक्षिणोत्तर मण्डल और विषुवद् वृत्त के संपात से नीचे अवलम्बित क्षितिज पर्यन्त सूत्र वहाँ कोटि है। लम्ब मूल तथा भूमध्य का अंतर जो अक्षज्या है वह भुज है। भूमध्य से लम्ब पर अग्रगामि सूत्र त्रिज्या है वह कर्ण है। यह भी एक अक्षक्षेत्र बनता है।
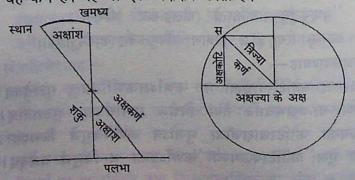
(३) इष्ट अहोरात्र वृत्त जहाँ क्षितिज पर लगता है उसका पूर्व स्वस्तिक से अन्तर अग्राचापांश होता है जिसकी ज्या अग्रज्या होती है। क्षितिज पर अग्रा के दोनों अग्र बिंदु से निबद्ध सूत्र उदयास्त सूत्र होता है। अहोरात्र वृत्त तथा उन्मण्डल के संपात का पूर्वापर सूत्र से जो अंतर है वह क्रांतिज्या है, वह यहाँ कोटि है। अग्रा कर्ण है। उसका अग्रा से अंतर कुज्या है वह भुज है। इस प्रकार यह तीसरा अक्षक्षेत्र है।

(४) अहोरात्रवृत्त और सममंडल के संपात से नीचे लंब समवृत्तशंकु है वह कोटी है। अग्रा भुज तथा अहोरात्र वृत्त में ज्याखण्ड तद्धृति कर्ण है। इस प्रकार यह चौथा अक्षक्षेत्र है।

(५) कुज्या को तद्धृति में घटाने से अहोरात्र वृत्त में ज्यार्ध कोटि है उन्मण्डल में क्रांतिज्या है वह भुज है। समवृत्त में समशंकु कर्ण है। इस प्रकार यह पांचवाँ अक्षक्षेत्र है।

(६) अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात से अवलंब उन्मण्डल शंकु भुज है। उन्मण्डल में क्रांतिज्या कर्ण है। उन्मंण्डल शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र का अंतर जो अग्रादि का खंड है वह कोटि है। यह छठा अक्षक्षेत्र है।

(७) उन्मंडल शंकु कोटि है। शंकूमूल तथा उदयास्त सूत्र का अन्तर अग्रा खण्ड भुज है तथा कोटि भुज, अग्रा का अंतर सूत्र जो कुज्या है वह कर्ण है। इस प्रकार यह सातवाँ अक्षक्षेत्र है।

(८) उन्मंडल शंकु को समशंकु में से घटाने से समशंकु का उर्ध्व खंड कोटि है। तद्धृति में कुज्या घटाने से तद्घृति का उर्ध्व खंड कर्ण है तथा अग्रादि खंड भुज है। यह आठवाँ अक्षक्षेत्र है।

इस प्रकार ये आठ अक्षक्षेत्र कहे हैं। इनसे अतिरिक्त भी अन्य बहुत से अक्षक्षेत्र बनते हैं। इन अक्ष क्षेत्रों में एक कोण अक्षांश तुल्य, दूसरा अक्षांश कोटि लंबाश तुल्य तथा तीसरा समकोण (९०° अंश) होता है। अक्षांश तुल्य कोण के सामने की भुजा भुज, अक्षांश कोटि तुल्य कोण के सामने की भुजा कोटी तथा ९०° समकोण के सामने की भुजा कर्ण होती है। इन आठ अक्ष क्षेत्रों के अतिरिक्त अहोरात्र वृत्त, विषुतवृत्त के अन्य क्षितिजवृत्त, सममण्डल, याम्योत्तर वृत्त, उन्मंडल तथा क्रांतिवृत्त के साथ संपात से अन्य अक्ष क्षेत्र भी बनते हैं। ये सभी वृत्त क्षेत्र अक्ष, अक्षकोटि (लंबांश) तथा समकोण में परस्पर संपात करते हैं।

आचार्योक्त आठों अक्ष निम्न लिखित प्रकार से होते हैं। इनकी सहायता से आचार्योक्त आगे के श्लोकों में कथित प्रकार से अक्षज्या, लं.ज्या, समशंकु, अग्रा, तद्धृति आदि का आनयन किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में अक्षांश Ø के सम्मुख की भुजा भुज है।
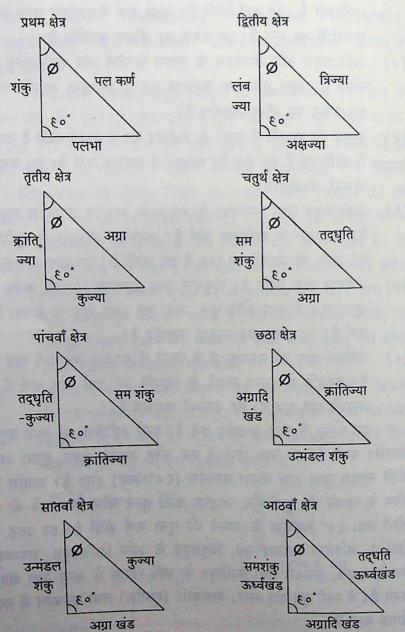
आधुनिक ज्या (Sine), कोज्या (Cosine) तथा स्पर्शज्या (Tangent) की परिभाषानुसार समतल त्रिभुज में—

$$ज्या = \frac{लंब}{कर्ण}\ ;\ कोज्या = \frac{आधार}{कर्ण}\ ;\ स्पर्शज्या = \frac{लंब}{आधार}$$

यहाँ अक्ष क्षेत्रों के भुज = लंब तथा कोटि = आधार है। इनके आधार पर इन सभी त्रिभुज अक्ष क्षेत्रों में ये अनुपात ज्ञात करके यहाँ बताये जा रहे हैं। इस प्रकार सभी त्रिभुजों से ज्ञात अक्षज्या का मान तुल्य होगा, लंबज्या (कोज्या अक्षज्या) का मान समान होगा तथा इसी प्रकार स्पर्शज्या का मान समान होगा। आचार्य ने इस त्रिप्रश्नाधिकार में जो भी अनुपात करके सूत्र बनाये हैं वे सभी इनके द्वारा तथा यहाँ संलग्न गोचचित्र (१) तथा (२) द्वारा प्राप्त हो जाते हैं।

$$ज्या\ अक्षांश = \frac{अक्ष\ क्षेत्र\ का\ भुज}{अक्ष\ क्षेत्र\ का\ कर्ण}\ ;\ लंबज्या = \frac{अक्ष\ क्षेत्र\ की\ कोटि}{अक्ष\ क्षेत्र\ का\ कर्ण}$$

$$अक्षांश\ स्प.ज्या = \frac{अक्ष\ क्षेत्र\ का\ भुज}{अक्ष\ क्षेत्र\ की\ कोटि}$$

अक्षक्षेत्र – प्रथम—

$$अक्षांश\ ज्या = \frac{पलभा}{पलकर्ण} = \frac{भुज}{कर्ण}\ ;$$

$$लंब\ ज्या = \frac{शंकु}{पलकर्ण} = \frac{कोटि}{कर्ण}\ ;$$

$$अक्षांश\ स्प.ज्या = \frac{पलभा}{शंकु} = \frac{भुज}{कोटि}$$

द्वितीय—

अक्षज्या = अक्षज्या;

लंबज्या = लंबज्या ;

अक्षांश स्प.ज्या = अक्षांश स्प.ज्या

तृतीय—

$$अक्षज्या = \frac{कुज्या}{अग्रा}\ ;$$

$$लंबज्या = \frac{क्रांति\ ज्या}{अग्रा}\ ;$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

चतुर्थ—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}}$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{समशंकु}}$$

पंचम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

षष्ठम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{क्रांतिज्या}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{अग्राखण्ड}}{\text{क्रांतिज्या}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{अग्रादि खण्ड}}$$

सप्तम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{कुज्या}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा खण्ड}}{\text{उन्मंडल शंकु}}$$

अष्टम —

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा खण्ड}}{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}$$

इन सभी में अक्षज्या, लंबज्या तथा स्प.ज्या के मान सभी अक्ष क्षेत्रों में तुल्य है। यथा—

(क) $$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{कु ज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$= \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{कु ज्या}} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$$

ये अक्ष क्षेत्र के भुज तथा कर्ण के अनुपात हैं।

(ख) $$\text{लंबज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$= \frac{\text{अग्राखण्ड}}{\text{क्रां.ज्या}} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$$

ये अक्ष क्षेत्र की कोटि तथा कर्ण के अनुपात हैं।

(ग) $$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{कु ज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$= \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{अग्रादिखंड}} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{उन्मंडल शंकु}} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

ये अक्षक्षेत्र के भुज तथा कोटि के अनुपात हैं। आचार्य ने इन्हीं अनुपातों की सहायता से संपूर्ण त्रिप्रश्नाधिकार के सूत्र कहे हैं।

यदि अक्षांश का मान क्रमशः ०°, ३०°, ४५°, ६०°, ९०° हो तो–

(१) अक्षांश ज्या ०° =० = $\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ होगा। अर्थात् वहाँ पर अक्ष क्षेत्र के सभी भुज = पलभा = अक्षज्या = कुज्या = अग्रा = क्रांतिज्या = उन्मंडल शंकु = अग्राखंड = अग्रादिखंड का मान शून्य होगा।

(२) यदि अक्षांश = ३०° हो तो अक्षांश ज्या ३०° = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$; अतः $\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = $\frac{१}{२}$ अर्थात् कर्ण = २ भुज होगा। यह सभी अक्ष क्षेत्रों में होगा। अर्थात् पूर्व लिखित अक्षांश ज्या के अनुपातों में हार (Denominator) का मान अंश (Numerator) के मान से दुगुने होंगे।

कोज्या ३०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$ अतः पूर्व लिखित लंबज्या के अनुपातों में अंश×२ = $\sqrt{३}$ हार अर्थात् कोटि ×२ = $\sqrt{३}$ कर्ण होंगे।

स्प.ज्या ३०° = $\frac{१}{\sqrt{३}}$ अतः पूर्व लिखित स्प.ज्या के अनुपातों में अंश× $\sqrt{३}$ = हार अर्थात् $\sqrt{३}$ भुज = कोटि होगें।

(३) यदि अक्षांश = ६०° हो तो अक्षांश ज्या ६०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$; अतः–

$\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}} = \frac{\sqrt{३}}{२}$ अर्थात सभी अक्ष क्षेत्रों में अंश (Numerator) = २ भुज तथा हार (Denominator) = कर्ण × $\sqrt{३}$ के मान तुल्य होंगे।

स्प.ज्या. ६०° = $\frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}} = \frac{१}{\sqrt{३}}$ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में कोटि = $\sqrt{३}$ भुज होगी।

लंबज्या ६०° = $\frac{१}{२} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में २ कोटि = कर्ण होगी।

(४) यदि अक्षांश ९०° हो तो अक्षज्या ९०° = १ अतः

$\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = १ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में भुज तथा कर्ण समान होंगे।

लंबज्या = ९०° = ० अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में कोटि का मान शून्य होगा।

स्प.ज्या = ९०° = ∞ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में भुज का मान अनंत होगा। इसी प्रकार सभी अक्षांशों के लिए ज्ञान किया जा सकता है।

पूर्वोक्त अनुपातों की सहायता से आचार्योक्त अनेक प्रश्न-उत्तर जो आगे कहे गये हैं उस प्रकार के और भी अनेक प्रश्नोत्तर बनाये जा सकते हैं। अन्य आचार्यों के प्रश्न तथा उनके उत्तर इन अनुपातों की सहायता से ज्ञात किय जा सकते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने भी महासिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में अक्षक्षेत्र इसी प्रकार कहे हैं—

"दौर्भा शङ्कुः कोटिर्विषुवत्कर्णो भवेत् कर्णः ॥४॥
अक्षज्या वा बाहुः कोटिर्लम्बज्यका श्रुतिर्गज्या।
कुज्या बाहुः कोटिः क्रान्तिज्याऽग्रा च कर्णः स्यात्॥५॥
अग्राद्यखण्ड कोटेरुन्मण्डलना भुजः श्रवोऽपमजा।
अग्राग्रं दोरुन्मण्डलना कोटिः श्रतिः कुज्या॥६॥
समना कोटिः कर्णस्तद्धृतिरग्रा भुजो भुजोऽपमजा।
तद्धृत्युत्तरखण्डं कोटिः कर्णो भवेत् समना॥७॥"

इदानीमेषां साधनान्याह—

एषामथैकस्य तु बाहुकोटिकर्णैर्मिथोऽन्यान्यनुपाततः स्युः।१७ $\frac{1}{2}$।

अक्ष क्षेत्र की तीन भुजायें ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— इन की किसी एक भुजा को बाहु कोटि और कर्ण में परस्पर अनुपात द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

इदानीं तथाह—

त्रिज्ये पृथक् कोटिभुजाहते ते कर्णोद्धृते लम्बपलज्यके स्तः॥१८॥
तत्कार्मुके लम्बपलौ च तज्ज्ये दोःकोटिजीवावदतो मिथो वा।
अक्षज्यका कोटिगुणा भुजाप्ता लम्बज्यका वाक्षगुणोऽन्यथातः॥१९॥

ज्ञात करने की रीति—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या को पृथक-पृथक कोटि और भुज से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से क्रमशः लम्बज्या तथा अक्षज्या होती है। यह द्वितीय अक्षक्षेत्र के अतिरिक्त सभी सातों अक्षक्षेत्रों के लिए करने से होता है। लम्बज्या तथा अक्षज्या का धनु बनावें। ये क्रमश लंबांश तथा अक्षांश होते

हैं। लम्बोत्क्रमज्या को त्रिज्या में से घटाने से अक्षज्या होती है तथा अक्षोत्क्रमज्या को त्रिज्या में से घटाने से लम्बज्या होती है। त्रिज्या वर्ग में से पृथक-पृथक लम्ब और अक्ष ज्या के वर्गों को घटा कर मूल लेने से अक्ष तथा लम्ब की ज्या होती हैं, यह क्षेत्र २ से है।

सभी सातों क्षेत्रों में अक्षज्या को कोटि से गुणा करके अपनी-अपनी भुज से विभक्त करने से सात प्रकार से लम्बज्या प्राप्त होती है। सात प्रकार से लम्बज्या को सातों की भुज से गुणा करके अपनी-अपनी कोटी से विभक्त करने से उन क्षेत्रों की अक्षज्या होती है।

द्वितीय क्षेत्र का अन्य सातों क्षेत्रों से इसमें अनुपात किया है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार २ में आचार्योक्त एक विधि कही है। यथा–

"जलम्बज्याकृति हीनात् त्रिज्यावर्गात्पदं पलज्या वा।
पलजीवा त्रिज्याकृति वियुतिपदं लम्बकज्या वा॥४॥"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में—

"दिगभेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः।
ताभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम॥१६॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार—

"कोटिभुजघ्ने गज्ये श्रुतिभक्ते लम्बकाक्षजीवे स्तः।
क्रमशस्तच्चापांशा लम्बपलाख्या उदग्याम्याः॥८॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रिप्रश्नाधिकार में लंबज्या आनयन आचार्योक्त कही है—

"विषुवज्ज्याऽऽयामार्धवर्ग विश्लेषमूलमवलम्बकः॥२२ $\frac{१}{२}$॥"

भास्कर (प्रथम) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"छायाहतं त्रिभवनस्य गुणप्रतानं हत्वा नरेण च पृथग्विभजेत्पदेन।
अक्षावलम्बकगुणौ विषुववत्प्रसिद्धौ छायानरौ च विपुलावपरत्र दृष्टौ॥५॥"

इदानीमन्यवाहं—

क्रान्तिज्यके कर्णगुणे विभक्ते कोट्या भुजेनाप्तमिताग्रका स्यात्।
आद्यं द्वितीयं समशङ्कुरेव स्यात् तद्धृतिः कोटिहतः श्रुतिघ्नः॥२०॥

अग्रज्या, समशंकु तथा तद्धृति ज्ञात करने की विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रातिज्या को अक्ष क्षेत्र के कर्ण से गुणा करके एक स्थान पर स्व कोटी से विभक्त करने से किसी भी अक्ष क्षेत्र में अग्रज्या होती है और द्वितीय स्थान पर स्वभुज से विभक्त करने से समशंकु होता है।

इस प्रकार सभी सातों क्षेत्रों के कर्णों से सात प्रकार से अग्रा तथा सात प्रकार से सम शंकु होते हैं। समशंकुको सातों स्थानों पर कर्ण से गुणा करके स्व.स्वकोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से तद्धृति होती है।

प्रथम कथन तृतीय क्षेत्र से तथा द्वितीय कथन पंचम क्षेत्र से अन्य अक्ष क्षेत्रों के अनुपात से कहा है तथा तृतीय कथन चौथे क्षेत्र से अन्य अक्ष क्षेत्रों का अनुपात है।

$$\text{सम शंकु} = \frac{\text{कर्ण} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{भुज}} \; ; \; \text{अग्रज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{कर्ण}}{\text{कोटि}} \; ;$$

$$\text{तद्धृति} = \frac{\text{स. शंकु} \times \text{कर्ण}}{\text{कोटि}}$$; पूर्वोक्त सूत्र क्रमशः (क)(ख),(ख) द्वारा प्राप्त।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्रान्तिज्ये कर्णहते कोट्या दोष्णा हृते क्रमात् स्याताम्।
अग्रासमवृत्तनरौ समना श्रुत्या हतो हृतः कोट्या॥६॥"

इदानीमन्यदाह—

कर्णेन निघ्नी पृथगग्रका वा भुजेन भक्ता खलु तद्धृतिः स्यात्।२०$\frac{१}{२}$।

तद्धृति ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— कर्ण को पृथक-पृथक सात प्रकार से अग्रा से गुणा करके स्व-स्व भुज से विभक्त करने से तद्धृति प्राप्त होती है। यह सात प्रकार से होती है।

$$\text{तद्धृति} = \frac{\text{कर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{भुज}}$$; पूर्वोक्त सूत्र (क) द्वारा प्राप्त।

चतुर्थ अक्ष क्षेत्र का शेष क्षेत्रों से यहाँ अनुपात किया गया है।

इदानीमन्यदाह—

कोट्या हता तद्धृतिरग्रका च कर्णेन दोष्णा क्रमशो विभक्ता॥२१॥

द्विधा भवेद्वा समवृत्तशङ्कुः स दोर्गुण कोटिहृतोऽग्रका वा।२१ $\frac{१}{२}$ ।

समशंकु तथा अग्रा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सात प्रकार से तद्धृति को सातों कोटि से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से समशंकु होता है। इसी प्रकार सात स्थानों पर कोटि को अग्रा से गुणा करके स्व-स्व भुज से विभक्त करने से समशंकु होता है, यह सात प्रकार से होता है।

समशंकु को सातों स्थानों में भुज से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से अग्रा प्राप्त होती है।

$$\text{सम शंकु} = \frac{\text{तद्धृति} \times \text{कोटि}}{\text{कर्ण}} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{कोटि}}{\text{भुज}} \; ; \; \text{अग्रा} = \frac{\text{समशंकु} \times \text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

यहाँ क्रमशः चतुर्थ तथा तृतीय क्षेत्र से शेष क्षेत्रों का अनुपात यहाँ किया गया है। पूर्वोक्त सूत्र क्रमशः (ख), (ग) तथा (ग) के द्वारा प्राप्त।

इदानीमन्यदाह—

कोट्युद्धृतं तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं श्रुत्वा हतं वा समवृत्तशङ्कुः ॥२२॥

समशंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— तद्धृति से कुज्या घटाने से प्राप्त तद्धृति उर्ध्व खंड को कर्ण से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से समशंकु होता है।

$$\text{सम शंकु} = \frac{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड} \times \text{कर्ण}}{\text{कोटि}}$$

; यहाँ पंचम क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों से अनुपात किया गया है। पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा प्राप्त होते हैं।

इदानीमन्यदाह—

द्विधापमज्या भुजकोटिनिघ्नी कोट्या च दोष्णा विहृताद्यमाप्तम्।
कुज्या परं तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं स्यात् तद्धृतिः संयुतिरेतयोर्वा ॥२३॥

कुज्या तथा तद्धृति ऊर्ध्व खण्ड ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या को सात प्रकार से भुज से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से कुज्या होती है। क्रांतिज्या को कोटिज्या से गुणा करके स्वस्व भुज से विभक्त करने से तद्धृति ऊर्ध्वखंड होता है। यह सात प्रकार से होती है।

इस प्रकार कुज्या में तद्धृति का ऊर्ध्व खंड योग करके तद्धृति ज्ञात करने की ९८ विधियाँ हैं।

$$\text{कुज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{भुज}}{\text{कोटि}}; \quad \text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{कोटि}}{\text{भुज}}$$

तद्धृति = कुज्या + तद्धृति उर्ध्वखंड

यहाँ क्रमशः तृतीय तथा पंचम क्षेत्र से शेष अक्षक्षेत्रों का अनुपात किया है। पूर्वोक्त सूत्र (ग) द्वारा प्राप्त होते हैं।

इदानीमन्यदाह—

कुज्यापमज्ये भुजकोटिनिघ्न्यौ कर्णोद्धृते स्यात् क्रमशो यदाप्तम्।
अग्राग्रखण्डं प्रथमं द्वितीयमग्रादिखण्डं च तदैक्यमग्रा ॥२४॥

अग्रा-अग्रखंड तथा अग्रा-आदि खंड ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— कुज्या को सात प्रकार से भुज से गुणा करके स्व-स्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से अग्रा का अग्र खंड होता है, और सात प्रकार से कोटि को क्रांतिज्या से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से अग्रा का आदि खंड होता है। इनको योग करने से सात प्रकार से अग्रा होती है।

$$\frac{\text{कुज्या} \times \text{भुज}}{\text{कर्ण}}$$ = अग्रा अग्रखंड। पूर्वोक्त सूत्र (क) द्वारा प्राप्त।

$$\frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$$ = अग्रा आदिखंड। पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा प्राप्त।

अग्रा = अग्रा आदिखंड + अग्रा अग्रखंड

यहाँ क्रमशः सप्तम एवं षष्ठम क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों से अनुपात किया है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''तद्धृतिरस्या आद्यं खण्डं कुज्योत्तरं शेषम्।
कुज्या दोर्घ्नी श्रुत्या संभक्ताऽग्राग्रखण्डं स्यात्॥१०॥''

इदानीमन्यदाह—

अग्रादिखण्डं च तथापमज्या भुजाहते ते क्रमशो विभक्ते।
कोटिश्रुतिभ्यामुभयत्र शङ्कुरुन्मण्डलस्थे रविमण्डले स्यात्॥२५॥

उन्मण्डल शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अग्रा के आदिखंड को सातों क्षेत्र के भुज से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभाजि करने से सात प्रकार से उन्मंडल शंकु होता है। क्रांतिज्या को सातों भुज से गुणा करके स्व-स्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से उन्मण्डल शंकु होता है।

$$\text{उन्मंडल शंकु} = \frac{\text{अग्रा आदि खंड} \times \text{भुज}}{\text{कोटि}} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{भुज}}{\text{कर्ण}}$$

यहाँ षष्ठम क्षेत्र का शेष क्षेत्रों से अनुपात किया गया है। पूर्वोक्त (ग) (क) से।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''अपमज्या भुजगुणितोन्मण्डलशङ्कुः श्रवोहृता भवति।
निजकोटिभुजश्रवणैः सिध्यन्त्येतैर्निरुक्तानि ॥११॥''

इदानीमन्यदाह—

अग्राग्रखण्डं क्षितिशिञ्जिनी च कोट्या हते दोः श्रवणोद्धृते स्तः।
उद्धृत्तशङ्कू समना तदूनः स्यादूर्ध्वखण्डं समवृत्तशङ्कोः ॥२६॥

उन्मण्डल शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अग्रा अग्रखंड और (कुज्या) क्षितिज्या को पृथक-पृथक सात प्रकार से कोटि से गुणा करके क्रमशः भुज तथा कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से उन्मंडल शंकु होता है।

समशंकु में से उन्मंडल शंकु को घटाने से उर्ध्व समशंकु खंड प्राप्त होता है।

$$\text{उन्मंडल शंकु} = \frac{\text{अग्रादि खंड} \times \text{कोटि}}{\text{भुज}} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$$

यहाँ क्रमशः छठे तथा सातवें क्षेत्र से शेष सात क्षेत्रों का अनुपात किया गया है। ये पूर्वोक्त सूत्र (ग) तथा (ख) से प्राप्त होते हैं।

इदानीमन्यदाह—

अग्रा भुजघ्नी श्रुतिहृत् क्षितिज्या तदूनिता तद्धृतिरूर्ध्वखण्डम्।२६ $\frac{१}{२}$।

(कुज्या) क्षितिज्या तथा तद्धृति उर्ध्वखंड ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अग्रा को सातों भुज से गुणा करके स्वस्व कर्ण

से विभक्त करने से सात प्रकार से प्राप्त (कुज्या) क्षितिज्या को तद्धृति में से घटाने से तद्धृति का आदि खंड प्राप्त होता है।

$$\text{क्षितिज्या (कुज्या)} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{भुज}}{\text{कर्ण}}; \text{ तद्धृति उर्ध्वखंड} = \text{तद्धृति} -$$

क्षितिज्या। ये पूर्वोक्त सूत्र (क) से प्राप्त होता है।

यहाँ तृतीय क्षेत्र का शेष क्षेत्रों से अनुपात किया गया है।

इदानीमन्यदाह—

ज्ञाताच्च साध्यादितरे भवन्ति यद्वा गुणच्छेदविपर्ययेण॥२७॥

अन्य अवयव ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व में ज्ञात तथा ज्ञात किये गये अवयवों की सहायता से अन्य अवयव ज्ञात किये जा सकते हैं तथा गुणा-भाग तथा पक्षांतर के द्वारा हम एक से दूसरा अवयव ज्ञात कर सकते हैं।

दोः कोटिवर्गैक्यपदं श्रुतिः स्यात् तत्कोटिवर्गान्तरतः पदं दोः।
दोःकर्णवर्गान्तरश्च कोटिर्द्वाभ्यां तृतीया यदि वा स्युरेवम्॥२८॥

भुज कोटि तथा कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। उस कर्ण के तथा कोटि के वर्गों के अन्तर का मूल भुज तथा कर्ण और भुज के वर्गों के अंतर का मूल कोटि होता है। इस प्रकार दो अवयवों के द्वारा तीसरा अवयव सभी अक्ष क्षेत्रों में ज्ञात किया जा सकता है।

$$\text{कर्ण} = \sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}; \text{ कोटि} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुज}^2};$$

$$\text{भुज} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{कोटि}^2}$$

विशेष— भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय तृतीय अध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"नृच्छायाकृतियोगस्य मूलमाहुर्मनीषिणः।
विषकम्भार्धं स्ववृत्तस्य छाया कर्मणि सर्वदा॥४॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार १ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिज्या बाह्वग्रमौर्व्योः कृतिविवरपदं वेतरज्या प्रदिष्टा।
बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योर्विवरयुतिहतेर्मूलमाहुस्तयोर्वा॥५२ $\frac{1}{2}$॥"

इदानीमुपसंहारश्लोकमाह—

त्रिषष्टिरत्रानयनप्रभेदास्तावत् स्युरेवं पललम्बमौर्व्योः।
अग्रादिकानां शतशः प्रभेदैर्लम्बादयोऽपि स्युरनन्तभेदाः।।२६।।

उपसंहार श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— तिरेसठ (६३) प्रकार से लम्ब तथा भुज ज्या ज्ञात की जा सकती है। अग्रज्यादि को सैकड़ों प्रकार से ज्ञात कर सकने के कारण लम्ब ज्या आदि को प्राप्त करने की अनन्त विधियाँ हो सकती है।

स्पष्टीकरण— आचार्य को यहाँ अनन्त विधियाँ कहने का तात्पर्य अनेकों प्रकार से है इस अनन्त कर अर्थ शाब्दिक अर्थ में अनन्त नहीं है।

विशेष— भास्कराचार्य ने यहाँ श्लोक १८ से २८ में जो अग्रा, तद्धृति, लम्बज्या, अक्षज्या, उन्मंडल शंकु, समशंकु, कर्ण, भुज, कोटि आदि ज्ञात करने की विधियाँ व्यापक रूप में बताई हैं उन्हें अन्य आचार्यों (पूर्ववर्ती) ने भी बताई है। वटेश्वराचार्य ने तो इन प्रत्येक के आनयन के लिए अलग-अलग अध्याय दिये हैं जिनमें अन्य विधियाँ भी हैं। इसी प्रकार आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों ने भी इसी प्रकार विधियाँ बताई हैं।

जिस प्रकार भास्कराचार्य ने श्लोक लिखे हैं उसी के अनुरूप **आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त** में लिखे हैं। पुनः यहाँ उद्धृत करते हैं। यथा त्रिप्रश्नाधिकार—

"कोटिभुजघ्ने गज्ये श्रुति भक्ते लम्बकाक्षजीवे स्तः।
क्रमशस्तच्चापांशा लम्बपलाख्या उदग्याम्याः।।८।।
क्रांतिज्ये कर्णहते कोट्या दोष्णा हते क्रमात् स्याताम्।
अग्रासमवृत्तनरौ समना श्रुत्या हतो हृतः कोट्या।।९।।
तद्धृतिरस्या आद्यं खण्डं कुज्योत्तरं शेषम्।
कुज्या दोर्घ्नी श्रुत्या संभक्ताऽग्राग्रखण्डं स्यात्।।१०।।
अपमज्या भुजगुणितोन्मण्डलशङ्कुः श्रवोहृता भवति।
निजकोटि भुज श्रवणैः सिध्यन्त्येतैर्निरुक्तानि।।११।।"

इत्यादि।

इदानीं दिङ्नियमेन छायानयनं विवक्षुरादौ कोणशङ्कोरानयनमाह—

अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गात् ११८१९८४४
त्यक्त्वा पदं तदिह कोणनरोऽक्षभाघ्नः।

अर्को १२ द्धृतः फलयुजासकृदग्रयासौ
सौम्ये फलेन वियुजा तु तया प्रसाध्यः ॥३०॥

कोणशङ्कु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या वर्ग में से अग्रा के वर्ग का दुगुना घटा कर मूल लेने से प्राप्तफल स्थूल कोण शंकु होता है। कोण शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल को अग्रज्या में युत करके अग्रा प्राप्त करे। इस अग्रा से पुनः शंकु साधित करे तथा इस कोण शंकु से पुनः पूर्वोक्त प्रकार से पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करके फल प्राप्त करे। इस प्रकार पुनः-पुनः करके, जब तक कोण शंकु का स्थिर फल प्राप्त न हो। इसी प्रकार दक्षिण गोल में करे। सौम्य गोल की क्रांति में, अग्रा में से शंकु घटाने तथा याम्य गोल क्रांति में, अग्रा में युक्त करने से शंकु भुज होता है।

उपपत्ति— कोणवृत्त अहोरात्र वृत्त के संपात से क्षितिज के धरातल पर लम्ब रूप कोणशंकु होता है। अर्थात कोण वृत्तस्थ सूर्य से क्षितिज धरातल पर लम्ब रूप कोणशंकु होता है। इसके मूल और (पूर्वापर रेखा) सममण्डल के बीच जो अंतर है वह ज्यारूप भुज है। कोणशंकु के मूल से याम्योत्तर रेखा पर लम्ब रूप जो अंतर है वह कोटि है। इन भुज और कोटि के वर्गों के योग का मूल खमध्य और सूर्य के अन्तर भाग की ज्या दृग्ज्या है। भूकेंद्र से कोणशंकुमूल पर्यन्त दृग्ज्या कर्ण है। यहाँ भुज तथा कोटि तुल्य होने से भुज के वर्ग का दुगुणा दृग्ज्यावर्ग होता है। इस दृग्ज्या वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटाने से शंकु वर्ग शेष बचता है। इसका मूल लेने से कोण शंकु होता है। किन्तु यहाँ भुज का मान ज्ञात नहीं है, जिसको ज्ञात करने के लिए विधि बताते हैं।

अक्षभा (पलभा) को कर्ण से गुणा करके १२ से विभक्त करने से शंकुतल होता है। अतः शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल शंकुतल दक्षिण होता है। शंकुतल को भारतीय आचार्यों ने सदा दक्षिण की ओर अग्रगामी कहा है अर्थात् शंकुतल सदा शंकु से दक्षिण की ओर होगा क्योंकि भारत के अक्षांश उत्तर हैं।

स्व अग्रा का स्वशंकुतल में याम्य गोल में योग तथा सौम्य गोल में अंतर करने से भुज होता है। यहाँ कोण शंकु ज्ञात होने से शंकुतल ज्ञात हो जाता है। केवल अग्रा ज्ञात करनी होगी। उसके लिए पहले बाहु कल्पित करे। उससे अग्रा के वर्ग के द्विगुणित को त्रिज्या के वर्ग में से घटाकर मूल लेने से

जो शंकु का आनयन करते हैं वह स्थूल होता है। वह असकृत विधि से सम्यग होता है।

जिस देश में जिस समय पर अग्रज्या का मान २४३१ (अर्थात ४५° अग्रा) से अधिक होता है तब वहाँ याम्य गोल में कोणशंकु का अभाव होता है तथा उत्तर गोल में चार कोण शंकु उत्पन्न होते हैं। अतः जिस देश में परम अग्रा ४५° होगी वहाँ पलभा का मान १७/५/२२ होगा। अग्रा^{२} > ज्या^{२} ४५°

(अग्रा वर्ग ज्या ४५° के वर्ग से अधिक होने पर) अग्रा^{२} > $\frac{\text{त्रि}^{२}}{२}$ । आचार्य ने यहाँ भुज को अग्रा के तुल्य मान कर कोण शंकु को आनयन किया है।
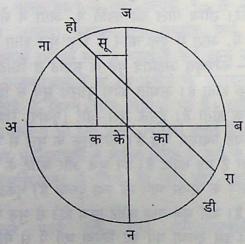
ज ना अ न ब याम्योत्तर वृत्त है। ज खमध्य है। अ के ब क्षितिज है तथा ना के डी नाडी वृत्त है। हो रा अहोरात्र वृत्त है। सू सूर्य है। सू क शंकु है, क का शंकु तल है।

(शंकुतल) क का = क के (सूर्य का सममंडल का अंतर) + अग्रा

क के = (शंकुतल) क का – अग्रा (उत्तरगोल में)

जब सूर्य दक्षिण गोल में हो तब–

क के = शंकुतल क का + अग्रा

सूर्य किसी भी दृग्वृत्त में हो तो यही संबंध होते हैं तथा सूर्य याम्योत्तर वृत्त तथा सममंडल से समान दूरी पर होता है। अतः दृग्ज्या = भुज^{२} + भुज^{२} = २ भुज^{२}

विशेष— भास्कराचार्य ने उपरोक्त प्रकार से कोणशंकु का जो आनयन

बताया है उसका व्यभिचार उत्तरगोल में म.म. सुधाकर द्विवेदी ने निम्न प्रकार से दिखाया है—

''युग्माश्वोनाऽक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाब्ध्यंशज्या द्विकाश्वैर्विभक्ता।
अक्षच्छायावर्गयुक्तैः फलाच्चेदग्रा न्यूनां स्यात्खिलं सौम्यगोले॥''

दक्षिण गोल में उसका व्यभिचार म.म. बापूदेव शास्त्री ने इस प्रकार बताया है—

''अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्यवर्गादित्यादि भास्कर कृतानयने विशेषः।
सिद्धान्ततत्त्वसुविवेककृदादिभिर्योनैवावबुद्ध इति सम्प्रति कथ्यते सः॥
अक्ष प्रभाकृति विहीन दृगद्रिनिघ्नः पञ्चाब्धिभागजगुणो विहृतो द्विकाश्वैः।
अक्षप्रभाकृतियुतैः फलतोऽग्रका चेन्नाल्पा तदा न सदिदं रवियाम्यगोले॥''

''कोण शङ्कोरानयनञ्च—
अग्राऽक्षभयोर्घातो द्वादशनिघ्नो भवेत् प्रथम संज्ञः।
द्विघ्न्याग्राकृत्योनस्त्रिज्यावर्गः पराख्यः स्यात्॥
तौ पलभाकृतिनेत्राद्रिसमासहृतौ पराद्विसप्तगुणात्।
प्रथमकृतियुतान्मूलं प्रथम युतोनं विदिक् शङ्कुः॥
गोलक्रमादिह स्यादथ यद्यग्राकृतिर्नयननिघ्नी।
त्रिज्या वृत्तेर्न शुद्धयेद्विरुद्धशुद्धया तदा परो ज्ञेयः॥
तेन परेण नयननगनिघ्नेनोनात् प्रथमवर्गात्।
मूलेनोनो युक्तः प्रथमो द्विविधो विदिङ्नरः सौम्ये॥
याम्ये तदा कुजोर्ध्वे भानुर्नहिकोणमण्डलं विशति।
इत्थं घटते नगभूम्यङ्गुलसमधिकपलप्रभे विषये॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

''सूर्याग्राया इष्टसंयोजिताया वर्गे त्रिज्यावर्गतो लोचनघ्ने।
त्यक्ते मूलं यत् स शङ्कुर्विदिक्स्थस्तत्राज्ञाभासङ्गुणे सूर्यभक्ते॥३४॥
लब्धमिष्टममुना सहिताग्रा प्राग्वदेवमसकृन्नरसिद्धिः।
दक्षिणे सवितुरुत्तरगोलेऽग्रज्ययेष्टवियुताद् विधिरेषः॥३५॥''

श्रीपति ने भी लल्लाचार्य की विधि ही सिद्धान्त शेखर अध्याय ४ के श्लोक ७२-७३ में दी है।

''इनाऽग्रकायाः सहितोनिताया इष्टेन याम्योत्तरगोलगेऽर्के।
वर्गे द्विनिघ्ने कृतितस्त्रिमौर्व्यास्त्यक्ते पदं यत्स हि कोणशंकुः॥

पल प्रभाघ्नेऽर्कहृते च तस्मिन् इष्ट भवेत्तेन ततः प्रसाध्य।
विदिङ्नरः पूर्ववदग्रकाया यावत्स्थिरः स्यादसकृद्विधानात्॥''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार के द्वादश अध्याय में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

''इष्टग्रान्तरकृत्या द्विगुणित योदग्वियुक् त्रिगुण वर्गात्।
मूल कोण नरो वा पलभाघ्नोऽर्कविहृदिष्टमसकृदेवम्॥३॥
दक्षिणगोले चेष्टयुजाग्रयोक्तविधिना विदिग्ना स्यात्।
तस्माद्दृग्ज्या कर्णच्छाया संसाधयेत्प्राग्वत्॥४॥''

यहाँ इष्ट शब्द से स्वेच्छा से कल्पित शंकु अग्र है। इस स्वेच्छा से कल्पित इष्ट का ही साधन कोण शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभाजित करने से होता है।

इदानी दिनार्धशङ्क्वर्थमाह—

स सौम्यगोलो भदलं यदाद्यं याम्योऽपरं सायनभागभानोः।
क्रान्तेः ककुब् गोलवशेन वेद्या सदाऽक्षलम्बाविह याम्यसौम्यौ॥३१॥
पलावलम्बावपमेन संस्कृतौ नतोन्नते ने भवतो दिवादले।
लवादिकं वा नवतेर्विशोधितं नतं भवेदुन्नतमुन्नतं नतम्॥३२॥

दिनार्ध शंकु—

सूर्य-प्रभा टीका— सायन सूर्य जब भचक्र के प्रथम अर्ध भाग में रहता है तो उसको सौमय गोल में रहना कहते हैं तथा जब वह दूसरे अर्ध भाग में रहता है तब उसको याम्य गोल में रहना कहते हैं। क्रान्ति सूर्य की गोल में स्थिति के अनुसार होती है तथा अक्षांश तथा लंबांश सदा दक्षिण अथवा उत्तर होते हैं।

रवि मध्य क्रांति और अक्षांश के एक दिशा में होने पर उनका योग तथा भिन्न दिशा में रहने पर उनका अंतर करने से नतांश होता है। नतांश को नब्बे में से घटाने से शेष उन्नतांश होता है तथा नब्बे में से उन्नतांश को घटाने से नतांश होता है।

उपपत्ति— यदि ख स्वस्तिक से विषुवदमंडल दक्षिण में हो तो अक्षांश सदा दक्षिण है तथा रवि नाड़ी वृत्त से उत्तर में है अतः रवि से निरक्ष ख स्वस्तिक तक रवि मध्यम क्रांति उत्तर है। यह स्थिति तब होती है जब ख स्वस्तिक और निरक्षखस्वस्तिक के मध्य में रवि रहता है। अतः इस स्थिति में

भिन्न दिशा की रवि क्रांति और अक्षांश का अंतर करने से रवि से ख स्वस्तिक पर्यन्त रवि का नतांश होता है।

और जब निरक्ष ख स्वस्तिक से रवि दक्षिण में हो तब अक्षांश और क्रांति की दिशा एक (दक्षिण) होने से दोनों का योग करने से नतांश (रवि का) होता है। ख स्वस्तिक से समस्थान पर्यंत मध्यम उन्नतांश होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"दिनमध्यार्कक्रान्त्यक्ष भाग योगान्तरं समान्यदिशोः।
नतभागा नतभान्नवतेः प्रोह्योन्नताः शेषाः॥४७॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में ब्रह्मगुप्तोक्त तथा भास्करोक्त कहा है। यथा—

"मध्यद्रिनोष्णकिरणापमचापभागस्वाक्षांश योगविवरं सदृशान्यदिक्त्वे।
योम्योत्तरा नतलवास्तरणेः खमध्यात् तेऽप्युनता निपतिता नवतेर्भवेयुरिति॥"

वटेश्वराचार्य ने भी **वटेश्वर सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ६ आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"क्रान्त्यक्षान्तरयोगः समान्य ककुभोर्नतांशकाः खाक्षाः।
तज्ज्या दृग्ज्या दोर्ज्या नतांशकोना स्त्रिगृह भागाः॥१॥"

सूर्यसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः।
स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा॥२०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"क्रान्तिचापपलयोः समागमो याम्यगोल युजि तिग्मदीधितौ।
सौम्यभाजि विवरं भवेन्नतिः सोन्नतिस्त्रिभविशेषिताथ वा॥१६॥"

अन्य पूर्व श्लोक २ की व्याख्या में देखें।

इदानीं शङ्कुं दृग्ज्यां चाह—

नतांशजीवा भवतीह दृग्ज्या दिनार्धशङ्कुश्च तथोन्नतज्या।३२ $\frac{1}{2}$।

शंकु और दृग्ज्या ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यान्ह में नतांश की जीवा दृग्ज्या होती है तथा उन्नतांश की ज्या दिनार्ध शंकु होता है।

उपपत्ति— सुगम है।

विशेष— वटेश्वर आचार्य ने दृग्ज्या के लिए आचार्योक्त कहा है जो पूर्व श्लोक की व्याख्या में उद्धृत किया गया है। शंकु के लिए त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ६ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"उन्नत भागाः कोटिस्तज्ज्या दोर्ज्यान्तरं तथा शङ्कः।$\frac{१}{२}$।"

सूर्य सिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शेषं नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिज्या।
शङ्कु.......................................।।२१।।"

लल्लाचार्य आदि ने भी आचार्योक्त कहा है। ये मूलभूत परिभाषायें हैं जो सभी आचार्यों ने कही है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में इनको इसी प्रकार परिभाषित किया है। यथा–

"उन्नतजीवाकोटिश्छाया दृग्ज्या भुजोनतज्या वा।
कर्णश्छायावृत्ते व्यासार्ध द्वयमतोऽन्यत्र।।८।।"

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

त्रिभज्यकोन्मण्डलशङ्कुघाताच्चरज्ययाप्तं खलु यष्टिसंज्ञम्।।३३।।

युतोनितोद्धृत्तनरेण यष्टिका भवेदुदग्दक्षिणगोलयोर्नरः।३३ $\frac{१}{२}$।

प्रकारांतर से—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मण्डल शंकु और त्रिज्या को गुणा करके चरज्या से भाग देने से लब्धि यष्टि होती है। यष्टि में उन्मंडल शंकु को युक्त अथवा हीन करने पर जब सूर्य क्रमशः उत्तर अथवा दक्षिण हो, दिनार्ध शंकु प्राप्त होता है।

$$\text{यष्टि} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{चर ज्या}}\ ;\ \text{दिनार्ध शंकु} = \text{यष्टि} \pm \text{उन्मंडल शंकु।}$$

उपपत्ति— क्षितिज और उन्मंडल के मध्य चरकाल होता है। इसकी ज्या कर्ण की भांति तिर्यक रूप में होती है वह चरज्या है। उन्मंडल के ऊपर याम्योत्तर वृत्त तक जितना काल होता है वह सदैव सर्वत्र १५ घटी तुल्य होता है। उसकी ज्या त्रिज्या होती है। अब अनुपात किया कि चरज्या में उन्मंडल

शंकु तुल्य उर्ध्वखंड प्राप्त होता है तो उन्मंडल से ऊर्ध्व काल की ज्या में कितनी त्रिज्या होगी? प्राप्तफल उन्मंडल शंकु सम सूत्र के मध्य ऊर्ध्व रूप होता है, जो यष्टि संज्ञक है। इस यष्टि को उन्मंडल शंकु में उत्तर गोल में युत करने से दिनार्ध शंकु होता है। यह उपपन्न हुआ। दक्षिण गोल में वह उन्मंडल से नीचे होने से वहाँ हीन करते हैं।

विशेष— **आर्यभट (द्वितीय)** ने आचार्योक्त ही महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में कहा है। यथा—

"गज्योन्मण्डलनृहतेश्चरजीवाप्तं भवेद्यष्टिः।
यष्ट्युन्मण्डलनरयुतिभेदाभ्यां गोलयोर्द्युदलङ्कुः॥"

इदानीं हृतिमन्त्यां चाह—

क्षितिज्ययैवं द्युगुणश्च सा हृतिश्चरज्ययैवं त्रिगुणोऽपि सान्त्यका॥३४॥

दिनार्ध से हृति और अन्त्या ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज्या और द्युज्या का उत्तर गोल में योग तथा दक्षिण गोल में अंतर करने से हृति होती है। इसी प्रकार त्रिज्या और चरज्या का योग और अंतर अन्त्या होती है। हृति = क्षितिज्या ± द्युज्या। अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या।

उपपत्ति— गोल में अहोरात्र वृत्त और क्षितिज के संपात बिंदुओं को मिलाने वाली रेखा उदयास्त सूत्र होती है। इसी प्रकार अहोरात्र वृत्त और उन्मंडल के संपात बिंदुओं को मिलाने वाली रेखा व्यास सूत्र अथवा निरक्षोदय सूत्र होता है। इसका उदयास्त सूत्र से अंतर सर्वत्र कुज्या होता है। याम्योत्तरवृत्त के संपात बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा भी व्यास सूत्र होती है। इनके संपात से निरक्षोदय सूत्र के ऊपर लम्बरूप खंड द्युज्या में से पूर्वोक्त कुज्या को दक्षिण गोल में घटाने से दिनार्ध तथा उदयास्त सूत्र का अंतर लम्बरूप हृति होती है। उत्तर गोल में द्युज्या और कुज्या को जोड़ने से हृति होती है। दक्षिण गोल में उदयास्त सूत्र के नीचे कुज्या होती है। इसका सूर्योदयास्त सूत्र से अंतर हृति होता है।

अहोरात्र वृत्त व्यासार्ध त्रिज्या तुल्य अंकों से अंकित करने से वह त्रिज्या तुल्य होता है। उन अंकों से कुज्या को गुणा करने से वह उतनी चरज्या तुल्य होती है। चरज्या को त्रिज्या में युत अथवा घटाने से अंत्या संज्ञक क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण गोल में होती है। अन्त्या और हृति में क्षेत्र स्थिति का भेद नहीं है केवल अंकों के अधिक-लघुता का संख्या कृत भेद होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"स्वाहोरात्रार्धमुदग्दक्षिणयोः क्षितिजया युतविहीनम्।
द्युदलान्त्यज्या त्रिज्या क्षयवृद्धिज्या युतोनाऽन्त्या॥३४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्वाहोरात्र दलं युतोनमवनीमौर्व्या दिनार्धान्त्यका
व्यासार्ध चरजीवया भवति सा चान्त्याऽर्कगोलक्रमात्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिपश्नाधिकार अध्याय ६ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"द्युज्या कुज्योनयुता याम्योत्तरगोलयोर्दिनार्धधृतिः।
त्रिज्या चरज्ययैवं वियुत युता स्याद्दिनार्धान्त्या॥७॥"

सूर्य सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता॥३४॥

अन्त्या.......................................॥३४ $\frac{१}{२}$॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एवं गभचरगुणयोऽन्त्या हतिरुर्विगुणद्युजीवातः।
तद्वल्लम्बापमलवसंस्कृतिजीवा दिनार्धशङ्कुर्वा॥१३॥"

इदानीमन्त्यातो हृतिं हृतेश्चान्त्यामाह—

हृतिस्त्रिमौर्व्या चरजीवया वा हता द्युमौर्व्या क्षितिजीवया वा।
भक्तान्त्यका स्यादथवान्त्यकाया हृतिर्गुणच्छेदविपर्ययेण॥३५॥

अंत्या से हृति तथा हृति से अंत्या साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— हृति को त्रिज्या तथा चरज्या से पृथक-पृथक गुणा करके क्रमशः द्युज्या तथा क्षितिज्या से विभक्त करने से अन्त्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार गुण-छेद-विपर्य के द्वारा हृति होती है अर्थात् अन्त्या को क्रमशः द्युज्या और कुज्या से पृथक-पृथक गुणा करके त्रिज्या एवं चरज्या से पृथक पृथक विभक्त करने से हृति प्राप्त होती है।

सूत्र रूप में— $\text{अंत्या} = \frac{\text{हृति} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \frac{\text{हृति} \times \text{चरज्या}}{\text{कुज्या (=क्षितिज्या)}}$

$$\text{हृति} = \frac{\text{अंत्या} \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{\text{अंत्या} \times \text{कुज्या}}{\text{चरज्या}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि द्युज्या में त्रिज्या प्राप्त होती है और इसी प्रकार यदि कुज्या में चरज्या प्राप्त होती है तो हृति में कितनी होगी? प्राप्तफल अंत्या होती है। इस प्रकार सूत्र में द्युज्या कुज्या में तथा त्रिज्या चरज्या में परिणत होती है। इसी प्रकार अंत्या से हृति विलोम प्रकार से प्राप्त होती है।

इदानीमन्त्याहृतिभ्यां दिनार्धशङ्कुमाह—

अन्त्याथवोन्मण्डलशङ्कुनिघ्नी चरज्ययाप्ता स दिनार्धशङ्कुः।
हृतिः पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नी तत्कर्णभक्ता यदि वा स शङ्कुः ।।३६।।

अन्त्या और हृति से दिनार्ध शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अन्त्या को उन्मण्डल शंकु से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से दिनार्ध शंकु होता है और हृति को पलक्षेत्र की कोटि (१२) से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल दिनार्ध शंकु होता है। सूत्र रूप में—

$$\text{दिनार्ध शंकु} = \frac{\text{अंत्या} \times \text{उन्मंडल शंकु}}{\text{चरज्या}} = \frac{\text{हृति} \times १२}{\text{कर्ण}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि चरज्या तुल्य अन्त्या के अधः खंड में उन्मंडल शंकु प्राप्त होता है तो समग्र अन्त्या में कितना होगा? प्राप्तफल दिनार्ध शंकु होता है। उपपन्न हुआ।

अक्ष क्षेत्र के कर्ण से अनुपात किया कि यदि अक्षक्षेत्र के कर्ण में उतनी कोटि प्राप्त होती है तो हृति कर्ण में कितनी होगी? प्राप्तफल सूर्य से भूपर्यन्त सूत्र का शंकु प्रमाण होता है। उपपन्न हुआ।

प्रकारान्तर से—

$$\text{दिनार्ध शंकु} = \frac{\text{हृति} \times \text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}}$$; यह, कुज्याकर्ण में उन्मंडल शंकु तो हृति कर्ण में क्या ? इस अनुपात से प्राप्त होता है।

परन्तु $\frac{\text{हृति}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$ होता है। उपरोक्त में यहाँ से हृति = $\frac{\text{कुज्या} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$ का मान प्रतिस्थापित करने से—

$$\text{दिनार्धशंकु} = \frac{\text{कुज्या} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}} \times \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$$

उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"हतिकफ घातो भक्तो विषुवत्कर्णेन वासरार्धनरः।
अन्त्योद्धृत्तनृघातश्चरगुणभक्तो दिनार्धना यद्वा॥१४॥".

लल्लाचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में अनेक प्रकार से दिनार्धशंकु ज्ञात करना बताया है। यथा—

"लम्बाकार्कसमशङ्क्वपक्रमैश्छेदकः पृथगथाहतो हृतः।
व्यासखण्डपलकर्णतद्धृतिनाग्रकाभिरिह सन्ति शङ्कवः॥२०॥"

वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त में लल्लाचार्योक्त प्रकार से कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ६ —

"लम्बज्यापमजीवा समनरसूर्यैर्धृतिः पृथग्गुणिताः।
त्रिज्यागा तद्धृति पलकर्णैर्भक्ता नराः क्रमशः॥८॥"

इदानीं दिनार्धदृग्ज्यामाह—

हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नी तत्कर्णभक्ताग्रकयोनयुक्ता।
गोलक्रमात् स्यादथवात्र दृग्ज्या याम्याथ सौम्या विपरीतशुद्धौ॥३७॥

दिनार्धदृग्ज्या ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— हृति को आठों अक्षक्षेत्र के भुज से गुणा करके स्व-स्व कर्ण से विभक्त करने से जो फल प्राप्त हो उसको उत्तरगोल में अग्रा में से हीन करने से तथा दक्षिण गोल में युक्त करने से दिनार्ध दृग्ज्या होती है। इसी प्रकार दक्षिण गोल में। यदि उत्तर गोल में अग्रा में से फल न घटे तो फल में से अग्रा को घटावें शेष उत्तर गोल में दृग्ज्या होती है।

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि पलक्षेत्र के कर्ण में उसकी भुज प्राप्त होती है तो हृति में कितनी होगी? प्राप्तफल उदयास्त सूत्र से दक्षिण की ओर शंकु मूल तक होता है। दृग्ज्या शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र का अंतर होता है। अतः पूर्वापर सूत्र और उदयास्त सूत्र के अंतर में अग्रा तुल्य अन्तर याम्य गोल में जो हो उसको जोड़े और उत्तर गोल में उसको घटावें। शेष दक्षिण की ओर दृग्ज्या होती है। यदि उत्तर गोल में खअर्ध से उत्तर की ओर रवि होता है तब

शंकुमूल पूर्वापर से उत्तर की ओर होता है अतः तब अग्रा में से फल नहीं घटता है। अग्रा में से जितना फल घटता है उसमें से पूर्वापर से शंकुमूल का अन्तर शेष रहता है। यह दृग्ज्या है। उपपन्न हुआ।

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

गोलक्रमात् तद्धृतिहीनयुक्ता हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नी।
तत्कर्णभक्ता भवतीह दृग्ज्या प्रद्योतने वा द्युदलं प्रयाते॥३८॥

प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— हृति में से उत्तर गोल के तद्धृति को घटावे तथा दक्षिण गोल में युक्त करके आठों अक्ष क्षेत्रों के भुज से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से दृग्ज्या होती है।

उपपत्ति— अहोरात्र वृत्त सममंडल को जिन पूर्व-पश्चिम बिंदुओं पर संपात करता है, उनका याम्योत्तर वृत्त से अहोरात्रवृत्त के संपात से निबद्ध हृति सूत्र, का उदयास्त सूत्र पर्यन्त तक जो संपात है उसके अधः का हृतिखण्ड तद्धृति तुल्य होता है। इसको हृति में से घटाने से हृति का ऊर्ध्वखंड, समसूत्र के दक्षिण में अक्षकर्ण से सूर्यपर्यन्त होता है।

अनुपात किया कि यदि अक्ष क्षेत्र के कर्ण में इतना भुज प्राप्त होता है तो इतने प्राप्तफल में कितना होगा? प्राप्तफल दृग्ज्या होगा। दक्षिण गोल में क्षितिज के नीचे अहोरात्रवृत्त के सममंडल से संपात के नीचे अधोमुख समशङ्कु और क्षितिज के नीचे तद्धृति होता है। इसलिये वहाँ तदृधृति को हृति में युत करने से नीचे समसूत्र से दक्षिण में अक्षकर्ण से सूर्य पर्यन्त होता है। उसका अनुपात करने से फल दक्षिण दृग्ज्या होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण उत्तर वृत्त में जितने अंश सूर्य का नतांश होता है उसकी ज्या दृग्ज्या होती है, इसका यह अर्थ है।
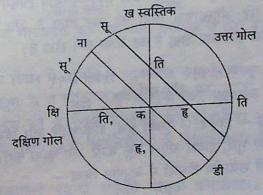
चित्र में ख स्वस्ति है तथा सू ति ह्र सूर्य का अहोरात्रवृत्त है। ना क डी नाडीवृत्त (Celetial equator) है। क्षि ना ख ति याम्योत्तर वृत्त है। ह्रति = ह्र, ति = क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण गोल में तद्धृति है तथा सू ति ह्र = सू' ति, ह्र, = क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण गोल में ह्रति है।

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

त्रिज्या नृचापोत्क्रमजीवयोना दृग्ज्या भवेदेवमतो नरो वा।
एवं हि दृग्ज्या यदि वाखिलानां विदिक्समोद्वृत्तनरादिकानाम्॥३६॥

प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या में से शंकु चाप की उत्क्रमज्या को घटाने दृग्ज्या होती है और त्रिज्या में से दृग्ज्या चाप की उत्क्रमज्या घटाने से शंकु होता है। इसी प्रकार दिनार्ध उन्मंडल समशंकु आदि से दृग्ज्या होती है, पूर्व में जो कहा है वह दिनार्ध दृग्ज्या है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"नरचापोत्क्रमजीवाहीना गज्यैव दृग्ज्या स्यात्।
एवमभीष्टोन्मण्डलसमशंकुभ्यः स्फुटा दृग्ज्या॥१५॥"

इदानीं छायाकर्णावाह—

दृग्ज्यात्रिजीवे रविसंगुणे ते शङ्कूद्धृते भाश्रवणौ भवेताम्।३६$\frac{१}{२}$।

छाया और कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— दृग्ज्या और त्रिज्या दोनों को पृथक-पृथक (१२) बारह से गुणा करके शंकु से विभक्त करने से दृग्ज्यास्थान (प्रथम) पर जो फल प्राप्त होता है वह अंगुलात्मक छाया का मान होता है और त्रिज्या स्थान (द्वितीय) पर जो फल प्राप्त होता है वह छाया कर्ण होता है।

$$\text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}} \quad \text{और कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$$

उपपत्ति— त्रिभुजः – दृग्ज्या भुज, शंकु कोटि और त्रिज्या कर्ण और त्रिभुजः – छाया भुज, द्वादश अंगुल शंकु कोटि और छाया कर्ण।

इन दोनों सजातीय त्रिभुजों में अनुपात किया—

$$\frac{\text{दृग्ज्या}}{\text{छाया}} = \frac{\text{शंकु}}{१२} \text{ अर्थात छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार दूसरा अनुपात किया—

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}} = \frac{\text{शंकु}}{१२} \text{ अर्थात् छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नतभागज्या द्वादशगुणोन्नतांशज्यया हृता लब्धम्।
इष्टदिनार्धच्छाया यथोक्तकरणैर्दिनार्धाद्वा ॥४८॥
उन्नतजीवाभक्तं व्यासार्ध द्वादशाहतं कर्णः। $\frac{1}{२}$।"
दृग्ज्या द्वादशगुणिता विभाजिता शंकुना फलं छाया।
व्यासार्ध छेदहृतं विषुवत्कर्णाहतं कर्णः॥२८॥"

वटेश्वर आचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १० में शंकु आनयन के सूत्र दिये हैं। ये सूत्र भास्करोक्त ही हैं। इनके द्वारा भास्करोक्त प्रकार से छाया तथा कर्ण ज्ञात किये जा सकते हैं। यथा—

"त्रिज्याऽर्कोभ्यस्ता कर्णहृता सर्वदा भवेच्छङ्कु।
दृग्ज्या सूर्याभ्यस्ता प्रभा हृता वा भवेच्छङ्कु॥३॥"

$$\text{अर्थात् शंकु} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{छाया कर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{छाया}}$$

इनके द्वारा भास्करोक्त कर्ण एवं छाया पक्षान्तर के द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ना शंकुरुन्नतगुणः स च कोटिरुक्ता दृग्ज्या भुजा नतगुणस्तु भवेत प्रभा च।
अर्कापवत्तितनद्वेण हृते च दृग्ज्या त्रिज्येदले दिनदलोत्थविभा श्रुती च॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"दृग्ज्यागज्ये प्रद्युन्यौ शंकुहृते भाश्रुती क्रमाद्भवतः।
नियतांगुलर्यनृणां प्रांगुलमानेन दीर्घाणाम्॥१६॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण दिनार्धकर्णमाह—

त्रिज्याक्षकर्णेन गुणा विभक्ता हृत्या श्रुतिर्वा दिनमध्यगेऽर्के॥४०॥

प्रकारांतर से दिनार्धकर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या को अक्षकर्ण से गुणा करके हृति से विभक्त करने से प्राप्तफल मध्यकर्ण होता है।

$$\text{मध्य (दिनार्ध) कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{हृति}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि अक्षकर्ण में बारह अंगुल शंकु होता है तो हृति तुल्य कर्ण में कितना होगा? प्राप्तफल मध्य शंकु = $\frac{\text{हृति} \times १२}{\text{अक्षकर्ण}}$ होगा।

अब दूसरा अनुपात किया कि यदि मध्यान्हशंकु में त्रिज्या तुल्य कर्ण होता है तो बारह अंगुल शंकु में कितना होगा? यहाँ $\frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{मध्य शंकु}}$ = मध्यकर्ण।

इसमें मध्य शंकु का मान प्रतिस्थापित करने पर—

$$\text{मध्य कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{हृति} \times १२} \times \text{अक्षकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{हृति}}$$ उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त प्रकार से कहा है। यथा—

"गज्याऽक्षश्रवणघ्नी कुज्योद्धृतश्रवोनिघ्नी।
तद्धृत्या समकर्णो हृत्या भक्ता द्युखण्डकर्णो वा॥१७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार ६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिज्याऽक्षकर्णगुणिता स्वधृतिभक्ता वा द्युदलकर्णः।८ $\frac{१}{२}$।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में हृति आदि के बहुत प्रकार से साधन के लिए कहा है जिसे भास्कराचार्य ने भी अपनाया है। यथा–

"द्युदलान्त्या ज्या छेदो मध्यच्छाया यथोक्तकरणैर्वा।
अन्त्याज्या छेदाद्यैर्मध्यच्छायाऽथवा बहुधा॥५०॥"

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

युतायनांशार्कबृहद्भुजज्यया खरामतिथ्यभ्रभुवो १०१५३० हताः परः।
पलश्रुतिघ्नः पलभाविभाजितः परोऽथवोद्वृत्तगते रवौ श्रुतिः ॥४१॥

प्रकारान्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— अयनांश युक्त (सायन) सूर्य की वृहदज्या से १०१५३० को विभक्त करने से जो प्राप्त हो उसको 'पर' कहे। उस 'पर' से पलकर्ण को गुणा करके पलभा से विभक्त करने से प्राप्तफल उन्मंडल गत सूर्य का छाया कर्ण होता है।

$$\text{पर} = \frac{१०१५३०}{\text{सायन सूर्यज्या}}\text{;}\quad \text{उन्मंडल गतसूर्य} = \text{`पर'} \times \frac{\text{पलकर्ण}}{\text{पलभा}}$$

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति अगले श्लोक में बताई जायेगी।

इदानीं तस्मादेव परसंज्ञात् समवृत्तकर्णमाह—

परोऽक्षभासंगुणितोऽक्षकर्णभक्तोऽथवा स्यात् समवृत्तकर्णः।४१$\frac{१}{२}$।

'पर' संज्ञक से समवृत्त कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उस 'पर' से पलभा को गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल सममंडल गत सूर्य का छाया कर्ण होता है।

$$\text{सममंडल कर्ण} = \frac{\text{पर} \times \text{पलभा}}{\text{अक्ष कर्ण}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि त्रिज्या में परम क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो रविज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल $\text{क्रांतिज्या} = \frac{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या.}}{\text{त्रिज्या}}$।

फिर दूसरा अनुपात किया कि यदि अक्ष कर्ण में पलभा भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल उन्मंडल शंकु होगा।

$$\text{उन्मंडल शंकु} = \frac{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या.} \times \text{पलभा}}{\text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}\text{।}$$

अब फिर अनुपात किया कि इतने शंकु में त्रिज्या कर्ण है तो १२ अंगुल शंकु में कितना होगा? इस प्रकार—

$$\frac{\text{त्रिज्या} \times १२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या} \times \text{पलभा}} = \frac{\text{त्रिज्या}^२ \times १२ \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या} \times \text{पलभा}}$$

यहाँ $\frac{\text{त्रिज्या}^2 \times १२}{\text{परम क्रां.ज्या}} = \frac{(३४३८)^2 \times १२}{१३९७}$ = १०१५३० होगा।

अतः $\frac{१०१५३०}{\text{रविदोर्ज्या}}$ को आचार्य ने 'पर' संज्ञा दी है जिससे उपरोक्त

$\frac{\text{पर} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{पलभा}}$ = उन्मंडल गत सूर्य कर्ण। उपपन्न हुआ।

सममंडल कर्ण के लिए इसी प्रकार अनुपात करने से–

सममंडल कर्ण = $\frac{\text{पर} \times \text{पलभा}}{\text{अक्षकर्ण}}$ उपपन्न हुआ।

इदानीमुन्मण्डलकर्णान्मध्यकर्णमाह—

उद्वृत्तकर्णश्चरशिञ्जिनीघ्नो भक्तोऽन्त्यया वा श्रवणो दिनार्धे।।४२।।

उन्मंडल कर्ण से दिनार्ध कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मंडल कर्ण को चरज्या से गुणा करके अन्त्या से विभक्त करने से मध्य (दिनार्ध) कर्ण होता है।

मध्यकर्ण = $\frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{अन्त्या}}$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि चरज्या तुल्य अन्त्या अधः खंड में उन्मंडल शंकु होता है तो अन्त्या में कितना होगा?

फल मध्यशंकु = $\frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$

इतने मध्यशंकु में त्रिज्या कर्ण होता है तो १२ अंगुल शंकु में कितना होगा?

फल मध्यकर्ण = $\frac{१२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{चरज्या}}{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{अन्त्या}} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{अन्त्या}}$

$\because \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{उन्मंडल शंकु}}$ = उन्मंडल कर्ण होता है। अतः उपपन्न हुआ।

इदानीं प्रकारान्तरेणोन्मण्डलकर्णात् समवृत्तकर्णाच्च मध्यकर्णमाह—

उद्वृत्तकर्णः समवृत्तकर्णः क्षितिज्यया तद्धृतिसंज्ञया च।
क्रमेण निघ्नौ विहृतौ च हृत्या दिनार्धकर्णावथवा भवेताम्।।४३।।

प्रकारांतर से उन्मंडल कर्ण तथा समवृत्तकर्ण से मध्य कर्ण—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मंडल कर्ण और समवृत्त कर्ण को क्रमशः क्षितिज्या और तद्धृति से गुणा करके हृति से विभक्त करने से दिनार्ध कर्ण होता है।

$$\text{दिनार्ध कर्ण} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{क्षितिज्या}}{\text{हृति}} = \frac{\text{समवृत्तकर्ण} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}}$$

उपपत्ति— त्रैराशिक से यदि उन्मंडल अधःस्थ हृतिखंड में कुज्या तुल्य उन्मंडल कर्ण प्राप्त होता है और तद्धृति में सममण्डल कर्ण प्राप्त होता है तो हृति में कितना? इन त्रैराशिक से प्राप्त दिनार्धकर्ण, उक्त दोनों उन्मंडल कर्ण तथा समवृत्त कर्ण द्वारा प्राप्त होगा।

अथवा कुज्या कर्ण में उन्मंडल शंकु कोटि होती है तो हृति में कितनी?

$$\text{लब्धि दिनार्ध शंकु} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{हृति}}{\text{कुज्या}}$$ । पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा।

फिर से, यदि इतने दिनार्ध शंकु में त्रिज्याकर्ण प्राप्त होता है तो १२ अंगुल शंकु में कितना होगा?

$$\text{फल दिनार्ध कर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रि} \times \text{कुज्या}}{\text{उ.शं.} \times \text{ह}} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{कुज्या}}{\text{हृति}}$$

$$\text{इसी प्रकार दिनार्ध कर्ण} = \frac{\text{समवृत्त कर्ण} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}}$$ उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"गज्या ऽक्षश्रवणघ्नी कुज्योद्धृतश्रवोनिघ्नी।
तद्धृत्या समकर्णो हृत्या भक्ता द्युखण्डकर्णो वा॥१७॥
उद्धृतश्रुतिनिघ्नी चर जीवाऽन्त्याहृता द्युदलकर्णः।$\frac{१}{२}$।"

इदानीमिच्छादिक्छायां विवक्षुस्तज्ज्ञस्य सुज्ञताधिक्यं निरूपयन् प्रश्नरूपेणाह—

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधनै-
र्यास्तद्दिग्विवरान्तरान्तरगता याः पृच्छकेच्छावशात्।
ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि
ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम्॥४४॥

एक ही विधि से इच्छित दिशा की छाया ज्ञात करने वाले को अधिक ज्ञानी निरूपण के लिए प्रश्न रूप—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वाचार्य तीन काल की अपेक्षित छाया का आनयन करते हैं। एक पूर्वापर दूसरी याम्योत्तर तथा तीसरी कोणछाया। इनको पृशक-पृथक साधित करते हैं। इनके आनयन में यदि मध्य छाया प्राप्त होती है तो उसी से कोणछाया या सममंडल छाया प्राप्त नहीं होती, अर्थात् एक को साधन करने से उसी के द्वारा दूसरी प्राप्त नहीं होती। यदि कोई इनमें से किसी एक छाया का आनयन करके दूसरी के आनयन में कोई भेद अर्थात् अन्यविधि न करे तो उसदैवज्ञ को मैं सूर्य के समान मानता हूँ, जैसे दिन में केवल एक ही सूर्य होता है। अर्थात् एक ही विधि से किसी भी इच्छित दिशा की छाया का आनयन कर सकने वाले दैवज्ञ को आचार्य ज्योतिर्विदों में सूर्य के समान एक ही विद्वान मानते हैं।

इदानीं तदर्थमाह—

चक्रांशकाङ्के क्षितिजाख्यवृत्ते प्राक्स्वस्तिकाभीष्टदिशोऽस्तु मध्ये।
येंऽशास्थितास्तेऽत्र दिगंशकाख्यास्तज्ज्यात्र दिग्ज्येत्यपरे विभागे।।४५।।

दिगंशज्या की परिभाषा—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस अभीष्ट दिन में जिस काल पर पृच्छक प्रश्न करे उस काल पर सूर्य का जो नत है उसके दृग्मंडल का क्षितिज से जो संपात है वह अभीष्ट दिशा है उसका पूर्व स्वस्तिक से जितना अंतर क्षितिज वृत्त पर है उतने अंश उसका दिगंश होता है। इसकी ज्या दृग्ज्या होती है। इसी प्रकार पश्चिम भाग में होती है।

इदानीमिच्छादिक्क्छायानयनमाह—

पलप्रभा व्यासदलेन निघ्नी दिग्ज्योद्धृता तां पलभां प्रकल्प्य।
साध्याक्षजीवाथ तया विनिघ्नी स्वाक्षज्ययाप्तापमशिञ्जिनी च।।४६।।

ताभ्यां दिनार्धद्युतिवद्विदध्यादभीष्टदिक्स्थे द्युमणौ द्युतिं वा।४६ $\frac{1}{2}$।

अभीष्ट दिशा की छाया आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट दिन की पल प्रभा को त्रिज्या से गुणा करके इष्ट दिग्ज्या से विभक्त करने से जो प्राप्त हो उसको पलभा मानकर इससे अक्षज्या साधित करे। इस अक्षज्या तथा क्रांतिज्या को गुणा करके स्वस्थान की अक्षज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल इष्ट क्रांतिज्या होती है। इष्ट अक्षज्या

का धनु इष्ट पल होता है। इष्ट क्रांति ज्या का धनु इष्ट क्राति होता है। इन इष्ट पल (पलांश) तथा क्रांति से मध्यछाया ज्ञात होगी जो अभीष्ट दिग्स्थ सूत्र की छाया होगी।

उपपत्ति— विषुव दिन पर रवि विषुवन्मण्डल में भ्रमण करता है। इस सूर्य की, इष्ट दिशा में आने पर जो छाया हो उसे साधित करे। द्वादश अंगुल शंकु की छायाग्र बिंदु मध्य दिन में जहाँ हो उसका पूर्व-पश्चिम रेखा से अंतर विषुवति तुल्य होता है। इससे शंकुतल का अन्तर भुज, दृग्ज्या छाया है। दिनमध्य से त्रिज्या तुल्य कर्कटक (गोला प्रकार) से एक वृत्त बनावे वह क्षितिज है। उस क्षितिज पर जो दिग्ज्या है वह भुज है। अनुपात किया कि यदि दिग्ज्या तुल्य भुज में त्रिज्या तुल्य दृग्ज्या प्राप्त होती है तो पलभा तुल्य भुज में कितनी होगी? प्राप्तफल पलभा और त्रिज्या के गुणा में दिग्ज्या से भाग तुल्य होगा। यह विषुवन्मण्डलस्थ सूर्य की इष्ट दिग्च्छाया होगी। अब इसको पलभा मान कर इससे अक्षज्या साधित करे। खमध्य से सूर्य जितने अन्तर तुल्य अंश पर दृङ्मंडल में स्थित होता है उसकी ज्या साधित करे। यहाँ प्राप्त छाया को पलभा मानकर उसका कर्ण ज्ञात करके उस पलभा तथा त्रिज्या के गुणा में इस कर्ण का भाग देवे। प्राप्तफल इष्ट अक्षज्या होती है। स्वदेश की अक्षज्या दक्षिणोत्तर गत वृत्त में होती है।
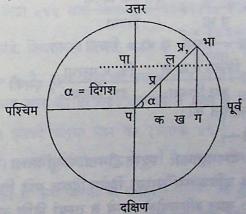
प ल = विषुवदिन पर शंकु छाया इष्टदिशा में। प प्र = किसी अन्य दिन पर शंकुछाया उसी दिशा में।

प ल = इष्ट दृग्मंडल पलभा

प्र,ल = प्र ल = छाया में अंतर है जो क्रांति के कारण है।

ग भा = दिग्ज्या

प भा = त्रिज्या

ल ख = प पा = पलभा।

अब क्रांतिज्या को दृग्मंडल गत करते हैं। इसके लिए अनुपात किया कि यदि स्वदेश की अक्षज्या में दृग्मंडलगत इष्ट अक्षज्या प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या में दृङ्मण्डलगत कितनी होगी? प्राप्तफल, इष्ट अक्षज्या तथा क्रांतिज्या का गुणा स्वस्थान की अक्षज्या से विभक्त तुल्य होगा। यह विषुवन्मंडल से सूर्य के दृग्मण्डल का अंतर तुल्य अंश की ज्या है, यह इष्ट क्रांतिज्या है। इष्ट अक्षज्या का धनु दृग्मण्डगत इष्ट अक्षांश है। इष्ट क्रांतिज्या का धनु इष्ट क्रांति दृगमंडल गत है। इनका याम्य गोल में योग तथा सौम्य गोल में अंतर खमध्य से दृङ्मण्डलगत सूर्य का नतांश होता है। इसकी ज्या दृग्ज्या है। इसको नब्बे (९०) में से घटाने से शेष की ज्या उन्नतज्या संशंकु है। इससे छाया कर्ण प्राप्त होगा। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विषुव दिन में शंकु छायाग्र बिंदु पूर्व–पश्चिम के समानान्तर रेखा पर विषुवद्छाया तुल्य दूरी पर भ्रमण करता है। अतः चित्र में त्रिभुज प ल ख तथा त्रिभुज प भा ग समरूप हैं अतः–

$$\frac{\text{ल ख}}{\text{प ल}} = \frac{\text{ग भा}}{\text{प भा}} = \frac{\text{इष्ट ज्या दिगंश}}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ ल ख = पलभा; ग भा = त्रिज्या। अतः–

$$\text{प ल} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{ख ल}}{\text{इष्ट दिग्ज्या}} = \frac{\text{त्रि.} \times \text{पलभा}}{\text{इष्ट दिग्ज्या}}$$, इसको पलभा माना कर इसकी अक्षज्या साधित करे।

इदानीं विशेषमाह—

एवं कृते ये पलभागकाः स्युस्तद्धीनखाष्टेन्दुमिताश्च येंऽशाः ॥४७॥
तांश्चाक्षभागान् प्रविकल्प्य साध्या द्विधेष्टदिग्भा यदि दिग्लवज्या।
अल्पाग्रकायाः खलु सौम्यगोले याम्ये तु तस्यां दिशि नास्ति भैव॥४८॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट दिशा में छाया साधन इस प्रकार से करने में उत्तर गोल में दो छाया प्राप्त होती है जब दिग्ज्या अग्रा से अल्प होती है। दक्षिण गोल में सूर्य उस दिशा में क्षितिज के ऊपर प्रविष्ट नहीं करता। उत्तर गोल में

उत्तर की ओर इष्ट दिग्ज्याग्र पर दृग्मंडल स्थित होता है जो अहोरात्र वृत्त को कभी पूर्वाण्ह तथा कभी अपरान्ह में दो स्थानों पर लगता है। ऐसे अहोरात्र वृत्त में सूर्य भ्रमण करते हुए उन दो स्थानों पर आता है तब उन दिशा मे दो छाया होती है।

इस प्रकार इष्ट पलांश (अक्षांश) के अतिरिक्त दूसरा पलांश स्थान (अक्षांश) (१८०–इष्ट पलांश) मान कर वहाँ पूर्वोक्त प्रकार से छाया साधित करे। दक्षिण गोल में छाया का अभाव होता है।

उपपत्ति— इष्ट दिशा में स्थित दृग्मण्डल का विषुवन्मण्डल से एक संपात ख स्वस्तिक के आसन्न होता है। यह जितने अंश पर होता है वह इष्ट पलांश है। दूसरा संपात ख स्वस्तिक से दूर दूसरी दिशा में जितने अंश पर होता है उनको भी पलांश कल्पित करे। इन अक्षांश पर से अग्रा के अतिरिक्त अग्रा एवं इष्ट अहोरात्र वृत्त से इष्ट क्रांति और अग्रा होगी। इन दोनों को साधित करे। यह दो प्रकार (दो बार) से होती है।

इनको प्राप्त करने के लिए आचार्य ने सममण्डल में इष्ट छाया आनयन का उदाहरण दिया है। जिस देश में ५ अंगुल पलभा होती है वहाँ जब क्रांतिज्या = ७८० हो अर्थात् क्रांति १३° ७' हो तब वहाँ समशंकु = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{अक्षज्या}}$ = २०२८ होता है। अग्रा ८४५ तथा अक्षज्या = १३२२।१८ है। पलभा ५ को अर्धव्यास से गुणा करके दिग्ज्या से विभक्त करने से $\frac{५ \times ३४३८}{\text{दिग्ज्या}} = \frac{१७१९०}{०}$, क्योंकि यहाँ दिग्ज्या = ० है, शून्य अंश की ज्या = ० होती है। इस प्रकार यहाँ पर विषुवद्छाया अनन्त मान की हो गई। आचार्य ने कहा है कि यहाँ 'हार' शून्य राशि होती हैं। इसको पलभा मान कर (श्लोक ४६$\frac{१}{२}$, ४६ अनुसार) अक्षज्या साधित करे। इसके वर्ग को बारह के वर्ग के सदृश्य लेकर शून्य तुल्य मान जोड़कर मूल लेने से कर्ण पलभा के समान $\frac{१७१९०}{०}$ के तुल्य होता है। त्रिज्या को पलभा से गुणा करके उसके तुल्य कर्ण को मान कर विभक्त करने से अक्षज्या होती है। अर्थात

$\frac{\text{त्रिज्या} \times \frac{१७१९०}{०}}{\frac{१७१९०}{०}}$ = अक्षज्या। $\frac{१७१९०}{०}$ परस्पर कट जाने से अक्षज्या

= त्रिज्या प्राप्त होती है। इसका धनु ९०° है। इसको ९०° में से शोधित करने से लम्ब शून्य (९०–९० = ०) होता है।

इस प्रकार त्रिज्या तुल्य अक्षज्या ३४३८ और क्रांतिज्या = ७८० को गुणा करके स्वदेश की अक्षज्या १३२२।१८ से विभक्त करने से समशंकु प्राप्त होता है। अर्थात् सम शंकु = $\frac{३४३८ \times ७८०}{१३२२।१८}$। इससे इष्ट क्रांतिज्या = २०२८ तथा लम्ब = ०। इसे इष्ट क्रांतिज्या के धनु से अधिक करे। ऐसा करने से वह उन्नतांश होता है। इसकी जीवा शंकु होती है। इसी प्रकार सममण्डल शंकु होता है, और जब क्रांतिज्या = ० पूर्ण राशि हो तब इसी प्रकार अग्रा, समशंकु आदि साधित करके अनुपात करे।

इदानीं प्रकारान्तरेणेच्छादिक्छायामाह—

व्यासार्धवर्गः पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृतिर्द्वादशवर्गनिघ्नी।
तत्संयुतिः स्यात् प्रथमस्तथान्यस्त्रिज्याक्षभाग्राभिहतिस्ततस्तौ ॥४९॥
दिग्ज्याग्रयोर्वर्गवियोगभक्तौ यदन्यवर्गेण युताद्यराशेः।
पदं तदन्योनयुतं श्रुतिर्वा गोलक्रमादिष्टदिशं गतेऽर्के ॥५०॥
स्यादग्रकाया यदिदिग्ज्यकाल्पा तदान्यवर्गात् प्रथमेन हीनात्।
मूलेन हीनः सहितो द्विधान्यः कर्णद्वयं स्यादिति सौम्यगोले ॥५१॥

प्रकारान्तर से इच्छादिक्छाया ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— व्यासार्ध के वर्ग को पलभा के वर्ग से गुणा करके दिग्ज्या के वर्ग तथा बारह के वर्ग के गुणा में युक्त करने से प्राप्त प्रथम संज्ञक फल को एक स्थान पर स्थापित करे। फिर त्रिज्या, अक्षभा (पलभा) तथा अग्रा तीनों के गुणा को अन्य संज्ञक फल मान कर स्थापित करे। फिर दिग्ज्या और अग्रा के वर्गों के अंतर से प्रथम तथा अन्य संज्ञक फलों को विभक्त करने से प्राप्त अन्य राशि के वर्ग तथा प्रथम राशि के योग का मूल लेवे। इस प्रकार मूल लेने से प्राप्त राशि में सूर्य उत्तर गोल में होने पर अन्य (दूसरी) राशि को घटा देने तथा दक्षिण गोल में होने पर युत करने से छाया कर्ण प्राप्त होता है। यदि उत्तर गोल में दिग्ज्या अग्रा से अल्प हो तो अर्थात उत्तर क्रांति होने पर उस अन्य राशि के वर्ग में से प्रथम राशि को घटा कर मूल लेने से प्राप्त फल में वह अन्य राशि एक बार युत करने तथा दुबारा घटाने से दो कर्ण प्राप्त होते हैं। सूर्य के सममंडल के उत्तर में होने पर युत तथा घटाने पर दक्षिण में स्थित होता है।

सूत्र रूप में—

$$\text{त्रिज्या}^2 \times \text{पलभा}^2 + \text{दिग्ज्या}^2 \times १२^2 = \text{प्रथम संज्ञक फल।}$$

$$\text{त्रिज्या} \times \text{पलभा} \times \text{अग्रा} = \text{अन्य संज्ञक फल।}$$

$$\sqrt{\frac{\text{प्रथम संज्ञक फल}}{(\text{दिग्ज्या}^2 - \text{अग्रा}^2)} + \left(\frac{\text{अन्य संज्ञक फल}}{(\text{दिग्ज्या}^2 - \text{अग्रा}^2)}\right)^2} \pm \text{अन्य राशि} = \text{छाया कर्ण}$$

यदि दिग्ज्या $<$ अग्रा हो तो उत्तर गोल में अर्थात् उत्तर क्रांति होने पर

$$\text{छाया कर्ण} = \sqrt{(\text{अन्य राशि})^2 - \text{आद्य राशि}} \pm \text{अन्य}$$

कभी-कभी सूर्य के सममण्डल से उत्तर में रहने पर भी दो कर्ण होते हैं।

उपपत्ति— यहाँ यदि पलभा को 'प', अग्रा = 'अ' तथा कर्ण को 'क', भुज को 'भु', त्रिज्या को 'त्रि', दृग्ज्या को 'द' द्वारा व्यक्त करें तो—

$$\text{कर्णाग्र} = \frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} = \text{प} + \text{भु}$$

$$\text{या भु} = \frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} - \text{प};\ \text{आचार्योक्त उपपत्ति अनुसार।}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{भु}}{\text{प}};\ \text{आचार्योक्त उपपत्ति अनुसार।}$$

$$\text{अतः प} = \frac{\text{भु त्रि}}{\text{दृग्ज्या}} = \left[\frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} - \text{प}\right] \times \frac{\text{त्रि}}{\text{दृग्ज्या}};$$ यहाँ भु का मान रख दिया है।

$$\text{या प} = \left[\frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} - \text{प}\right] \times \frac{\text{त्रि}}{\text{द}} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - १२^2};$$ यहाँ पलभा = $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - १२^2}$ रख दिया।

$$\text{या त्रि (क अ} - \text{प त्रि)} = \text{त्रि.} \times \text{दृग्ज्या} \times \sqrt{\text{क}^2 - १२^2}$$

दोनों ओर का वर्ग करने पर—

$$\text{या त्रि}^2 (\text{क अ} - \text{प त्रि})^2 = \text{त्रि}^2\ \text{दृग्ज्या}^2 (\text{क}^2 - १२^2)$$

$$\text{या त्रि}^2 (\text{क}^2\text{अ}^2 + \text{प}^2\text{त्रि}^2 - २\ \text{क अ प त्रि}) = \text{त्रि}^2\ \text{दृग्ज्या}^2 (\text{क}^2 - १२^2)$$

त्रि दोनों ओर से उभयनिष्ट होने से निरस्त हो गया है।

$$\text{या क}^2\text{अ}^2 + \text{प}^2\text{त्रि}^2 - २\text{क अ प त्रि} = \text{क}^2\ \text{द}^2 - १२^2\ \text{द}^2$$

या $क^2 अ^2 - क^2 द^2 - २ क अ प त्रि = -प^2 त्रि^2 - १२^2 द^2$

या $क^2 (द^2 - अ^2) + २ क अ प त्रि = १२^2 द^2 + प^2 त्रि^2$

$$\text{या } क^2 + \frac{२ क अ प त्रि}{(द^2 - अ^2)} = \frac{१२^2 द^2 + प^2 त्रि^2}{(द^2 - अ^2)}$$

$$\text{या } क^2 + \frac{२ त्रि.अ.प.}{(द^2 - अ^2)} क - \frac{१२^2 द^2 + प^2 त्रि^2}{(द^2 - अ^2)} = ० \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

आचार्य ने $१२^2 \times दृग्ज्या^2 + पलभा^2 \times त्रि^2$ = प्रथम संज्ञक कहा है। तथा त्रि × पलभा × अग्रा = अन्य संज्ञक कहा है।

यहाँ हम देखते हैं कि यह समीकरण आधुनिक समीकरण $ax^2 + 2bx = c$ के रूप में है। अतः 'क' में प्राप्त समीरकण (१) के दो हल निम्नलिखित होंगे।

$$कर्ण = \mp आद्य \pm \sqrt{अन्य^2 + आद्य}$$

$$\text{यहाँ फिर से } \frac{१२^2 द^2 + प^2 त्रि^2}{(द^2 - अ^2)} = \text{आद्य (प्रथम)}$$

$$\text{तथा } \frac{त्रि.अ.प.}{दि^2 - अ^2} = \text{अन्य आचार्य अनुसार}$$

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ११ में कोण शंकु आनयन के लिए भास्कराचार्य द्वारा उक्त उपरोक्त सूत्र के अनुरूप सूत्र ज्ञात किया है। यथा—

"समदृङ्मण्डलविवरे क्षितिजे जीवा निगद्यते दिग्ज्या।
दिग्ज्याकृतिरग्रा कृत्या हीना कृतशक्रताड़िता निहता।।१।।
त्रिज्याकृत्या प्रथमोऽग्रा रव्यक्षभाहता त्रिज्या।
त्रिज्यागुणिता ह्यपरो विभक्तौ तौ च स्फुटौ स्याताम्।।२।।
दिग्ज्याऽर्कघातकृत्यक्षाभा त्रिज्यावधवर्गयोगेन।
अन्यवर्गयुतादाद्यान्मूलं युतोनितं चान्नेन।।३।।
सौम्येतरयोर्गोलयोर्दिशि विदिङ्नरः सूर्ये।
उत्तरयाम्यस्थे समवृत्तादुदग्रवौ पदेन युक्तश्च।।४।।

समदक्षिणगे रवावग्रा यत्र भवेन्न दिग्ज्योना।
दिग्ज्या वर्गोनाऽग्रा कृतिवशेन तत्र चाऽद्योऽन्यः ॥५॥
आद्योनादन्यवर्गतो यत्पदं तेन हीनस्तापनः शङ्कुः।
एवमेव हि कोणानामन्यानां ना सुखेन संसाध्यः ॥६॥''

आचार्य ने उपरोक्त श्लोकों में जो कहा है वह सूत्र रूप में इस प्रकार है।

$१२^२$ $त्रि^२$ ($दिग्ज्या^२$ − $अग्रा^२$) = आद्यः (प्रथमः)

अग्रा × पलभा × $त्रि^२$ × १२ = पर (अन्य)

तथा $$य^२ \pm \frac{२\ य\ अन्य}{(प\ भा^२\ त्रि^२ + दिग्ज्या^२ \times १२^२)} = \frac{आद्य}{(प\ भा^२\ त्रि^२ + दिग्ज्या^२ \times १२^२)}$$

इस समीकरण में य = कोण शंकु है।

आचार्य ने यहाँ दिग्ज्या < अग्रा की स्थिति कही है।

इस प्रकार भास्कराचार्य का सूत्र वटेश्वराचार्य के उपरोक्त सूत्र के ही अनुरूप है। समीकरण में अंश की संख्या हर के स्थान पर तथा हर की संख्या अंश के स्थान पर है क्योंकि वटेश्वर का सूत्र कोण शंकु ज्ञात करने के लिए है तथा भास्कराचार्य का सूत्र कर्ण को ज्ञात करने के लिए है।

अब आचार्योक्त श्लोक ५१ के अनुसार यदि दृग्ज्या अग्रा से अल्प हो तो यहाँ प्राप्त समीकरण (१) में ($द^२$ − $अ^२$) का मान ऋण होने से समीकरण (१) निम्नलिखित रूप में हो जावेगा—

$$य^२ - \frac{२\ त्रि.अ.प.}{(अ^२ - द^२)} क + \frac{१२\ द^२ + प^२\ त्रि^२}{(अ^२ - द^२)} = ०$$

अतः इस समीकरण का हल निम्नलिखित होगा—

कर्ण = अन्य $\pm \sqrt{अन्य^२ - आद्य}$। यही आचार्य ने कहा है। अतः उपपन्न हुआ।

इदानीमहो सर्वासां दिक्छायानामेकमेवानयनमप्रसिद्धमनेनाचार्येणोक्तम्। तत्र का प्रतीतिरिति मन्दानामाशङ्कां परिहरन्नाह—

कर्णाग्रया बाहुरिह प्रसाध्यस्त्रिज्याहतोऽसौ प्रभया विभक्तः।
भवेत् प्रतीत्यर्थमियं च दिग्ज्य तुल्यैव सा स्याच्छ्रवणद्वयेऽपि ॥५२॥

शंका का परिहार—

सूर्य-प्रभा टीका— कर्णाग्र के द्वारा बाहु साधित करे तथा बाहु को

त्रिज्या से गुणा करके छाया से विभक्त करने से दिग्ज्या प्राप्त होती है। यह दृग्ज्या, दोनों छाया कर्णों के लिए समान होती है।

विशेष— आचार्य ने जो पूर्व में कहा है वह सविज्ञ लोग जानते तथा समझते हैं। लेकिन जो नहीं समझते हैं उनके लिए यहाँ विधि कही है कि पूर्वोक्त दृग्ज्या = भुज + पलभा समीकरण द्वारा भुज ज्ञात करे तथा इस भुज (बाहु) से दृग्ज्या ज्ञात करे श्लोक ४६-४७ अनुसार। यह दृग्ज्या का मान छाया कर्ण के दोनों मानों के लिए समान होता है। एक छायाकर्ण पूर्वान्ह में तथा दूसरा अपरान्ह में होता है। इन में एक कर्ण पूर्वापर रेखा के एक ओर तथा दूसरा दूसरी ओर होता है।

एवं दिङ्नियमेन छायानयनमभिधायेदानीं कालनियमेनाह—

उक्ता प्रभाभिमतदिङ्नियमेन तावत्
तामेव कालनियमेन च वच्मि भूयः।
स्यादुन्नतं द्युगतशेषकयोर्यदल्पं
तेनोनितं दिनदलं नतसंज्ञकं च।।५३।।
अथोन्नतादूनयुताच्चरेण क्रमादुदग्दक्षिणगोलयोर्ज्या।
स्यात् सूत्रमेतद्गुणितं द्युमौर्व्या व्यासार्धभक्तं च कलाभिधानम्।।५४।।

दिग्नुसार छाया आनयन के पश्चात् अब काल अनुसार छाया आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से दिशा के अनुसार छाया का मान ज्ञात किया गया है अब छाया का आनयन काल के अनुसार कहते हैं। दिनगत और दिन शेष में से जो अल्प हो वह उन्नतसंज्ञक है। दिनार्ध में से उस उन्नत को घटाने से शेष नत संज्ञक होता है। उन्नत में चर को उत्तर गोल में घटाने से तथा दक्षिण गोल में युक्त करके उसकी ज्या सूत्र संज्ञक कहलाती है। इस सूत्र को द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल कला संज्ञक होता है।

उपपत्ति— जिस काल की छाया साधित करनी है उस काल में स्वाहोरात्र वृत्त में जितने घटी रवि क्षितिज से उन्नत रहता है वह उन्नत संज्ञक है। इस काल से मध्यान्ह जितना उन्नत है वह नत संज्ञक है। अब चर को उन्नतकाल में से घटा कर तथा युक्त करके उसकी ज्या साधित करे। यह ज्या मध्यावधि होती है और उस स्थान पर अहोरात्रवृत्त का उन्मण्डल से संपात होता

है। इस उन्मण्डल संपात से अहोरात्र वृत्त का आधा ऊर्ध्व तथा आधा अद्यः होता है। इस उन्मण्डल से कटे हुए भाग की जीवा ज्ञात करे। क्षितिज तथा उन्मंडल का अन्तर चरार्ध होता है। इस चरार्ध से उत्तर गोल में उन्नत को घटावे तथा दक्षिण गोल में युक्त करे, क्योंकि उत्तर गोल में क्षितिज से ऊपर उन्मण्डल होता है और दक्षिण में नीचे होता है। इष्ट काल की ज्या साधित करके उसको त्रिज्या में परिणत करने से उसकी सूत्र संज्ञा होती है और, यदि त्रिज्या वृत्त में इतनी होती है तो द्युज्या वृत्त में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से वह द्युज्या वृत्त परिणत होती है जिसकी कला संज्ञा होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"चरहीनाद्‌योन्नतजा क्रमजीवां गोलयोभर्वति सूत्रम्।
तच्चरगुणयुति भेदान्नतिरिह गोलक्रमाद्भवति।।२७।।
उन्नतमहनो यातं शेषं च तदूनितं द्युदलम्।।१८।।
इष्टोन्नतनतजातप्राणा ज्यार्थं कला कल्प्या।१८$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उन्नताच्चरदलने वर्जितात् संयुतादुदगसौम्यगोलयोः।
शिञ्जिनी द्युगुणसङ्गुणा हृता त्रिज्यया कुगुणयुक्तवर्जिता।।२४।।
छेद इष्ट समये भवेत् ततः शङ्कुभाश्रवणसिद्धिरुक्तवत्।
व्यासखण्डकृतिशङ्कुवर्गयोर्दृग्गुणो भवति चान्तरात् पदम।।२५।।
प्राक्कपालमथ पूर्वम्बरं पश्चिमं च तदुशन्ति पश्चिमम्।
प्राचि यातमगतं तु पश्चिमे कालमुन्नतमतोऽपरं नतम्।।२३।।"

भास्कराचार्य प्रथम ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"दक्षिणोत्तरगते विवस्वति प्राणराशिनिचयाद् धनुक्षयौ।
स्वक्षजं चरदलं तदा ततो जीवयाऽत्र गुणितं दिवागुणम्।।१८।।
संहरेत् त्रिभवनस्यजीवया तत्र लब्धनिचये क्षितेर्गुणम्।
व्यत्ययं चरदलस्य तत्कुरु स्वावलम्बकहतं हरेतपुनः।।१९।।"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यष्टि व्यासार्धे वा घटिका शङ्कवङ्गुलादितो मूलात्।
अवलम्ब सूत्र युत्तथा घटिका दिवसस्य गतशेषाः॥२३॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण कलां तस्याश्चेष्टयष्टिमाह—

सूत्रं कुजीवागुणितं विभक्तं चरज्यया स्यादथवा कला सा।
कला पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नी तत्कर्णभक्ता भवतीष्टयष्टिः॥५५॥

प्रकारांतर से कला तथा उससे इष्ट यष्टि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूत्र को कुज्या से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से कला होती है। तथा कला को आठों ही अक्ष क्षेत्रों की कोटि से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से इष्ट यष्टि होती है।

उपपत्ति— चरज्या, कुज्या तथा त्रिज्या, द्युज्या परिणित होती है। अतः उनका अनुपात करने से कि यदि चरज्या में कुज्या प्राप्त होती है तो सूत्र में कितनी होगी? प्राप्तफल कला होगा। अर्थात् कला = $\frac{\text{सूत्र} \times \text{कुज्या}}{\text{चरज्या}}$। यह कला अहोरात्र वृत्त में ज्या है जो नाडी वृत्त में सूत्र है।

अतः $\frac{\text{इष्ट सूत्र}}{\text{इष्ट कला}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$; आचार्योक्त अनुसार

अतः $\frac{\text{इष्ट सूत्र}}{\text{इष्ट कला}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ अनुपात द्वारा इष्ट कला = $\frac{\text{इष्ट सूत्र} \times \text{कुज्या}}{\text{चरज्या}}$;

वज्रगुणन द्वारा।

कला, अक्षकर्णवत् तिरछी होती है। इससे कोटि सूत्र यहाँ ज्ञात करते हैं। इसके लिए अनुपात किया कि यदि अक्ष क्षेत्र के कर्ण में उसकी कोटि प्राप्त होती है तो कला कर्ण में कितनी होगी? प्राप्तफल उनमंडल शंकुग्र समसूत्र से ऊपर सूर्य बिंब से ऊर्ध्व कोटि रूप होगा। इसकी इष्टयष्टि संज्ञा है। इष्टयष्टि अहोरात्र वृत्त में स्थित सूर्य से उन्मण्डल शंकुग्र पर (सम सूत्र पर ऊर्ध्वरूप) क्षितिज के समानान्तर धरातल पर डाल गया लम्ब ही होता है और अहोरात्रवृत्त धरातल तथा यष्टि के धरातल के बीच का कोण अक्षांश होता है। अतः इष्ट यष्टि (९० – अक्षांश) कोण के सामने की भुजा होती है तथा कला इससे बनने वाले अक्षक्षेत्र की कर्ण होती है। अतः आचार्योक्त उपपत्ति के अनुसार–

$$\frac{\text{इष्ट यष्टि}}{\text{इष्ट कला}} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कर्ण}}$$

$$\text{या इष्ट यष्टि} = \frac{\text{इष्ट कला} \times \text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कर्ण}}$$

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"व्यस्तजसूत्रं तादृक् तथा कला यष्टिके स्याताम्।
सूत्रं कुज्या गुणितं चरगुण भक्तं कलाख्यं स्यात्॥२८॥"
कलिकाऽक्षक्षेत्रजकोटिवधं कर्णाप्तमिष्टयष्टिः॥२९॥"

इदानीं प्रकारान्तरेणेष्टयष्टिमाह—

उद्वृत्तशङ्कोरपि सूत्रनिघ्नाच्चरज्ययाप्तं यदि वेष्टयष्टिः।५५ $\frac{1}{2}$।

प्रकारान्तर से इष्ट यष्टि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मण्डल शंकु को सूत्र से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से भी इष्ट यष्टि होती है।

उपपित्त— यदि चरज्या में उन्मण्डल शंकु यष्टि है तो सूत्र में कितनी होगी? इस प्रकार त्रैराशिक से इष्ट यष्टि प्राप्त होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त में त्रिज्या को उन्मण्डल शंकु से गुणा करके चरज्या से भाग देने से यष्टि प्राप्त होना कहा है तथा भास्कराचार्य ने इष्ट यष्टि के लिए त्रिज्या के स्थान पर सूत्र लिया है, अक्ष क्षेत्र द्वारा। अतः—

"गज्योन्मण्डलनृहतेश्चरजीवाप्तं भवेद्यष्टिः। त्रि.प्र.॥ $\frac{1}{2}$।"

इदानीमिष्टान्त्यकाहृत्योरानयनमाह—

रवावुदग्दक्षिणगोलयाते सूत्रं युतोनं चरजीवया स्यात्॥५६॥
इष्टान्त्यकैवं क्षितिजीवया च कला युतोना हृतिरिष्टकाले।५६ $\frac{1}{2}$।

इष्ट अन्त्या तथा उससे इष्ट हृति आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वानीत सूत्र में उत्तर गोल में चरज्या युक्त करने से तथा दक्षिण गोल में हीन करने से इष्ट अंत्या संज्ञक फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार गोल अनुसार पूर्वोक्त प्रकार से कला में कुज्या युत-हीन करने से इष्टकाल पर हृति होती है।

उपपत्ति— उन्मण्डल के ऊपर अहोरात्रवृत्त में नतकाल की ज्या कला है। उसके नीचे की ज्या कुज्या है। इनका उत्तर गोल में योग करने से सूर्यबिंब

से उदयास्त सूत्र पर्यन्त अक्षकर्णगत तीर्यक सूत्र होता है वह इष्ट हृति है। यह त्रिज्यापरिणत करने से इष्ट अन्त्या होती है। अतः चरज्या को सूत्र में युत किया है। दक्षिण गोल में क्षितिज के नीचे स्थित होने से कला में कुज्या हीन किया है। अतः उपपन्न हुआ।

किसी ग्रह की इष्ट समय पर इसके उदयास्त सूत्र से दूरी होती है वह इष्ट हृति होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कही है। यथा–

"चरहीनाढयोन्नतजा क्रमजीवा गोलयोर्भवति सूत्रम्।
तच्चरगुणयुति भेदान्नतिरिह गोलक्रमाद्भवति॥२७॥
तत्क्षितिजीवैक्यान्तरतश्छेतो गोलयोर्भवति॥२८ $\frac{1}{2}$॥"

इदानीमिष्टशङ्कुमाह—

युतोनितोन्मण्डलशङ्कुनैवमिष्टाख्ययष्टिर्भवतीष्टशङ्कुः॥५७॥

इष्टशङ्कु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट यष्टि में उत्तर गोल में उन्मण्डल शंकु युत करने से तथा दक्षिण गोल में हीन करने से इष्ट शंकु होता है।

उपपत्ति— पूर्व प्राप्त इष्ट यष्टि उन्मण्डल शंकुअग्र सम सूत्र पर उर्ध्वरूप होती है। वह उत्तर गोल में उन्मण्डल शंकु में जोड़ने पर तथा दक्षिण गोल में घटाने पर सूर्य बिंब से भूपर्यंत लम्बरूप होता है। इस प्रकार से इष्ट शंकु उपपन्न हुआ।

उन्नतकालाच्छङ्कुमानीयेदानीं नतकालादाह—

नतोत्क्रमज्या शर इत्यनेन हीनान्त्यका वाभिमतान्त्यका स्यात्।
द्युज्याहतो व्यासदलेन भक्तः कुज्याहतो वा चरशिञ्जिनीहृत्॥५८॥
शरः पृथक्स्थेन फलेन हीना हृतिर्भवेद्वा हृतिरिष्टकाले।५८ $\frac{1}{2}$।

नतकाल से शंकु और इष्ट हृति ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्टकाल पर जो नत होता हैं उसकी उत्क्रमज्या शर संज्ञक होती है। पूर्वानीत अन्त्या में से शर को हीन करने से इष्ट अन्त्या होती है। शर को द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से अथवा कुज्या से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल को पूर्वाप्राप्त हृति में से घटाने से इष्ट हृति होती है।

उपपत्ति— गोल अनुसार त्रिज्या में चरज्या युत-हीन करने से अन्त्या होती है। सूत्र में चरज्या युत-हीन करने से इष्ट अन्त्या होती है। नत की उत्क्रमज्या बाणरूप को त्रिज्या में से हीन करने से सूत्र होता है। अतः शर को अन्त्या में से घटाने से इष्ट अन्त्या होती है कहा है। अब यह शर जो त्रिज्या परिणत है को अनुपात के द्वारा द्युज्या परिणत करे। यदि त्रिज्या में द्युज्या प्राप्त होती है तो शर में कितनी होगी? अथवा चरज्या में यदि कुज्या प्राप्त होती है तो शर में कितनी होगी? इस प्रकार त्रैराशिक के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह नतोत्क्रमज्या की द्युज्या परिणत हो जाती है। द्युज्या में कुज्या युत-हीन करने से हृति होती है। कला में कुज्या युतहीन करने से इष्टहृति होती है। अब नतोत्क्रमज्या को द्युज्यापरिणत करके उसमें से द्युज्या घटाने से कला होती है, यदि हृति में से घटाने से इष्टहृति होती है। अतः उपपन्न हुआ।

स्वअहोरात्र वृत्त का याम्योत्तर वृत्त में एक संपात आगे के तथा द्वितीय नीचे के, से एक सूत्रबांधे। उस सूत्र का उदयास्त सूत्र से जो सम्पात है उससे ऊपर का खण्ड हृति है। अहोरात्र वृत्त के याम्योत्तर वृत्त से सम्पात से पूर्व और पश्चिम नतघटि अग्र पर चिन्हित करके उनसे सूत्र बांध देवे। इस सूत्र से हृति सूत्र का जो संपात है उसका अधः (नीचे का) खण्ड जो उदयास्त सूत्र पर्यन्त है उसका प्रमाण इष्ट हृति है। इसका ऊर्ध्वखण्ड, नतोत्क्रमज्या का द्युज्या परिणत फल संज्ञक है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्त्या नतजीवोना नतिरथ नतशिञ्जिनीहता द्युज्या।
गभमौर्व्या भक्ताप्तं हृतौ विशोध्यं भवेच्छदः॥२१॥"

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

अन्त्या नतोत्क्रमज्या हीना ज्याषट् पृथक् छेदः।
ज्याभ्यां च सह फलानि छायानयनानि षट्त्रिंशत्॥३७॥"

इदानीमिष्टशङ्क्वर्थमाह—

फलं पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नं तत्कर्णभक्तं च तदूर्ध्वसंज्ञम्॥५९॥
उद्वृत्तशङ्कोः शरसंगुणात् स्याच्चरज्ययाप्तं यदिवोर्ध्वसंज्ञम्।
ऊर्ध्वेन हीनो दिनमध्यशङ्कुः स्यादिष्टशङ्कुर्नततोऽथवैवम्॥६०॥

इष्ट शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वप्राप्त फल को अठों, अक्षक्षेत्रों की कोटि से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से ऊर्ध्व संज्ञक फल आठ प्रकार से प्राप्त होता है। उन्मण्डल शंकु को शर से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से भी ऊर्ध्व संज्ञक फल प्राप्त होता है। इस ऊर्ध्व को दिनार्ध शंकु में से हीन करने से इष्ट शंकु होता है।

(यहाँ शर पूर्वोक्त शर है।)

उपपत्ति— जैसा कि पूर्व में प्रदर्शित किया गया है हृति का ऊपरी फल संज्ञक खण्ड जो तिर्यक रूप में है उसको कोटी रूप में करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि अक्षक्षेत्र के कर्ण में उसके कोटि प्राप्त होती है तो उस फल संज्ञक में कितनी होगी? लब्धि ऊर्ध्व कोटि रूप होगी। उस को जिस दिन के दिनार्ध शंकु में से घटावेंगे तो उस का इष्ट शंकु के तुल्य शेष रहेगा। यह सम सूत्र और सूर्य बिंब के अहोरात्र वृत्त में रहता है। यदि चरज्या में त्रिज्यावृत्त परिणत उन्मण्डल शंकु तुल्य ऊर्ध्व प्राप्त होता है तो शर को त्रिज्यावृत्त परिणत करने में इतना ऊर्ध्व फल होता है।

पूर्वतव दिनार्ध शङ्कु = $\frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{दि.क.}}$, इष्टशङ्कु = $\frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{इ.क.}}$ इनका अंतर ऊर्ध्व

संज्ञक = $\frac{\text{१२ त्रि. (इ क − म क)}}{\text{इ क × दि क}}$। मध्यान्ह शंकु में हृति कर्ण है तो पूर्व प्राप्त ऊर्ध्व संज्ञक में क्या? लब्धि फल संज्ञक है।

$$\text{फल} = \frac{\text{हृ ऊर्ध्व}}{\text{म.शं.}} = \frac{\text{हृ. × १२ त्रि (इ.क. − म. क.)}}{\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{दि.क.}} \times \text{दि.क.} \times \text{इ क}} = \frac{\text{हृ × (इ.क. − म. क.)}}{\text{इ. क.}}$$

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अक्षक्षेत्रजकोटिभिराहतमविनष्टकं भजेत् कर्णैः।
थस्थैर्दिनार्धशङ्कुर्लब्ध्योनः शङ्कवोऽभीष्टाः॥२३॥"
"द्युदलेष्टश्रवणान्तर गुणिता हृतिरिष्टकर्णसंभक्ता।
लब्धं चरगुणगुणितं कुज्याभक्तं नतज्या वा॥३२॥"

इदानीमिष्टान्त्यकाहृतिभ्यां शङ्कुमाह—

इष्टान्त्यकायाश्च हृतेश्च यद्वा दिनार्धशङ्कूक्तवदिष्टशङ्कुः।
शङ्कोश्च दृग्ज्याश्रवणप्रभाः स्युर्हृतेर्न दृग्ज्या सुधियात्र कार्या॥६१॥

इष्टअन्त्या और हृति से शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार अन्त्या के द्वारा अन्त्या और उन्मण्डल शंकु को गुणा आदि प्रकार से दिनार्ध शंकु ज्ञात करते हैं तथा हृति के द्वारा हृति को अक्षक्षेत्र की कोटि से गुणा आदि द्वारा दिनार्ध शंकु ज्ञात करते हैं उसी प्रकार इष्ट अन्त्या तथा इष्ट हृति के द्वारा इष्ट शंकु ज्ञात करे तथा शंकु से दृग्ज्या और उसका छाया कर्ण और छाया ज्ञात करे। यह दिनार्धोक्त अनुसार साधित करे। किन्तु हृति से दृग्ज्या साधित न करे।

उपपत्ति— हृति से दक्षिणोत्तर मण्डल गत दृग्ज्या साधित करते हैं वह दक्षिणोत्तर मण्डल और दिनार्ध में होती है। दक्षिणोत्तर मंडल में दृङ्मण्डल है। श्लोक ३७ में हृति से जो दृग्ज्या साधन करना बताया है वह दिनार्ध में ही होता है अतः आचार्य कहते हैं कि हृति से हमेशा दृग्ज्या साधित नहीं करनी चाहिये।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"यद्वा छेदाक्षक्षेत्रजकोटिबधं विभाजयेच्छ्रवणैः।
इष्टो नर उन्मण्डलनरनतिघाताच्चरज्ययाप्तं वा॥२४॥"

$$\text{अर्थात् इष्ट शंकु} = \frac{\text{अक्ष कोटि} \times \text{इष्ट हृति}}{\text{अक्ष कर्ण}} = \frac{\text{उन्मं. शंकु} \times \text{इष्ट हृति}}{\text{कुज्या}}$$

$$= \frac{\text{उन्मं. शंकु} \times \text{इष्ट अंत्या}}{\text{चरज्या}}$$

इष्ट हृति = कर्ण; इष्ट शंकु = कोटि तथा शंकुतल = भुज

इस अक्ष क्षेत्र में अनुपात करने से ये प्राप्त होते हैं।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १० में इष्ट हृति और इष्ट अन्त्या से इष्ट शंकु आनयन कहा है। यथा–

"स्वधृतिस्वान्त्ये गुणिते द्युदलनरेण क्रमाद्विभक्ते च।
धृत्यान्त्याभ्यां लब्धावभीष्टकालोद्भवौ शङ्कू॥५॥"

अय प्रकारान्तरैश्छायाकर्णमाह —

उद्वृत्तकर्णात् क्षितिशिञ्जिनीघ्नात् समाख्यकर्णादपि तद्धृतिघ्नात्।
दिनार्धकर्णादथवा हृतिघ्नाद्धृत्येष्टयाप्तं यदिवेष्टकर्णः ॥६२॥

प्रकारांतर से इष्ट छाया कर्ण ज्ञान —

सूर्य-प्रभा टीका — पूर्व प्राप्त उन्मण्डल कर्ण को कुज्या से गुणा करके, समवृत्त शंकु कर्ण को तद्धृति से गुणा करके तथा मध्यछाया कर्ण को हृति सेगुणा करके तीनों को पृथक-पृथक इष्ट हृति से विभक्त करने से तीन प्रकार से इष्ट कर्ण होता है।

उपपत्ति — त्रैराशिक से ये प्राप्त होते हैं। यदि कुज्या तुल्य में उन्मंडल कर्ण, तद्धृति में सममण्डल कर्ण और हृति में मध्यान्ह कर्ण प्राप्त होता है तो इष्ट हृति में कितना होगा ? प्राप्तफल इष्टकर्ण होता है।

$$\text{इष्टकर्ण} = \frac{\text{मध्यान्ह कर्ण}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{उन्मं. कर्ण}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{तद्धृ} \times \text{सम शं.}}{\text{इष्ट हृति}}$$ प्राप्त होता है तथा

त्रैराशिक का अनुपात निम्नलिखित प्रकार से —

$$\frac{\text{इष्ट शंकु}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{दिनार्ध शंकु}}{\text{हृति}} = \frac{\text{सम शंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{उन्मं. शं.}}{\text{कुज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ (१)$$

$$\text{तथा इष्टकर्ण} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{इष्ट शंकु}}$$ होता है अतः इसी प्रकार $$\text{दिनार्ध कर्ण} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{दिनार्ध शंकु}}$$

$$\text{समवृत कर्ण} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{सम शंकु}}$$ और $$\text{उन्मं. कर्ण} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{उन्मं. शंकु}}$$

यहाँ से दि.शं., स.शं. तथा उ.शं. का मान समीकरण (१) में रखने पर—

$$\frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{इष्ट कर्ण} \times \text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{दि क.} \times \text{हृति}} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{सम क.} \times \text{तद्धृति}} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{उ.क.} \times \text{कुज्या}}$$

अतः इष्ट कर्ण × इष्ट हृति = दि.क. × हृति = स.क.तद्धृति = उ.क.× कुज्या

या इष्टकर्ण =

$$\frac{\text{दिनार्ध कर्ण} \times \text{हृति}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{सम कर्ण} \times \text{तद्धृति}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{उन्मं. कर्ण} \times \text{कुज्या}}{\text{इष्ट हृति}}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"हृतिदिनदलकर्ण हतेरुद्धृत्तश्रुतिकुशिञ्जिनीघातात्।
तद्धृतिसमकर्णबधाच्छेदाप्ताश्चेष्टकर्णाः स्युः ॥२६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में हृति व इष्ट हृति से इष्टकर्ण ज्ञात करने की विधि प्रश्नाधिकार श्लोक ३० में कही है। यह श्लोक आगे श्लोक ६६ से ६७$\frac{१}{२}$ की व्याख्या में उद्धृत किया है, वहाँ देखें।

इदानीं विशेषमाह—

यत्र क्वचिच्छुद्धिविधौ यदेह शोध्यं न शुध्येद्विपरीतशुद्ध्या।
विधिस्तदा प्रोक्तवदेव किन्तु योगे वियोगः सुधिया विधेयः ॥६३॥

विशेष जानने की बात—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि कभी शुद्धि करने के लिए कहे जाने पर घटाये जाने वाली राशि न घट सके (अर्थात् बडी हो) तो घटाये जाने वाली राशि में से शोध्य राशि को घटावें अर्थात विपरीत शोधन करे और योग करने के लिए हो तो विधिगत घटाना चाहिये।

उपपत्ति— आचार्य ने सूत्र ज्ञात करने में पूर्वोक्त श्लोक ५४ में कहा है कि उन्नत में चर को घटाने या जोड़ने में यदि उत्तर गोल में उन्नत में से चर न घटे तो चर में से उन्नत को घटावें तथा प्राप्त शेष की ज्या ज्ञात करने से वह उन्मंडल के नीचे के चरज्या खंड की सूत्र संज्ञ होती है। उसकी यदि कला बनावें तो वह उन्मंडल के नीचे कुज्या खंड होता है। कला से इष्ट यष्टि करने से वह उन्मंडल शंकु का ऊर्ध्व खंड होता है। रवि उत्तर व दक्षिण गोल में होता है तो सूत्र में चरज्या युक्त करते हैं तथा नहीं करते हैं। किन्तु उन्मंडल के अधोमुख जो सूत्र आता है उसको चरज्या में से घटाने से शेष इष्ट अन्त्या होती है। इसी प्रकार कला उन्मंडल में अधोमुख जाती है इसको कुज्या में से घटाने से शेष कुज्या का अधः खंड इष्ट हृति होती है। इसी प्रकार उन्मंडल से अधोमुख जो इष्ट यष्टि आती है उसमें से उन्मंडल शंकु घटाने से शेष इष्ट शंकु होता है।

ये उदाहरण आचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में कहे हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त बात कही है। यथा—

"अल्पीयांसो भवेयुः सवितृचरदलादिष्टकालासवश्चेत्
सौम्ये गोले तदानीं चरदलसमयात् पातयित्वेष्टकालम्।
कार्या शेषस्य जीवा चरशकलगुणस्तद्विहीनोऽन्त्यका स्यात्,
त्रिज्याभक्ताथ सैव द्युगणविगुणिता छेद इष्टः प्रदिष्टः॥२६॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अल्पाः प्रश्नासूनां यदि बहवश्चरदलासवः क्षितिजा।
हृतयोना जीवोना क्षयवृद्धिज्योक्तवच्छेषम्॥३३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अभीष्ट प्राणाश्चेच्चरशकलतः स्युस्त्वनधिका
उदग्गोले पात्याश्चरशकलतो ज्या चरगुणः।
तयोनस्त्रिज्याप्तो दिनगणगुणोऽसावभिमतो भवेच्छे-
दस्तस्मात् कथितविधिना स्तः श्रवणभेऽनेन लल्लोत्तमेवोक्तमिति॥"

आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नतजीवोत्क्रमचापप्राणा द्युदलाद्भवन्ति नताः।
गज्यां नतज्ययोनां कृत्वा कार्यं क्रमेण धनुः॥३३॥
तद्गोलवशाच्चरजैः प्राणैर्युक्तोनमुन्नताः प्राणाः
व्यस्तविशुद्धयुभ्दवधनुषोनाश्चरजासवस्तदुत्तरजाः॥३४॥"

इदानीमन्यं विशेषमाह—

बाणेन्दु १५ नाड्यूननतात् क्रमज्या त्रिज्यान्विता सैव नतोत्क्रमज्या।
उद्वृत्तशङ्कुस्तु न याम्यगोले दृश्योऽनुपातार्थमयं प्रसाध्यः॥६४॥

विशेष जानने की अन्य बात—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि नत १५ घटी से अधिक होती है तो उसकी उत्क्रमज्या करने के लिए नत में से १५ घटी घटा कर शेष की क्रमज्या में त्रिज्या युत करने से नत की उत्क्रमज्या होती है। तथा दक्षिण गोल में उन्मंडल शंकु क्षितिज के नीचे होने से अदृश्य होता है फिर भी उसको अनुपात के द्वारा साधित कर सकते हैं।

उपपत्ति— उत्क्रमज्या बाण रूप में होती है। यदि नत १५ घटी से अधिक हो तो १५ घटी की उत्क्रमज्या बाण रूपा त्रिज्या तुल्य होता है। १५

घटी से अधिक जो काल है उसकी क्रमज्या ऊर्ध्वाधः रूप होती है। इसमें त्रिज्या को युक्त करने से बाण रूप उत्क्रमज्या होती है। गोल में अहोरत्र वृत्त में याम्योत्तर वृत्त के पूर्व में नतघटि के आगे सूत्र बांध कर दूसरा पश्चिम में नतघटि के आगे बांध देवे। उस सूत्र का याम्योत्तरवृत्त और अहोरात्र वृत्त के संपात से जो अंतर है वह बाणरूप है। यह उसकी उत्क्रमज्या प्रदर्शित होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नतकालोत्क्रमजीवा साध्याऽथो क्माधिके नते क्मोनम्॥१९॥
कृत्वा शेषात् क्रमजा जीवा गज्यान्वितोत्क्रमज्या स्यात्।
एवं नतकोदण्डं सुधियोत्क्रमजीवया साध्यम्॥२०॥"

इदानीमन्यं विशेषमाह—

मार्त्तण्डः सममण्डलं प्रविशति स्वल्पेऽपमे स्वात् पलात्
दृश्यो ह्युत्तरगोल एव स विशन् श्राव्या तदैवास्य भा।
अप्राप्तेऽपि समाख्यमण्डलमिने यः शङ्कुरुत्पद्यते
नूनं सोऽपि परानुपातविधये नैवं क्वचिद्दुष्यति॥६५॥

अन्य विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की जब उत्तर क्रांति अक्षांश से अधिक होती है तब वह सममण्डल से उत्तर में रहता है तथा तब दिनार्ध होता है और जब अक्षांश से अल्प होती है तब वह दक्षिणस्थ होता है। अतः तब वह सममंडल में प्रवेश करता है। इस प्रकार दक्षिण गोल में अक्षांश से क्रांति अल्प होती है तब रवि सममण्डल में प्रवेश करता है। लेकिन उस स्थिति में क्षितिज से नीचे स्थित होने के कारण उसका प्रवेश दृश्य नहीं होता। उत्तर गोल में दृश्य होता है अतः वहाँ उसकी छाया, कर्णादि कही है। दक्षिण गोल में सूर्य का सममंडल में प्रवेश अदृश्य होने पर भी उसका समशंकु अनुपात द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

उपपत्ति— पलभा भुज, १२ अंगुल शंकु कोटी तथा पलकर्ण कर्ण–एक अक्षक्षेत्र है। क्रांतिज्या भुज, कुज्योनतद्धृति कोटी तथा समशंकु कर्ण–दूसरा अक्ष क्षेत्र है। इन दोनों अक्ष क्षेत्रों में अनुपात करने से—

$$\frac{\text{पलकर्ण}}{\text{पलभा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

$$\text{या समशंकु} = \frac{\text{पलकर्ण} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{पलभा}}$$

जब उत्तर क्रांति अक्षांश से अल्प होती है तब ही रवि का सममण्डल में प्रवेश होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विषुवत्कर्णेन गुणा विषुवच्छायोद्धृतोत्तरा क्रान्तिः।
यद्युनाक्षज्यायाः शङ्कुः सममण्डल स्थेऽर्के॥५१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"यदा भवेत् क्रान्तिरूदक् पलाल्पाविशेत् तदानीं समवृत्तमर्कः।३५ $\frac{1}{2}$।"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सौम्याक्षोना यदा क्रान्तिः स्यात् तदा द्युदलक्षवः २६॥
विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णो मध्याग्रयोद्धृतः।$\frac{1}{2}$।"

इदानीं छायातः कालज्ञानमाह—

उद्वृत्तकर्णाच्चरशिञ्जिनीघ्नाद्दिनार्धकर्णादथवान्त्यकाघ्नात्।
इष्टेन कर्णेन हताद्यदाप्तमिष्टान्त्यका सैव पृथक् पृथक् स्यात्॥६६॥
पलश्रुतिघ्नस्त्रिगुणस्य वर्गोद्युज्येष्टकर्णाहतिहृद्भवेद्वा।
इष्टान्त्यका तद्रहितान्त्यकाया भवन्ति या उत्क्रमचापलिप्ताः॥६७॥
नतासवस्ते स्युरहर्दलं तैरूनीकृतं चोन्नतकाल एवम्।६७$\frac{1}{2}$।

छाया से काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मण्डल कर्ण से चरज्या को गुणा करके अथवा दिनार्ध कर्ण से अन्त्या को गुणा करके इष्टकर्ण से विभक्त करने से पृथक-पृथक प्राप्तफल इष्ट अन्त्या होती है। पलकर्ण तथा त्रिज्या वर्ग के गुणा में दुज्या और इष्टकर्ण के गुणा से भाग देने से जो फल प्राप्त होता है वह भी इष्ट अन्त्या होती है। इष्ट अन्त्या को अन्त्या में से घटाकर शेष की उत्क्रमज्या का धनु करे। उस धनु की जितनी कला हो उसकी नतअसु ज्ञात करे तथा उनको दिनार्ध असु में से घटाने से उन्नत असु होते हैं।

सूत्र रूप में—

$$\text{इष्टअंत्या} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} = \frac{\text{दिनार्ध कर्ण} \times \text{अन्त्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} = \frac{\text{प.क.} \times \text{त्रि.}^2}{\text{दृज्या} \times \text{इ.क.}}$$

उत्क्रमज्या (अंत्या – इष्ट अंत्या) =शेष

दिनार्ध असु – शेक के असु = उन्नत असु

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति त्रैराशिक द्वारा करेंगे। यदि उन्मण्डल कर्ण में चरज्या इष्ट अन्त्या प्राप्त होती है तो इष्ट कर्ण में कितनी होगी? अथवा यदि मध्यान्ह कर्ण में अन्त्या प्राप्त होती है तो इष्ट छार्या कर्ण में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से दोनों प्रकार से प्राप्तफल इष्ट अन्त्या होता है।

$$\text{अर्थात् इष्ट अन्त्या} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} = \frac{\text{दिनार्ध कर्ण} \times \text{अन्त्या}}{\text{इष्ट कर्ण}}$$

अब अन्य प्रकार से त्रैराशिक करके उपपत्ति करते हैं। यदि इष्टछाया कर्ण में द्वादश अंगुल शंकु प्राप्त होता है तो त्रिज्याकर्ण में कितना? यहाँ त्रिज्या तथा बारह के गुणा में इष्ट कर्ण का भाग देने से प्राप्तफल महा शंकु होगा। अर्थात्

$\text{महाशंकु} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}}$। अब इसकी हृति करने के लिए अनुपात किया कि यदि १२ अंगुल शंकु में विषुवद्कर्ण कर्ण प्राप्त होता है तो महाशंकु में कितना होगा? प्राप्तफल $\text{इष्ट हृति} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} \times \frac{\text{विषुवद कर्ण}}{१२} = \frac{\text{त्रि} \times \text{पलकर्ण}}{\text{इष्टकर्ण}}$

इसकी इष्ट अन्त्या करने के लिए अनुपात किया कि यदि द्युज्या में त्रिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट हृति में कितनी? प्राप्तफल इष्ट अन्त्या होता है।

$$\text{अर्थात् इष्ट अन्त्या} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{त्रि.} \times \text{पलकर्ण}}{\text{इष्ट कर्ण} \times \text{द्युज्या}} = \frac{\text{त्रि}^2 \times \text{पलकर्ण}}{\text{इष्ट कर्ण} \times \text{द्युज्या}}$$

इसको अन्त्या में से घटाने से प्राप्त शेष नत की उत्क्रमज्या शर संज्ञक आचार्य ने कही है और इसका धनु नतकाल होता है। नतकाल को दिनार्ध में से घटाने से उन्नत काल होता है। अतः उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

"चरजीवोद्धृत्तश्रुतिघातश्चान्त्याहृतो द्युदलकर्णः।
भक्तोऽभीष्टश्रवसा फलोनितान्त्या नतज्या स्यात्॥३१॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्वाहोरात्रर्धेन छायाकर्णेन भक्तायाः।
विषुवत्कर्णगुणाया व्यासार्धकृतेः फलं सौम्ये॥४१॥
क्षयवृद्धिज्याहीनं युक्तं याम्ये धनुश्चरप्राणैः।
सौम्ये युतं विहीनं याम्ये प्रागपरयोः प्राणाः॥४२॥
अन्हो गतावशेषाः फलमन्त्याया विशोध्य शेषस्य।
धनुरूत्क्रमजीवाभिः पूर्वापरयोर्नतप्राणाः॥४३॥
दिन दल कर्णगुणान्त्या छायाकर्णोद्धृता फलोनान्त्या।
शेषस्योत्क्रमजीवा धनुर्दिनार्धान्नतप्राणाः॥४४॥
चरदलजीवोनाधिकफलक्रमज्या धनुश्चारार्धेन।
युतहीनं पूर्वान्हेदिवसगतं शेषमपरान्हे॥४५॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा—

"यदि वा पलकर्णताड़िताायास्त्रिभजीवोत्थकृतेर्विभाजितायाः।
श्रुतिसङ्गुणितभ्रमेण लब्धं चरजीवोनयुतं यथोक्तवत्तत्॥
अथ तस्य धनुश्चरासुयुक्तं रहितं गोलवशाद् गतावशेषाः।
तदपास्य फलं तदन्त्यकाया नतमाहुर्विवरीतधन्व यद्वे॥
अन्त्यां दिनार्धश्रवणेन हत्वा भजेत् स्वकर्णेन फलोनितान्त्या।
शेषस्य धन्वोत्क्रमशिञ्जिनीभिर्नता दिनार्धादथवाऽसवः स्युः॥"

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** में आचार्योक्त कहा है। यथा—

पलश्रवणताडितात्रिभवनोत्थजीवाकृतिः प्रभाश्रवणताडितद्युगण भाजितात् तत्फलात्।
चरासुगुणसंयुतादनुदगुत्तरे वर्जिताद् धनुश्चरदलोनयुग्दिन गतावशेषासवः॥३१॥
फलाच्चरज्या न शुद्धिमेति यदा तदास्यां फलमेव जह्यात्।
शेषस्य चापेन चरार्धमूनं शेषं गतं वा दिवसस्य शेषम्॥३२॥

आचार्य ने हृति एवं इष्ट हृति से इष्ट कर्ण तथा अन्त्या एवं इष्ट अंत्या से इष्टकर्ण साधन करना श्लोक ३० में कहा है। यथा—

"दिनदलभवकर्णक्षुण्णागात्रौ विभक्तौ द्युददलसमयजातौ छेदहारौ क्रमेण।
अंभिमतसमयोत्थच्छेदकेनाथ हत्वा श्रवणयुगलमेवं वा भवेदिष्टभाया॥३०॥"

इदानीं विशेषमाह—

त्रिज्याधिकस्य क्रमचापयुक्ताः खखाब्धिबाणा धनुरुत्क्रमात् स्यात्॥६८॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— अन्त्या में से इष्ट अन्त्या घटाने से प्राप्त शेष की उत्क्रमज्या का मान यदि त्रिज्या से अधिक हो तो उसमें से त्रिज्या को घटाकर अर्थात् वह त्रिज्या से जितना अधिक हो उसके क्रमचाप को ५४०० (त्रिज्याचाप) में जोड़ने से उत्क्रम चाप का मान प्राप्त होता है। अर्थात तब वह नत असु होते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तद्गोलवशाच्चरजैः प्राणैर्युक्तोनमुन्नताः प्राणाः।
व्यस्तविशुद्धयुद्भवधनुषोनाच्चरजासवस्तदुत्तरजाः॥३४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है।

"उत्क्रमजीवा चापं क्रमजीवा चापसहितमधिकं चेत्।
दिनरात्र्यर्धप्राणाः पृथक् विना चरदलप्राणैः॥५३॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा—

"व्यासार्ध चरजीवया भवति सा चान्त्यार्कगोलक्रमात्॥
मध्याह्नान्त्योत्क्रमविरचितं चापमाहुर्दिनार्ध तच्च
त्रिंशच्च्युतमिह दलं जायते याममत्याः।"

सूर्य सिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता॥३४॥ अन्त्या"

इदानीमुन्नतकालस्य प्रकारान्तरमाह—

इष्टान्त्यका सा चरजीवयोना युक्ता न गोलक्रमतः क्रमोत्थाः।
तच्चापलिप्ताश्चरयुक्तहीनाः समुन्नतास्ते यदि वासवः स्युः॥६९॥

प्रकारान्तर से उन्नत काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट अन्त्या में उत्तर गोल (उत्तर क्रांति होने पर) में चरज्या को हीन करे तथा दक्षिण गोल (दक्षिण क्रांति होने पर) युत करे। इस प्रकार प्राप्तफल शेष की क्रमज्या का चाप बनावे। इस चाप में उत्तर गोल में चर चाप युक्त तथा दक्षिण गोल में हीन करने से तात्कालिक उन्नत असु होते

हैं। यदि इष्ट अन्तया में से उत्तर गोल में चरज्या नहीं घटे तो चरज्या में से इष्ट अन्त्या को हीन करे तथा प्राप्त शेष की चाप में चर की चाप को क्षेपित करे। यदि वह नहीं हो सके तो उसके चाप को चर में से शोधित करे अर्थात् योग वियोग साधारण नियमों से करे। इस प्रकार प्राप्त शेष उन्नत असु होते हैं। उन्नत असु को दिनार्ध असु में से शोधित करने से नत असु होते हैं।

उपपत्ति— जिस प्रकार इष्ट अन्त्या में से उत्तर गोल में चरज्या को हीन करने तथा दक्षिण गोल में क्षेपित करते हैं उसी प्रकार उन्मण्डल के ऊपर की ओर के काल की ज्या, सूत्र संज्ञक होती है। इसके धनु में उत्तर गोल में उन्मंडल के नीचे स्थित चर युत करने से तथा दक्षिण गोल में ऊपर स्थित होने से हीन करने से वह क्षितिज से उन्नत काल होता है। यह उपपन्न हुआ। यदि उत्तर गोल में चरज्या न घट सके तो विपरीत शोधन करने से उन्मण्डल से नीचे (अधोमुखी) की ओर की ज्या, सूत्र संज्ञक होती है। इसके धनु को चर में से शोधित करने से क्षितिज से उन्नत काल होता है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"चरदलजीवोनाधिका फलं क्रमज्या धनुश्चरार्धेन।
युतहीनं पूर्वान्हे दिवसगतं शेषपरान्हे॥४५॥"

यहाँ फल शब्द इष्ट अन्त्या के लिए प्रयुक्त हुआ है।

इदानीं छायातोऽर्कानयनमाह—

दिनार्धद्युतेस्त्रिज्यकाघ्न्या हृतायाः स्वकर्णेन चापांशकाः स्युर्नतांशाः।
दिनार्धे वियुक्ता युतास्ते पलांशैरुदग्दक्षिणे भाग्रकेऽर्कापमः स्यात्॥७०॥
ततः क्रान्तितो वैपरीत्येन भानुर्भवेदेतदन्यच्च गोले प्रवक्ष्ये।७०$\frac{१}{२}$।

छाया से रवि आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यान्ह छाया को त्रिज्य से गुणा करके मध्यान्ह छाया कर्ण से विभक्त करने से प्राप्त फल का चापांश नतांश होते हैं। यदि छायाग्र उत्तर हो तो यह दक्षिण होते हैं और छायाग्र छक्षिण हो तो यह ख स्वस्तिक से उत्तर होते हैं। इस प्रकार दिनार्ध में ये नतांश यदि ख स्वस्तिक से दक्षिण हो तो अक्षांश इसमें से कम करने से और यदि उत्तर हो तो युक्त करने से क्रान्त्यांश प्राप्त होते हैं। (अर्थात छायाग्र) उत्तर अथवा दक्षिण होने पर इन नतांश से अक्षांश घटा अथवा जोड़ने से क्रान्ति अंश प्राप्त होते हैं तथा विलोम विधि

से क्रांतिज्या को त्रिज्या से गुणा करके जिन (२४ अंश) की ज्या से विभक्त करने से प्राप्त चापांश स्फुट रवि के भुजांश होते हैं। भुजांश से पद का ज्ञान होता है।

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि मध्यान्ह छाया कर्ण में मध्यान्ह छाया तुल्य भुज प्राप्त होता है तो त्रिज्या कर्ण में कितना? इस प्रकार त्रैराशिक से जो फल प्राप्त होता है वह याम्योत्तर वृत्त में खमध्य और सूर्य के अन्तर के अंशों की ज्या होती है। अतः उसका धनु नतांश होता है। यह छाया के विपरीत दिशा में होता है यह प्रसिद्ध है। यदि ये दक्षिण हो तो इनमें से अक्षांश कम करने से शेष विषुवन्मण्डल से दक्षिण की ओर क्रांत्यांश होते हैं। यदि ये पलांश (अक्षांश) उनमें से न घटे तो अक्षांश में से नतांश को घटाने से प्राप्त शेष विषुवद्मण्डल से उत्तर की क्रांति होती है। यदि उत्तर नतांश हो तो अक्षांश उसमें युत करने से उत्तर क्रांति होती है।

विशेष— **आर्यभट (द्वि.)** ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्युदलच्छायागज्यावधो दिनार्धश्रवोहृतो दृग्ज्या।
चापांशा याम्योत्तरभाग्रे सौम्येतराः क्रमशः॥३५॥
तत्पलभागानां युतिरेकाशत्वेऽन्यथा वियुतिः।
क्रांत्यंशास्तेभ्योऽर्को व्यस्तविधानेन सुस्पष्टः॥३६॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में क्रांति से रवि का आनयन कहा है।

"क्रांतिर्व्यासार्धगुणा जिनभागज्याहृता धनुरजादौ।
कर्क्यादौ चक्रार्धात् प्रोह्य तुलादौ सभार्धेन॥६१॥
चक्रात् प्रोह्य मृगादौ स्फुटोऽसकृद् धनमृणे धनेत्वृणकम्।
अस्माद्देशान्तरयुगयुगतो मध्यमः प्राग्वत्॥६२॥"

वटेश्वराचार्य ने **वटेश्वर सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में छाया से रवि आनयन में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्युदलद्युतेरुपचयः कुलीरराशेर्मृगादपचयः स्यात्।
खाक्षाऽक्षान्तरयोगः सामान्यककुभोरिनक्रान्तिः॥१॥"

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यस्थे नभसः सहस्रकिरणे शंकोर्भवेद् या प्रभा
कल्प्या सैव पलप्रभोक्तविधिना साध्यस्तथेष्टः पलः।
तत्स्वस्थानपलान्तरं यदपमस्तत् स्याद्युतिर्दक्षिणे
छायाग्रेस्य गुणेन भत्रयगुणः क्षुण्णः परक्रान्तिहृत्॥३७॥
फलमिनभुजजीवा तद्धनुस्तिग्मरश्मिः प्रथमचरण एवं वत्सरस्य प्रदिष्टः।
हृतमथ भगणार्धाद्विद्धि भार्धेन युक्तं भगणनिपतितं स्याच्चान्त्यपादेषु चापम्॥३८॥"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका॥१४॥
स्वकर्णाप्ता धनुर्लिप्ता नतस्ता दक्षिणे भुजे।
उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्ताः सूर्यक्रान्तिलिप्तिकाः॥१५॥
दिग्भेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः।
ताभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम्॥१६॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है तथा अग्रिम श्लोक ७१ के अनुसार भी कहा है।

"विषुवद्दिन(सममध्य)च्छापावर्गात् सवेदकृतरूपात् मूलेन
शतविंशंविषुवच्छायाहतंछिन्द्यात्॥२०॥
लब्धं विषुवज्जीवा चाप (य) तोऽक्षोऽ (थवैव) मिष्टदिने
मेषाद्यपक्रमयुतस्तुलादिषु विवर्जितः स्वाऽक्षः॥२१॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के तृतीय अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"छायायां याम्यकाष्ठा यामक्षयुक्ता नतिः स्फुटा।
जायन्तेऽपक्रमा भागा भास्वतोऽदक्षिणापथे॥१४॥
अक्षतोऽधिकतरा यदा नतिः पात्यते पलमतस्तदा सदा।
शिष्यतेऽपमधनुः स्फुटं ततो भास्करोऽपि खलु याम्यगोलगः॥१५॥
तद्गुणेन गुणितां त्रिराशिजां ज्यापक्रमगुणेन संहरेत्।
लब्धचापगणिते पदक्रमाद् भास्करस्त्रिकसषण्णवाधिकः॥१६॥"

इदानीं क्रान्तिज्ञाने सति पलज्ञानमाह—

नतांशापमांशान्तरं तुल्यदिक्त्वे युतिर्भिन्नदिक्त्वे पलांशा भवेयुः॥७१॥

क्रांति से पलांश (अक्षांश) ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— नतांश तथा क्रान्त्यांश यदि एक दिशा में हो तो

उनका अंतर अन्यथा विपरीत दिशा में होने पर योग करने से अक्षांश प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— पूर्व में यह बताया जा चुका है कि स्वदेशी अक्षांश तथा क्रांत्यंश यदि एक ही दिशा में हो तो उनका योग करने से तथा विपरीत दिशा में हो तो अन्तर करने से रवि के मध्यान्हकालिक नतांश होते हैं। अर्थात अक्षांश ± नतांश = क्रांति। इसी से यह स्फुट होता है कि अक्षांश तथा रवि क्रांति एक दिशा में होने पर उनका अंतर तथा विपरीत दिशा में होने से उनका योग करने से सूर्य के पलांश (अक्षांश) होते हैं क्योंकि–

अक्षांश ± नतांश = क्रांति, समान दिशा में योग तथा विपरीत में अन्तर। अतः पक्षांतर से अक्षांश = क्रांति ∓ नतांश अर्थात् एक दिशा में अंतर तथा विपरीत दिशा में योग करने से अक्षांश होते हैं। यह गोल में देखा जा सकता है।

विशेष— **वटेश्वराचार्य** ने **वटेश्वर सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार १ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिनदलदृग्ज्याचापं क्रान्त्या युतवर्जितं क्रिय तुलादौ।
अक्षो दक्षिणदृग्ज्या धनुषोना क्रान्तिरक्षः स्यात्॥२२॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के, त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यच्छायाग्रमुदक् शंकुतलाद्दक्षिणा नताभागाः।
दक्षिणतो यदि सौम्या स्वाक्षांशाः सर्वदा याम्या॥४१॥
द्युदलनताक्षांशानामेकदिशामन्तरं युतिर्भेदे।
क्रान्त्यंशाः प्राग्वदतः क्रान्त्यंशैरेवमक्षांशाः॥४२॥"

भास्कर प्रथम ने **महाभास्करीय** के तृतीय अध्याय में आचार्योक्त को और भी स्पष्ट रूप में कहा है। यथा–

"उत्तरे संयुतिः सूर्ये विश्लेषो दक्षिणे स्मृतः।
अपक्रमनतांशानां छायाया च पलं भवेत्॥१७॥"

इदानीं छायातो भुजज्ञानमाह—

त्रिभज्याहृतार्काग्रका कर्णनिघ्नी भवेत् कर्णवृत्ताग्रका व्यस्तगोला।
पलच्छायया सौम्यया संस्कृता स्याद्भुजोऽथोत्तरे भाग्रके सौम्यगोले॥७२॥
भुजः कर्णवृत्ताग्रयाढ्योऽन्यदासौ वियुक्तोऽक्षभा स्यात् तया वा वियुक्तः।
भुजः सौम्यभाग्रेऽन्यदाढ्यस्त्रिभज्याहतः कर्णभक्तोऽग्रका चापमोऽतः॥७३॥

छाया से भुज ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की अग्रा तथा छाया कर्ण के गुणा को त्रिज्या से विभक्त करने से कर्णवृत्ताग्र प्राप्त होता है। यह विपरीत गोल का होता है अर्थात् उत्तर गोल में कर्ण वृताग्र दक्षिण तथा दक्षिण गोल में उत्तर होता है। इसको पलभा (उत्तर) में दक्षिण गोल में योग करने से तथा उत्तर गोल में पलभा में से घटाने से प्राप्त शेष उत्तर भुज होता है। यदि पलभा में से कर्णाग्रा न घटे तो कर्णाग्रा में से पलभा को घटाने से शेष दक्षिण भुज होता है। पूर्वापर सूत्र और छायाग्र के बीच में भुज होता है। मध्यान्ह कालिक भुज ही सदैव मध्यान्ह कालिक छाया होती है।

यदि उत्तर गोल में अर्थात उत्तर क्रांति में यदि अग्रा उत्तर हो तो कर्णवृताग्र में उत्तर भुज युत करने से पलभा होती है और क्रान्ति दक्षिण हो अर्थात् दक्षिण गोल में भुज का कर्णवृत्ताग्र से अन्तर करने से पलभा होती है। यहाँ भुज देखकर कर्णवृत्ताग्र से पलभा ज्ञात करना कहा है।

अब भुज को देखकर पलभा से कर्णवृत्ताग्रा ज्ञान बता रहे हैं। यदि भुज उत्तर हो तो भुज में से पलभा का अन्तर करने से अन्यथा (भुज दक्षिण हो तो) योग करने से कर्ण वृत्ताग्र होता है।

कर्णवृत्ताग्र को त्रिज्या से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से अग्रा होती है। अग्रा को अक्षक्षेत्र की कोटि से गुणा करके उसके कर्ण से विभक्त करने से क्रांतिज्या होती है।

सूत्र रूप में—

आचार्य ने इन दो श्लोकों में निम्न लिखित सूत्र कहे हैं।

(१) कर्ण वृत्ताग्र = $\frac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$

(२) कर्णवृत्ताग्र $\pm$ पलभा = छायाभुज

क्रांति दक्षिण होने पर यहाँ धन करें तथा उत्तर होने पर अंतर करें।

(३) उत्तर गोल में दक्षिण भुज होने पर; कर्णवृत्ताग्रा – दक्षिण भुज = पलभा

उत्तर गोल में उत्तर भुज होने पर; उत्तर भुज + कर्णवृत्ताग्र = पलभा

दक्षिण गोल में भुज – कर्णवृत्ताग्र = पलभा

(४) यदि भुज उत्तर हो तो भुज – पलभा = अग्रा

यदि भुज दक्षिण हो तो भुज + पलभा =अग्रा

(५) $\text{अग्रा} = \dfrac{\text{कर्णवृत्ताग्र} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$

(६) $\text{क्रांतिज्या} = \dfrac{\text{अग्रा} \times \text{अक्षक्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्षक्षेत्र का कर्ण}}$; (पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा)

उपपत्ति— समान की हुई भूमि पर त्रिज्या वृत्त बनाकर उस पर दिशायें अंकित करे तथा पूर्व से पश्चिम दिशा सूत्र के आगे उदयास्तसूत्र की रेखा खेंचे। उत्तरगोल में इष्ट काल पर सममण्डल से उत्तर की ओर अहोरात्रवृत्त में स्थित रवि से नीचे लम्ब शंकु होता है। शंकूमूल से पूर्वपर सूत्र के साथ जो अंतर है वह शंकु का उत्तर भुज है और उदयास्त सूत्र के साथ जो अन्तर है वह शंकुतल है। अतः शंकुतल को अग्रा में से घटाने से भुज शेष रहता है और अग्रा में से भुज को घटाने से शंकुतल शेष रहता है। क्योंकि स्वोदयास्त सूत्र और पूर्वापर सूत्र का अंतर अग्रा है तथा शंकुतल और भुज का योग अग्रा होता है। उत्तर गोल में समवृत के दक्षिण की ओर शङ्कु है अतः अग्रा में से शंकुतल घटाने से भुज शेष रहता है और भुज को अग्रा में से घटाने से शंकुतल शेष रहता है।

महाशंकु का त्रिज्या तुल्य कर्ण होता है। महाशंकु नियत है इसको द्वादश अंगुल शंकु कहते हैं। महाशंकु को १२ से विभक्त करने से जो प्राप्त होता है उसका तुल्य महाशंकु के बारह भाग होते हैं और त्रिज्या के भाग करते हैं तो उतने छाया कर्ण के प्राप्त होते हैं। अग्रा के हिस्से करते हैं तो उतने कर्णवृत्ताग्र के प्राप्त होते हैं। शंकुतल के हिस्से करते हैं तो उतनी पलभा होती है। भुज के हिस्से करते हैं तो उतने भुज प्राप्त होता है।

इस प्रकार ये सब त्रैराशिक से प्राप्त हो जाते हैं।

यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी अग्रा प्राप्त होती है तो छाया कर्णवृत्त में कितनी होगी? इससे प्राप्तफल $\text{छायाकर्ण वृत्ताग्र} = \dfrac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$ प्राप्त होता है। यही आचार्य ने कहा है जो उपपन्न हुआ।

परन्तु छायाकर्ण गोल में पलभा और शंकुतल तुल्य होता है। जैसे $\text{शंकुतल} = \dfrac{\text{पलभा} \times \text{शंकु}}{१२}$ इसको छाया कर्ण गोल में परिवर्तित करने से

$$\frac{\text{पलभा} \times १२ \times \text{त्रि.} \times \text{छायाकर्णशंकु}}{१२ \times \text{छायाकर्ण} \times \text{त्रि.}} = \text{पलभा} = \text{शंकुतल।}$$

अतः छायाकर्ण गोल में अग्रा और पलभा के संस्कार से भुज प्राप्त होता है। अतः उत्तर गोल में कर्णवृत्ताग्रा – उत्तर भुज = पलभा तथा कर्णवृत्ताग्रा + दक्षिण भुज = पलभा। दक्षिण गोल में सर्वदा; भुज – कर्णवृत्ताग्रा = पलभा होती है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ। शंकु का पूर्वापर से अंतर छायाग्र का पूर्वापर से अंतर होता है किन्तु विपरीत दिशा में। अतः कर्णवृत्ताग्रा विपरीत गोल में उपपन्न हुआ।

आचार्य ने एक उदाहरण दिया है। जिस देश में पलभा = ५ अंगुल, उत्तर गोल में अर्थात् क्रांति उत्तर है, अग्रा = ९१६।४८, इष्ट छायाकर्ण = ३० तथा १५ है। वहाँ पृथक-पृथक भुज कहो तथा भुज में पलभा तथा पलभा से अग्रा कहो।

$$\text{कर्णवृत्ताग्र} = \frac{\text{छायाकर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{३० \times ९१६।४८}{३४३८} = ८ \text{ दक्षिण।}$$ क्रांति के विपरीत दिशा में।

अतः भुज = कर्णवृत्ताग्रा $\pm$ पलभा = ८ (दक्षिण) – ५ (उत्तर) = ३ दक्षिण। क्योंकि बडी संख्या ८ दक्षिण है।

दक्षिण भुज = ३ ज्ञात करके कर्णवृत्ताग्र में से घटाने से ८ – ३ = ५ पलभा प्राप्त हुई। पलभा तथा भुज को ज्ञात करके उनका योग करने से दक्षिण भुज होने से ५+३=८ कर्णवृत्ताग्रा हुआ।

कर्ण वृत्ताग्र को त्रिज्या से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से =

$$\frac{८ \times ३४३८}{३०} = ९१६।४८ \text{ अग्रा हुई।}$$

कर्ण १५ होने पर कर्णवृत्ताग्रा पूर्वोक्त सूत्र से ४ दक्षिण होगा। उत्तर भुज एक अंगुल तथा पलभा ५ होगी।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा –

"कोटिज्यया विभज्याप्ते छाया कर्णावहर्दले।
क्रांतिज्या विषुवत्कर्णगुणाऽऽप्ता शङ्कुजीवया॥२२॥

अर्काग्रा स्वेष्टकर्णाघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका।
विषुवद्भायुताऽर्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः॥२३॥
विषुवत्यां विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः।
विपर्ययाद्भुजो याम्यो भवेत् प्राच्यपरान्तरे॥२४॥
माध्याह्निको भुजो नित्यं छायामाध्याह्निकी स्मृता।''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार तथा त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा– **त्रिप्रश्नाध्याय–**

''छायावृत्तेऽर्काग्रा कर्णगुणा व्यासदलहृताऽर्काग्रा।
विषुवच्छाया याम्या तदन्तरैक्यं भुजोऽस्याग्रे॥४॥
शङ्कः प्राच्यपरायाश्छाया भुजकृति विशेषमूलं यत्।
तत् प्राच्यपरा छाया भुजाग्रयोरन्तरं कोटिः॥५॥

त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में यथा–

छायावृत्तेऽर्काग्रा कर्णगुणा व्यासदलहृताऽर्काग्रा।
प्राच्यपरा शङ्क्वन्तरमुत्तर याम्यं तदूनयुता॥४९॥
उत्तर गोले याम्ये विषुवच्छायाऽग्रयाऽन्तरं हीनम्।
एवं विषुवच्छाया युक्तविहीनाऽन्तरेणाग्रा॥५०॥''

भास्कराचार्य ने **छायाग्र** तथा **पूर्वरेखा** के अन्तर को भुज स्वीकार करके छायाकर्णवृत्ताग्रा को व्यस्त गोल में तथा पलभा को उत्तर कल्पित किया है और ब्रह्मगुप्त ने लघुशंकु मूल और पूर्वापर रेखा के अन्तर को भुज स्वीकार करके अग्रा और पलभा को जो जिस दिशा के हैं उसी दिशा के ही स्थापित किये हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''अन्य दा तु नरपूर्वपश्चिमाशान्तरेण रुचिवृत्तजाग्रका।
दक्षिणोत्तरभुवा युतोनिता सौम्यवर्तिनि रवौ पलप्रभा॥
दक्षिणेन पुनरिनाग्रया तथा हीनमेव हि तदन्तरं सदा।
एवमन्तरयुतोनिता भवेद-क्षभा नियतमंगुलाऽग्रका॥''

दृष्टवेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः।
वेत्त्यक्षभामुद्धतदैववेदिदुर्दर्पसर्पप्रशमे स तार्क्ष्यः॥७४॥

यहाँ से आगे उत्तर सहित प्रश्नोत्तर अहोरात्र संबंधि कहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— शंकुछाया, दिगंश और सूर्य के अक्षांश देखकर

अथवा दो छाया तथा उनकी दिशा को देखकर जो स्वस्थान की अक्षभा (पलभा) को जानते हैं उसको आचार्य गरुड़ के समान मानते हैं जो देवज्ञों के झूठे घमंड का सर्पों के समान प्रशमन कर सकता है।

इदानीं प्रश्नमाह—

भाकर्णे खगुणाङ्गुले ३० किल सखे याम्यो भुजस्त्र्यङ्गुलो-
ऽन्यस्मिन् पञ्चदशाङ्गुले १५ ऽङ्गुलमुदग्बाहुश्च यत्रेक्षितः।
अक्षाभां वद तत्र षट्कृतगजै ८४६ र्यद्वापमज्यां समां
दृष्ट्वेष्टामनयोः श्रुतिं च सभुजां दाग्ब्रूहि मेऽक्षप्रभाम्।।७५।।

अब प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— छायाकर्ण = ३० अंगुल हो तब दक्षिण भुज ३ अंगुल है तथा जब छाया कर्ण १५ अंगुल है तब उत्तर भुज १ अंगुल है। तब वहाँ पर अक्षांश ज्ञात करो और जब क्रांतिज्या ८४६ है और छाया कर्ण तथा भुज दिये हुए हैं तो वहाँ अक्षप्रभा (पलभा) ज्ञात करो।

प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

भाद्वयस्य भुजयोः समाशयोर्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम्।
ऐक्यमन्यककुभोः पलप्रभा जायते श्रुतिवियोगभाजितम्।।७६।।

प्रश्न प्रश्न का उत्तर—

सूर्यप्रभा टीका— एक के भुज को दूसरे के कर्ण से गुणा करके भिन्न दिशा के होने से योग करे। अर्थात् ३० × १ + १५ × ३ = ७५। इसमें दोनों कर्णों के अंतर ३० – १५ = १५ से भाग देने से ७५ ÷ १५ = प्राप्तफल ५ पलभा है। एक दिशा होने पर उनका अन्तर करे।

उपपत्ति— पूर्वोक्त श्लोक ७२ व ७३ के अनुसार यदि किसी स्थान पर दो छायाकर्ण क्रमशः $क_1$ तथा $क_2$ हो और वहाँ कर्णवृत्ताग्र $ए_1$ तथा $ए_2$ हो तथा भुज $भु_1$ तथा $भु_2$ हो और अग्रा अ तथा पलभा प हो तो–

$$ए_1 = \frac{अ \times क_1}{त्रि.} \text{ तथा } ए_2 = \frac{अ \times क_2}{त्रि.}$$

$$\text{तथा } भु_1 = ए_1 - प = \frac{अ \times क_1}{त्रि.} - प \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

$$\text{और } भु_2 = ए_2 - प = \frac{अ \times क_2}{त्रि.} - प \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

समी (१) व (२) में पक्षांतर से—

$$\frac{भु_१ + प}{क_१} = \frac{भु_२ + प}{क_२} = \frac{अ}{त्रि}$$; वज्र गुणा द्वारा–

या $क_२ (भु_१+प) = क_१ (भु_२+प)$

या $क_२ भु_१ + क_२ प = क_१ भु_२ + क_१ प$

या $क_२ भु_१ - क_१ भु_२ = प (क_१ - क_२)$; पक्षांतर से।

या $प = \frac{क_२ भु_१ - क_१ भु_२}{क_१ - क_२}$, जब भुज एक दिशा के हों।

और $प = \frac{क_२ भु_१ + क_१ भु_२}{क_१ - क_२}$, जब भुज विपरीत दिशा के हों।

यही आचार्य ने कहा है। उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है–

"प्राच्यपराशङ्कुतलान्तरद्वयव्यस्तकर्णवधविवरम्।
समदिशि विषुवच्छायान्यदिगैक्यं कर्णविवरहृतम्॥५७॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा—

"छायाग्रैन्द्रयपरान्तरद्वयविपर्यस्तस्वकर्णाहतिप्रोदुभूतं
विवरं दिशोः सदृशयोरैक्यं च भिन्नाश्योः।
तद्भक्तं श्रवणान्तरेण विषुवच्छाया स्फुटा जायते।"

क्रान्तिज्याकर्णवधात् त्रिज्याप्तकृतिर्लघुः स दोः कृत्या।
हीनोऽब्धिमनु १४४घ्नः स्यादाद्योऽथ परो भुजः कृतेन्द्र १४४घ्नः॥७७॥
तौ लघुवेदेन्द्रा १४४ न्तरभक्तौ परवर्गतो यदाद्याढ्यात्।
मूलं परयुतवियुतं सौम्ये याम्ये भुजे पलभा॥७८॥

द्वितीय प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रान्तिज्या तथा कर्ण के गुणा में त्रिज्या का भाग देकर फल का वर्ग करने से प्राप्त फल 'लघु' संज्ञक है। उस लघु में से भुज के वर्ग के अंतर को १४४ से गुणा करने से प्राप्तफल 'आद्य' संज्ञक है और भुज तथा १४४ का गुणनफल 'पर' संज्ञक है।

लघु तथा १४४ के अंतर से आद्य और पर को विभक्त करने से प्राप्तफल

क्रमशः आद्य तथा पर ही संज्ञक मान कर इस पर फल के वर्ग में आद्य फल युत करके मूल लेवें। इसमें उत्तर भुज होने पर 'पर' को युत करे तथा दक्षिण होने पर घटाने से पलभा प्राप्त होती है।

सूत्र रूप में—

$$\text{लघु} = \left(\frac{\text{कर्ण} \times \text{क्रां.ज्या}}{\text{त्रिज्या}}\right)^{२}; \text{ आद्य} = १४४ \,(\text{लघु} \backsim \text{भुज}^{२});$$

$$\text{पर (अन्य)} = १४४ \text{ भुज}$$

$$\frac{\text{आद्य}}{\text{लघु} - १४४} = \text{आद्य (फल) और } \frac{\text{पर}}{\text{लघु} - १४४} = \text{पर (फल)}$$

$$\text{पलभा} = \sqrt{\text{पर}^{२} + \text{आद्य}} \pm \text{पर}$$; उत्तर भुज में धन (+) तथा दक्षिण भुज में ऋण (–) करे।

उपपत्ति— आचार्य ने श्लोक ७२, ७३ में निम्नलिखित कहा है।

$$\text{कर्णवृत्ताग्र} = \frac{\text{छाया कर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रिज्या}} \text{ तथा कर्णवृत्ताग्र} = \text{भुज+पलभा}$$

यहाँ यदि कर्णवृत्ताग्र को 'ए', अग्रा को 'अ', भुज को 'भु', पलभा को 'प' छायाकर्ण को 'क' द्वारा व्यक्त करें तो ये सूत्र निम्न लिखित सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा—

$$\text{ए} = \frac{\text{क} \times \text{अ}}{\text{त्रि}} \text{ तथा ए} = \text{भु} + \text{प; जब भुज दक्षिण है।}$$

अब हम जानते हैं कि $\text{अग्रा} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{पलकर्ण}}{१२}$ होता है। आचार्योक्त उपपत्ति से।

$\because \text{पलकर्ण} = \sqrt{१२^{२} + \text{पलभा}^{२}}$ होता है। आचार्योक्त प्रकार से।

$$\text{अ (अग्रा)} = \frac{\text{क्रां.ज्या} \times \sqrt{१२^{२} + \text{प}^{२}}}{१२}$$

$$\text{अतः ए} = \frac{\text{क}}{\text{त्रि.}} \times \frac{\text{क्रां.ज्या} \times \sqrt{१२^{२} + \text{प}^{२}}}{१२} = \text{भु} + \text{प}$$

वज्र गुणा द्वारा—

$$\text{क} \times \text{क्रां.ज्या} \times \sqrt{१२^२ + \text{प}^२} = १२ \text{ त्रि } (\text{भु}+\text{प})$$

दोनों पक्षों का वर्ग करने पर—

$$१२^२ \text{ त्रि}^२ (\text{भु}+\text{प})^२ = \text{क}^२ \times \text{क्रांज्या}^२ \times (१२^२+\text{प}^२)$$

या $\text{प}^२ (१२^२\text{त्रि}^२ - \text{क}^२ \times \text{क्रांज्या}^२) + २ \text{ प भु } १२^२ \text{ त्रि}^२ = १२^२ (\text{क}^२$ $\text{क्रांज्या}^२ - \text{भु}^२ \text{ त्रि}^२)$

दोनों पक्षों को त्रि^{२} से विभक्त करने से—

$$\text{या } \text{प}^२ \left(१२^२ - \frac{\text{क}^२.\text{क्रां ज्या}^२}{\text{त्रि}^२}\right) + २ \text{ प भु } १२^२$$

$$= १२^२ \left(\frac{\text{क}^२.\text{क्रां ज्या}^२}{\text{त्रि}^२} - \text{भु}^२\right) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

आचार्य ने $\frac{\text{क}^२.\text{क्रां ज्या}^२}{\text{त्रि}^२}$ = लघु कहा है।

तथा $१२^२ \left(\frac{\text{क}^२.\text{क्रां ज्या}^२}{\text{त्रि}^२} - \text{भु}^२\right) = १२^२ (\text{लघु}^२ \backsim \text{भु}^२)$ = आद्य कहा है। एवं भु $१२^२$ = पर कहा है।

अतः समीकरण (१) निम्नलिखित रूप में परिणत हो जाता है।

$$\text{प}^२ (१२^२ - \text{लघु}) + २ \text{ प. पर} = \text{आघ}$$

$$\text{या } \text{प}^२ + \frac{२ \text{ पपर}}{(१२^२ - \text{लघु})} = \frac{\text{आद्य}}{(१२^२ - \text{लघु})}$$

यहाँ फिर $\frac{\text{पर}}{(१२^२ - \text{लघु})}$ = पर (फल) तथा $\frac{\text{आद्य}}{(१२^२ - \text{लघु})}$ = आद्य (फल) मानने पर—

$\text{प}^२ + २ \text{ पर . प} = \text{आद्य}$; पूर्णवर्ग बनाने के लिए पर^२ दोनों ओर जोड़ने से—

$$\text{या } \text{प}^२ + २\text{प. पर} + \text{पर}^२ = \text{पर}^२ + \text{आद्य}$$

$$\text{या } (\text{प}+\text{पर})^२ = \text{पर}^२ + \text{आद्य}$$

$$\text{या प} + \text{पर} = \sqrt{\text{पर}^२ + \text{आद्य}}$$

$$\text{या प} = \sqrt{\text{पर}^२ + \text{आद्य}} - \text{पर}$$

यह पलभा का एक मान है।

यह फल दक्षिण भुज के लिए प्राप्त हुआ है। यदि उत्तर भुज हो तो ए =भु–प होगा। पूर्वोक्त प्रकार से उपरोक्त गणना में यह प्रतिस्थापित करने से 'पर' = –भु.१२² होगा। अतः $प = \sqrt{पर^2 + आद्य} + पर$; उत्तर भुज होने पर। यह पलभा का दूसरा मान है।

आचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में उपरोक्त प्रकार ही से कहा है जिसे हमने सरल रूप में कर दिया है।

आचार्योक्त प्रश्न में दक्षिण भुज = ३, क्रांतिज्या = ८४६ स्थापित करने से $पलभा = \sqrt{पर^2 + आद्य} - पर$ सूत्र उपयोग में लेने पर पलभा का मान ५ प्राप्त होता है।

$$लघु = \frac{कर्ण^2 \times (८४६)^2}{३४३८^2} = \frac{३०^2 \times ७१५७१६}{११८१९८४४} = ५४.५०$$

$$पर = भुज \times १४४ = १४४ \times ३ = ४३२$$

$$आद्य = १४४ (लघु \backsim भुज^2) = १४४ (५४.५० - ९) = ६५५२$$

$$पर (फल) = \frac{४३२}{लघु - १४४} = \frac{४३२}{५४.५० - १४४} = ४.८३ ;$$

$$आद्यफल = \frac{६५५२}{५४.५०–१४४} = ७३.२१$$

$$पलभा = \sqrt{पर^2 + आद्य} - पर$$

$$= \sqrt{(४.८३)^2 + ७३.२१} - ४.८३ = ९.८३ - ४.८३ = ५$$

इदानीं सममण्डलप्रश्नः—

दिनकरे करिवैरिदल ४/१५ स्थिते नर १२ समा नरभापरदिङ्मुखी।
भवति यत्र पटो पुटभेदने कथय तान्त्रिक तत्र पलप्रभाम्॥७९॥

सममण्डल संबंधी प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य ४ राशि १५ अंश पर है तब शंकु छाया १२ अंगुल पश्चिम की ओर है तो वहाँ की पलभा कितनी है?

इदानीमस्योत्तरमाह—

त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहन्नरः स्याद्यत् क्रान्तिमौर्वीसमवृत्तशङ्क्वोः।
वर्गान्तरान्मूलमनेन भक्ता क्रान्तिज्यका सूर्य १२ हताक्षभा स्यात्॥८०॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तथा १२ के गुणा को छाया कर्ण से विभक्त करने से संबंधित महाशंकु प्राप्त होता है। क्रान्तिज्या तथा समवृत्त शंकु के वर्गों के अन्तर के मूल से क्रांतिज्या तथा १२ के गुणा को विभक्त करने से पलभा प्राप्त होती है।

सूत्र रूप में—

$$\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{छाया कर्ण}} = \text{संबंधी महा शंकु}$$

$$\text{पलभा} = \frac{\text{१२} \times \text{क्रांतिज्या}}{\sqrt{\text{समशंकु}^2 - \text{क्रांतिज्या}^2}}$$

उपपत्ति तथा प्रश्न का हल— अनुपात किया कि इतने कर्ण में १२ अंगुल शंकु होता है तो त्रिज्या कर्ण में कितना होगा? इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण (प्रश्न) में समशंकु प्राप्त होता है = $\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{छाया कर्ण}}$ = यह कर्ण है।

सिंह राशि के १५ अंश पर सूर्य की क्रांतिज्या भुज है। इनके वर्गांतर के मूल में से कुज्या घटाने से तद्धृति कोटि होती है। इस अक्ष क्षेत्र में अनुपात किया कि इतनी कोटि में क्रांतिज्या तुल्य भुज प्राप्त होती है तो १२ अंगुल कोटि में कितनी होगी? प्राप्तफल पलभा त्रैराशिक से उपपन्न होती है। अर्थात्–

$$\text{पलभा} = \frac{\text{१२} \times \text{क्रांतिज्या}}{\sqrt{\text{समशंकु}^2 - \text{क्रांतिज्या}^2}}$$

यहाँ सममंडल शंकु द्वादश की ज्या = २४३१ और सिंहराशि के १५ अंश पर स्थित सूर्य की क्रांतिज्या ६८७/४८ है। इनके वर्गान्त के मूल का १२×क्रांतिज्या में भाग देने से पलभा प्राप्त होगी। अतः क्रांतिज्या^{2} = (६८७/४८)^2 = ६७५७४६ तथा शंकु^{2} = (२४३१)^2 = ५९०९७६१। इनका अन्तर = ४९३४०१२ इसका मूल = २२२१/१५। इससे १२ × क्रांतिज्या = १२×६७८/४८ = ११८५३।३६ में भाग देने से ११८५३/३६ ÷ २२२१/१५ = ५/२० पलभा का मान प्राप्त हुआ।

इदानीमन्यौ प्रश्नौ—

मार्तण्डः सममण्डलं किल यदा दृष्टः प्रविष्टः सखे

काले पञ्चघटीमिते दिनगते यद्वा नते तावति।

केलाप्युज्जयिनीगतेन तरणेः क्रान्तिं तदा वेत्सि चे-
न्मन्ये त्वां निशितं सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशम्॥८१॥

अब दो प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक! किसी दिन उज्जयनि पर सूर्योदय के पांच घटी पश्चात् सूर्य सममण्डल में प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। उस समय यह बताओ कि उसकी क्रांति कितनी थी। यह प्रथम प्रश्न है। दूसरा प्रश्न है, उतनी पंचघटी नति काल में सममण्डल में प्रविष्ट होते हुए सूर्य तथा उसकी क्रांतिज्या को बताने वाले को मैं गर्व से पूर्ण गणकों में हाथियों को वश में करने वाले पैने अंशुक के समान मानूंगा।

विशेष— यहिप्रश्न वटेश्वरचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार १५ वटेश्वर सिद्धान्त में कहा है।

"अभ्रवेदप्रमिता नतासवस्तिग्मगौ हि सममण्डलस्थिते।
अक्षभा नवमिताः किल यत्र ब्रूहि तत्र नियतं दिवाकरम्॥६॥"

इदानीं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

या स्याद्रवेरुन्नतकालजीवाभीष्टा हृतिः सा प्रथमं प्रकल्प्या।
अर्का १२ क्षभाघातहताक्षकर्णकृत्योद्धृता स्यादपमज्यकास्याः॥८२॥
चरादिकेनेष्टहृतिः प्रसाध्या क्षुण्णस्तया क्रान्तिगुणोऽसकृच्च।
तदाद्यहृत्या विहृतः स्फुटः स्यात् सहस्ररश्मौ सममण्डलस्थे॥८३॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि का सममण्डल प्रवेश के समय जो उन्नतकाल है उसकी जीवा को प्रथम इष्टहृति मान लेवे। इसको १२ तथा पलभा से गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से स्थूल क्रांतिज्या प्राप्त होती है। इस स्थूल क्रांतिज्या से द्युज्या, कुज्या, चरज्या तथा चर ज्ञात करके उन्नतकाल में चरज्या जोड़-घटा इत्यादि द्वारा इष्ट हृति साधित करे (श्लोक ५४ से श्लोक ५६ $\frac{1}{2}$ तक बताई विधि द्वारा)। इस इष्ट हृति को पूर्वप्राप्त क्रांतिज्या से गुणा करके प्रथम प्राप्त इष्ट हृति से विभाजित करने से प्राप्तफल आसन्न क्रांतिज्या स्फुट होती है। इस प्रकार फिर तद्धृति तथा क्रांतिज्या द्वारा क्रांतिज्या का साधन तब तक करे जब उसका स्थिर मान न प्राप्त हो जावे।

उपपत्ति— उन्नतकाल की जीवा को पहले स्वल्पांतर से तद्धृति कल्पित

किया है। इसके अनुपात से शंकु प्राप्त करे। यदि पलकर्ण में द्वादश कोटि होती है तो तद्धृति कर्ण में कितनी होगी? ऐसा करने से तद्धृति गुणित द्वादश में पलकर्ण का भागफल सममण्डल शंकु होता है पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा। पुनः इसका अनुपात किया कि यदि पलकर्ण में पलभा भुज है तो सममण्डल शंकु तुल्य कर्ण में कितनी? फल स्थूल क्रांतिज्या होगा पूर्वोक्त सूत्र (क) द्वारा। इस क्रांतिज्या तथा चर से उन्नत काल में चर को जोड़ घटा इत्यादि द्वारा इष्ट हृति साधित करे। उसको तद्धृति कल्पित करके पुनः क्रांतिज्या साधित करे। इस प्रकार करते जावे। यदि कल्पित हृति में इतनी क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो यहाँ प्राप्त हृति में कितनी होगी? इस प्रकार क्रांतिज्या स्फुट होती है। यह उपपन्न हुआ।

इदानीं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरमाह—

तदा नतज्यात्रिभजीवयोर्यद्वर्गान्तरं तत् पलभाकृतिघ्नम्।
तेनोद्धृतो व्यासदलस्य वर्गो वेदेन्द्र १४४ निघ्नोऽथ सरूपलब्ध्या॥८४॥
व्यासार्धवर्गाद्विहतात् पदं स्यात् क्रान्तिज्यका सा त्रिभशिञ्जिनीघ्नी।
जिनांशमौर्व्या विहृताप्तचापादग्रे प्रवक्ष्ये च यथा रविः स्यात्॥८५॥

द्वितीय प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य सममण्डल में प्रविष्ट किया उस समय की नतज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटा कर पलभा के वर्ग से गुणा करने से प्राप्त फल से त्रिज्या वर्ग तथा १४४ के गुणा में भाग देने से प्राप्तफल में एक जोड़ देने से जो प्राप्त हो उससे त्रिज्या के वर्ग में भाग देकर वर्गमूल लेने से क्रांतिज्या होती है। इस क्रांतिज्या को त्रिज्या से गुणा करके २४ अंश की ज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल का चाप करने से रवि प्राप्त होता है जहाँ सूर्य दिखेगा।

उपपत्ति— क्रांतिज्या वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटाने से द्युज्या वर्ग होता है। नतज्या वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटाने से सूत्र संज्ञक का वर्ग प्राप्त होता है। सूत्र को द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से कला प्राप्त होती है। कला, कुज्या और तद्धृति का अंतर होती है। सूत्र के वर्ग को द्युज्या वर्ग से गुणा करके त्रिज्यावर्ग से विभक्त करने से प्राप्तफल कलावर्ग होता है। अतः कला कोटि, क्रांतिज्या भुज तथा समशंकु कर्ण के द्वारा पलक्षेत्र बनता है। उसमें अनुपात किया कि यदि द्वादश कोटि में पलभा भुज होती है तो कुज्या ऊनित तद्धृति तुल्य कला में कितनी होगी? इस प्रकार कला के वर्ग को पलभा के

वर्ग से गुणा करके बारह (१२) के वर्ग से भाग देने से प्राप्तफल क्रांतिज्या का वर्ग होता है।

हम पूर्वोक्त को सूत्र रूप में निम्नलिखित प्रकार लिख सकते हैं—

$त्रि^2 - क्रां.\ ज्या^2 = द्युज्या^2$ ....(१)

$त्रि^2 - नतज्या^2 = सूत्र^2$ ....(२)

$\frac{सूत्र \times द्युज्या}{त्रि.} = कला$ ....(३)

कला = कुज्या ∽ तद्धृति............(४)

$\frac{सूत्र^2 \times द्युज्या^2}{त्रि^2} = कला^2$ ....(५)

$\frac{कला^2 \times पलभा^2}{१२^2} = क्रांज्या^2$ ....(६)

समीकरण (५) में $सूत्र^2$ का मान समीकरण (२) से तथा $द्युज्या^2$ का मान समीकरण (१) से प्रतिस्थापित करने से और $कला^2$ का मान समीकरण (६) से प्रतिस्थापित करने पर—

$$\frac{(त्रि^2 - नत\ ज्या^2)(त्रि^2 - क्रांज्या^2)}{त्रि^2} = \frac{क्रांज्या^2 \times १२^2}{पलभा^2}$$

यहाँ नतज्या को 'न' द्वारा, क्रांतिज्या को 'क्रा' द्वारा तथा पलभा को 'प' द्वारा व्यक्त करने पर उपरोक्त सूत्र सरल रूप में इस प्रकार बनता है—

$$\frac{(त्रि^2 - न^2)(त्रि^2 - क्रा^2)}{त्रि^2} = \frac{क्रा^2 \times १२^2}{प^2}$$

वज्र गुणा द्वारा—

$प^2 (त्रि^2 - न^2)(त्रि^2 - क्रा^2) = १२^2 \times त्रि^2 \times क्रा^2$

या $प^2\ त्रि^2 (त्रि^2 - न^2) - प^2\ क्रा^2 (त्रि^2 - न^2) = १२^2\ त्रि^2\ क्रा^2$

या $प^2\ त्रि^2 (त्रि^2 - न^2) = [१२^2\ त्रि^2 + प^2 (त्रि^2 - न^2)]\ क्रा^2$

या $क्रा^2 = \frac{प^2\ त्रि^2 (त्रि - न^2)}{१२^2 त्रि^2 + प^2 (त्रि^2 - न^2)} = \frac{त्रि^2}{\frac{१२^2 त्रि^2}{प^2 (त्रि^2 - न^2)} + १}$

$$\text{या क्रांतिज्या} = \frac{\text{त्रि.}}{\sqrt{\dfrac{१२^२ \text{त्रि}^२}{\text{पलभा}^२ (\text{त्रि}^२ - \text{नतज्या}^२)} + १}}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

रविभुजाज्या तथा जिनांशज्या के गुणा को त्रिज्या से विभक्त करने से क्रांतिज्या होती है, अर्थात्–

$$\frac{\text{रविभुज्या} \times \text{जिनांश ज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{क्रांतिज्या}$$

अतः $\text{रविभुज्या} = \dfrac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{जिनांश ज्या}}$ इसका धनु सूर्य का अक्षांश होगा। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

आचार्योक्त प्रश्न में नतकाल ५ घटी = ६×५ = ३०° अतः

$\text{नतज्या} = \text{ज्या}३०^\circ = \dfrac{\text{त्रिज्या}}{२} = १७१९$। अतः उपरोक्त सूत्र द्वारा–

$$\text{क्रांतिज्या} = \frac{\text{त्रि.}}{\sqrt{\dfrac{१२^२ \text{त्रि}^२}{\text{पलभा}^२ (\text{त्रि}^२ - \text{नतज्या}^२)} + १}} = \frac{३४३८}{\sqrt{\dfrac{१४४ \times ३४३८^२}{५.५८^२ (३४३८^२ - १७१९^२)} + १}}$$

$$= \frac{३४३८}{\sqrt{\dfrac{१७०२०५७५३६}{३१.१३६४ (११८१९८४४ - २९५४९६१)} + १}}$$

$$= \frac{३४३८}{\sqrt{\dfrac{१७०२०५७५३६}{२७६०२०५४३} + १}} = \frac{३४३८}{२.६७७}$$

क्रांतिज्या = १२८४ प्राप्त होती है।

यहाँ उज्जयनी की पलभा ५/७ लेकर गणना की है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिज्यादिनार्धसममण्डलान्तरासुज्जययोः कृतिविशेषः।
स्वविषयविषुवच्छायावर्गेण गुणो द्विधा प्रथम॥२४॥
व्यासार्धवर्गभक्तो लब्धं द्वादशजवर्ग संयुक्तम्।
छेदो द्वितीयराशेर्लब्धपदं क्रान्तिरर्कोऽतः॥२५॥"

आचार्य ने यहाँ सूत्र थोड़ा सा भिन्न रूप में कहा है जिसको भास्कराचार्य ने दूसरे रूप में लिखकर कहा है। यथा–

$$\text{ज्या}^2 \text{क्रांति} = \frac{\text{पलभा}^2 \times \text{कोज्या}^2 \text{नत}}{१२^2 + \dfrac{\text{पलभा}^2 \times \text{कोज्या}^2 \text{नत}}{\text{त्रि}^2}}$$

तथा $\text{रविभुजज्या} = \dfrac{\text{त्रि} \times \text{क्रां.ज्या}}{\text{जि.ज्या}}$; यहाँ $\text{कोज्या}^2\text{नत} = (\text{त्रि}^2 - \text{नतज्या}^2)$ है।

इससे भास्करोक्त प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में कहा है। यथा–

"समनरनतकालज्या त्रिभौर्वीकरण्योर्विवरमभिहतं तद्वैषुवत्याश्च कृत्या।
पृथगथपदजीवावर्गसंभक्तमाद्यं फलमिनकृतियुक्तं भाजकः सोऽन्यराशिः॥
फलस्य यत्पदं भवेदपक्रमस्य शिंजिनी।
स्फुटं ततश्च पूर्ववत् प्रसाध येद्दिवाकरम्।"

अथान्यं प्रश्नमाह—

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशति च्छाया किलाष्ट्यङ्गुला
दृष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने।
अर्कक्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च
त्रिप्रश्नप्रचुरप्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं नहि॥८६॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य ने सममंडल में प्रवेश किया तब शंकुछाया १६ अंगुल देखी गई। आठ घटी इष्ट काल पर (उन्नत काल) उस दिन यदि कोई सूर्य की क्रांतिज्या तथा वहाँ की पलभा बता दे तो उसको आचार्य त्रिप्रश्नाधिकार संबंधि प्रश्नों को हल करने में चतुर मानते हैं।

अस्योत्तरमाह—

अत्रापि साध्योन्नतकालजीवा पूर्वं तु सैवेष्टहतिः प्रकल्प्या।
ततोऽर्कनिघ्नी समशङ्कुभक्ता पलश्रुतिः स्यात् पलभा ततश्च॥८७॥

पलप्रभाघ्नः समशङ्कुरक्षकर्णोद्धृतः स्यादपमज्यकातः।
चरादिकेनेष्टहृतिस्ततोऽक्षकर्णोऽसकृत् क्रान्तिगुणश्च तस्मात्॥८८॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— यहाँ भी उन्नत काल की जीवा साधित करके उसको पूर्व प्रश्न के अनुसार प्रथम इष्ट हृति कल्पित करे। इसको १२ से गुणा करके सममण्डल शंकु से विभाजित करने से प्राप्तफल स्थूल पलकर्ण होता है। इससे पलभा ज्ञात करे। इस पलभा को समशंकु से गुणा करके पलकर्ण से विभाजित करने से प्राप्तफल स्थूल क्रांतिज्या होती है। इस क्रांतिज्या से द्युज्या, कुज्यादि साधन करके उन्नत में से चर को घटा कर इत्यादि द्वारा इष्ट हृति साधित करे। इसके द्वारा पुनः अक्षकर्ण से उसकी क्रांति साधित करे।

उपपत्ति— उन्नत काल की ज्या को तद्धृति कल्पित करके उससे अनुपात किया कि समशंकु में तद्धृति कर्ण है तो १२ अंगुल शंकु में कितनी होगी? प्राप्तफल पलकर्ण है। इससे फिर अनुपात किया कि यदि पलकर्ण में पलभा भुज है तो समशंकु तुल्यकर्ण में कितनी? प्राप्तफल क्रांतिज्या होती है। इस प्रकार समशंकु कर्ण, क्रांतिज्या भुज तथा कुज्या उनित तद्धृति कोटि से अक्ष क्षेत्र बनता है। इससे असकृत्कर्म से पलभा तथा क्रांतिज्या स्फुट होती है। यह उपपन्न हुआ।

आचार्य ने यहाँ जो अनुपात कहे हैं उसके अनुसार

कर्ण $=\sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2} = \sqrt{१६^2 + १२^2}$ = २० अंगुल। उन्नतकालांश = $८ \times ६^\circ$ = ४८ अंश। ज्या ४८° = तद्धृति माना।

$$\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{पलकर्ण}}{१२}$$ पूर्व समीकरण (ख) द्वारा;

$$\text{अतः पलकर्ण} = \frac{१२ \times \text{ज्या } ४८^\circ}{\frac{१२ \times ३४३८}{२०}}$$

$$\text{क्योंकि समशंकु} = \frac{१२ \text{ त्रि}}{\text{कर्ण}} = \frac{१२ \times ३४३८}{२०} = २०६२.८;$$

$$\text{अतः पलकर्ण} = \frac{२० \text{ ज्या } ४८^\circ}{३४३८} = १४.८६।$$

क्योंकि $१२^२$ + $पलभा^२$ = $पलकर्ण^२$ होता है। यहाँ पलकर्ण का मान रखने पर–

$$पलभा = \sqrt{१४.८६^२ - १२^२} = ८.७६$$

$$तथा \frac{पलभा}{कर्ण} = \frac{क्रांतिज्या}{समशंकु}$$ पूर्व समीकरण (क) द्वारा ;

$$अतः क्रांतिज्या = \frac{पलभा \times समशंकु}{कर्ण} = \frac{८.७६ \times २०६२.८}{१४.८६} = १२१६$$

इदानीमिष्टप्रभाप्रश्नमाह—

पञ्चाङ्गुला गणक यत्र पलप्रभा स्यात् तत्रेष्टभा नवमिता दशनाडिकासु।
दृष्टा यदा वद तदा तरणिं तवास्ति यद्यत्र कौशलमलं गणिते सगोले॥८९॥

इष्ट प्रभा संबंधी प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक जहा पलभा पांच अंगुल हो वहाँ (सूर्यादय से) १० घटी पश्चात इष्ट छाया नव अंगुल प्राप्त हुई तो यदि तुम गणित में तथा गोल में कौशल रखते हो तो सूर्य का स्थान बताओ।

अस्योत्तरमाह—

इष्टान्त्यकामुन्नतकालमौर्वीतुल्यां प्रकल्प्याथ तया विभक्तः।
इष्टप्रभाशङ्कुहतोऽक्षकर्णस्त्रिज्यागुणो द्वादशभाजितश्च॥९०॥
द्युज्या भवेत् तत्कृतिवर्जितायास्त्रिज्याकृतेर्मूलमपक्रमज्या।
इष्टान्त्यका प्राग्वदतोऽसकृच्च द्युज्यापमज्या च ततः खरांशुः॥९१॥

इसका उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तथा बारह के गुणा में कर्ण का भग देने से इष्ट छाया का महाशंकु होता है। उन्नत काल की ज्या को प्रथम इष्ट अन्त्या कल्पि करे। इस इष्ट अन्त्या से इष्टछाया महाशंकु तथा अक्ष कर्ण के गुणा को विभक्त करने से प्राप्तफल को त्रिज्या से गुणा करके बारह से विभक्त करने से प्राप्तफल स्थूल द्युज्या होती है। इस द्युज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटाकर मूल लेने से क्रांतिज्याप्राप्त होती है। क्रांतिज्या से चरादि साधित करे तथा उन्नत में चर को जोड़ घटा कर इष्ट अंत्या साधित करे। इष्ट अंत्या से पुनः द्युज्या, द्युज्या से क्रांतिज्या, पुनः इससे इष्ट अन्त्या साधित करे। इस प्रकार

ऐसा बार-बार करने से शुद्ध क्रांतिज्या स्फुट करे। इस से पूर्व कथित विधि से रवि का आनयन करे। रवि = $\frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{परम क्रांज्या}}$ द्वारा।

उदाहरण में महाशंकु = $\frac{१२ \times ३४३८}{१५}$ = २७५०।२४ होता है तथा कर्ण = $\sqrt{९^२ + १२^२}$ = १५।

पलकर्ण = $\sqrt{\text{पलभा} + १२^२} = \sqrt{२५ + १४४} = १३$

उपपत्ति— महाशंकु ज्ञात करने के लिए अनुपात किया कि यदि १२ अंगुल शंकु में पलकर्ण कर्ण होता है तो महाशंकु में कितना? प्राप्त फल इष्ट हृति होता है। अर्थात इष्टहृति = $\frac{\text{पलकर्ण} \times \text{महाशंकु}}{१२}$ पूर्वोक्त स.(ख) द्वारा।

इष्ट हृति को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से इष्ट अन्त्या प्राप्त होती है। अर्थात् इष्ट अंत्या = $\frac{\text{इष्ट हृति} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$

अथवा द्युज्या = $\frac{\text{इष्ट हृति} \times \text{त्रिज्या}}{\text{इष्ट अंत्या}}$, यहाँ पूर्वप्राप्त इष्ट हृति का मान रखने पर—

$$\text{द्युज्या} = \frac{\text{पलकर्ण} \times \text{त्रिज्या} \times \text{महाशंकु}}{१२ \times \text{इष्ट अंत्या}}$$

यहाँ महाशंकु = २७५०।२४ प्राप्त किया है तथा इष्ट अंत्या = ज्या १०×६ = ज्या ६०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$;

$$\text{अतः द्युज्या} = \frac{१३ \times ३४३८ \times २७५०।२४ \times २}{१२ \times \sqrt{३}}$$

मुनिश्वराचार्य ने सि.शि.की अपनी **मरिचि टीका** में उल्लेख किया है कि लक्ष्मीदास ने स्व टीका में उपरोक्त प्रकार से प्राप्त द्युज्या का मान त्रिज्या से अधिक होना भास्कराचार्य की भूल को इंगित किया है।

अथान्यं प्रश्नमाह—

यत्र क्षितिज्या शरसिद्धतुल्या २४५ स्यात् तद्धृतिस्तत्त्वकुरामसंख्या ३१२५।
तत्राक्षभाकर्णौ गणक प्रचक्ष्व चेदक्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि॥६२॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक! जहाँ किसी दिन क्षितिज्या २४५ हो तथा तद्धृति ३१२५ हो वहाँ पलभा तथा सूर्य का मान कहो, यदि अक्ष क्षेत्रों में योग्यता रखते हो।

अस्योत्तरमाह—

कुज्योनतद्धृतिहृता कृतशक्रनिघ्नी
कुज्यैव यत् फलपदं पलभा भवेत् सा।
कुज्या हता रविभिरक्षभया विभक्ता
क्रान्तिज्यका भवति भानुरतो विलोमम्॥६३॥

उक्त प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— तद्धृति में से कुज्या को घटा कर प्राप्त फल से १४४ गुणा कुज्या को विभक्त करके मूल लेने से पलभा प्राप्त होती है। कुज्या तथा १२ के गुणा में पलभा से भाग देने से क्रांतिज्या होती है। इससे विलोम क्रिया द्वारा सूर्य का स्थान ज्ञात करते हैं।

सूत्र रूप में–

$$\text{पलभा} = \sqrt{\frac{१४४ \times \text{कुज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}}; \quad \text{क्रांतिज्या} = \frac{१२\ \text{कुज्या}}{\text{पलभा}};$$

$$\text{रवि भुजज्या} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{जि.ज्या}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि पलभा तुल्य भुज में बारह तुल्य कोटि है तो कुज्या में कितनी होगी? प्राप्त फल क्रांतिज्या होगी। अर्थात् पूर्वोक्त स.(ग) द्वारा।

$\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$। पुनः द्वितीय त्रैराशिक किया कि यदि पलभा तुल्य भुज में १२ कोटि है तो क्रांतिज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल तद्धृति में कुज्या तुल्य न्यून होगा। अर्थात्

$$\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$, पूवोक्त समी. (ग) द्वारा।

इन दोनों अनुपातों के द्वारा –

$$\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} \times \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}} = \frac{\text{पलभा}^2}{१२^2}$$

$$\text{या पलभा}^2 = \frac{१४४\ \text{कुज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$\text{अतः पलभा} = \sqrt{\frac{१४४\ \text{कुज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}}$$ उपपन्न हुआ।

प्रथम अनुपात से—

$$\frac{\text{कुज्या} \times १२}{\text{पलभा}} = \text{क्रांतिज्या}$$ उपपन्न हुआ।

यहाँ प्रश्न में कुज्या = २४५ तथा तद्धृति = ३१२५ दिया हुआ है।

$$\text{अतः पलभा} = \sqrt{\frac{१४४ \times २४५}{३१२५ - २४५}} = \sqrt{\frac{३५२८०}{२८८०}} = ३.५ = ३\frac{१}{२}$$

$$\text{तथा क्रांतिज्या} = \frac{१२ \times २४५}{३.५} = ८४०$$

अथान्यं प्रश्नमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसैः ६७२० मितामथ परां षष्ट्यङ्कचन्द्रैर्मिताम् १९६०।
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनं वेत्यक्षभां चापि तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम् ।।९४।।

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या, समशंकु और तद्धृति के योग में से कुज्या को घटाने से ६७२० प्राप्त होता है तथा कुज्या, अग्रा और क्रांतिज्या का योग १९६० होता है। आचार्य कहते हैं कि जो इनके द्वारा पलभा तथा सूर्य को ज्ञता कर दे उसको वे ज्योतिषियों के कमल दल को प्रकाशित करने वाला चंद्रमा मानते हैं तथा भगवान भास्कर के बाद वे उसकी वन्दना करते हैं।

इदानीमस्योत्तरमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः कुज्योनिता या तया
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनैः १२ क्षुण्णां पृथक्स्थां भजेत्।

लब्धं स्यात् पलभा पलश्रुतिपलच्छायार्कयुत्या ततो
भाज्यान्याथ पृथक् स्थितातप्तमपमज्या स्यात् ततो भास्करः ॥९५॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या, समशंकु तथा तद्धृति के योग में से कुज्या घटाने से प्राप्त (६७२०) से कुज्या, अग्रा और क्रांतिज्या के योग (१९६०) के १२ से गुणित को विभाजि करने से पलभा प्राप्त होती है और पलकर्ण, पलभा तथा १२ के योग से विभाजित करने से क्रांतिज्या प्राप्त होती है। इसके द्वारा सूर्य (का भुजांश) ज्ञात किया जा सकता है।

सूत्र रूप में—

$$\frac{१२ \text{ (कुज्या + अग्रा + क्रांतिज्या)}}{\text{क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति − कुज्या}} = \text{पलभा}$$

$$\frac{१२ \text{ (कुज्या + अग्रा + क्रांतिज्या)}}{१२\text{+पलभा+पलकर्ण}} = \text{क्रांतिज्या}$$

$$\text{सूर्य भुजज्या} = \frac{\text{त्रिज्या × क्रांतिज्या}}{\text{परम क्रांतिज्या}}$$

$$\text{उदाहरण में पलभा} = \frac{१२ \times १९६०}{६७२०} = ३\frac{१}{२};$$

$$\text{पलकर्ण} = \sqrt{१२^२ + ३.५^२} = १२\frac{१}{२}$$

$$\text{क्रांतिज्या} = \frac{१२\times१९६०}{१२+३\frac{१}{२}+१२\frac{१}{२}} = ८४०$$

उपपत्ति— पूर्वोक्त समी. (ग) द्वारा पलक्षेत्रों में जहाँ क्रांतिज्या कोटि तथा कुज्या भुज है; समशंकु कोटि तथा अग्रा भुजं है तथा तद्धृति − कुज्या= कोटि तथा क्रांतिज्या भुज है। इनकी पहले कोटियों का योग, क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति − कुज्या है तथा बाद में भुजों का योग, कुज्या + अग्रा + क्रांतिज्या है। अब अनुपात किया कि यदि कोटियों के योग तुल्य कोटि में भुजों के योग तुल्य भुज प्राप्त होता है तो १२ तुल्य कोटि में कितना होगा?

प्राप्तफल पलभा होती है। अतः आचार्योक्त सूत्र प्राप्त होता है। उपपन्न हुआ।

अब क्रांति ज्ञान के लिए पूर्वोक्त समी. (क) तथा (ख) द्वारा पलक्षेत्रों में कुज्या भुज, अग्रा, कर्ण तथा क्रांतिज्या कोटि है तथा पलभा भुज, पलकर्ण कर्ण तथा १२ अंगुल कोटि है।

इनके अनुपात से—

$$\frac{\text{पलभा}}{\text{कुज्या}} = \frac{१२}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{पलकर्ण}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{पलभा}+१२+\text{पलकर्ण}}{\text{कुज्या}+\text{क्रांतिज्या}+\text{अग्रा}}$$

। पूर्व प्रकार से अनुपात से—

$$\text{क्रां.ज्या} = \frac{१२\ (\text{कुज्या} + \text{क्रांतिज्या} + \text{अग्रा})}{\text{पलभा}+१२+\text{पलकर्ण}}$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

अथान्यं प्रश्नमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाब्ध्यब्धिमहीमिता १४४० मथ परां खाभ्राष्टभूसंमिताम् १८००।
अग्राज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं वेत्त्यक्षभार्कौ च तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥६६॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या+ समशंकु+तद्धृति – कुज्या = १४४० है तथा अग्रज्या+समशंकु+तद्धृति = १८००। आचार्य कहते हैं कि जो पलभा तथा सूर्य की स्थिति बता सके वे उसको ज्योतिर्विदों के समुदाय में सूर्य के समान वन्दनीय मानते हैं।

अस्योत्तरमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः कुज्योनिताद्यो हृता
तेनाग्रासमशङ्कुतद्धृतियुतिः सूर्याहताक्षश्रुतिः।
स्यात् तस्याः पलभा पलश्रुतिपलच्छायार्क १२ युत्योद्धृता-
दाद्यादक्षभयाहताच्च भवति क्रान्तिज्यकातो रविः॥६७॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या+समशंकु+तद्धृति–कुज्या से अग्रज्या+समशंकु +तद्धृति के योग को विभक्त करके बारह (१२) से गुणा करने से पल कर्ण प्राप्त होता है। इससे पलभा ज्ञात करे।

पलभा+पलकर्ण+१२ से द्वितीय योग को विभक्त करके उसको पलभा से गुणा करके प्राप्तफल से क्रांतिज्या प्राप्त होती है।

उपपत्ति— पूर्वोक्त अक्ष क्षेत्रों में समी. (ख) द्वारा लंबज्या = $\frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$ को तुल्य करने पर—

$$\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} \text{ होता है।}$$

$$\text{अतः } \frac{\text{क्रांतिज्या} + \text{समशंकु} + \text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{अग्रा} + \text{तद्धृति} + \text{समशंकु}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}}$$

$$\text{अर्थात् पलकर्ण} = \frac{\text{१२ (अग्रा+तद्धृति+ समशंकु)}}{\text{क्रांज्या + समशंकु + तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times १८००}{१४४०} = १५$$

अतः पलकर्ण = १५।

पलकर्ण^२ = १२^२ + पलभा^{२} अतः पलभा = $\sqrt{१५^२ - १२^२} = ६$

अक्षक्षेत्र प्रथम में पलभा = भुज, शंकु-कोटि तथा पलकर्ण = कर्ण तथा अक्षक्षेत्र चतुर्थ में अग्राभुज, समशंकु= कोटि तथा तद्धृति = कर्ण में अनुपात किया— पूर्वोक्त समी. (ख) तथा (ग) द्वारा ;

$$\frac{\text{पलभा}}{\text{अग्रा}} = \frac{१२}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{पलकर्ण}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{पलभा+१२+पलकर्ण}}{\text{अग्रा+समशंकु+तद्धृति}}$$

$$= \frac{६+१२+१५}{१८००} = \frac{१}{५०}$$

$$\text{अतः अग्रा} = \frac{\text{पलभा} \times ५०}{१} = ६ \times ५० = ४५०$$

अक्ष क्षेत्र एक तथा तीन में, $\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}}$; समी.(ख) द्वारा।

$$\text{अतः क्रांतिज्या} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{४५० \times १२}{१५} = ३६०$$

अतः पलभा = ६ तथा क्रांतिज्या = ३६० प्राप्त हुआ।

इदानीमन्यं प्रश्नमाह—

यत्र त्रिवर्गेण मिता पलाभा तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात्।
यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन् सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम्॥६८॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— जहाँ पलभा तीन का वर्ग अर्थात् ९ है वहाँ चर तीन (३) घटी है। यदि हे विद्वान् तुम सूर्य को ज्ञात कर सकते हो तो तुम सांवत्सर गणकों अर्थात् ज्योतिषियों में प्रवर हो।

इदानीमस्योत्तरमाह—

चरज्यकार्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या भक्ताप्तवर्गोऽक्षभया स्वनिघ्न्या।
युतोऽथ तन्मूलहृता चरज्या सूर्या १२ हता क्रान्तिगुणस्ततोऽर्कः ॥९९॥

इसका उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— चरज्या को (१२) बारह से गुणा करके त्रिज्या से भाग देकर प्राप्तफल के वर्ग में पलभा के वर्ग को युत करके मूल लेने से जो प्राप्त हो उससे चरज्या तथा (१२) के गुणा में भाग देने से सूर्य की क्रांति प्राप्त होती है। उससे सूर्य का स्थान ज्ञात करे।

उपपत्ति— प्रथम तथा तृतीय अक्ष क्षेत्र द्वारा स्पर्श अक्षांश ज्या का तुल्य अनुपात करने से—

$$\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$ पूर्वोक्त समी. (ग) द्वारा

$$\text{अतः क्रांतिज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \frac{१२ \times \text{कुज्या}}{९} = \frac{४\ \text{कुज्या}}{३}$$

$$\text{द्युज्या} = \sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{क्रां ज्या}^2}\ ;\ \frac{\text{द्युज्या}^2 \times \text{चरज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \text{कुज्या}^2 \text{ होता है।}$$

$$\text{तथा कुज्या} = \frac{\text{क्रां ज्या} \times \text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{क्रां ज्या} \times \text{पलभा}}{१२}$$

कुज्या^2 का मान तुल्य करने पर—

$$\frac{\text{द्युज्या}^2 \times \text{चरज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{क्रांज्या}^2 \times \text{पलभा}^2}{१२^2}$$

या $१२^2 \times \text{च.ज्या}^2 \times (\text{त्रि}^2 - \text{क्रां ज्या}^2) = \text{त्रि}^2\ \text{प}^2 \times \text{क्रां ज्या}^2$

या $१२\ \text{त्रि}^2\ \text{च.ज्या}^2 - १२^2\ \text{च.ज्या}^2.\ \text{क्रां.ज्या}^2 = \text{त्रि}^2\ \text{प}^2\ \text{क्रांज्या}^2$

या $१२^2\ \text{त्रि}^2\ \text{चज्या}^2 = \text{त्रि}^2\ \text{प}^2\ \text{क्रांज्या}^2 + १२^2\ \text{च.ज्या}^2\ \text{क्रांज्या}^2$

$$\text{या } १२^2 \text{ त्रि}^2 \text{ चज्या}^2 = \text{त्रि}^2 \text{ क्रांज्या}^2 \left(\text{प}^2 + \frac{१२^2 \text{ च ज्या}^2}{\text{त्रि}^2} \right)$$

$$\text{या क्रां ज्या}^2 = \frac{१२^2 \text{ त्रि}^2 \text{ चरज्या}^2}{\text{त्रि}^2 \left(\text{प}^2 + \frac{१२^2 \text{ च ज्या}^2}{\text{त्रि}^2} \right)}$$

$$\text{या क्रांति ज्या} = \frac{१२ \text{ चरज्या}}{\sqrt{\text{पलभा}^2 + \frac{१२^2 \text{ चरज्या}^2}{\text{त्रि}^2}}}$$; आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

यहाँ पलभा = ९ तथा चरज्या $६ \times ३^\circ$ = चरज्या १८° =१०६२ इस सूत्र में प्रतिस्थापित करने से—

$$\text{क्रांति ज्या} = \frac{१२ \times १०६२}{\sqrt{९^2 + \frac{१४४ \times १०६२^2}{३४३८^2}}} = \frac{१२७४४}{\sqrt{९^2 + \frac{१६२४०९५३६}{११८१९८४४}}}$$

$$= \frac{१२७४४}{\sqrt{९^2 + १३.७४}} = १३०९।३९$$

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १५ में आचार्योक्त तथा उससे भी विशेष कहा है।

"चरखण्डपलांशविद्रविं कुर्यादिष्ट चरासुतोऽक्षभाम्।
स्वपलघुतितश्चरार्धकं त्रिप्रश्नोक्तमवैति सस्फुटम्॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"सूर्यघ्नी चरशिञ्जिनीकृतकृतिस्तद्युक्त भक्ता सती।
त्रिज्याऽक्षप्रभायोर्वधस्य करणी छेदस्त्रिभज्या कृतेः॥
लब्धेर्मलमिनापमस्य हि गुणस्तस्मादपि प्रोक्तवत्।
तिग्मांशुर्विषुवात्प्रभाचरदलज्ञानादसौ जायते॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा **है। यथा–**

"अर्काज्ञाने ज्ञाने विषुवच्छाया चरासूनाम्॥३६॥

इष्टचरार्धस्यज्या क्षयवृद्धिज्या तदर्कवधकृत्या।
त्रिज्या विषुवच्छायावधवर्गो युतहृतश्छेदः॥३७॥
व्यासार्ध कृतेर्मूलं क्रांतिज्या व्यासदलगुणा भक्ता।
जिनभाग जीवया लब्धचापमर्क पदैः प्राग्वत्॥३८॥"

अथान्य प्रश्नमाह—

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यकासंयुतिं खखखबाण ५००० संमिताम्।
वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम्॥१००॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि द्युज्या+क्रांतिज्या+रवि भुजज्या = ५००० हो तो सूर्य के भुजांश बताओ। यदि तुम मध्य का मध्यमाहरण जानते हो।

इदानीमस्योत्तरमाह—

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुतिस्तिथ्यु १५ द्धृताब्ध्या ४ हता
स्यादाद्यो युतिवर्गतो यम २ गुणात् सप्तामरा ३३७ प्तोनिताः।
नागाद्र्यङ्गदिगङ्कका: ९१०६७८ पदमतस्तेनाद्य ऊनो भवेद्
व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावक ३४३८ मिते क्रान्तिज्यकातो रविः॥१०१॥

इसका उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— द्युज्या+क्रांतिज्या+रवि भुजज्या को ४ से गुणा करके १५ से विभक्त करने से प्राप्तफल यदि 'आद्य संज्ञक' हो। इस योग के वर्ग को २ से गुणा करके ३३७ से विभाजित करके ९१०६७८ में से घटा कर मूल लेवें तथा उसको इस 'आद्य' में से घटाने से ३४३८ तुल्य त्रिज्या की रवि की क्रांति होती है तथा रवि क्रांति से रवि भुजांश ज्ञात होगा।

उपपत्ति— रविज्या = $\frac{\text{त्रि} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{जिनां. ज्या}}$ होता है। अर्थात्

$$\text{रविज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{क्रांतिज्या}}{१३९७}$$

अतः इसमें क्रांतिज्या जोड़ कर द्युज्या = $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{क्रां ज्या}^2}$ युक्त करने से आचार्योक्त योगफल प्राप्त होता है। अर्थात्

$$\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{क्रां ज्या}^2} + \text{क्रांज्या} + \frac{\text{त्रि. क्रांति ज्या}}{१३९७} = ५०००$$ आचार्य ने कहा है।

$$\text{या } \sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२} = ५००० - \text{क्रांज्या}\left(१ + \frac{\text{त्रि.}}{१३९७}\right)$$

$$= ५०० - \text{क्रांज्या } \left(१ + \frac{३४३८}{१३९७}\right)$$

$$\text{या } \sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२} = ५००० - \text{क्रांज्या.}\left(\frac{४८३५}{१३९७}\right)$$

दोनों ओर का वर्ग करने पर–

$$\text{त्रि}^२ - \text{क्रांज्या}^२ = ५०००^२ - \frac{२ \times ५००० \times ४८३५}{१३९७} \text{क्रांज्या} + \text{क्रांज्या.}^२\left(\frac{४८३५}{१३९७}\right)^२$$

$$\text{या त्रि}^२ - ५०००^२ = \text{क्रांज्या}^२ \left\{१ + \left(\frac{४८३५}{१३९७}\right)^२\right\} - \frac{२ \times ५००० \times ४८३५}{१३९७} \text{क्रांज्या}$$

$$\text{या क्रांज्या}^२ \left(\frac{१३९७^२ + ४८३५^२}{१३९७२}\right) - \frac{२ \times ५००० \times ४८३५}{१३९७} \text{क्रांज्या} = (\text{त्रि}^२ - ५०००^२)$$

$$\text{या क्रांज्या}^२ (२५३२८८३४) - २ \times ५००० \times ४८३५ \times १३९७ \text{ क्रांज्या} = १३९७^२ (\text{त्रि}^२ - ५०००^२)$$

$$\text{या क्रांज्या}^२ - \frac{२ \times ५००० \times ४८३५ \times १३९७}{२५३२८८३४} \text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२ (\text{त्रि}^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३४}$$

$$\text{या क्रांज्या}^२ - \frac{२ \times ५००० \times ६७५४४९५}{२५३२८८३४} \text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३४}$$

आचार्य ने $\frac{६७५४४९५}{२५३२८८३४}$ का मान स्वल्पांतर से $\frac{४}{१५}$ ग्रहण करके द्युज्यादि योग = ५००० को ४ से गुणा तथा १५ से विभक्त करके उसे 'आद्य' संज्ञक मानने के लिए कहा है। अतः यह मान स्वीकार करने से–

$$\text{क्रांज्या}^२ - २ \times ५००० \times \frac{४}{१५} \text{ क्रांज्या} = \frac{१३९७^२ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३}$$

आचार्योक्त प्रकार से $५००० \times \frac{४}{१५}$ = 'आद्य' लिखने पर–

$$\text{क्रांज्या}^२ - २ \text{ आद्य} \times \text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३}$$

दोनों ओर आद्य^२ जोड़ने पर–

$$\text{क्रांज्या}^2 - २\ \text{आद्य} \times \text{क्रांज्या}^2 + \text{आद्य}^2 = \frac{१३९७^2 (३४३८^2 - ५०००^2)}{२५३२८८३} + \text{आद्य}^2$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^2 = \frac{१३९७^2 (३४३८^2 - ५०००^2)}{२५३२८८३} + \left(५००० \times \frac{४}{१५}\right)^2$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^2 = ५०००^2 \times \frac{१६}{२२५} + \frac{१३९७^2 \times ३४३८^2}{२५३२८८३} - \frac{५०००^2 \times १३९७^2}{२५३२८८३}$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^2 = ५०००^2 \times \left[\frac{१६}{२२५} - \frac{१३९७^2}{२५३२८८३}\right] + \frac{१३९७^2 \times ३४३८^2}{२५३२८८३}$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^2 = -\frac{२}{३३७} \times ५०००^2 + ९१०६७८$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य}) = \pm \sqrt{९१०६७८ - \frac{२\ \text{योग}^2}{२३७}}$$

$$\text{या क्रांज्या} = \text{आद्य} \pm \sqrt{९१०६७८ - \frac{२\ \text{योग}^2}{२३७}}$$

क्योंकि क्रांज्या का मान त्रिज्या से अधिक नहीं हो सकता अतः यहाँ धन चिन्ह त्याग कर ऋण चिन्ह स्वीकार करने से—

$$\text{क्रांज्या} = \text{आद्य} - \sqrt{९१०६७८ - \frac{२\ \text{योग}^2}{२३७}}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

पूर्वश्लोकोक्त प्रकार से रवि भुज ज्ञात करे रवि की क्रांति द्वारा।

यहाँ आद्य तथा योग के मान प्रतिस्थापित करने पर रविज्या = ११३२।३९ क्रांज्या = ४६०।१५; द्युज्या = ३४०७।५ तथा रवि = ०।१९।१।३२ प्राप्त होगा।

$$\text{सूत्र— रवि भुजज्या} = \frac{\text{त्रि.} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{परम क्रांज्या}}$$

इदानीमन्यं प्रश्नमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवाग्रकाणां युति-
र्द्रष्टा खाम्बरपञ्चखेचर ९५०० मिता पञ्चाङ्गुलाक्षप्रभे।

देशे तत्र पृथक् पृथग्गणक ता गोलेऽसि दक्षोऽक्षज-
क्षेत्रक्षोदविधौ विचक्षण समाचक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत्।।१०२।।

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या+ समशंकु+तद्धृति+कुज्या+अग्रा का योग ९५०० होता है जहाँ पर पलभा का मान ५ अंगुल होता है। उस स्थान के लिए इनके मान हे गणक पृथक-पृथक कहो यदि तुम गोल तथा अक्ष क्षेत्रों में विलक्ष ज्ञान रखते हो।

इदानीमस्योत्तरमाह—

क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्यापराः
कृत्वाग्रासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवा अभीष्टास्ततः।
द्व्याद्यास्तद्युतिभाजिताः पृथगथ प्रोद्दिष्टयुत्या हता
उद्दिष्टा खलु यद्युतिः पृथगिमा व्यक्ता भवन्ति क्रमात्।।१०३।।

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या को बारह (१२) गुणित पलभा मानकर अभीष्ट समशंकु, तद्धृति, कुज्या तथा अग्रा का मान ज्ञात कर के त्रैराशिक से इनके योग तथा प्रश्नोक्त योग से उनके वास्तविक मान ज्ञात करे कि यदि इतने प्राप्त योग में प्रत्येक का अलग-अलग मान इतना होता है तो दिये हुए योग में कितना होगा?

उपपत्ति— पलकर्ण = $\sqrt{१२^२ + \text{पलभा}^२} = \sqrt{१४४ + २५} = १३$;
तथा क्रांतिज्या = १२×५=६० माना है।

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा पांच द्वारा; पूर्वोक्त समी. (क) द्वारा—

$$\text{समशंकु} = \frac{\text{क्रां.ज्या}}{\text{पलभा}} \times \text{पलकर्ण} = \frac{६०\times१३}{६} = १५६$$

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा चार द्वारा; पूर्वोक्त समी. (ख) द्वारा —

$$\text{तदधृति} = \frac{\text{समशंकु} \times \text{पलकर्ण}}{\text{शंकु}} = \frac{१५६\times१३}{१२} = १६९$$

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा तृतीय द्वारा; पूर्वोक्त समी. (ख) द्वारा —

$$\text{अग्रा} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{पलकर्ण}}{\text{शंकु}} = \frac{६०\times१३}{१२} = ६५$$

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा तृतीय द्वारा—

$$\text{कुज्या} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{६५ \times ५}{१३} = २५$$

क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति + कुज्या + अग्रा = ६० + १५६+ १६६ + ६५ + २५ = ४७५ अतः अनुपात किया कि इस योग का मान ४७५ है तब क्रांतिज्या ६० होती है और जब ६५०० हो तब क्रांतिज्या का मान $\frac{६० \times ६५००}{४७५} = १२००$

इसी प्रकार—

$$\text{समशंकु} = \frac{१५६ \times ६५००}{४७५} = १५६ \times २० = ३१२०$$

$$\text{तद्धृति} = \frac{१६६ \times ६५००}{४७५} = ३३८०$$

$$\text{अग्रा} = \frac{६५ \times ६५००}{४७५} = १३००$$

$$\text{कुज्या} = \frac{२५ \times ६५००}{४७५} = ५००$$

इनका योग क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति + अग्रा + कुज्या = १२००+३१२०+३३८०+१३००+५००= ६५०० अतः उपपन्न हुआ।

इदानीमस्यानयनस्य व्यासिदर्शनार्थमन्यं प्रश्नमाह—

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां योगं सहस्रं द्वितयं २००० विदित्वा।
पृथक् पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत्॥१०४॥

पूर्वोक्त के विस्तार रूप में अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि अग्रा+क्रांतिज्या+क्षितिज्या (कुज्या) का योग २००० दो हजार हो तो हे गणक यदि तुम खगोल तथा गणित में बुद्धि (ज्ञान) रखते हो तो इनके मान पृथक-पृथक कहो।

इसका उत्तर—

आचार्य ने इसका उत्तर नहीं कहा है। पूर्व श्लोक के अनुसार हम क्रांतिज्या को १२×५=६० मान लेते हैं। यहाँ पलभा = ५ माना है।

अतः क्रांतिज्या = ६०; पलकर्ण = $\sqrt{१२^२ + \text{पलभा}^२} = \sqrt{१४४ + २५}$ = १३;

पूर्वोक्त समी. (ख) से, अग्रा = $\frac{\text{क्रांतिज्या × पलकर्ण}}{\text{शंकु}}$ = $\frac{६०×१३}{१२}$ = ६५

पूर्वोक्त समी. (क) से, कुज्या = $\frac{\text{अग्रा × पलभा}}{\text{पलकर्ण}}$ = $\frac{६५×५}{१३}$ = २५

क्रांतिज्या+अग्रा+कुज्या = ६०+६५+२५=१५०

अतः क्रांतिज्या = $\frac{६० × २०००}{१५०}$ = ८००

अग्रा = $\frac{६५ × २०००}{१५०}$ = ८६६।४०

कुज्या = $\frac{२५ × २०००}{१५०}$ = ३३३।२०

इनका योग क्रांतिज्या+अग्रा+कुज्या = ८००+८६६।४०+३३३।२०= २०००।

इदानीं नलकयन्त्रेण ग्रहविलोकनप्रकारमाह—

विधाय बिन्दुं समभूमिभागे ज्ञात्वा दिशः कोटिरतः प्रदेया।
प्रत्यङ्मुखी पूर्वकपालसंस्थे पूर्वामुखी पश्चिमगे ग्रहे सा।।१०५।।
कोट्यग्रतो दोरपि याम्यसौम्यो बिन्दोश्च भा भाग्रभुजाग्रयोगात्।
सूत्रं च बिन्दुस्थनराग्रसक्तं प्रसार्य कर्णाकृतिसूत्रगत्या।।१०६।।
दृगुच्चमूलं नलकं निवेश्य वंशद्वयाधारमथास्य रन्ध्रे।
विलोकयेत् खे खचरं किलैवं जले विलोमं तदपि प्रवक्ष्ये।।१०७।।

नलक यंत्र द्वारा ग्रह का अवलोकन करने का तरीका—

सूर्य-प्रभा टीका— (आचार्य कहते हैं कि जिस दिन ग्रह, ग्रहण, ग्रहयुति या श्रृंगोन्नति नलक यंत्र द्वारा देखने की इच्छा हो उस दिन उस समय पर उस ग्रह की ग्रहच्छायोक्त प्रकार से छायाकर्ण, भुज तथा कोटि ज्ञात करके नलक यंत्र को निवेश करे। उसकी विधि बताते हैं।)

जल से समान की हुई भूमि पर एक बिन्दु लेकर उस पर से ध्रुवादि द्वारा दिशा साधन करके पूर्वापर रेखा खेंचे तथा इसके समकोण (लंबवत्) पर उत्तर-दक्षिण दिशा की रेखा खेंचे। अब यदि ग्रह पूर्व कपाल में हो तो उस बिंदु से

उसकी कोटी पूर्वापर रेखा पर पश्चिम की ओर चिन्हित करे और यदि ग्रह पश्चिम कपाल में हो तो पूर्व की ओर चिन्हित करे। इस कोटि के अग्र बिंदु से भुज (गणितागत) तुल्य उसकी अपनी दिशा में ही चिन्हित करे। (यह पूर्वापर रेखा के लंबवत होगी)। उस केन्द्र बिंदु से छाया प्रमाण तुल्य शलाका भुजाग्रमुखि रखे। छायाभुज शलाका के अग्र बिंदु से सूत्र रख कर केन्द्र बिंदु पर स्थित शंकु के ऊपर अग्र बिंदु से तिरछा बांध देवें अर्थात् भुज तथा छाया के कटान बिंदु को शंकु के शीर्ष बिंदु से एक सूत्र अथवा शलाका द्वारा (तिरछा) बांध देवें। इस सूत्र की सीध में अथवा सूत्र से होकर नलक यंत्र निवेश करे। नलक यंत्र की नलिका का गर्भ इस सूत्र की सीध में रहे तथा नलक यंत्र को किन्हीं दो आधारों पर स्थिर कर देवे। नलक यंत्र के मूल से होकर ऊपर की ओर दृष्टि होती है। इस प्रकार नलक मूल को स्थित करके इष्ट काल पर नलक छिद्र में से होकर देखने से ग्रहादि का आकाश में दर्शन करे।

उपपत्ति— पहले यह सिद्ध करते हैं कि दृक्सूत्र में एक ही समय किसी भी स्थान पर यदि शंकु स्थापित किया जावे तो उसकी सभी जगहों पर छाया तुल्य होती है।
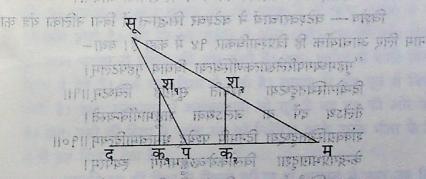
माना द म दृक्सूत्र है तथा सू ग्रह बिंब है। $श_1क_1$ तथा $श_2क_2$ समान ऊँचाई के शंकु है $क_1प$ तथा $क_2म$ छाया है। $श_1प$ तथा $श_2म$ छाया कर्ण है। ग्रह बिंब बहुत दूर होने के कारण हम सू प तथा सू म को समानान्तर मान सकते हैं जिससे $\angle श_1 प क_1 = \angle श_2 म क_2$ अतः त्रिभुज $श_1क_1प$ तथा $श_2क_2म$ समान है। अतः $क_1प = क_2म$ = छाया। अतः सिद्ध हुआ।

आचार्य अब जल में ग्रहादि को देखने की विधि बता रहे हैं।
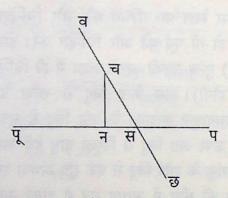
अब माना पू प = पूर्वापर रेखा है। इससे दृक् सूत्र के संपात बिंदु स पर स्थित शंकु की छाया स छ यदि पूर्वोक्त प्रकार से स च = स छ = व च है अर्थात् च बिंदुगत शंकु का छायाग्र बिंदु, स बिंदु पर होगा। अतः उस शंकुवग्र बिंदु च से स बिंदुगत रेखा ग्रह के केंद्र बिंदु तक जावेगी। अतः शंकुवग्र स्थित दृष्टि से ग्रह दिखेगा ही। इसी प्रकार व बिंदु पर यदि शंकु स्थापित हो तो उसकी छायाग्र च बिंदुगत होगा। अतः यदि जल अथवा कोई भी तरल पदार्थ या दर्पण यदि च स्थान पर रख दिया जावे तो उसमें देखने से ग्रह बिंब का प्रतिबिंब दिखाई देगा। नलिका यंत्र व च पर लगाया जावेगा।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में बिना नलिका यंत्र का नाम लिए आचार्योक्त हि त्रिप्रश्नाधिकार १४ में कहा है। यथा—

"गृहमध्यगपरिलेखात्कर्णस्थित्या विधाय गृहपटलम्।
दिग्योगस्थितदृष्टया पश्यति सूर्यग्रहं त्विष्टम्॥९॥
तैलेऽथ दर्पे वा जलेऽथवा शङ्कुमार्गविन्यस्ते।
शंक्वग्रस्थितदृष्ट्या दिनमपि पश्येद् भ्रमत्वमादित्यम्॥१०॥
केन्द्रगप्रभाग्रदृशा विलोकयेच्छङ्कुमार्गगं ह्यपरम्।
भाशङ्कुच्छिद्रैर्वा पश्यति तद्विद्धमिव सूर्यम्॥११॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है।

"कोट्यग्रात् स्वदिशि भुजं निधाय सम्यक्
तस्याग्रे नरमथ केन्द्रशङ्कुप्रभागे।
कृत्वा ना नयन मुदग्रकर्णगत्या शङ्क्वग्रे ग्रहमवलोकयेन्त्रिविष्टम्॥४७॥
विपुलनलंक कर्णस्थित्या दृगुच्छितदीर्घया
स्फुटतरककुपसिद्धिर्बध्वा यथाविधि वंशयोः।

ग्रहणमुदितं शीतांशुं वा ग्रहं च विलोकये-
न्नभसि नलकच्छिद्रेणैवं जले च विलोमतः ॥४८॥''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर अध्याय ४ के श्लोक ८४-८५ में आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं जले विलोकनार्थमाह—

निवेश्य शङ्कुं भुजभाग्रयोगे बिन्दोर्नराग्रानुगते च सूत्रे।
तथैव धार्यो नलको विलोक्यो बिन्दुस्थतोये सुषिरेण खेटः ॥१०८॥

जल में ग्रह विलोकन के लिए—

सूर्य-प्रभा टीका— शंकु को भुजाग्र तथा छाया के मिलान बिन्दु पर स्थापित करके नलक यंत्र को शंकुवग्र बिंदु तथा बिंदु गत कर्णसूत्र में पूर्ववत स्थापित करके नलक यंत्र के उच्च अग्र बिंदु पर दृष्टि डाल कर नलक यंत्र की नलिका के अधः छिद्र पर जलपात्र स्थापित करके उसमें ग्रह का दर्शन करे।

उपपत्ति— ग्रह के विपरीत दिशा में छाया भ्रमण करती। यदि पूर्व भाग (कपाल) में ग्रह होता है तो पश्चिम भाग में उसकी छाया होती है और यदि वह पश्चिम भाग (कपाल) में होता है तो पूर्व भाग में छाया होती है। यदि ग्रह का पूर्वापर से अंतर दक्षिण की ओर रहता है तो छाया पूर्वापर से उत्तर की ओर होती है। यदि ग्रह का पूर्वापर से अंतर (दूरी) उत्तर की ओर होती है तो छाया पूर्वापर से दक्षिण की ओर होती है। अतः पूर्वापर से कोटि विपरीत दिशा में देते हैं। भुज यथा दिशा में होती है। छायाग्र से भुज पूर्व से विपरीत होता है। अतः छायाअग्र से शंकुवग्रगामी जो सूत्र है वह ग्रह की ओर जाता है। अतः उसी की दिशा में नलक यंत्र को निवेशित करके उसके भीतर के छिद्र में से ग्रह दिखाई देता है।

जलादि इस की दिशा से जितनी दूरी पर हो जलतल से ऊपर उस दिशा में उतनी दूरी से उतनी ऊँचाई से भूमि पर से अधोमुख करके देखने वाला व्यक्ति जल में देखकर देखने योग्य ग्रह, ग्रहण, शृंगोन्नति को देख सकता है।
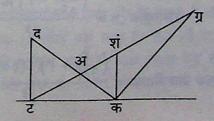
चित्र में 'ग्र' ग्रह है तथा शं क शंकु है जिसकी छायाग्र बिंदु ट है। ट छाया तथा भुज का कटाव (मिलान) बिंदु है। आचार्य ने जल में ग्रह छाया देखने के लिए श्लोक में शंकु को 'ट' बिन्दु पर रखने के लिए कहा है। अतः द ट शंकु गाड़ा। द ट तथा शं क बराबर तथा समानान्तर हैं। ∠द क शं = ∠शं क ग्र है। अतः यदि क स्थान पर जल (पात्र) हो तो ग्रह, द अ स्थान पर नलक स्थापित करके अधः मुख देखने से जल में दिखाई देगा।

इदानीमस्योपसंहारश्लोकमाह—

दर्शयेद्दिविचरं दिवि के वानेहसि द्युचरदर्शनयोग्ये।
पूर्वमेव विरचय्य यथोक्तं रञ्जनाय सुजनस्य नृपस्य॥१०६॥

उपसंहार के लिए श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— इस पूर्वोक्त प्रकार से कहे अनुसार प्रक्रिया द्वारा सुजनों तथा राजा को उनके आनन्द के लिए एवं उन्हें प्रसन्नता देने के लिए दिवाचर ग्रहों को (सूर्य, चंद्र) दर्शन योग्य स्थिति में आकाश में अथवा जल में दिखाना चाहिये।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदर लाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्य देव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

४

अथ पर्वसम्भवज्ञानमाह-

कलेर्गताब्दा रवि १२ भिर्विनिघ्नाश्चैत्रादिमासैः सहिताः पृथक्स्थाः।
द्विघ्नाः स्वनागाङ्कगजांश ८६८ हीनाः पञ्चाङ्ग ६५ भक्ताः प्रथमान्विताः स्युः॥१॥
मासाः पृथक् ते द्विगुणास्त्रिपूर्णबाणा ५०३धिका स्वाङ्कनृपांश १६९ युक्ताः।
त्रिभि ३ र्विभक्ताः फलमंशपूर्वं मासौघतुल्यैश्च गृहैर्युतं स्यात्॥२॥
सपातसूर्योऽस्य भुजांशका यदा मनू १४ नकाः स्याद्ग्रहणस्य संभवः।

सूर्य-प्रभा टीका— कलिगत वर्षों को (१२) बारह से गुणा करके चैत्रारंभ से गतमास संख्या को इसमें जोड़कर प्रथक् स्थापित करे। इसको २ (दो) से गुणा करने से प्राप्तफल का ८६८ वाँ भाग इस गुणनफल में से कम करके ६५ (पैंसठ) से विभक्त करने से प्राप्त फल को प्रथक् स्थापित फल में युक्त करने से चांद्रमास प्राप्त होते हैं। इनको प्रथक् दुगुणा करके ५०३ युक्त करके प्राप्तफल का १६९ (एक सौ उन्हत्तर) वाँ भाग इसी में युक्त करके तीन से विभक्त करे। प्राप्तफल अंशादि होता है। इन अंशादि प्राप्तफल को ३० से विभक्त करने से प्राप्तफल राश्यादि स्थान पर स्थापित करे। राशि स्थान पर पूर्व प्राप्त मासों को क्षेपित करे। इस प्रकार करने से सपात (पात सहित) सूर्य प्राप्त होता है। इस के भुजांश यदि १४ अंश से अल्प हो तो चंद्रग्रहण संभव होता है।

सूत्र रूप में—

कलिगताब्द × १२ + चैत्रगतमास = अ, माना।

$$\text{अ} + \frac{२ \times \text{अ}\left(१ - \frac{१}{८६८}\right)}{६५} = \text{ब, चांद्रमास।}$$

$$\frac{(२\text{ब} + ५०३)\left(१ + \frac{१}{१६९}\right)}{३} = \text{अंशादि प्राप्त फल।}$$

$$\frac{\text{अंशादि प्राप्त फल}}{३०} = \text{राश्यादि प्राप्त फल।}$$

राश्यादि प्राप्त फल+ब = सपात सूर्य।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि यदि युगरविमास ५१८४०००० में युग अधिमास १५९३३०० प्राप्त होते हैं तो कलिगत वर्षों में कितने होंगे? प्राप्तफल लगभग ३२$\frac{१}{२}$ मास गुणा कलिगताब्द। आचार्य ने १५९३३०० अधिमास के स्थान पर इसके आधे से गणना करके प्राप्तफल को २ से गुणा तथा ६५ से कुछ अधिक (६५/४/२१) से विभक्त करने को कहा है।

रविमास ५१८४०००० के दुगुणे तथा अधिमास १५९३३०० के ६५ गुणे का अंतर ५१८४००००×२ – ६५×१५९३३००=११५५०० होता है। ऊपर जो ६५ मास से कुछ अधिक प्राप्त हुआ है उसका मान ज्ञात करने के लिए इस अन्तर ११५५०० को गताब्द से गुणा करके युगरविमास ५१८४०००० को ६५ से गुणा करके विभक्त किया है।

$$\frac{\text{गताब्द} \times ११५५००}{६५ \times ५१८४००००}$$

$$= \frac{\text{गताब्द} \times २ \times ५७७५०}{६५ \times ५१८४००००} = \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५ \times ८९८}$$

अतः अन्तर –

$$= \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५} - \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५ \times ८९८} = \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५}\left(१ - \frac{१}{८९८}\right)$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

ग्रहण होने के लिए मानैक्यार्ध से विक्षेप न्यून होना चाहिये। चंद्रग्रहण के लिए मध्यम मानैक्यार्ध ५६ कला होना चाहिये। सूर्यग्रहण के लिए ३२ कला होना चाहिये। ५६ कला शर १२ भुजांश पर होता है तथा ३२ कला शर ७ भुजांश पर होता है। अतः इतना विक्षेप सपात चन्द्र का साधित होता है। दर्शान्त में जितना चंद्रमा होता है उतना ही रवि होता है। पौर्णमासिन्त पर इनका अंतर छः राशि अधिक होता है। यहाँ भी तुल्य भुज होता है। अतः सपात सूर्य का शर ज्ञात करे। सपात सूर्य साधन करने के लिए अनुपात क़िया। सूर्य पात के कल्प भगणैक्य को १२ से गुणा करके राश्यात्मक बना लेवे। यदि कल्प चन्द्र

मास ५३४३३३०००००० में सूर्य की ५४६२७७३४०१६ राशि प्राप्त होती है (क्योंकि एक कल्प चांद्रमासों में सूर्य तथा राहु के (राहु वक्रि) भगण ४५५२३११६८ होते हैं। इनकी राशि बनाने के लिए इसको १२ से गुणा करने से ४५५२३११६८×१२=५४६२७७३४०१६ राशि प्राप्त होती है) तो एक चांद्रमास में सूर्य की एक राशि प्राप्त होगी तथा शेष $\frac{३५८३३०२०४८०}{५३४३३३००००००}$ अंश प्राप्त होंगे। यह $\frac{२}{३}$ के अधिक तुल्य स्वल्पांतर से होगा। यहाँ अंश तथा हार १७८१११००००० से विभाजित होकर अंश में लगभग २ तथा हार में ३ प्राप्त होता है तथा अंश में शेष २१०८२०४८० प्राप्त होता है अर्थात

$$\frac{३५८३३०२०४८०}{५३४३३३००००००} = \frac{२+\frac{२१०८२०४८०}{१७८१११०००००}}{३} = \frac{२}{३}+\frac{२}{३}\times\frac{१}{१६९}$$

$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$। अर्थात् पूर्वोक्त प्राप्त एक राशि में $\frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$ अंश और युक्त करना होगा।

कलियुगादि में पात का क्षेपक ५।३।१३ राश्यादि था तथा सपात सूर्य ०।१५।२० राश्यादि था अतः इन दोनों का योग रा. ५।१८°।३३' हुआ। यह विलोम विधि से ५ रा १८अं. ३३क = १६८ अंश ३३क = १६८$\frac{२}{३}$ तुल्य है। इसको उपरोक्त सूत्र में जोड़ना है।

$$\text{सपात मध्यम सूर्य} = \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\times \text{गताब्द} + १६८\frac{२}{३}$$

$$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\text{गताब्द} + \frac{५०३}{३}+१$$

$$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\text{गताब्द} + \left(\frac{५०३}{३}+\frac{५०३}{३\times१६९}\right) \text{स्वल्पांतर से।}$$

$$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\text{गताब्द} + \frac{५०३}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$$

$$\text{सपात मध्यम सूर्य} = \frac{२\,\text{गताब्द} + ५०३}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

अब मध्यम सूर्य से स्फुट सूर्य आनयन करने पर अन्तर स्थूल २ अंश का होता है। अतः पूर्व में जो सूर्य भुज कहा है वह स्पष्ट सूर्य से इतना न्यून है। अन्यथा मानैक्यार्ध भुज १४ अंश तुल्य शर प्राप्त होता है अतः चंद्रग्रहण संभव होने के लिए सूर्य का भुज समीप के पात से १४° से अल्प होना चाहिये।

विशेष— शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ की टीका में मल्लिकार्जुन सूरी ने ग्रहण संभव कहा हैं। विस्तार के लिए मूल ग्रंथ का अवलोकन करें।

"कल्पादेर्द्युगणाद्राहुः सबीजो भगणादिकः।
भगणाद्यर्कसंयुक्तः सषड्भोंऽशीकृतस्ततः ॥१॥
खधृत्याप्तः पर्वगणो नगैः शेषास्तु पर्वपः।
केन्दुशक्रधनाधीशवरुणाग्नियमाः क्रमात् ॥२॥
एते ग्रहणपर्वेशाः खधृत्याप्तस्य तद्गतम्।
गम्यं वा धृतिशक्रोनं तदा गासोऽर्कचन्द्रयोः ॥३॥"

इसी प्रकार वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के चन्द्रग्रहणाधिकार अध्याय ६ में ग्रहण संभव की स्थिति के लिए कहा हैं। यह वशिष्ट-पौलिश सिद्धान्तानुसार हैं—

"राहोः स 'षट्कृति कलां हित्वांशं तच्छशाङ्कविवरांशैः।
ग्रहण त्रयोदशान्तः पञ्चदशान्तस्तमस्तस्य ॥२॥"

पंचसिद्धांतिका के ही पौलिश सिद्धान्तानुसार अध्याय ७ में ग्रहणसंभ कहा है—

"राहोः सषट्कृति कलां हि (त्वांशं) त(च्छ) शाङ्कविरांशैः।
ग्रहणं त्रयोदशान्तः शशिनो भानोस्तथाष्टान्तः ॥५॥"

अथ सूर्यग्रहार्थ विशेषः—

गृहार्ध १५° युक्तस्य सपातभास्वतो भुजांशकान् गोलदिशोऽवगम्य च ॥३॥
ज्ञेयोऽर्को रविसंक्रमाद्गतदिनैर्दशान्तिनाडीनता-
द्वेदां ४ शेन गृहादितोनसहितः प्राक् पश्चिमेऽस्यापमः।
अक्षांशैः खलु संस्कृतो रसलवेनास्याथ ते संस्कृताः
पताढ्यार्कभुजांशका यदि नगो ७ नाः स्युस्तदार्कग्रहः ॥४॥
रूपं १ वियत्० पूर्णकृतान् ४० सपादान् १५ क्षिप्त्वा सपाते प्रतिमासमर्के।
तत्सम्भवं प्रागवलोक्य धीमान् ग्रहान् ग्रहार्थं विदधीत तत्र ॥५॥

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्तानुसार सपात सूर्य ज्ञात करके उसमें आधि

राशि अर्थात् १५ अंश युक्त करके उसके भुजांश के अनुसार सूर्य का गोल उत्तर अथवा दक्षिण ज्ञात करे। अब रवि की संक्रान्ति से गत दिन ज्ञात करके उसके तुल्य अंश कल्पित करे तथा गत संक्रांतिराशि तुल्य राशि माने और इनसे अमावस्यान्तकाल की स्थूल नतघटि प्राप्त करे। इसका चतुर्थ भाग राश्यादि फल में युक्त करे अथवा हीन करे। सूर्य यदि पूर्वाह्न में हो तो यह (चतुर्थांश) फल हीन करे तथा अपराह्न में हो तो युत करे। इस प्रकार प्राप्त सायन सूर्य के अंशों की क्रांति साधित करे। क्रांत्यक्षांश को एक दिशा में होने पर योग करने से तथा भिन्न दिशा में होने से अंतर करने से नतांश होते हैं। इन नतांश के छठे भाग को सपात सूर्य में एक दिशा में होने पर प्राप्त योग में योग करे तथा अन्तर में घटावें। इस प्रकार प्राप्त सूर्य के अंश यदि ७ से अल्प हो तो सूर्य ग्रहण होने की संभावना होती है।

यदि इस ही प्रथम अग्रगामी अमावस्या को सूर्यग्रहण न हो तो सपादसूर्य में रा.१ अंश ० कला ४० विकला १५ प्रतिमास युक्त करते जाने से आगामी किसी अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना का ज्ञान होता है, अथवा अन्यथा भी ज्ञात कर सकते हैं। यदि ग्रहण संभावना व्यक्त हो तो आगे अध्याय में कहे अनुसार सूर्य, चंद्र, पात आदि की वास्तविक स्थिति ज्ञात करके ग्रहण होने का समय तथा उससे संबंधित अन्य अवयवों का साधन करे।

उपपत्ति— सपात सूर्य के भुजांश को शर ज्ञात करने के लिए पृथक् स्थापित करे और सूर्य ग्रह के शर में नत का संस्कार करे। हमें ग्रहण संभव दिन का दिनमान ज्ञात है तथा अमान्त काल का समय ज्ञात है। अतः इन दोनों के अंतर करने से हमें सूर्य के नत काल ज्ञात होते हैं। चंद्रमा तथा सूर्य का अक्षांश (स्थान) लम्बन के कारण प्रभावित होता है यह नतघटि का लगभग चतुर्थांश होता है। अतः नतकाल में लम्बन के कारण नतकाल का चतुर्थांश और जोड़ देने से यह $\frac{५}{४}$ नतकाल तुल्य होता है तथा प्रत्येक राशि उदित होने में स्वल्पांतर से लगभग ५ घटी (दो घंटा) लेती है अतः नतकाल की राश्यादि मान $\frac{५}{४} \times \frac{\text{नतकाल}}{५}$ राश्यादि होगा। अर्थात् नतकाल÷४ होगा स्वल्पांतर से। यह नतकाल का चतुर्थांश भाग सूर्य में से हीन युक्त पूर्वोक्तानुसार करने से ग्रहण आरंभ स्थान प्राप्त होता है।

इसके पश्चात सूर्य के द्वारा आचार्य ने सूर्य क्रांति ज्ञात करने के लिए

कहा है। इस प्रकार वित्रिभ लग्न (पूर्व प्राप्त हीन युक्त सूर्य) सूर्य से आगे स्थित होता है तथा वित्रिभ लग्न की क्रांति तथा अक्षांश का संस्कार करने से नतांश प्राप्त होता है। अतः सूत्र क्रांतिज्या = $\frac{\text{परमक्रांतिज्या} \times \text{सूर्य}}{\text{त्रिज्या}}$ के द्वारा सूर्य की क्रांति ज्ञात करे तथा क्रांति एवं सूर्य के भुजांश के द्वारा सूर्य का नतांश ज्ञात करे तथा उसको वित्रिभ लग्न का नतांश तुल्य स्वल्पांतर से माने। यदि नतांश ४५ अंश हो तो त्रिज्या में परम अवनति ४८।४६ (नति) प्राप्त होती है तो ४५ अंश की ज्या में कितनी होगी? अर्थात्

$$\frac{\text{ज्या } ४५ \times ४८।४६}{३४३८} = \frac{२४३१ \times ४८।४६}{३४३८} = ३४ \text{ कला } ३० \text{ विकला।}$$

इतने शर में कितना भुज भाग उत्पन्न होगा यह ज्ञात किया। यदि ७० कला १५ अंश में प्राप्त होते हैं तो ३४।३० नतिकला में कितना होगा? फल $\frac{(३४ \text{ क. } ३० \text{ वि.}) \times १५}{६०}$ = ७ अंश २४ कला होगा। यह ४५ अंश का छठा (स्वल्पांतर से) भाग है। अतः सपात सूर्य में ४५° वित्रिभ लग्न के छठा भाग तुल्य अंतर पड़ेगा। अतः आचार्य ने उसे (सपात सूर्य को) नतकाल (वित्रिभ लग्न तुल्य) के छठे भाग से बढ़ाने अथवा घटाने के लिए कहा है।

यदि चंद्र का पथ क्रांतिवृत्त के उत्तर की ओर हो तो क्रांति वृत्त पर वित्रिभ लग्न खमध्य से दक्षिण में होगा अतः चन्द्रमा को नति के तुल्य घटाते हैं अर्थात् सपात सूर्य को घटाते हैं तथा विपरीत स्थिति में बढाते (युत) हैं।

विशेष— आचार्य ने जो इस अधिकार में कहा है वह अन्य प्रकार से पूर्ववर्ति आचार्यों ने भी कहा है यथा लल्लाचार्य, श्रीपति, वराहमिहिर, सूर्यसिद्धान्त आदि।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के पर्वसम्भवाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदर लाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्य देव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

अथ चन्द्रग्रहणाधिकारः

इदानीं ग्रहणं विवक्षुस्तदारम्भप्रयोजनमाह—

बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।

सदुपयोगि जने सचमत्कृति ग्रहणमिन्द्विनयोः कथयाम्यतः ।।१।।

ग्रहण कहने के पूर्व ग्रहण का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— स्मृति, पुराणादि के ज्ञाताओं का कहना है कि जप, दान, यज्ञाहुति इत्यादि ग्रहण के समय करना आमजन के लिए चमत्कारिक रूप से बहुत उपयोगी तथा बहु फल को देने वाला होता है। अतः उन ग्रहण को भास्कराचार्य ज्ञात करने के लिए गणित क्रिया का यहाँ सुन्दर रूप में वर्णन करेंगे।

विशेष— स्मृतिपुराण वचन— इनमें धार्मिक कृत्य ग्रहण समय पर विस्तार से कहे हैं—

''स्नानं स्यादुपरागादौ मध्येहोमसुरार्चने। सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात् पङ्केगौरिव सीदति। स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने।। सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः। द्वयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम्।।

उषस्युषसि यत् स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ। चन्द्रसूर्योपरागे च प्राजापत्येन तत् समम्।।''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणवासना में इस संबंध में बहुत कहा है। अन्य आचार्यों ने भी कहा है जो आचार्योक्त के अनुरूप है।

इदानीं ग्रहणोपयोगिनीमितिकर्तव्यतामाह—

समगृहांशकलाविकलौ स्फुटौ रविविधू विदधीत रविग्रहम्।

समलवावयवौ तु विधुग्रहं समवगन्तुमगुं च तदोक्तवत् ।।२।।

ग्रहण ज्ञान के लिए उपयोगी क्रिया—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य ग्रहण के लिए सूर्य चंद्र के अक्षांशादि अवयव

जब समान हो वह समय ज्ञात करे तथा चंद्रग्रहण के लिए पूर्णमासी का स्पष्ट समय ज्ञात करे तथा जब उनके अंश कलादि समान हो केवल राशि में छः का अन्तर हो, वह स्पष्ट समय ज्ञात करे और उक्त समय पर राहु की स्थिति भी ज्ञात करे।

विशेष— आचार्य ने स्वकृत भाष्य में कहा है कि तिथिअन्त कालिक (अमावस्या) के समय सूर्य, चंद्र तथा राहु को ज्ञात करें। सूर्य तथा चन्द्र में देशांतर, भुजांतर, उदयांतर आदि कर्म करके उनका आनयन करे। इनका नतकर्म भी पूर्वोक्त प्रकार से साधित करे। चन्द्रग्रहण के लिए इसी प्रकार पूर्णमासी का आनयन करे।

अन्य आचार्यों ने भी यही बात अपने-अपने ग्रंथों में अपने प्रकार से कही है।

इदानीमर्केन्द्वोः कक्षाव्यासार्धे आह—

नगनगाग्निनवाष्टरसा ६८९३७७ रवे रसरसेषुमहीषु ५१५६६ मिता विधोः।
निगदितावनिमध्यत उच्छ्रितिः श्रुतिरियं किल योजनसंख्यया।।३।।

सूर्य-चंद्र की कक्षा का व्यासार्ध—

सूर्य-प्रभा टीका— रविगोल केन्द्र की पृथ्वी गोल केंद्र से दूरी ६८९३७७ योजन तथा चंद्रगोल केन्द्र की पृथ्वी गोल केंद्र से दूरी ५१५६६ योजन तुल्य है। यह इनका कर्ण है। भूकेंद्र से इतने योजन ऊपर इनकी कक्षा है।

उपपत्ति— आचार्य ने कक्षाध्याय में इन ग्रहों (सूर्य चंद्रादि) की कक्षा की परिधि कही है लेकिन व्यास नहीं कहा है। आचार्य ने वहाँ सूर्य की कक्षा की परिधि ४३३१४९७।३० तथा चन्द्र कक्षा परिधि ३२४००० योजन कही है। अतः अनुपात किया कि यदि ३९२७ योजन परिधि में १२५० योजन व्यास होता है तो सूर्य तथा चंद्र की यहाँ कही गई कक्षा परिधियों में उनकी कक्षा का व्यास कितना होगा? इस प्रकार करने से आचार्योक्त संख्या प्राप्त होती है। यहाँ आचार्य ने १२५० व्यास के लिए परिधि ३९२७ कही है अर्थात् परिधि तथा व्यास का अनुपात जो सदा स्थिर रहता है उसका मान आचार्य के अनुसार $\frac{३९२७}{१२५०}$ भिन्न द्वारा व्यक्त होता है। यह आधुनिक π (पाई) के मान के अत्यन्त आसन्न ३.१४१६ है।

अतः $\frac{३९२७}{१२५०}$ × ६८९३७७ × २ = ४३३१४९३।३० तथा

$\frac{३९२७}{१२५०}$ × ३२४००० × २ = ३२३६९९.४९ प्राप्त होता है।

ललाचार्य ने चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ—

"खखनखाद्रिहृतं भयुजो भवेद् ग्रहयुजो निजपर्ययहृत् पृथक्।

शरयमाङ्गहता भनवाग्निहृद् ग्रहवृत्तेः श्रवणः फलमुच्यते॥३॥

यहाँ लल्लाचार्य ने π का यही उपरोक्त मान कहा है।

इदानीमस्य योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणार्थं कलाकर्णं तावदाह—

मन्दश्रुतिर्द्राक्श्रुतिवत् प्रसाध्या तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना।

त्रिज्याकृतिः शेषहृता स्फुटा स्याल्लिप्ताश्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्च॥४॥

योजनात्मकर्ण से कलाकर्ण की गणना—

सूर्य-प्रभा टीका— शीघ्रफल आनयन करने में सूर्य-चंद्र के शीघ्रकर्ण तथा मंदकर्ण साधित करने होते हैं। उस कर्ण को द्विगुणित त्रिज्या में से घटा कर शेष से त्रिज्या के वर्ग में भाग देने से प्राप्त फल कला कर्ण होता है। इसी प्रकार चंद्रमा का ज्ञात करे।

उपपत्ति— जो मन्द नीचोच्च वृत्त परिधि अंश कहे गये हैं वे त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध के लिए कहे हैं। जो ग्रह के कर्ण प्राप्त होते हैं उस कर्णानुसार ग्रह कक्षा होगी। अतः त्रैराशिक से उसको परिणत किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी मंद परिधि अंश होते हैं तो कर्ण व्यासार्ध में कितने होंगे? इस प्रकार जो परिधि प्राप्त हो उससे असकृत् कर्मद्वारा कर्ण का आनयन करे। इस प्रकार कलाकर्ण स्फुट होता है। यह असकृत कर्म जो लम्बा तथा मुश्किल है को त्याग कर सकृत्कर्म के द्वारा कलाकर्ण स्फुट करते हैं। प्रथम यह कर्ण प्राप्त हो उसको त्रिज्या रूप कल्पित करके यहाँ बताये अनुसार कर्ण स्फुट करे। यदि कर्ण त्रिज्या से अल्प हो तो जितना न्यून है उतना त्रिज्या में जोड़ देवें और जितना अधिक हो उतना त्रिज्या में से घटा देवें तथा प्राप्त शेष से अनुपात करें कि यदि (२ त्रि – कर्ण) त्रिज्या में त्रिज्या तुल्य कर्ण प्राप्त होता है तो त्रिज्या मान में कितना होगा? इस प्रकार अनुपात करने से स्फुट कर्ण संकृत प्राप्त होगा।

इदानीं योजनात्मककर्णस्य स्फुटत्वमाह—

लिप्ताश्रुतिघ्नस्त्रिगुणेन भक्त स्पष्टो भवेद्योजनकर्ण एवम्।

योजनात्मक कर्ण का स्फुटीकरण—

सूर्य प्रभा टीका— लिप्ताकर्ण को योजनात्मक कर्ण से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से स्फुट योजना कर्ण प्राप्त होता है।

उपपत्ति— यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना स्फुट कला कर्ण होता है तो योजनात्मक व्यासार्ध में कितना होगा? प्राप्त फल भूमध्य से ग्रह की ऊँचाई तक के योजन होते हैं।

भास्कर प्रथम ने **महाभास्करीय** के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कलाकर्ण हतावेतौ विष्कम्भार्धविभाजितौ।
स्फुट योजनकर्णो तौ सूर्याचन्द्रमसोविर्दुः ।।३।।"

भास्कर प्रथम ने **लघुभास्करीय** के अध्याय ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अविशेषकलाकर्णताडितौ त्रिज्यया हृतौ।
स्फुटयोजनकर्णो तौ ययोरेव यथाक्रमम्।।३।।"

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निजमृदुश्रवणेन हते श्रुती त्रिभुगुणेन हृते भवतः स्फुटे।
श्रवणमध्यम भुक्तिहतोऽथवा निजनिजस्फुट भोगविभाजितः।।५।।"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के अध्याय २१ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कक्षा व्यासार्धगुणा मण्डललिप्ता विभाजिता कर्णः।
स्वकलाकर्णेन गुणः कर्णस्त्रिज्याहृतः स्पष्टः।।३१।।"

वटेश्वराचार्य ने **वटे.सि.** के **चन्द्रग्रहणाधिकार** में आचार्योक्त कहा है। यथा—

स्वाविशेष कलिकाश्रवणघ्नं व्यासखण्डविहृतं स्फुटमाहुः।५ $\frac{१}{२}$।

इदानीं योजनबिम्बान्याह—

बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तु ६५२२ संख्यानीन्दोः खनागाम्बुधि ४८० योजनानि।।५।।

भूव्यासहीनं रविबिम्बमिन्दुकर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम्।
भूविस्तृतिर्लब्धफलेन हीना भवेत् कुभाविस्तृतिरिन्दुमार्गे।।६।।

योजन बिम्ब—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य बिंब व्यास ६५२२ योजन तथा चंद्र बिंब व्यास ४८० योजन होता है। भूव्यास को रवि बिंब व्यास में से घटाकर चंद्र के कर्ण से गुणा करके सूर्य कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल को भू व्यास में से घटाने से चन्द्रमार्ग (चन्द्रस्थान) पर कुभा (भूछाया) का विस्तार (व्यास) होता है। ये योजनात्मक बिंब हैं। कुभा के मान को राहु का योजनात्मक मान कहा है।

उपपत्ति— जिस दिन सूर्य की स्फुट गति मध्यगति तुल्य हो उस दिन सूर्योदय काल पर चक्रकला व्यासार्ध तुल्य दो यष्टि केदृ तथा दृस्प के मूल के मिलान बिन्दु दृ से ग्रह के वेध से जो केस्प का मान होता है वह रविबिंब कला होता है।
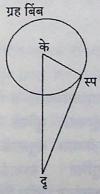
चित्र में के = ग्रहबिंब का केंद्र है। दृ = दृष्टी स्थान है। दृके = दृष्टिसूत्र है। दृष्टि स्थान दृ से ग्रह बिंब की स्पर्श रेखा = दृस्प है। के स्प = ग्रह बिंब व्यासार्ध है। ग्रह बिंब व्यासार्ध के सम्मुख दृष्टि स्थान गत कोण = स्फुट बिम्बार्धकला ∠दृ स्प के = ९०°। उच्च स्थान में ग्रह बिंब छोटा तथा नीच स्थान में बड़ा होता है तथा वहाँ गति भी क्रमशः छोटी तथा अधिक होती है। अतः बिंबों की निष्पत्ति गति की निष्पत्ति के तुल्य होती है। रविबिंब कला ३२।३१।३३ कलादि होता है तथा पूर्णिमा को चंद्र की मध्यमगति स्पष्ट ३२।०।९ कला प्राप्त होती है। बिंबकला को योजनात्मक करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना मान का बिंब होता है तो पठित कर्ण

योजन में कितना होगा? इस प्रकार करने से ६५२२ योजन प्राप्त होता है, यह सूर्यबिंब मान है तथा चंद्रबिंब मान ४८० तुल्य प्राप्त होता है। सूर्य के व्यास से भूमि का व्यास अल्प होने पर ही उसकी छाया सूचिकार होगी तथा दूर तक चंद्र कक्षा से आगे तक जाती है। रविकर्ण में रवि भूमि व्यासान्तर योजन ४९४१ प्राप्त होते हैं तो चंद्र कर्ण में कितने? फल भूव्यास के अपचय योजन होते है। इसमें से भूव्यास घटाने से चंद्र कक्षा में भूभा का व्यास होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २१ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मृद्दहनजलमयानां विष्कम्भो योजनैः कुविनेन्दूनाम्।
शशिवसुतिथिभि १५८१ र्यमपक्ष शररसै ६५२२ शून्यवसुवेदैः ४८०॥३२॥
कुवर्कव्यासान्तर गुणमिन्दुस्फुटकर्णमर्ककर्णहृतम्।
प्रोह्य भुवो भूच्छाया विष्कम्भश्चन्द्रकक्षायाम्॥३३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर के अध्याय ५ के श्लोक ४$\frac{1}{2}$ में आचार्योक्त कहा है—

"इन्दुश्रुतिः स्फुटमहर्यतिभूतधात्रि व्यासान्तरेण गुणिता रविकर्ण भक्ता।
भूविस्तृतेः फलमपोह्य वदन्ति शेषं छायां भुवः शशधरभ्रमणप्रदेशे॥"

सूर्यसिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार-४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्फुटेन्दु भुक्तिर्भूव्यास गुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची, महीव्यास स्फुटार्क श्रवणान्तरम्॥४॥
मध्येन्दुव्यास गुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यां तु तमो लिप्तास्तु पूर्ववत्॥५॥"
"सार्धनि षट् सहस्राणि योजनानि विवस्वतः।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः सहा शीत्या चतुश्शतम्॥१॥
स्फुट स्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्योद्धृतौ स्फुटौ॥$\frac{1}{2}$॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है यथा—

"कुमितिः क्षितिनविस्तारान्तरे चन्द्रार्कश्रवणोद्धृते हते।
त्रिभमौर्विकया फलान्तरं मानं वा तमसः कलागतम्॥१२॥"
"वेन कर्णहृदिलार्कविशेष चन्द्रकर्ण निहतो विफला भूः॥६॥"

इदानीं योजनानां कलाकरणार्थमाह—

सूर्येन्दुभूभातनुयोजनानि त्रिज्याहतान्यर्कशशीन्दुकर्णैः।
भक्तानि तत्कार्मुकलिप्तिकास्तास्तेषां क्रमान्मानकला भवन्ति॥७॥

योजनात्मक कर्ण को कलात्मक बनाना—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य, चंद्र तथा भूच्छाया के व्यासों को त्रिज्या से गुणा करके क्रमशः सूर्य, चंद्र तथा चंद्र मन्द कर्ण से विभाजित करने से उनके कला कर्ण का मान क्रमशः प्राप्त होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि यदि योजनात्मक व्यासार्ध (सूर्य की दूरी) में इतना बिंब मान होता है तो त्रिज्या व्यासार्ध में कितना होगा? प्राप्तफल का चाप लघुज्या विधि से ज्ञात करे।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही **भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय** के ग्रहणाधिकार में कहा है। यथा—

"विष्कम्भार्धहतौ व्यासौ स्फुटयोजन भाजितौ।
भवतस्तौ कलाव्यासावुष्णशीतलतेजसौः॥५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिभगुणेन हतानि रविश्रुतिस्मरसुहृच्छ्रवणोपहतान्यतः।
फलधनूंषि वपूंषि फलानि वा हिमगु-तिग्ममयूख-शशिद्विषाम्॥८॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २१ स्फुट गति वासना में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तद्‌गुणितं व्यासार्धं शशिकर्णहृतं तमः प्रमाणकलाः।
एवं त्रिज्यारविशशिविष्कम्भगुणा स्वकर्णहृता॥३४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एतानि भास्करमृगाङ्कमहीप्रमाणां त्रिज्याहतानि तनुविस्तृतियोजनानि।
भक्तानि भानुशशिशीतकरश्रवोभिर्लिप्तामयानि हि भवन्ति यथाक्रमेण॥६॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविचन्द्रतमः प्रविस्तरास्त्रिज्याघ्ना रविचन्द्र चन्द्रजैः।
विभजेत्स्फुटकर्णकैः क्रमात तद्बिम्बानि कलागतानि वै॥११॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण बिम्बकलानयनमाह—

भानोर्गतिः स्वदश १० भागयुतार्धिता वा
बिम्बं विधोस्त्रि ३ गुणिता युगशैल ७४ भक्ता।
तिथ्यद्रि ७१५ हीनशशिभुक्तिरिषुद्वि २५ भक्ता
नन्दाक्षि २९ युग्भवति वा विधुबिम्बमेवम् ।।८।।

प्रकारांतर से बिंबकला ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्यगति में अपना दशमांश युक्त करके उसका आधा करने से रवि का कला बिंब मान प्राप्त होता है। चंद्रमा की गति को (३) तीन से गुणा करके ७४ से विभक्त करने से चंद्र बिंब का कलात्मक मान होता है, अथवा चन्द्र गति में से ७१५ घटा कर २५ से विभक्त करने से प्राप्तफल में २९ युक्त करने से चंद्र का कलात्मक बिंब मान होता है।

उपपत्ति— त्रिज्या से बड़ा कर्ण हो तो ग्रह बिंब लघु होता है तथा गति लघु हो तो ग्रह भूमध्य से दूर होता है। कर्ण अल्प हो तो बिंब पृथु (बड़ा) तथा गति अधिक होती है। अतः त्रैराशिक से यदि योजनात्मक गति ११८५८।४५ में ६५२२ योजन बिंब प्राप्त होता है तो कला गति में कितनी?

$$\frac{६५२२}{११८५८।४५} = \frac{६५२२}{११८५८\ \frac{३}{४}} = \frac{६५२२\times४}{११८५८\times४+३} = \frac{२६०८८}{४७४३५}$$

$$= \frac{११}{२०} = \frac{१}{२}\left(१+\frac{१}{१०}\right)$$ अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए $\frac{४८०}{११८५९} = \frac{३}{७४}$ यहाँ १६० से ऊपर नीचे विभक्त किया है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

७१५ तुल्य गति खण्ड में २९ तुल्य बिंब खण्ड प्राप्त होता है। उपरोक्त सूत्र से $\frac{३}{७४}\times ७१५ = २९$ कला स्वल्प. प्राप्त होता है। चंद्र गति मध्यम ७९० कला होती है जिसके लिए $\frac{३}{७४}\times ७९० = ३२$ कला गति प्राप्त होती है। अर्थात् शेष ७५ कला चंद्र गति के लिए २९ कला से ३ कला अधिक होती है। अथवा गति शेष ७५ को २५ से विभक्त करने से बिंब शेष ३ कला प्राप्त होता है और २९+३ = ३२ कला पूर्वप्राप्त होता है, चंद्र की ७९० मध्यम गति के लिए। अतः आचार्य ने चंद्रगति में से ७१५ घटा कर (७९०–७१५ =७५)

शेष (७५) को २५ से विभक्त करने से प्राप्त ३ कला को २९ कला में जोड़ने के लिए कहा है। सो उपपन्न हुआ।

विशेष— लल्लाचार्य ने भास्करोक्त प्रकार ही गणना करके सूर्य, चंद्र तथा भूभा के कलात्मक व्यास कहे हैं। अध्याय ५ चंद्रग्रहणाधिकार शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ–

"शिवहता द्विभहृच्छशिनो गतिस्तनुकलाः स्युरिनस्य नखोद्धृताः।८$\frac{१}{२}$।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

"रवि शशि भुक्ती भवदशगुणे नखैः स्वजिनैर्हृते माने।५$\frac{१}{२}$।"

ब्रह्मगुप्तोक्त $\frac{११}{२०}$ को भास्कराचार्य ने $\frac{१}{२}\left(१+\frac{१}{१०}\right)$ लिख दिया तथा $\frac{१०}{२४७}$ चं. गति को भास्कराचार्य ने

$$\frac{१० \text{ चं.ग.}}{\frac{७४०}{३}} = \frac{\text{चं.ग.}}{\frac{७४}{३}} = \frac{३ \text{ चं.ग.}}{७४}$$ लिख दिया है।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के ग्रहणाधिकार-५ में आचार्योक्त प्रकार से अलग भिन्न कही हैं। यथा–

"नवांशाः पञ्चभोगस्य भूतवर्गांश एव च।
स्वतुरीयविलिप्ताभिर्युतहीने तनू स्फुटे।।६।।
सूर्याचन्द्रमसोर्विद्धि राहुबिम्बं च कथ्यते।
षड्क्त्यंशश्चन्द्रभोगस्य षोडशांशो विलिप्तिकाः।।७।।"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रुद्रैः पंत्तया रविशशिगतिताडिते वा विभक्ते कृत्या (२०)
भूभृज्जलधिनयनै २४७ स्ते तयोर्मान लिप्ताः।।९।।

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणराधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्फुटभुक्ती क्य-क्न-घ्नयौ खेनै रभिसै हृते बिम्बे।।५।।"

खण्डखाध्याय के अध्याय ४ के श्लोक २ पूर्वार्ध में आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं राहोः प्रकान्तरेण कलाबिम्बमाह—

भानोर्गतिः शर ५ हता रविभिः १२ विभक्ता
चन्द्रस्य लोचन २ गुणा तिथि १५ भाजिता च।
लब्धान्तरं भवति वावनिभाप्रमाणं
भूभा विधुं विधुरिनं ग्रहणे पिधत्ते॥६॥

राहु (भूछाया) का प्रकारांतर से कलाबिंब मान—

सूर्य-प्रभा टीका— रविगति को पांच (५) से गुणा करके बारह से विभक्त करके प्राप्तफल को अलग स्थापित करे और चंद्रगति को दो से गुणा करके पंद्रह (१५) से विभक्त करके फल प्राप्त करे। इन दोनों कलात्मक फलों को परस्पर घटाने से भूभाबिंब का प्रमाण होता है। भूभा चंद्रग्रहण में चंद्रमा को छादित करती है तथा सूर्य ग्रहण में सूर्य को चंद्रमा छादित करता है।

उपपत्ति— सूर्य तथा भूमि के व्यासान्तर योजन से रवि की कक्षा को कलात्मक करने के लिए अनुपात किया कि यदि गति योजन में ११८५९ गति कला प्राप्त होती है तो सूर्य-भू व्यासान्तर योजन में कितनी होगी? यहाँ सूर्य तथा भूमि व्यासान्तर योजन ६५२२–१५८१ =४९४१ योजन होता है।

$$\text{प्राप्तफल } \frac{४९४१}{११८५९\frac{३}{४}} = \frac{५}{१२} \text{ स्वल्पांतर से।}$$

अब भूव्यास की चंद्रकक्षा से लिप्ताकरण करने के लिए अनुपात किया कि यदि गतियोजन ११८५९$\frac{३}{४}$ में चंद्र गतिकला प्राप्त होती है तो भूव्यास योजन १५८१ में कितनी होगी?

$$\text{प्राप्तफल } \frac{१५८१}{११८५९\frac{३}{४}} = \frac{२}{१५} \text{ स्वल्पांतर से।}$$

यह प्राप्तफल भूव्यास कला होता है। इसमें से पूर्वप्राप्त कला को घटाने से ऊपर की ओर जाती हुई भूच्छाया बडी से छोटी होती हुई, शंकु के आकार में होती है।

शेष उपपत्ति गोलाध्याय में कही जावेगी।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रमताडितरविभुक्त्या हीना हघ्नी हिमांशुगतिः।
चीनै भक्ता कलिका पूर्वा स्यान्मेदिनीच्छाया॥६॥"

आचार्य ने यहाँ भूभा = $\frac{८ \text{चं.ग.} - १२ \text{र. ग.}}{६०}$ कहा है जो भास्करोक्त ही है। अन्य आचार्यों ने भी यही सूत्र कहा है। जिसको भास्कराचार्य ने अलग-अलग संख्या में कहा है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"गुणितयोर्भुजगैः शरलोचनैः खरसहृद् विवरं तमसोऽथवा॥६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"तत्त्वाष्टगुणितभुत्तयोर्विवरं षष्टयाहतं तमसः॥६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ५–
"वाणैर्द्वाभ्यामथ विनिहतेऽर्कैर्दिनैस्ते विभक्ते लब्ध्योर्यद्वा भवति विवर सैहिंकेयस्य बिम्बम्॥६॥"

इदानीं चन्द्रविक्षेपानयनमाह—

सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्या खभैः २७० हता व्यासदलेन भक्ता।
सपातशीतद्युतिगोलदिक् स्याद्विक्षेप इन्दोः स च बाणसंज्ञः॥१०॥

चन्द्र विक्षेप ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस समय पर विक्षेप (शर) ज्ञात करना हो उस समय तात्कालिक चन्द्र तथा पात का योग करे। चन्द्र ग्रहण के समय भी समकल काल पर चन्द्रमा तथा तात्कालिक पात का योग करे। उसकी ज्या को २७० से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल कलात्मक चन्द्र विक्षेप होता है जिसकी बाण संज्ञा होती है। यदि सपात चंद्र छः राशि से अल्प हो तो इस विक्षेप कला की दिशा उत्तर होती है तथा अधिक हो तो विक्षेप कक्षा की दिशा दक्षिण होती है।

उपपत्ति— चन्द्रमा अपने विमण्डल में भ्रमण करता है। क्रांतिवृत्त तथा चंद्र विमण्डल का संपात पात संज्ञक होता है। यह पात मीनान्त से विलोम दिशा में भ्रमण करता है। पात से आगे तीन राशि अन्तर पर चंद्र विमण्डल ४।३० अंश क्रांतिवृत्त से दूर उत्तर की ओर होता है और पात से दक्षिण की ओर पीछे

की तरफ विमण्डल तथा क्रांतिवृत्त का अंतर ४।३० अंश होता है। विमण्डल गत चंद्र का क्रांतिवृत्त से जो अंतर होता है वह दक्षिणोत्तर विक्षेप होता है। उसको ज्ञात करने के लिए चंद्र तथा पात का अंतर ज्ञात करते हैं जिसके लिए चंद्र तथा पात का योग करते हैं, क्योंकि पात की विलोम गति होती है। इस सपात चंद्र की ज्या का अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में परम २७० कला तुल्य विक्षेप होता है तो प्राप्त सपात चन्द्र में कितना होगा? प्राप्तफल चंद्र का विक्षेप होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"खत्रिघन (२७०) गुणा व्यासार्ध भाजिता चन्द्रपात योगज्या।
विक्षेपकलाः सौम्या षड्राश्यूनेऽधिके याम्याः॥५॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"पातोनितस्य समलिप्तक शीतरश्मेर्जीवा कृतेषु (५४) गुणिता त्रिगजर्त्तु ६८३ भक्ता"।

यहाँ श्रीपति ने पात के बारह राशि में शुद्ध होने के कारण सपात चंद्र भुजज्या के स्थान पर विपता चन्द्र भुजज्या ग्रहण किया है तथा विपात चंद्र भुजज्या के गुणक चन्द्र परम शर २७० कला को तथा श्रीपति द्वारा स्वीकृत त्रिज्या ३४१५ तुल्य हर को ५ से अपवर्तित करने से २७०।३४१५ = ५४।६८३ प्राप्त होता है जो श्रीपति ने श्लोक में कहा है।

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के सौर सिद्धान्त अध्याय ९ में परम शर २७० कला कहा है। यथा–

"चक्रात् पतितं (वक्त्रं) षड्राशियुतं तु पुच्छाख्यम्।
(नव) विविरस्य लिप्ता विक्षेपः सप्त (तिर्द्वि) शति॥६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है यथा–

"रविसमानकलस्य कलावतो वितमसो गुणितां भुजशिञ्जिनीम्।
तिथिभिरिन्दुनवेन्दुभिर्हरदे् व्यगुनिशाकर गोलवशाच्छरः॥११॥"

यहाँ आचार्य ने २७०।३४३८ = $\frac{१५}{१९१}$ कहा है जो भास्करोक्त तुल्य ही है।

भास्कर प्रथम ने **महाभास्करीय** के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दिक् तत्र शशिनोग्राह्या पातहीनान्निशाकृतः।
ज्यां खसप्ताश्विभिः क्षुण्णां कलाकर्णेन संहरेत्॥३०॥"

भास्कर प्रथम ने **लघुभास्करीय** के अध्याय ४ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"पातोन समलिप्तेन्द्रोर्जीवा खत्रिघनाहता।
कर्णेन ह्रियते लब्धो विक्षेपः सौम्यदक्षिणः॥८॥"

वटेश्वराचार्य ने **वटे.सि. के चंद्रग्रहणाधिकर** में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तत्कालपातसहितात्समलिप्तचन्द्रदोर्ज्या खभै (२७०) रभिहतं विभजेत् त्रिमौर्व्या।
सौम्यः क्रियादभिहितस्त्वितरश्च जूकाद्विक्षेपकः शिशिरगोः कलिकादिकः स्यात्॥१९॥"

इदानीं ग्रहणे ग्रासप्रमाणमाह—

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्यखण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम्।
तच्छाद्यबिम्बादधिकं यदा स्याज्ज्ञेयं च सर्वग्रहणं तदानीम्॥११॥

ग्रहण में ग्रास प्रमाण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— छाद्य तथा छाद्यक के मानैक्यार्ध में से शर को घटाने से प्राप्तफल **स्थगित** का प्रमाण होता है। यदि इसका मान छाद्य के बिंब से अधिक हो तो पूर्ण ग्रहण होता है।

उपपत्ति— सूर्य से छः राशि अन्तर पर क्रांतिवृत्त में भूच्छाया भ्रमण करती है। अतः पूर्णमास्यन्त पर भूच्छाया तथा चन्द्रमा की समान स्थिति होती है, किन्तु याम्योत्तर अन्तर शर (विक्षेप) तुल्य होता है। यह शर छाद्य तथा छाद्यक के बिंब के मध्य अन्तर तुल्य होता है। यह यदि बिंबैक्य अर्ध तुल्य हो तो इनके बिंब प्रांतों का मात्र संयोग (स्पर्श) होता है। यदि शर बिंबमानैक्यार्ध से अल्प हो तो छाद्य बिंब छाद्यक बिंब में प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार स्थगित प्रमाण आचार्य ने कहा है। यह स्थगित मान यदि छाद्य बिंब से अधिक हो तो सर्व अर्थात् संपूर्ण ग्रहण होता है यह सरल बात है।

भू न र चं

चित्र में भू = पृथ्वी की छाया का केंद्र है। चं = चंद्रबिंब केंद्र है। चं न = चंद्रबिंब व्यासार्ध है। भू र = भूच्छायाबिंब व्यासार्ध है। न र = ग्रासमान है। चित्र के अनुसार,

भू र + चं न = भू र + र चं + न र

= भू चं + न र

भूभा बिंबार्ध+चंद्र बिंबार्ध = चंद्र शर + ग्रास

मानैक्यार्ध = चंद्रशर + ग्रास

अतः मानैक्यार्ध − चंद्र शर = ग्रास मान आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

चंद्र बिंब अर्थात् ग्राह्य बिंब से ग्रास मान अधिक होने पर पूर्ण ग्रहण होगा। यह चित्र से स्पष्ट है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चन्द्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा−

"छाद्यच्छादक मानैक्यार्ध विक्षेप हीनितं छन्नम्।
सर्वग्रहणं ग्राह्यादधिके खण्डग्रहणमूने ॥७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ५ −
"क्षेपो भवत्यथ पिधानपिधेयबिम्बयोगार्धमूनममुना स्थगितं वदन्ति॥११॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा−

"च्युतशरावरणावरणीययोर्दलयुतिः स्थगितस्य मितिर्भवेत्।
समधिकावरणीयतनोर्यदा सकलमेव तदावृतमादिशेत्॥१२॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के पंचम अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। आचार्योक्त कथन सूर्य ग्रहण तथा चंद्रग्रहण दोनों के लिए लागू होता है। यथा−

"सूर्येन्दुबिम्बसम्पर्कदलेन सदृशी नतिः।
ग्रहणं भास्वतो न स्याद्धिनायामस्ति सम्भवः॥३३॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय अध्याय-४ में आचार्योक्त कथन को ही अन्य प्रकार से कहा है। दोनों कथन एक ही हैं। यथा−
"इन्दुहीनतमोव्यासदललिप्ताविवर्जिताः विक्षेपस्य न गृह्यन्ते तमसा शशलक्ष्मणः॥६॥"

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा−

"तात्कालिकेन्दुविक्षेपंछाद्यच्छादकमानयोः योगार्धात् प्रोज्झ्य यच्छेषं तावच्छन्नं तदुच्यतो ॥१०॥
ग्राह्यमानाधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा योगार्धादधिके न स्याद् विक्षेपे ग्राससम्भवः ॥११॥

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भूभा छादयतीन्दुं चन्द्रोऽर्कं तद्युतेर्दलं विशरम्।
स्थगितं छाद्यविहीनं कलापूर्वं नभश्चछन्नम् ॥७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्तरेण तिमिरेन्दुखण्डयोः क्षेपके विरहितेऽवशेषकम्।
दृश्यते नभसि शीतगोर्यदानावशेषमखिलस्तदा ग्रहः ॥२३॥"

इदानीं स्थितिमर्दार्धयोरानयनमाह—

मानार्धयोगान्तरयोः कृतिभ्यां शरस्य वर्गेण विवर्जिताभ्याम्।
मूले खषट् ६० संगुणिते विभक्ते भुक्त्यन्तरेण स्थितिमर्दखण्डे ॥१२॥

स्थिति तथा मर्दार्ध आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— बिंब मानार्ध के योग तथा अन्तर के वर्ग में से शर का वर्ग घटाकर मूल लेने से प्राप्त प्रथक्-प्रथक् फलों को साठ (६०) से गुणा करके सूर्य चंद्र की गति के अन्तर से विभक्त करने से क्रमशः स्थिति खण्ड (अर्ध) तथा मर्द खण्ड (अर्ध) प्राप्त होते हैं।

सूत्र रूप में–

$$\text{स्थितिर्ध} = \frac{\sqrt{(\text{भूछाया त्रिज्या} + \text{चंद्रबिंब त्रिज्या})^2 - \text{चंद्रशर}^2} \times ६०}{(\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य गति})}$$

$$\text{मर्दार्ध} = \frac{\sqrt{(\text{भूछायात्रि} - \text{चं. बिंब त्रि.})^2 - \text{चं.शर}^2} \times ६०}{(\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य गति})}$$

उपपत्ति— स्पर्श (ग्रहण) काल पर छाद्य तथा छाद्यक के बिंबार्धों का योग उनके केंद्रों के अंतर तुल्य होता है। यह कर्ण रूप में होता है तथा चंद्र का शर कोटि रूप होता है। कर्ण तथा कोटि के वर्गान्तर का मूल भुज रूप

होता है। यह ग्राहक मार्ग अर्ध होता है। सूर्य ग्रहण में चंद्र तथा चंद्रग्रहण में भूछाया के केंद्र का मार्ग ग्राहक मार्ग कहलाता है। ग्राहक मार्ग खण्ड के क्रमण काल का अनुपात चंद्र सूर्य के अग्र गमन के भुक्त अन्तर से किया कि भुक्ति (गति) अन्तर तुल्य कला यदि सूर्य चंद्र ६० घटी में चलते हैं तो लब्धि भुज कला में कितना होगा? प्राप्तफल स्थितिअर्ध घटियाँ होती हैं। स्पर्श काल पर शर को ज्ञात करके मध्य ग्रहण काल के शर से यह कर्म करने से यह स्थूल स्थितिर्ध प्राप्त होता है।
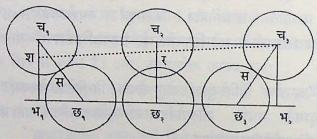
चित्र में भ$_1$ छ$_1$ छ$_2$ छ$_3$ भ$_2$ क्रांतिवृत्त है जिस पर भूछाया छ$_1$, छ$_2$ छ$_3$ भ्रमण करती है। च$_1$ च$_2$ च$_3$ चंद्र मार्ग है जिस पर वह भ्रमण करता है। अतः च$_1$ भ$_1$, च$_2$ छ$_2$ तथा च$_3$ भ$_2$ चंद्र का शर है जो क्रमशः बदल रहा है क्योंकि चंद्र विमण्डल क्रांतिवृत्त पर झुका हुआ है समानान्तर नहीं है। यदि चंद्रशर को स्थिर मान लेवें तो समकोण त्रिभुज च$_1$ भ$_1$ छ$_1$ में च$_1$ भ$_1$ = कोटि, च$_1$ छ$_1$ = कर्ण तथा भ$_1$ छ$_1$ = भुज है। यहाँ च$_1$ भ$_1$ = शर है, च$_1$ छ$_1$ = चंद्र तथा भूच्छाया बिंद्वार्ध (मानैक्यार्ध) है।

अतः भुज = भ$_1$छ$_1$ = $\sqrt{\text{चंद्र तथा भूच्छाया मानैक्यार्ध}^2 - \text{शर}^2}$ है। यह चन्द्र द्वारा भूच्छाया की तुलना में चली गई दूरी = च$_1$ च$_2$ – छ$_1$ छ$_2$ = भ$_1$ छ$_1$ है। भूछाया की गति सूर्य की गति ही है अतः भूछाया तथा चंद्र की गति के अन्तर (च$_1$ – छ$_1$) से चन्द्रमा तथा भूछाया चलते हुए भ$_1$ छ$_1$ दूरी, ग्रहण स्पर्श काल च$_1$ स छ$_1$ से ग्रहण मध्य काल च$_2$छ$_2$ तक चलते हैं। अतः इस दूरी को चलने में लगने वाला समय –

$$\text{स्थिति अर्ध} = \frac{\text{भ}_1\text{छ}_1 \times ६०}{\text{चंद्रछाया गति अंतर}}$$

$$= \frac{\sqrt{(\text{चंद्र बिंबार्ध} + \text{छाया बिंद्वार्ध})^2 - \text{शर}^2} \times ६०}{\text{चंद्र गति} - \text{छाया अंतर}}$$

क्योंकि चंद्र तथा छाया की गति का अन्तर एक दिवस = ६० घटि में होता है, अतः त्रैराशिक से यह प्राप्त होता है।

यहाँ चंद्रमा के शर को स्थिर मान कर यह गणना की गई है। वास्तव में चंद्रशर स्थिर नहीं रह कर बदलता है जैसे चित्र में श $भ_१$, र $छ_२$, $च_३भ_२$ दिखाया है। अतः आचार्योक्त सूत्र स्थूल है।

अब मदार्ध करते हैं। यदि छादक छाद्य को पूर्ण रूप से ग्रस्त कर लेता है तो संमीलन का मान उस समय दोनों के बिंब केंद्रों के अन्तर के तुल्य होता है जो दोनों के बिंबार्ध मान के अन्तर तुल्य होता है। यह कर्ण रूप में होता है। उस समय पर जितना चंद्र विक्षेप होता है वह कोटि रूप है। इनके वर्गों के अन्तर का मूल भुज रूप ग्राहक खंड होता है। अतः यहाँ भी पूर्वोक्त अनुसार मर्दखण्ड का मान त्रैराशिक से,

$$\text{मर्द अर्ध} = \frac{\sqrt{(\text{चंद्र बिंबार्ध} - \text{भूछाया बिंबार्ध})^2 - \text{चंद्रशर}^2} \times ६०}{\text{चंद्र गति} - \text{छाया गति}}$$

प्राप्त होगा। यह भी स्थूल मान ही है। आचार्य द्वारा कथित दोनों मानों को यहाँ परिभाषित करते हैं।

स्थिति खंड— ग्रह के प्रथम स्पर्श से ग्रहण मध्य के काल को, जब छाद्य छाद्यक एक दूसरे में अथवा सम्मुख होते हैं, स्पर्श स्थिति खंड कहते हैं तथा ग्रहणमध्य से ग्रहण समाप्ति पर स्पर्श स्थिति के काल को मोक्ष स्थिति खंड कहते हैं।

मर्द खंड— पूर्ण ग्रहण काल से ग्रहण मध्य काल को संमीलन मर्द खंड तथा ग्रहमध्य काल से पूर्ण ग्रहण समाप्ति काल के अंतर को उन्मीलन मर्द खंड कहते हैं।

खंड शब्द से यहाँ अर्ध या आधा भाग अर्थ है।
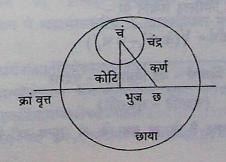
यहाँ एक चित्र द्वारा चंद्रग्रहण के स्थिति खण्ड (खंड ग्रहणार्ध) तथा मर्द खण्ड (पूर्ण ग्रहणार्ध) को स्पष्ट रूप से समझाते हैं।
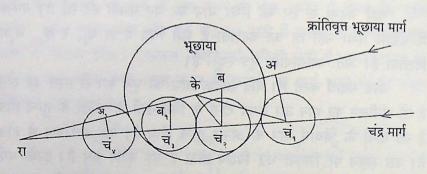
चित्र में मध्य में बडा गोल भूछाया बिंब है तथा $चं_1$, $चं_2$, $चं_3$ तथा $चं_4$ चन्द्रमा की ग्रहणारंभ स्पर्श से लेकर मोक्ष तक की विभिन्न स्थितियाँ हैं। रा = राहु है।

के अ = स्थिति खंड अर्थात स्थितिअर्ध दूरी है। यह ग्रहणस्पर्श से निमीलन आरंभ की स्थिति है।

के ब = मर्दखंड अर्थात मर्दार्ध दूरी है। यह निमीलन से उन्मीलन के अर्ध की स्थिति है।

त्रिभुज के $चं_1$ अ में $केअ^2 = केचं_1{}^2 - चं_1अ^2$

या $केअ^2 = (\text{छाया बिंबार्ध} + \text{चंद्र बिंबार्ध})^2 - \text{चंद्रशर}^2$

या के अ = $\sqrt{(\text{छाया बिंबार्ध} + \text{चंद्र बिंबार्ध})^2 - \text{चंद्रशर}^2}$

यह दूरी पार करने में चंद्र (सूर्य) भूछाया को जो समय लगेगा वह

$$\text{स्थिति अर्ध} = \frac{\sqrt{(\text{छाया बिंबार्ध} + \text{चंद्र बिंबार्ध})^2 - \text{चंद्रशर}^2}}{\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य (छाया) गति}} \times ६० \text{ है।}$$

इसी प्रकार निमीलन स्थिति पर–

के ब = मर्दार्ध = $\sqrt{(\text{के चं}_2^2 - \text{ब चं}_2^2)}$

$$= \frac{\sqrt{(\text{भूभा बिंबार्ध} - \text{चंद्र बिंबार्ध})^2 - \text{चंद्रशर}^2}}{(\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य गति})} \times ६०$$

चित्र से स्पष्ट है के अ तथा के $अ_1$ तुल्य नहीं है। इसी प्रकार के

ब तथा के $ब_1$ तुल्य नहीं है। क्योंकि क्रांतिवृत्त तथा चंद्र पथ परस्पर झुके हुए हैं।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ५ –

''छाद्येन युतोनस्यच्छादकमानस्य तद्दलकृतिभ्याम्।
विक्षेपकृतिं प्रोह्य पदे तिथिवत् स्थितिविमर्दार्धे॥८॥''

श्रीपति ने **सिद्धान्त शेखर** में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''मानार्धसंयोग वियोगवर्गौ विक्षेपकृत्या रहितौ विधाय।
ये शेषमूले तिथिवत् कृते ते क्रमाद् भवेतां स्थितिमर्दखण्डे॥१२॥''

लल्लाचार्य ने **शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''दलितमावरणं युतमूनितं पृथगथावरणीयदलेन च।
स्वगुणितं शरवर्गविवर्जितं कृतपदं गगनाङ्गहतं हरेत्॥१४॥
गतिवियोग कलाभिरतो भवेत् स्थितिदलं घटिकादि समर्दलम्॥$\frac{१}{२}$॥''

आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''छाद्यच्छादकयोगान्तरखण्डकृती कलम्बवर्गोने।
तन्मूलाभ्यां तिथिवत् स्थित्यर्धविमर्दखण्डे स्तः॥८॥''

भास्कर प्रथम ने **लघुभास्करीय** के चंद्रग्रहणाधिकार ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''विक्षेप वर्गहीनायाः सम्पर्कार्धकृतेः पदम्।
गत्यन्तरहतं हत्वा षष्ट्या स्थित्यर्धनाडिकाः॥१०॥
ग्राह्य ग्राहक विश्लेषदल विक्षेपवर्गयोः।
विश्लेषस्य पदं प्राग्वद् विमर्दार्धस्य नाडिकाः॥१४॥''

भास्कर प्रथम ने **महाभास्करीय** के ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''सम्पर्कार्धेनतिवर्गविशेषपदमाहतम्।
षष्ट्या गत्यन्तरेणाप्ताः स्थित्यर्धघटिकाः स्मृताः॥३४॥
ग्राह्यग्राहकबिंबार्धविश्लेषक्षेपवर्गयोः।
विश्लेषस्य पदं ज्ञेयं विमर्दार्धस्य लिप्तिकाः॥४०॥''

वराहमिहिर की पंच सिद्धान्तिका के चंद्रग्रहणाधिकार अध्याय ६ में पौलिश सिद्धान्तानुसार पूर्णग्रहण काल दिया गया है। यह भी स्थूल है जबकि भास्कराचार्य ने अर्धकाल दिया है। यहाँ वराहमिहिर ने यह भी कहा है कि चंद्र तथा छाया के केंद्र की दूरी ५५' कला होने पर ग्रहण आरंभ होता है अतः चंद्र तथा छाया का मानैक्यार्ध पंचसिद्धान्तिका के अनुसार ५५ कला होता है जिसको श्लोक में सीधा प्रयोग किया है।

"विक्षेपकलाकृतिवर्जितस्य पञ्चोनषष्टिवर्गस्य।
मू(लं) द्विगुणं तिथिवद्विभज्य क़ालः (स्थि)ते र्भवति॥३॥"

इसी प्रकार आगे श्लोक ५ में विमर्दक़ाल कहा है। पौलिश सिद्धान्त में पूर्णमासी के दिन चंद्र का शर $\frac{३८० \times (\text{चंद्र-राहु})}{९०}$ कहा है। यह $\frac{२१}{५}$ (चंद्र – राहु) के स्वल्पांतर से तुल्य है। अतः इस को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित श्लोक कहा है। यथा–

"किन्त्वन्तरांशहीनैः पञ्चभिरुना हता दश कृतघ्नाः।
तत्पदमेकाश्विघ्नं प (ञ्चां) शोस्माद् विमर्दकलाः॥५॥"

$$\text{यहाँ इस श्लोक से विमर्द काल} = \frac{\frac{२\times२१}{५} \times \sqrt{२५ - (\text{चं} - \text{रा})^२} \times ६०}{\text{चंद्र गति} - \text{राहु गति}}$$

पौलिश सिद्धान्तानुसार जब चंद्र – राहु = ५° होता है तब ग्रास मान शून्य होता है अतः $५^२$ = २५ सूत्र में ग्रहण किया है।

सूर्य सिद्धान्त के चन्द्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ग्राह्य ग्राहक संयोग वियोगौ दलितौ पृथक्।
विक्षेपवर्ग हीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे॥१२॥
षष्ट्या संगुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिते।
स्यातां स्थिति विमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः॥१३॥"

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"बिंबान्तरकृतिं प्रोह्य मानैक्यार्धकृतेः पदम्।
षष्टिघ्नं समदिग्गत्योरन्तराप्तं स्थितेर्दलम्॥४३॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ग्राहकस्य दलमूनसंयुतं ग्राह्यमानशकलेन वर्ग येत्।
क्षेपवर्गरहितात् पृथक्पदे लिप्तिकाः स्थितिविमर्दखण्डयोः॥२४॥
मितियोग विशेष खण्डके ग्राह्यग्राहकयोः शरान्विते।
रहिते च परस्पराहते मूलं वा स्थितिखण्डको भवेत्॥२५॥"

इदानीं स्फुटीकरणमाह—

**स्थित्यर्धनाडीगुणिता स्वभुक्तिः षष्ट्या ६० हृता तद्रहितौ युतौ च।
कृत्वेन्दुपातावसकृच्छराभ्यां स्थित्यर्धमाद्यं स्फुटमन्तिमं च॥१३॥**

स्थितिर्ध स्पर्श-मोक्ष का स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— अपनी गति (चंद्र, सूर्य अथवा राहु गति) को स्थितिर्ध घटी से प्रथक्-प्रथक् गुणा करके साठ (६०) से विभक्त करने से प्राप्त फल को रवि, चंद्र तथा पात में से ऋण करे। आद्य स्थित्यर्ध में धन तथा अन्त्य स्थित्यर्ध में ऋण करे। इस प्रकार बार-बार कर्म करने से स्थित्यर्ध स्फुट होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक द्वारा साठ घटी में चंद्र कला गति होती है तो स्थित्यर्ध घटी में कितनी होगी? प्राप्तफल स्थित्यर्ध घटी संबंधि चन्द्रगति कला होती है। इसी प्रकार पात की भी स्थित्यर्ध घटी संबंधि गति प्राप्त करे। इस प्रकार प्राप्त फलों को क्रमशः चंद्र तथा पात में से घटाने से तथा युत करने से विशिष्ट शुद्ध चन्द्र तथा पात प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से चंद्रशर ज्ञात करके स्थित्यर्ध ज्ञात करे तथा उपरोक्त प्रकार से पुनः स्थित्यर्ध संबंधि चंद्र तथा पात गति ज्ञात करके चंद्र तथा पात में क्रमशः हीन तथा युत करके विशिष्ट चंद्र तथा पात गति प्राप्त करे। असकृत्कर्म से स्फुट स्थित्यर्ध प्राप्त होती है।

इदानीमेवं विमर्दार्धमपीत्यतिदिशति—

**एवं विमर्दार्धफलोनयुक्तसपातचन्द्रोद्भवसायकाभ्याम्।
पृथक् पृथक् पूर्ववदेव सिद्धे स्फुटे स्त आद्यान्त्यविमर्दखण्डे॥१४॥**

इसी प्रकार विमर्दार्ध का स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त श्लोक की टीका तथा उपपत्ति में स्थित्यर्ध के स्थान पर विमर्दार्ध पढ़ने से इस श्लोक की व्याख्या तथा उपपत्ति हो जाती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त दोनों श्लोक १३-१४ में कहा हुआ कहे हैं। यथा-

"षष्ट्या विभाजिता स्थितिविमर्ददलनाडिकागुणा स्वगतिः।
आदौ रवीन्दुपातेष्वृणमसकृत् तेषु धनमन्ते॥६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है, अध्याय ५ चंद्रग्रहणाधिकार यथा–

"रविशशाङ्कतमोगतिसङ्गुणं खरसहृत् स्वफलानि पृथक् पृथक्॥१५॥
रविशशाङ्कफले समलिप्तयोः क्षयधने भवतः प्रथमान्त्ययोः।
धनमृणं तमसः स्वफलं कलाः स्थितिविमर्ददलादसकृत् ततः॥१६॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने अध्याय ५ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"स्थिति विमर्ददलाख्यघटीहृता दिनकरेन्दु तमोमयभुक्तयः।
गगन षट्क हृताः प्रथमान्त्यो क्षयधने भवतस्त्वसकृत्ततः॥१२-१३॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"क्षुण्णा स्थित्यर्धकालेन भुक्तिः षष्ट्या समाहृता।
समलिप्ते क्षयः स्पर्शे मोक्षे क्षेपो निगद्यते॥७५॥
विक्षेपस्तस्य तस्माच्च स्थित्यर्ध च प्रसाध्यते।
एवं कर्मविशेषोऽयं विमर्दधस्य वा पुनः॥७६॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ४ में चंद्रग्रहण में आचार्योक्त कहा है। पूर्व श्लोक १२ की व्याख्या में आचार्य का श्लोक १० कह दिया है उससे आगे यहाँ दे रहे हैं–

"स्फुट भुक्तिहता नाडयः षष्ट्या नित्यं समुद्धृताः।
लब्धलिप्ताः क्षयश्चन्दे क्षेपश्च स्पर्शमोक्षयोः॥११॥
विक्षेपश्चन्द्रतस्तस्मान्नाडिका लिप्तिकाः शशी।
आवृत्या कर्मणा तेन स्थित्यर्धमविशेषयेत्॥१२॥"

सूर्यसिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार ४ में आचार्योक्त कथन को बहुत स्पष्ट करके कहा है। यथा–

"स्थित्यर्धनाडिकाऽभ्यस्ता गतयः षष्टिभाजिताः।
लिप्तादिप्रग्रहे शोध्यं मोक्षे देयं पुनः पुनः॥१४॥
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथाऽसकृत्।
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादि फलं स्वकम्॥१५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"गत्यन्तरांशभाजिते घटिकादिके ते स्थित्यर्धसङ्गुणगतेर्वियदङ्ग लब्धम्।
प्रग्रासमुक्तिजखगेष्वृणवृद्धिसंज्ञं तत्क्षेपकात् स्थितिदलादसकृत् तु साध्ये॥२६॥
स्थित्यर्धलिप्ताभिहताः क्रमाद्या गत्यन्तरांशैः विभजेदमीषाम्।
भुक्तीः फलं प्रग्रहमोक्षकाले क्षयस्स्वमेष्वेवमनिश्चलत्वे॥२७॥"

इदानीमिष्टकाले भुजानयनमाह—

स्पर्शाग्रतः स्पार्शिकमिष्टमुक्तं प्राङ्मोक्षतो मौक्षिकमत्र पूर्वैः।
वीष्टेन निघ्नाः स्थितिखण्डकेन भुक्त्यन्तरांशा भुज इष्टकाले॥१५॥
एवं विमर्दार्धहताः पृथक् ते संमीलनोन्मलीनयोर्भुजौ स्तः।

इष्टकाल पर भुज आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रथम स्पर्श के पश्चात् किसी इष्ट समय को 'स्पर्शिक इष्ट' कहते हैं तथा मोक्षकाल (अंतिम स्पर्श) से पूर्व किसी इष्ट समय को "मौक्षिक इष्ट" कहते हैं। स्थिति खण्ड में से इष्ट को घटाकर (गति) भुक्त अन्तर भाग से गुणा करने पर कलात्मक भुज होता है। इसी प्रकार (गति) भुक्त्य अंतरांश को प्रथम विर्मदार्ध से गुणा करने से संमीलन भुज होता है तथा द्वितीय से उन्मीलन भुज होता है।

उपपत्ति— इष्टकाल पर जहाँ ग्राहक बिंब तथा मध्य शराग्र चिंह है उनका अन्तर ग्राहक मार्ग खंड (अर्ध) भुज कहलाता है। इसके आनयन के लिए त्रैराशिक करते हैं कि यदि ६० घटी में भुक्त (गति) अंतरकाल प्राप्त होती है तो इष्ट में स्थिति अर्ध घटाने से प्राप्त काल में कितनी होगी? यहाँ गुणक भाजक में ६० से अपवर्तित करने से भुक्त्यन्तरांश गुणक स्थान में तथा हर स्थान में एक रहता है। इसी प्रकार विमर्दार्ध से मर्द भुज प्राप्त होता है।

इदानीं कर्णार्धमाह—

कोटिश्च तत्कालशरोऽथ कोटीदोर्वर्गयोगस्य पदं श्रुतिः स्यात्॥१६॥
मानैक्यखण्डं श्रुतिवर्जितं सद्ग्रासप्रमाणं भवतीष्टकाले।

कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— तात्कालिक शर कोटि कहलाता है। कोटि तथा भुज के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। मानैक्य खण्ड में से कर्ण को घटाने से ग्रास प्रमाण इष्ट काल पर प्राप्त होता है।

उपपत्ति— भुज यहाँ क्रांतिवृत्त में पूर्वापर है तथा उससे उत्तर-दक्षिण शर कोटि है। इनके वर्गों के योग का मूल कर्ण है। कर्ण दोनों के बिंबों के मध्यम का अन्तर होता है। इसको मानैक्यार्ध में से घटाने से प्राप्तफल तुल्य ग्राहक बिंब में ग्राह्य प्रविष्ट होता है। अतः इसको इष्टकाल पर ग्रास मान कहते हैं।, यह उपपन्न हुआ।

विशेष— पूर्वोक्त श्लोक १४, १५ तथा १६ एवं १६$\frac{१}{२}$ में भास्करोक्त कथन अन्य आचार्यों ने स्व-स्व ग्रंथों में कहे हैं।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भुक्त्यन्तरमिष्टोनस्थितिदलघटिकागुणं हतं षष्ट्या।
बाहुः प्राग्वत् तत्फलहीनयुतैः सूर्यशशिपातैः॥११॥
तात्कालिकविक्षेपः कोटिस्तद्वर्गयुतिपदं कर्णः।
मानैक्यार्धात् कर्ण विशोध्य तात्कालिको ग्रासः॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"इष्टोनितस्थितिदलेन वियोग लिप्ता भुक्त्योर्हता गगनष्ट्कहृता भुजः स्यात्।
तात्कालिकोडुपपशरं कथयन्ति. कोटिं दोः कोटिवर्गयुतिमूलमभीष्टकर्णः॥१६॥
एवं विमर्दार्धहते च गत्योः स्यादन्तरे दोः स्वशरश्च कोटिः।
निमीलनोन्मीलन कर्ण सिद्ध्यै ग्रासस्तु मानैक्यदलं विकर्णम्॥२०॥"

भास्कर प्रथम ने महासिद्धान्त के ग्रहणाधिकर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"इष्टकालविहीनेन स्थित्यर्धेन हतं हरेत्
सूर्येन्द्वोर्भुक्ति विश्लेषं षष्ट्या लब्धस्य वर्गितम्॥६२॥
प्रक्षिप्यावनतेर्वर्गे यन्मूलं रविसीमयोः।
इष्टग्रासशलाका स्यात् तच्छेषो ग्रास इष्टजः॥६३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अभिमतघटिकारहितस्थितिजनितः कोटिसंज्ञको बाणः।
मर्दजघटिकोत्थशरौ नियमात् कोट्याहतौ भवतः॥१३॥

इष्टोनस्थितिगुणितं गत्योरंशान्तरं भुजो भवति।
दोः कोटिकृतियुतिपदं कर्णस्तेनोनमानयोगदलम्॥१४॥''

सूर्य सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धोनार्कचन्द्रयोः।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ताः कोटि लिप्तिकाः॥१८॥
भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्धसंगुणाः।
स्फुटस्थित्यर्धसंभक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः॥१९॥
क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत्।
मानयोगार्धतः प्रोज्झ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत्॥२०॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है, अध्याय-५। यथा–

''इष्टन्यूनस्थितिदलगुणा भुक्तिविश्लेषलिप्ता षष्ट्या भक्ता भवति हि भुजः कोटिरिष्टेन्दुबाणः।
तदवर्गेक्योद्भवमपि पदं कर्ण एतेन हीनं मानैक्यार्धं स्फुटमिहभवेद्वञ्छितं छन्नमानम॥१४॥''

इदानीं ग्रासात् तत्कालज्ञानमाह—

ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गाद्विक्षेपकृत्या रहितात् पदं यत्॥१७॥
गत्यन्तरांशैर्विहृतं फलोनं स्थित्यर्धकं स्वं भवतीष्टकालः।
तत्कालबाणेन मुहुः स्फुटोऽग्रे वक्षेऽन्यथा वा परिलेखतोऽमुम्॥१८॥

ग्रास मास से तत्काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रास को मानैक्यार्ध में से घटाकर उसके वर्ग में से विक्षेप (चंद्रशर) के वर्ग को घटा कर मूल लेने से प्राप्तफल को सूर्य-चंद्र के गति अंतर से विभक्त करके स्थितिर्ध में से घटाने से इष्टकाल प्राप्त होता है। इस इष्ट काल पर शर का आनयन करके असकृत कर्म करके स्पष्ट मान ज्ञात करे।

यदि इष्टकाल पर ग्रास ग्रहणारंभ से ग्रहणमध्यकाल में है तो पूर्व प्राप्त फल को स्थिति अर्ध में से घटावें तथा यदि ग्रहणमध्य से मोक्ष काल के मध्य हो तो मोक्ष स्थितिऽर्ध काल में से घटाना चाहिये।

उपपत्ति— मानैक्यार्ध में से ग्रास को घटाने से कर्ण प्राप्त होता है तथा तात्कालिक शर कोटि होता है। इनके वर्गान्तर का मूल भुज होता है। इसको

गति अंतर से विभक्त करने से प्राप्तफल इष्ट काल और मध्यग्रह का सावनान्तर है। इसको स्थिति अर्ध में से शोधित करने से इष्ट काल होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विष्टग्रासे मानयोरर्धयोगे स्वघ्ने मूलं क्षेपवर्गोनितं यत्।
तत् षष्टिघ्नं भुक्तिविश्लेषभक्तं स्वस्थित्यर्धाच्छुद्धमिष्टस्तु कालः॥२१॥
स्पर्शाद्यातो ग्राह्यमानस्य खण्डे दृष्टे शेष मुच्यमानस्य शेषः।
तत्कालेन्दो क्षेपमानीय सम्यक् कुर्यात् तावत् कर्म यावत् स्थिरं स्यात॥२२॥"

सूर्यसिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ग्राह्यग्राहकयोगार्धाच्छोध्याः स्वच्छन्नलिप्तिकाः।
तद्वर्गात् प्रोज्झ्य तत्कालविक्षेपस्य कृतिं पदम्॥२२॥
कोटिलिप्ता रवेः स्पष्टस्थित्यर्धेनाहता हृताः।
मध्येन लिप्तास्तन्नाडयः स्थितिवद् ग्रासनाडिकाः॥२३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"इष्टग्रासोऽभीष्टग्रासोनान्मानयोगजात् खण्डात्।
साध्यं स्थितिदलमसकृत् तदूनिता स्थितिरभीष्टकालः स्यात्॥१५॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"असकृद्ग्रासकलोनप्रमाणयुतिदलकृतेर्विशोध्य कृतिम्।
तात्कालिकविक्षेपस्य शेषमूलं कृतं तिथिवत्॥१३॥
प्रग्रहणस्थित्यर्धात् प्रोह्य प्रग्रहणतो भवेत् कालः।
मोक्षं विशोध्य मोक्ष स्थित्यर्धात प्राग् भवेन्मोक्षात्॥१४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ५ के श्लोक १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वीष्टग्रासात् तनुयुतिदलाद्वर्गितात् क्षेपकृत्या हीनान्मूलं
खरसगुणितं भुक्तिविश्लेषभक्तम्।
स्वात् स्थित्यर्धात् फलमपनयेदिष्टकालोऽसकृत्स
स्पर्शादूर्ध्व भवति हि गतो मुच्यमाने तु शेषः॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वीष्टग्रासं मितियुतिदलं तत्कृति क्षेपकृत्या
हीना तस्याः पदमिह भुजो भुक्तिविश्लेषभागैः।
भक्तो नाड्यस्तदवधिविधोः क्षेपकेनासकृताः
प्राक्पश्चात्तत्स्फुटतरतिथिर्यः प्रयातः स्थिरत्वम्॥३५॥"

इदानीं स्पर्शादिव्यवस्थितिमाह—

मध्यग्रहः पर्वविरामकाले प्राक् प्रग्रहोऽस्मात् परतश्च मुक्तिः।
स्थित्यर्धनाडीष्वथ मर्दजासु संमीलनोन्मीलनके तथैव॥१६॥

स्पर्श, स्थिति ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— स्फुट पर्वांतकाल (पूर्णान्त तथा अमान्त काल) में मध्य ग्रह होता है। मध्यग्रह से पूर्व स्थित्यर्ध काल में स्पर्श होता है, मध्यग्रहणान्तर स्थित्यर्धकाल में मोक्ष होता है। मध्य ग्रहण से पूर्व विमर्दार्धकाल में निलीमन (सर्वग्रास) तथा मध्यग्रहण के पश्चात् विमर्दार्धकाल में उन्मीलन (सर्वग्रासान्त) होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्फुटतिथ्यन्ते मध्यं प्रग्रहणं स्थितिदलोनकेऽभ्यधिके।
मोक्षो निमीलनोन्मीलने मिर्दार्धहीन युते॥१५॥"

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत्।
स्थित्यर्धनाडिकाहीने स्पर्शो मोक्षस्तु संयुते॥१६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्पर्शान्निमीलनं स्थितिदले विमर्दार्धहीनिते पश्चात्।
मोक्षादर्वागुन्मीलनं विमर्दस्तदैक्यार्धः॥१०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्थित्यर्धनाडी वियुतः समेतः स्फुटः तिथिः प्रग्रहमोक्षकालौ।
विमर्दखण्डं च विधेयमेवं निमीलनोन्मीलन सिद्धिहेतोः॥२८॥
पर्वणः स्थितिदलेन पुरस्तात् प्रग्रहो भवति चोपरिमोक्षः।
प्राङ्निमीलनमथोपरि दृष्टं शीतगोरिह विमर्ददलेन॥२९॥"

इदानीं वलनानयनमाह—

खाङ्का ९० हतं स्वद्युदलेन भक्तं स्पर्शादिकालोत्थनतं लवाः स्युः।
तेषां क्रमज्या पलशिञ्जिनीघ्नी भक्ता द्युमौर्व्या यदवाप्तचापम्॥२०॥
प्रजायते प्रागपरे नते क्रमादुदग्यमाशं वलनं पलोद्भवम्।

वलनानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस समय का वलन साधन करना हो उस समय जो नतघटी हो उसकी (९०) नब्बे से गुणा करके चन्द्रग्रहण होने पर रात्रिर्ध से तथा सूर्य ग्रह होने पर दिनार्ध से विभक्त करने से प्राप्तफल अंशादि होते हैं। इनकी क्रमज्या को अक्षज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप अक्षवलन होता है। नत पूर्व होने पर यह उत्तर होता है तथा पश्चिम नत होने पर यह दक्षिण वलन होता है।

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में समझाई गई है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। ब्रह्मगुप्त ने द्युज्या के स्थान पर त्रिज्या स्थूल रूप में ग्रहण किया है। दोनों में यही अंतर है। यथा—

"प्राक्पश्चान्नतविषुवज्ज्ययोर्वद्यात् त्रिज्ययाप्तचापं यत्।
उत्तरयाम्ये पूर्वा विषुवद्वृत्तात् त्रिभे ग्राह्या॥१६॥"

ब्रह्मगुप्त ने उपरोक्ताचार्योक्त सूत्र में नत उत्क्रमज्या के स्थान पर नतक्रमज्या को लिया था।

भास्कर प्रथम ने भी महाभास्करीय में सूत्र में नतक्रमज्या लिया था। यथा ग्रहणाधिकार—

"मध्यतिथ्यन्तरासूनामुत्क्रमज्याक्षसङ्गुणा।
विष्कम्भार्धेन भक्तव्या लब्धकाष्ठस्य दिग्विधिः॥४२॥
व्यासार्धादधिकासूनां क्रमज्यां त्रिज्यया युताम्।
कृत्वैवमेव दिक्कल्प्या मध्ये प्राग्ग्रासवद्दिशा॥४३॥
उदग्दक्षिणतः प्राह्णे बिम्बप्राक्पश्चिमार्धयोः।
नभसः पश्चिमे व्यस्तमक्षस्य वलनं सदा॥४४॥"

पूर्वाचार्यों के सूत्र अनुमान पर आधारित थे। भारतीय आचार्यों ने देखा कि जब ग्रसित बिंब नाडीवृत्त तथा याम्योत्तर (meridian) के कटान बिन्दु पर होता है तब नतांश की उत्क्रमज्या शून्य होती है तथा अक्षवलन की क्रमज्या

भी शून्य होती है। नत की उत्क्रमज्या के बढ़ने के साथ अक्ष वलन की क्रमज्या भी बढ़ती है और जब ग्रसित बिंब क्षितिज तथा नाडीवृत्त के कटान बिंदु पर होता है तब नत उत्क्रमज्या त्रिज्या के मान के तुल्य होती है तथा अक्षवलन की क्रमज्या भी परम होती है और अक्षज्या के तुल्य होती है। अतः उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि अक्षवलन की ज्या, नतोत्क्रमज्या के अनुरूप ही बदलती होती है तथा इष्ट समय पर अक्षवलनज्या ज्ञात करने के लिए उन्होंने अनुपात का उपयोग किया कि जब तनोत्क्रमज्या का मान त्रिज्या तुल्य होता है तब अक्षवलन ज्या अक्षज्या के तुल्य होती है तो इष्ट नतोत्क्रमज्या के लिए अक्षवलन ज्या का मान क्या होगा? इस अनुपात द्वारा

$$\text{अक्षवलन ज्या} = \frac{\text{नतोत्क्रमज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$, सूत्र प्राप्त होता है।

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में भी नत तथा अक्ष की ज्या ही कहा गया है।

"नतज्याऽक्षज्ययाऽभ्यस्ता त्रिज्याप्ता तस्य कार्मुकम्।
वलनांशाः सौम्ययाम्याः पूर्वापरकपालयोः॥२४॥
राशित्रययुताद् ग्राह्यात् क्रान्त्यंशैर्दिकसमैर्युताः।
भेदेऽन्तराज्ज्या वलना सप्तत्यंगुल भाजिता॥२५॥"

यहाँ नतकला को अंशों में बदला है लेकिन उत्क्रमज्या को ग्रहण नहीं किया है।

आर्यभट (द्वि.) ने भी सूत्र में नत उत्क्रमज्या के स्थान पर नतक्रमज्या लेकर सूत्र कहा था जो आचार्योक्त प्रकार ही है। यथा चंद्रग्रहणाधिकार महासिद्धान्त–

"स्पर्शविमोक्षनतभुजक्रमजीवाताडिताक्षज्या।
गज्याभक्ता फलधनुरुत्तरमैन्द्रे नते परे याम्यम्॥१६॥"

आर्यभट ने भी आर्यभटीय के गोलपाद में क्रमज्या का ही उपयोग किया है लेकिन कुछ टीका/व्याख्याकारों ने उसका उत्क्रमज्या अर्थ भी किया है। यथा–

"मध्यान्हात् क्रमगुणितोऽक्षो दक्षिणतोऽर्धविस्तरहृतो दिक्।
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोस्त्रिराशिसहितायनात् स्पर्शे॥४५॥"

इदानीमायनं वलनमाह—

युतायनांशोडुपकोटिशिञ्जिनी जिनांशमौर्व्या १३९७ गुणिता विभाजिता॥२१॥
द्युजीवया लब्धफलस्य कार्मुकं भवेच्छशाङ्कायनदिक्कमायनम्।

अयन वलन आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह की सायन अंशों की कोटिज्या को २४ अंश की ज्या (१३९७) से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप वलन होता है। ग्रह (चंद्र) जिस गोल में होता है वही दिशा वलन की होती है।

उपपत्ति— गोलाध्याय में बताई गई है।

विशेष— भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त सूत्र में उत्क्रमज्या का प्रयोग किया है तथा हर में त्रिज्या लिया है।

"त्रिराशिसहितेन्द्वर्कविपरीतगुणापमः।
अयनाद्दिक्तु पूर्वार्धे बिम्बस्यैवापरेऽन्यथा॥४५॥"

भास्कर के इस सूत्र को ब्रह्मगुप्त ने सुधारा तथा उत्क्रमज्या के स्थान पर क्रमज्या को ग्रहण किया। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त चन्द्रग्रहणाधिकार यथा—

"सममण्डलाद्विषुवतो ग्राह्यात् त्रिगृहाधिकादुदग्याम्यैः।
क्रान्त्यंशैरपमण्डलपूर्वास्याश्चन्द्रविक्षेपः॥१७॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में सूत्र इस प्रकार दिया है—

"ग्राह्यात् सराशित्रितयाद् भुजज्या व्यस्ता ततः प्राग्वदपक्रमज्या।
तस्या धनुः सत्रिगृहेन्दुदिक् स्यात् क्षेपो विपातस्य विधोर्दिशि स्यात्॥२५॥"

लल्लाचार्य तथा भास्कर द्वारा कथित सूत्र इस प्रकार होते हैं—

$$\text{अयनवलनज्या} = \frac{\text{ज्या } २४^{\circ} \times \text{उत्क्रमज्या } (९०^{\circ} + \text{ग्रह})}{\text{त्रिज्या}}$$

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में लल्लाचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"नतोत्क्रमज्याक्षगुणाभिघातात् त्रिभज्यकाप्तादथ कार्मुकं यत्।
उदक् च याम्यं च कपालयोस्तु तदाक्षमाशा वलनं वदन्ति।।चं.ग्र. १९ श्लो॥
त्रिभवनसहिताच्च ग्राह्यतो व्यस्तजीवा रचितमपमचापं संस्कृतं स्वेषुणा यत्।
पलवलनमनेन स्पष्टमेकीकृतं स्यात् सदृशदिशि वियुक्तं भिन्नदिक्त्वे कृतज्यम्॥२०॥"

भास्कराचार्य ने यद्यपि उत्क्रमज्या के उपयोग का खण्डन किया है तथा गलत बताया है लेकिन स्वयं ने ही शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ की स्वकृत टीका में उत्क्रमज्या के उपयोग को सही ठहराया है।

इदानीं स्फुटवलनार्थमाह—

तयोः पलोत्थायनयोः समाशयोर्युतेर्वियुक्तेस्तु विभिन्नकाष्ठयोः॥२२॥
या शिञ्जिनी मानदलैक्यनिघ्नी त्रिज्योद्धृता तद्वलनं स्फुटं स्यात्।
यैरुत्क्रमज्याविधिनैतदुक्तं सम्यङ्नते गोलगतिं विदन्ति॥२३॥

स्फुट वलन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अक्षवलन तथा अयनवलन के चापों के एक दिशा में होने पर योग तथा विपरीत दिशा में होने पर अन्तर की ज्या को मानैक्यार्ध से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से स्फुटवलन की ज्या होती है। जो वलन को उत्क्रमज्या के अनुपात से करने को कहते है वे गोल की गति को भली प्रकार से नहीं जानते।

उपपत्ति— गोलाध्याय में विस्तार से बताई गई है।

विशेष— भास्कर प्रथम ने महासिद्धान्त के ग्रहणाधिकार में प्राचार्योक्त कहा है। यथा–

"नानाशयोस्तयोर्विद्धि विश्लेषः धनुषोः सदा।
संयोगोऽन्यत्र तज्जीवा सम्पर्कार्धहता हता॥४६॥"
विष्कम्भार्धेन यल्लब्धमाशासाम्ये युतं नतौ।
विश्लेषो व्यत्यये कार्यो वलनं तत्र शिष्यते॥४७॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने तथा शिष्याधीवृद्धिद में लल्लाचार्य ने स्पष्ट वलन का संस्कार शर में भी किया है जबकि भास्कराचार्य ने स्पष्ट वलन का संस्कार मानैक्यार्धवृत्त में परिणामन किया है। ब्रह्मगुप्त ने त्रिज्यावृत्त में साधित स्पष्टवलन को ज्यों का त्यों रखा है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में लल्लाचार्य—

"अपक्रमक्षेपपलोद्भवानां युतिः क्रमादेकदिशां कलानाम्।
कार्या वियोगोऽन्यदिशां ततो ज्या ग्राह्या भवेत् सा वलनस्य जीवा॥२६॥"

श्रीपति सिद्धान्त शेखर में यथा—

"पलवलनमनेन स्पष्टमेकीकृतं स्यात् सदृशदिशि वियुक्तं भिन्नदिकृत्वे कृतज्यम्।"

ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकर में—

"एकान्यदिशोर्युतिवियुतेर्ज्या प्रग्रहणमध्यमोक्षेषु।
एवं निमीलनोन्मीलनेष्ट कालेष्वतोऽन्य दिशाम्॥१८॥"

इदानीमङ्गुललिप्तार्थमाह—

त्रिज्योद्धृतस्तत्समयोत्थशङ्कुः
सार्धद्वि २।३० युक्तोऽङ्गुललिप्तिकाः स्युः।
स्थूलाः सुखार्थं द्युदलेन भक्तं
समुन्नतं सार्धयमा २।३० न्वितं वा॥२४॥

लिप्ता से अंगुल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहण मध्य काल पर ग्रह का त्रिप्रश्नोक्त प्रकार से शंकु साधन करे तथा उसको त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल में २$\frac{१}{२}$ युक्त करने से (प्रति) अंगुल की लिप्ता होती है अथवा ग्रह की उन्नतघटी को दिनार्ध घटी से विभक्त करने से प्राप्तफल में २$\frac{१}{२}$युक्त करने से सरलता से स्थूल अंगुल की लिप्ता होती है।

उपपत्ति— गगन मध्य में स्थित अर्थात दिनार्ध काल पर ग्रह का बिंब उदय काल की तुलना में किंचित सूक्ष्म दिखाई देता है। उदय काल पर क्षितिज पर स्थित ग्रह विशाल दिखता है। यह जो सूक्ष्म तथा बडा दिखाई देता है उसको स्वबुद्धि से कल्पना करके दिनार्ध समय पर ३$\frac{१}{२}$ अंगुल कला तथा उदय काल पर २$\frac{१}{२}$ अंगुल कला आचार्य ने माना है तथा इन दोनों के मध्य में शंकु से सूक्ष्म अनुपात किया है कि यदि त्रिज्या तुल्य शंकु में अंगुल लिप्ता अंतर (३$\frac{१}{२}$ – २$\frac{१}{२}$ = १) (एक) प्राप्त होता है तो इष्ट शंकु में कितना होगा? प्राप्तफल २$\frac{१}{२}$ अंगुल लिप्त होता है। यह उपपन्न हुआ।

अथवा स्थूल अनुपात किया कि यदि दिनार्ध तुल्य उन्नत घटियों में अंतर १ (एक) तुल्य होता है तो इष्ट घटी में कितना होगा?

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"दिनदल विभक्त जिनगुणदिनगतशेषाल्पजीवयेषु गुणम्।
त्रिज्यार्धमधिकमङ्गुललिप्तास्त्रिगृहज्यया भक्तम्॥११॥"

यहाँ आचार्य ने अनुपात किया है कि दिनार्ध तुल्य उन्नत काल में नब्बे अंश तुल्य उन्नतांश होते हैं तो इष्ट उन्नत काल में क्या? इस अनुपात से उन्नतांश (स्थूल) $= \frac{९० \times \text{उन्नतकाल}}{\text{दिनार्ध}} = \frac{९० \times \text{उ.का.}}{\text{दिनार्ध}}$। अब भास्करोक्त "तत्त्वश्विभक्ता असवः कला वा" प्रकार से उन्नत कला ज्या =

$\frac{९० \times \text{उ. का.} \times ६०}{\text{दिनार्ध} \times २२५}$; इसमें $\frac{९० \times ६०}{२२५} = २४$ (स्वल्पांतर से) शंकु है। अतः यह भास्करोक्त "त्रिज्योद्धृत....." (उपरोक्त) सूत्र अनुसार

$\frac{५}{२} + \frac{\text{शं}}{\text{त्रि}} = \frac{\frac{५\text{त्रि}}{२} + \text{शं}}{\text{त्रि}}$ ब्रह्म गुप्तोक्त उपपन्न हुआ। अतः ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से भास्कराचार्य ने अपना सूत्र कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्वोन्नताज्जिनगुणात् द्युदलाप्ताज्जयाऽनया समधिके त्रिगुर्धे।
सायकैरभिहते त्रिभमौर्व्या भाजितेऽत्रफलमङ्गुललिप्ताः॥"

सूर्यसिद्धान्त में यद्यपि आचार्योक्त अनुरूप ही सूत्र कहा है लेकिन वहाँ ग्रह बिंब दिनार्ध काल में चार अंगुल तथा उदय काल में तीन अंगुल कला कल्पना करके कहा है। अतः यहाँ सूत्र में ५ के स्थान पर ३ कहा है।

"सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु।
छिन्द्याद् विक्षेपमानानि तान्येषामंगुलानि तु॥२६॥" चंद्रग्रहण।

म.म. सुधाकर द्विवेदी ने सूर्य सिद्धान्त की स्वकृत सुधा वर्षिणी टीका में भास्कराचार्य के कथन 'शङ्क्वनुपात जनित फल सूक्ष्महै' को ठीक नहीं बताया है। उन्होंने अपने कथन को युक्ति युक्त सिद्ध किया है।

आचार्योक्त विधि के संदर्भ में **श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर** में स्पष्ट करके कहा है। यथा–

"द्रटा महीव्यासदलेन यस्मात् समुच्छ्रितस्तिष्ठति भूमिपृष्ठे।
नभस्थभानोर्निकटस्ततस्तं प्रभाकरं सूक्ष्ममवेक्षतेऽसौ॥
पिधीयते भानुवपुर्मयूखैः समन्ततः पङ्कजकर्णिकेव।
तत्केसरैरम्बरमध्यवर्ती निरीक्ष्यते तेन च सूक्ष्ममूर्तिः।
वसुन्धरागोलनिरुद्धामा दूरस्थितोऽयं सुखदृश्यबिम्बः।
महीजवृत्तोपगतो विवस्वानतो महान् भात्यरुणो विरश्मिः॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त दूसरा सूत्र कहा है। यथा–

"उन्नतो निजदिनार्धविभक्तः सार्धयुग्मयुगथाङ्गुललिप्ताः ॥२७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उन्नताः स्फुटदिनार्ध भाजिता नाडिकाः फलसमन्वितास्त्रयः।
अङ्गुलस्य कलिका यवोदरैरङ्गुलं च वितुषैरिहोरगैः ॥४०॥"

आचार्य ने यहाँ ३ युक्त करने के लिए कहा है।

इदानीं वलनादीनामङ्गुलीकरणमाह—

आभिर्विभक्ता बलनेषुबिम्बदोश्छन्नलिप्ता स्युरथाङ्गुलानि।
शरा यथाशा ग्रहणे खरांशोश्चन्द्रग्रहे व्यस्तदिशस्तु वेद्याः ॥२५॥

वलनादि को अंगुल में बदलना—

सूर्य-प्रभा टीका— उपरोक्त सूत्रोक्त अंगुल कला से वलन् विक्षेप (शर), बिंब, ग्रास, भुज कोटिकर्ण आदिमानों को विभक्त करने से प्राप्तफल अंगुलादि होते हैं। सूर्य ग्रहण परिलेखन में चंद्र शर को स्व दिशा में दर्शाना चाहिये तथा चन्द्रग्रहण में विपरीत दिशा में दर्शाना चाहिये।

उपपत्ति— शराग्र पर चन्द्रमा होता है तथा शर मूल पर भूभा होती है। इस प्रकार चन्द्र विक्षेप के दूसरी ओर भूभा होती है। इसकी स्थिति ज्ञात करने के लिए इसको चन्द्रग्रहण में शर के दूसरी तरफ जाने।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"व्यास वलनापवर्त्तनमेकेनेष्टेन कार्यमितरेषाम्।
अङ्गुलकलाभिरेवं शशिसित परिलेखसूत्राणाम् ॥१३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा–

"ग्राह्यबिंबशकलस्य शराणां मानसंयुतिदलस्य भुजानाम्।
ग्राहकार्धवपुषः श्रवणानां भाजको नियतमङ्गुललिप्ताः ॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी चंद्रग्रहणाधिकार में ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा–

"सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु।
छिन्द्याद् विक्षेपमानानि तान्येषामंगुलानि तु ॥२६॥"

लल्लाचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त प्रकार से ११० ईकाई का एक अंगुल मान वलन, त्रिज्यादि को अंगुल मान में परिविर्तत करते हैं। यथा चंद्रग्रहणाधिकार–

"अङ्गुलानि वलनस्य च जीवा खेश्वरैर्वसुगुणाब्धिहुताशाः।२६ $\frac{1}{2}$।"
मानैक्यार्धछादकच्छाद्ययोश्च क्षेपश्छन्नं कर्णदोः कोटयश्च।
भाज्याः सर्वेऽप्यङ्गुलानां कलाभिर्जायन्ते ते वाङ्गुलानि क्रमेण॥२८॥"

ब्रह्मगुप्त ने उपरोक्त श्लोक में ग्राह्य गाहक बिंबों तथा वलनादि को लाघव के लिये किसी एक इष्ट अंक से अपवर्तित करने के लिए कहा है। उसी का अनुसरण लल्लाचार्य, गणेश दैवज्ञादि आचार्यों ने किया है।

भास्कराचार्योक्त अंगुललिप्ता का अर्थ है लिप्ता की संख्या जो एक अंगुल के तुल्य ग्रहण परिलेखन में प्रयोग में लेनी चाहिये।

इदानीं परिलेखमाह—

ग्राह्यार्धसूत्रेण विधाय वृत्तं मानैक्यखण्डेन च साधिताशम्।
बाह्येऽत्र वृत्ते वलनं ज्यकावत् प्राक्चिह्नतः स्पर्शभवं हिमांशोः॥२६॥
सव्यापसव्यं खलु याम्यसौम्यं मौक्षं तदा पश्चिमतश्च देयम्।
रविग्रहे पश्चिमपूर्वतस्ते विक्षेपदिक्चिह्नत एव माध्यम्॥२७॥
सूत्राणि केन्द्राद्वलनाग्रसक्तान्यङ्क्यान्यतः स्पर्शविमुक्तिबाणौ।
ज्यावन्निजाभ्यां वलनाग्रकाभ्यां देयौ यथाशावथ मध्यबाणः॥२८॥
केन्द्रात् प्रदेयो वलनस्य सूत्रे तेभ्यः पृथग्ग्राहकखण्डकेन।
वृत्तैः कृतैः स्पर्शविमुक्तिमध्यग्रासाः क्रमेणैवमिहावगम्याः॥२९॥

ग्रहण परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— समतल स्थान पर ग्राह्य बिंबार्ध प्रमाण अर्धव्यास के सूत्र पर किसी कल्पित बिंदु पर एक वृत्त बनावे तथा उस सूत्र बिन्दु पर मानैक्यार्ध त्रिज्या प्रमाण का एक और वृत्त बनावे। इन वृत्तों में उस बिंदु पर पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण दिशा (खडिया मिट्टी से) रेखायें बनावें। मानैक्यार्ध त्रिज्या के बाह्य वृत्त में वलन को पूर्व दिशा से जहाँ चन्द्र ग्रहण में चन्द्र स्पर्श करे वलन की स्व दिशा में चिन्हित करे तथा मोक्ष के लिए पश्चिम दिशा में इसकी विपरीत दिशा में चिन्हित करे। इस प्रकार वलन को ज्या रूप में चिन्हित करे।

सूर्य ग्रहण में स्पर्श के लिए वलन को पश्चिम दिशा की ओर से उसकी स्वदिशा से विपरीत दिशा में चिन्हित करे तथा मोक्ष के लिए पूर्व दिशा की

ओर इसकी स्वदिशा में चिन्हित करे। इस प्रकार सूर्य ग्रहण में भी वलन को ज्या रूप में चिन्हित करे।

मध्य वलन का यदि विक्षेप दक्षिण हो तो दक्षिण चिन्ह से तथा उत्तर हो तो उत्तर चिन्ह से देवें। यदि दक्षिण वलन हो तो सव्यक्रम से पूर्व चिन्ह से आरम्भ करके दक्षिण चिन्ह, दक्षिण चिन्ह से पश्चिम चिन्ह, पश्चिम चिन्ह से उत्तर चिन्ह तथा उत्तर चिन्ह से पूर्व की ओर चिन्ह करे। इसके विपरीत स्थिति में अपसव्य क्रम से चिन्ह करे।

यहाँ वलन ज्या रूप में है धनुरूप में नहीं है। इस प्रकार वलन चिन्हित करके वलन अग्र से पूर्वोक्त वत्तों के केन्द्र से होते हुए एक सूत्र अंकित करे। चंद्र का शर वलनाग्र से फिर से ज्या रूप में अंकित करे। यदि शर प्रथम स्पर्शकाल का है तो शर को वलनाग्र से स्पर्शकाल संबंधित समय का ज्या रूप में अंकित करे और यदि मोक्षकाल का है तो मोक्ष काल संबंधि समय का ज्या रूप में अंकित करे। यदि शर ग्रहण मध्य का हो तो इसको केन्द्र से वलन सूत्र (केंद्र तथा वलन ज्याग्र रेखा पर) में अंकित करे। इन शराग्र बिन्दुओं से ग्राहक बिंबार्ध प्रमाण त्रिज्या के वृत्त सूत्र पर बनावे। इनसे स्पर्श, मोक्ष बिन्दु तथा ग्रास का ज्ञान होता है।

उपपत्ति— मानैक्यार्ध वृत्त में जब ग्राहक वृत्त का केंद्र (मध्य) रहता है तब ग्राह्य तथा ग्राहक बिंब प्रान्त संलग्न रहते हैं। अतः मानैक्यार्ध बहिर्वृत्त में दिशा को अंकित करना चाहिये। वहाँ जो पूर्व दिशा है वह सममण्डल का पूर्व है। वहाँ से वलन ज्या दान देने से केन्द्र से वलन ज्याग्रगत रेखा क्रांति वृत्त प्राची है। वलन सूत्र से ज्यावत् शरदान देना चाहिये क्योंकि क्रांतिवृत्त प्राची से शर दक्षिण अथवा उत्तर रहता है। इसी प्रकार स्पर्श और मोक्ष में होता है। मध्यवलन तात्कालिक क्रांतिवृत्तप्राची से दक्षिणोत्तर दिशा में होता है अतः केंद्र से वलन सूत्र में देना चाहिये। शराग्र में ग्राहक वृत्त का केन्द्र होता है अतः वहाँ से तात्कालिक ग्राहकार्ध प्रमाण से बनाये हुए वृत्तों से स्पर्श मोक्षध्य होते हैं।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—
"मानैक्यार्धालिखित वलये तत्परीणामिनीर्वा दत्वा जीवा वलनजनिताः पूर्ववज्ज्यानिपातात्।
कुर्यात् तज्ज्ञः कथितविधिनैवात्रवृत्तद्वयेऽपि मध्याद्यन्तग्रहणजनिता संस्थितिश्चन्द्र भान्वोः॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रथमे वलनज्याभिर्दिशो द्वितीये यथादिशं भानोः।
आद्यन्तौ विक्षेपौ मध्यान्मध्योऽन्यथा शशिनः॥१४॥
शशिविक्षेपाग्रेभ्यः परिलिख्य ग्राहकप्रमाणेन।
प्रग्रहमोक्षग्रासा भूपरिलेखे भवन्त्येवम्॥१५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"पूर्वाशायांप्रग्रहः शीतरश्मेः पश्चान्मोक्षस्तिग्मगोरन्यथा तौ।
क्षेपाः सर्वे व्यत्ययेन स्युरिन्दोर्यद्वद् भानोरागतास्तद्वदेव॥२६॥
ग्राह्यं वृत्तं मानयोगार्धवृत्तं त्रिज्यावृत्तं चालिखेत् साधिताशम्।
त्रिज्यावृत्ते शीतगोः पूर्वभागे ज्यावद् दद्याद् वालनान्यङ्गुलानि॥३०॥
पश्चाद्भागे तिग्मगोश्चन्द्रभान्वोः पश्चाद् व्यस्तान्यन्तजान्यादिजानि।
याम्यात् सौम्यान् मध्यमानि प्रदेशादन्यैकाशान्यानयेत् प्राक्प्रतीच्योः॥३१॥
क्षेपं ज्ञात्वा तिग्मगोरन्यथेन्दोस्तेभ्यः सूत्राण्यानयेत् केन्द्रभाञ्जि।
आद्यादन्त्यात् सूत्रमानैक्यभोगाज्ज्यावत् क्षेपौ सारयेदाद्यमोक्षौ॥३२॥
मध्यक्षेपं मध्यतो मध्यसूत्रे क्षेपाग्रेभ्यो ग्राहकार्धेन तेभ्यः।
विज्ञायन्ते खण्डिते तु क्रमेण ग्राह्ये स्पर्शो मध्यमग्रासमोक्षौ॥३३॥"

सूर्य सिद्धान्त में छेद्यकाधिकार में श्लोक २ से ९ तक आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं निमीलीनोन्मीलनेष्टग्रासपरिलेखमाह—

**केन्द्राद्भुजं स्वे वलनस्य सूत्रे शरं भुजाग्राच्छ्रवणं च केन्द्रात्।
प्रसार्य कोटिश्रुतियोगचिह्नाद्वृत्ते कृते ग्राहकखण्डकेन॥३०॥
संमीलनोन्मीलनकेष्टकालग्रासाश्च वेद्या यदि वान्यथामी।**

निमीलन उन्मीलन तथा इष्ट ग्रास परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— भुज को चंद्र केंद्र से वलनसूत्र पर देवें। शर को भुजाग्र पर भुज के लंबवत देवें तथा कर्ण को चंद्र केंद्र से देवे। शर (कोटि) तथा कर्ण के मिलान बिन्दु पर ग्राहकखण्ड के तुल्य त्रिज्या के वृत्त बनावे तथा इनसे संमीलन स्थान ज्ञात करे। (यहाँ संमीलन काल का वलन ज्ञात करके पूर्व चिन्हित पूर्व की तरह चंद्र केंद्र से वलनाग्र तथा रेखा खेचे उस रेखा पर चंद्र

केन्द्र से पूर्व की ओर भुज देवें।) इसी प्रकार उन्मीलन वलन को पश्चिमी की ओर देकर उन्मीलन स्थान ज्ञात करे और इष्ट काल पर तात्कालिक वलन पूर्व-पश्चिम देकर उक्त प्रकार से इष्ट ग्रास ज्ञात करे।

उपपत्ति— ग्राहक मार्ग खण्ड भुज है। शर कोटि है तथा भुज एवं शर के वर्गों का योग का मूल कर्ण है। कर्णाग्र से ग्राहक बिंब लिखने से संमीलनादिक होता है। यह युक्ति युक्त है। यदि कोई कहे कि ग्राह्य बिंब केंद्र से वलन सूत्र में भुज दिया गया है तब भुज ग्राहक मार्ग खण्ड किस प्रकार है? तो इसका उत्तर है कि जब भी भुज, कोटि तथा कर्ण से जो एक त्रिभुज बनता है वह उसके आयत चतुर्भुज का आधा होता है। यहाँ भुजाग्र पर शर कोटि है तथा भुजमूल से भी। शरद्वय के मूलान्तर में जितना भुज है उतना ही दोनों शराग्र के अंतर में भी है। अतः ग्राहक मार्ग खण्ड भुज कहा जाता है। यह **संमीलन तथा उन्मीलन की उपपत्ति है। इष्ट ग्रास परिलेखन की उपपत्ति भी इसी प्रकार जाननी चाहिये।**

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोतराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"पश्चात् प्रग्रहणे प्राग्मोक्षे रविविम्बतो बाहुः।
स्ववलनसिद्धज्यादिशि विपरीतः शीतकरमध्यात्॥१६॥
भानुमतो बाह्वग्राद्यथा दिशं कोटिरन्यथा शशिनः।
रविशशिमध्यात् कर्णस्तिर्यक् कर्णाग्रकोटियुतेः॥१७॥
परिलेखं ग्राह्यस्य ग्राहक मानेन पूर्ववत् कृत्वा।
तात्कालिकसंस्थानं निमीलनोन्मीलने चैवम्॥१८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में ग्रास परिलेखन के लिए जो विधि कही है उसकी उपपत्ति भास्करोक्त उपरोक्त श्लोक है। यथा–

"दिश्यभीष्टवलनस्य कोटिदोः कर्णदान विधिनैवमेवहि।
विद्ध्यभीष्टवलनस्य संस्थितिं ग्राहक ग्रहणतः शशीनयोः॥"

सूर्य सिद्धान्त में छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मानान्तरार्धेन मितां शलाकां ग्रासादिङ्मुखीम।
निमीलनाख्यां दद्यात् सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत्॥२०॥
ततो ग्राहकखण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत्।
तद्ग्रह्यमण्डलयुतिर्यत्र तत्र निमीलनम्॥२१॥

एवमुन्मीलने मोक्ष दिङ्मुखीं सम्प्रसारयेत्।
विलिखेन्मण्डलं प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत्॥२२॥"

इष्ट ग्रास परिलेखन के लिए इसी अध्याय में इस प्रकार कहा है, यथा–

"ग्राह्यग्राहकयोगार्धात् प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम्।
अवशिष्टांगुलसमां शलाकां मध्य बिन्दुतः॥१७॥
तयोर्मार्गोन्मुखीं दद्याद् ग्रासतः प्राग् ग्रहाश्रिताम्।
विमुञ्चतो मोक्षदिशि ग्राहकाध्वानमेव सा॥१८॥
स्पृशेद्यत्र ततो वृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत्।
तेन ग्राह्यं यदाक्रान्तं तत् तमोग्रस्तमादिशेत्॥१९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"क्षेपाग्रत्रयमण्डलैस्तिमियुगस्यास्यस्थितासक्तयो
रज्ज्वोर्योगभवं शरत्रयशिरः प्राप्यालिखेन्मण्डलम्।
तच्च ग्राहकवर्त्म केन्द्रविसृतां युक्तां श्रुतिं तत्स्पृशां
कृत्वा ग्राहकमालिखेदभिमतग्रासादि संसिद्धये॥३४॥
मुच्यमान उडुपे पराङ्मुखीं छाद्यमानम इह शक्रदिङ्मुखीम्।
संप्रसार्य विधिवच्छ्रुतिं ततो विद्ध्यभीष्टदितमन्यथा रवौ॥३५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"बिन्दोर्वाहुं दद्याद्वालनसूत्रेऽथ तस्याग्रात्॥७॥
दद्यात् कोटिशलाकां यथाशकां सौम्ययाम्यायाम्।
श्रवणशलाकां बिन्दोर्दद्यात् कोट्यग्रगां तयो र्योगात्॥८॥
लेख्यं ग्राहकमण्डलदलेन वृत्तं भवेदसौ ग्रासः।
इष्टोऽथ नीमिलनकं ह्युन्मीलनकं च मर्दभवैः॥१९॥"

इदानीमन्यथा संमीलनादिपरिलेखमाह—

ये स्पर्शमुक्त्योर्विशिखाग्रचिह्ने ताभ्यां पृथङ्मध्यशराग्रयाते॥३१॥
रेखे किल प्रग्रहमोक्षमार्गौ तयोश्च माने विगणय्य वेद्ये।
बिम्बान्तरार्धेन विधाय वृत्तं केन्द्रेऽथ तन्मार्गयुतिद्वयेऽपि॥३२॥
भूभार्धसूत्रेण विधाय वृत्ते संमीलनोन्मीलनके च वेद्ये।

अन्य प्रकार से संमीलनादि परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहण मध्य के चंद्र शराग्र को ग्रहण स्पर्श तथा मुक्ति के शराग्रों से मिलाने वाली रेखायें खेंचे। ये क्रमशः प्रग्रहमार्ग तथा मुक्तिमार्ग होते हैं। इन मार्गों के प्रमाण अंगुल शलाका रूप में ज्ञात करके पृथक स्थापित करे। अनन्तर चंद्र केंद्र से बिंबान्तर (छाद्य-छादक बिंबों का अंतर) के आधे के मान तुल्य त्रिज्या सूत्र का वृत्त बनावे। यह पूर्वोक्त मार्गों को एक-एक स्थान पर काटता है उन दोनों योग बिंदुओं को केंद्र मान कर भूभा अर्ध सूत्र (त्रिज्या) से वृत्त बनावे तो वे चंद्र बिंब को जिन दो बिंदुओं पर काटेंगे वे क्रमशः संमीलन तथा उन्मीलन बिंदु होते हैं।

उपपत्ति— स्वमार्ग पर चलते हुए ग्राहकमध्य स्थान पर मानान्तरार्ध तुल्य उनका कर्ण होता है और ग्राहक के संमीलन उन्मीलन स्थान पर उनके केंद्र (ग्राह्य-ग्राहक) का अन्तर बिंबान्तरार्ध तुल्य होता है। अतः ग्राह्य (ग्रस्त) ग्रह के केंद्र से बिंबान्तरार्ध तुल्य त्रिज्या के वृत्त का प्रग्रह मार्ग तथा मुक्तिमार्ग से कटाव (योग) बिंदु ग्राहक (छादक) का केंद्र होता है। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"विक्षेपाग्रेषु त्रीन् बिन्दुन् प्रग्रहणमध्यमोक्षेषु।
कृत्वा तन्मत्स्यद्वयमध्यगयोः सूत्रयोर्योगात्॥३९॥
बिन्दुपरिलेखरेखाग्राहकमार्गः प्रसार्य सूत्रे द्वे।
आद्यन्ताभ्यां मध्यगमुच्छाद्य स्थूलमेवं वा॥४०॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विक्षेपाग्रत्रयकृतमितिद्वन्द्वमध्यस्थरज्वोयोगाद्वृत्तं कृतशरशिरो वर्त्मतद् ग्राहकस्य।
तत्संसक्ता श्रुतिमपि नयेद्युक्तिनो मध्यकेन्द्रादिष्टग्रासाद्यवगमविधिज्ञप्तये चन्द्रभान्वोः॥"

सूर्य सिद्धान्त के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"स्वसंज्ञितास्त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु बिन्दवः।
तत्र्प्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मोक्षिकमध्ययोः॥१४॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यान्मुखपुच्छविनिः सृतम्।
प्रसार्य सूत्रद्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत्॥१५॥
तत्र सूत्रेण विलिखेच्चापं बिन्दुत्रयस्पृशा।
स पन्था ग्राहकस्योक्तो येनासौ सम्प्रयास्यति॥१६"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–
पूर्व श्लोक की व्याख्या में उद्धृत लल्लाचार्योक्त श्लोक ३४ व ३५ का अवलोकन करें।

आर्यभट ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा छेद्यकाधिकार—

''समभुवि बिन्दुं दत्त्वा तस्माद्वृत्तं घनाङ्गुलैः कार्यम्।
दिक्सिद्धिं तद्वृत्ते वलनं प्राच्यां यथाशमर्केन्द्वोः॥१॥
दद्याद्वरुणाशायां व्यस्ताशं सर्वदा वलनम्।
स्पर्शविमोक्षाविन्दोः प्राक् पश्चादन्यथा भानोः॥२॥
मानैक्यार्धेन लिखेद्वृत्तं च ग्राह्यखण्ड सूत्रेण।
वलनाग्रबिन्दुसूत्रस्य युतिर्मानैक्यखण्डवृत्तेन॥३॥
या तस्यास्तद्वृत्ते लेख्या व्यस्ताऽऽशकौ शरौ शशिनः।
भानोर्यथागताशौ वलनाग्राद्बिन्दुगं सूत्रम्॥४॥
धार्यं तद्ग्रह्यार्धजवृत्तयुतौ स्पर्शमोक्षकौ स्याताम्।
वलनाग्राभ्यां मत्स्यं विलिख्य तत् पुच्छमुखसूत्रे॥५॥
दद्याद्बिन्दोर्माध्यं व्यस्ताशेषुर्विधौ रवौ स्वाशम्।
तद्बाणाग्राद्विलिखेद्ग्राहकखण्डेन वृत्तं वा॥६॥
तद्ग्राह्यवृत्तयुतिवच्छन्नं स्यात् परममर्केन्द्वोः।$\frac{1}{2}$।

यहाँ आर्यभट ने भास्करोक्त समस्त परिलेखन को सूक्ष्म रूप में कह दिया है।

इदानीमिष्टग्रासार्थमाह—

मार्गाङ्गुलघ्नं स्थितिखण्डभक्तमिष्टं स्युरिष्टाङ्गुलसंज्ञकानि॥३३॥
इष्टाङ्गुलानीष्टवशात् स्वमार्गे दत्त्वात्र च ग्राहकखण्डवृत्तम्।
कृत्वेष्टखण्डं यदि वावगम्यं स्थूलः सुखार्थं परिलेख एवम्॥३४॥

इष्टग्रास ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— स्पर्शिक अथवा मौक्षिक इष्टकाल की घटिकादि तथा मार्ग अंगुल को (प्रथम स्पर्श से ग्रहमध्य तक के मार्ग की अंगुलादि लम्बाई तथा ग्रहण मध्य से मोक्ष तक के मार्ग की लंबाई) परस्पर गुणा करके स्वस्थितिर्ध घटियों से विभक्त करने से प्राप्तफल इष्ट काल पर (मार्ग के) अंगुलादि होते हैं। (यहाँ स्पर्शस्थिति खंड मार्ग तथा मोक्ष स्थिति खंड मार्ग दोनों के लिए यह

गणना करनी है) यदि स्पर्श से आगे का इष्ट हो तो स्पर्श शराग्र से आगे प्राप्त इष्ट अंगुल देवे। यदि ग्रहमध्य से मोक्ष पूर्व का इष्ट हो तो मध्यशराग्र से मोक्षपूर्व में देवे (इष्ट अंगुल)। इस प्रकार पूर्व प्राप्त इष्ट अंगुल को अपने-अपने मार्ग में देवे (चिन्हित करे)। इस प्रकार से ये बिंदु ग्राहक बिंब केंद्र के रूप में इष्ट काल पर प्राप्त होते हैं। इन बिंदुओं को केंद्र मानकर ग्राहक बिंबार्ध त्रिज्या से वृत्त बनावे तो इन वृत्तों के ग्राह्य बिंब के छादित (कटाव) भाग से इष्टग्रास का ज्ञान होता है।

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति त्रैराशिक से कर सकते हैं कि यदि स्थितिर्ध घटी में मार्ग अंगुल प्राप्त होते हैं तो इष्ट घटी में कितने होंगे? प्राप्तफल इष्ट अंगुल होंगे। इन इष्ट अंगुल स्थानों पर यदि ग्राहकार्ध त्रिज्या से वृत्त बनावें तो इससे इष्टग्रास प्राप्त होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के** ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"बिन्दुद्वयान्तरं स्थितिदलेन हृतमिष्टनाडिकागुणितम्।
ग्राह्यं फलाङ्गुलस्थं ग्राहकमानेन परिलिख्य॥४१॥"

इदानीं ग्रासात् कालानयनं परिलेखेनैवाह—

**ग्रासोनमानैक्यदलेन केन्द्रे वृत्तात् कृतान्मार्गदले बहिर्ये।
ते संगुणे स्वस्थितिखण्डकेन मार्गाङ्गुलाप्ते पृथगिष्टकालौ॥३५॥**

ग्रास से काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मानैक्यार्ध में से ग्रास मान को घटा कर ग्राह्य केंद्र पर वृत्त बनावे। इस वृत्त से बाहर की ओर के मार्गखण्ड अंगुल को स्वस्थिति खण्ड घटि से गुणा करके स्वमार्ग अंगुल से विभाजित करे। इस प्रकार प्राप्त फल स्पर्श से आगे का इष्टकाल हौंता है।

मोक्ष काल के लिए पृष्ठ स्थिति से ज्ञात करे।

उपपत्ति— इष्टकाल पर मानैक्यार्ध में से ग्रास मान घटाने से प्राप्त शेष कर्ण होता है। यह बात इसी अध्याय के पूर्व श्लोक १६$\frac{१}{२}$ में बताई गई है। इस कर्णमान से ग्राह्य केन्द्र पर वृत्त बनावे तथा जो मार्गखण्ड इस वृत्त के बहिर्वत है से अनुपात करे कि यदि मार्ग अंगुलों में स्थित्यर्ध घटियाँ प्राप्त होती है तो वृत्त के बहिर्भूत मार्ग खण्ड अंगुलों में कितनी होगी? प्राप्तफल स्पर्श से आगे का इष्टकाल होगा। अतः उपपन्न हुआ।

यहाँ प्राप्त अन्तराल काल वह समय है जो ग्राहक बिंब केंद्र द्वारा स्वभार्ग पर प्रथम ग्रहण स्पर्श से उसके मार्ग को उपरोक्त वृत्त (जो ग्राह्य बिंब को केंद्र मान कर मानैक्यार्ध में से ग्रास मान घटा कर बनाया गया है) द्वारा काटे गये बिंदू तक जाने में लगता है। इसी प्रकार ग्राहक बिंब केंद्र को उसी प्रकार के तथा समान मार्ग को अन्तरित करने में समय अन्तराल इसके दूसरी ओर ग्रहण मध्य से मोक्ष के पूर्व लगता है वह ग्रहण मध्य से मोक्ष पूर्व तक होता है।

उपरोक्त में यदि ट = स्थिति खंड अर्थात प्रथम स्पर्श तथा ग्रहण मध्य का अथवा ग्रहण मध्य से मोक्ष स्पर्श का समय हो।

त = प्रथम स्पर्श के बाद का इष्ट समय अथवा मोक्ष पूर्व का इष्ट समय (ग्रहमध्य से)।

ल = प्रग्रह मार्ग अथवा मोक्ष मार्ग की लम्बाई

कर्ण = मानैक्यार्ध – ग्रास

कर्ण = $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{शर}^2}$

अब त्रैराशिक किया कि यदि 'ट' समय में 'ल' दूरी पार की जाती है तो 'त' समय में कितनी होगी? फल = $\frac{\text{ल त}}{\text{ट}}$

भुज = ल – $\frac{\text{ल त}}{\text{ट}}$; कर्ण^2 = भुज^2+शर^2; मानैयार्ध – ग्रास =कर्ण

इन तीनों समीकरणों द्वारा कर्ण^2 का मान तुल्य करने पर–

अतः भुज^2+शर^2 = कर्ण^2 = (मानैक्यार्ध – ग्रास)^2

यहाँ भुज का मान प्रतिस्थापित करने से—

$$\left(\text{ल} - \frac{\text{ल त}}{\text{ट}}\right)^2 + \text{शर}^2 = (\text{मानैक्यार्ध} - \text{ग्रास})^2$$

या $$\frac{\text{ल}^2(\text{ट} - \text{त})^2}{\text{ट}^2} + \text{शर}^2 = (\text{मानैक्यार्ध} - \text{ग्रास})^2$$

या ल^2 (ट – त)^2 + ट^2 शर^2 = ट^2 (मानैक्यार्ध – ग्रास)^2

इस समीकरण में ग्रास तथा इष्ट समय के अतिरिक्त सभी संख्यायें ज्ञात हैं। अतः इस समीकरण द्वारा ग्रास मान ज्ञात होने पर उसका इष्टकाल तथा इष्टकाल ज्ञात होने पर ग्रास मान ज्ञात किया जा सकता है। यही क्रिया

भास्कराचार्य ने बताई है। यहाँ ट = $\frac{\text{स्थिति खण्ड}}{\text{सूर्यचंद्र गत्यंतर}}$ होता है। यह पूर्व में आचार्य ने परिभाषित किया है।

प्रग्रहमार्ग अथवा मोर्क्ष मार्ग = $\sqrt{\text{मानैक्यार्ध}^2 - \text{शर}^2}$ होता है। यह भी पूर्व में परिभाषित किया जा चुका है।

इदानीं ग्रहणे वर्णमाह—

स्वल्पे छन्ने धूम्रवर्णः सुधांशोरर्धे कृष्णः कृष्णरक्तोऽधिकेऽर्धात्।
सर्वच्छन्ने वर्ण उक्तः पिशङ्गो भानोश्छन्ने सर्वदा कृष्ण एव॥३६॥

ग्रहण वर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्र बिंब का स्वल्प भाग (आधे से कम) ग्रस्त होने पर उसका वर्ण धूम्र (धुंऐं) जैसा होता है। आधा बिंब ग्रास होने पर काला रंग का होता है तथा आधे से अधिक ग्रसित होने पर काला लाल रंग का होता है। संपूर्ण ग्रहण होने पर उसका रंग लाल भूरा (पिशङ्ग) होता है तथा सूर्य ग्रहण में सूर्य का सर्वदा काला रंग होता है।

विशेष— सूर्य सिद्धान्त छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"अर्धादूने सधूम्रं स्यात् कृष्णमर्धाधिके भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकल ग्रहे॥२३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"ग्रस्तेऽप्यर्कक्रांशो विधोः पचांशो न लक्ष्यते दृष्ट्या।
कृष्णोऽर्कोऽल्पार्धाधिक इन्दुर्धूम्रोऽसितः पिशङ्ग स्यात्॥१६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चद्रं ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"आद्यन्तयोर्बहुल धूम्रलवानुकारी खण्ड ग्रहे नियतमञ्जनपुञ्जवर्णः।
ग्रासे दलात् समधिकेऽरुणकृष्णवर्णः सर्वग्रहे भवति शीतकरः पिशङ्गः॥३६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"आद्यन्तयोः सधूम्रः कृष्णः खण्ड ग्रहेऽर्धतोऽभ्याधिके।
ग्रासे स कृष्णताम्रः सर्वग्रहणे कपिलवर्णः॥१६॥"

वराहोक्त पंचसिद्धान्तिका के वशिष्ट पौलिश सिद्धान्तानुसार चंद्रग्रहण अध्याय ६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रक्त कपिलौ च वर्णावुच्चाऽधस्स्थे परे नितराम्॥८॥
सर्वग्रासिन्येवं वर्णविशेषं वदेन्निशानाथे।
उदयास्तमये धूम्रं खण्डग्रहणे सलिलदाभम्॥९॥"

इदानीमादेश्यानादेश्यानाह—

इन्दोर्भागः षोडशः खण्डितोऽपि
तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः।
तेजस्तैक्ष्ण्यात् तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो
नादेश्योऽतोऽल्पो ग्रहो बुद्धिमद्भिः॥३७॥

ग्रहण का होना अथवा न होना कब कहना चाहिये—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रमा के सोलहवें भाग के खण्ड ग्रस्त होने पर भी चंद्रमा के प्रकाश के कारण उसका वह ग्रस्त भाग दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार सूर्य बिंब के बारहवें भाग के ग्रसित होने पर सूर्य की तेज किरणों के कारण वह ग्रास भाग दिखाई नहीं देता। अतः उपरोक्त तुल्य चंद्र सूर्य के ग्रस्त होने तक हमें इनके ग्रहण का आदेश नहीं करना चाहिये।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महाभास्करीय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रस्तेऽप्यर्कक्रांशो विधोः पंचांशो (१६) न लक्ष्यते दृष्ट्या।१५ $\frac{१}{२}$।"

वृद्धवशिष्ठ में भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ग्रस्तं शशाङ्कस्य कलाद्वयं चेत् कलात्रयं भानुमतो न लक्ष्यम्।"

सूर्य सिद्धान्त के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त से कुछ भिन्न कहा है। यथा–

"स्वच्छत्वाद् द्वादशांशोऽपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते।
लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वाच्च विवस्वतः॥१३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्वादशः सवितृमण्डलांशकः पाटवेन महसो न दृश्यते।
खण्डितोऽपि खलु षोडशांशकः स्वच्छतां विदधतः कलावतः॥१७॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वलनादिशशिवदन्यद् ग्रहणं तैक्ष्ण्याद्रवेरनादेश्यम्।
द्वादशभागादूनं स्वच्छत्वात् षोडशादिन्दोः ॥२०॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तेजस्तैक्ष्ण्यात्तीक्ष्णगोर्मण्डलस्य ग्रस्तोऽप्यंशो रूद्वादशांशोन दृश्यः।
तद्वदभाग् षोडशः शीतरश्मेः स्वच्छांशुत्वाल्लक्ष्यते नाधिकोऽतः॥"

अथोत्क्रमज्यानिराकरणे दृष्टान्तद्वारेण गोलविदो गणकान् प्रति सोपालम्भमाह—

यत् खस्वस्तिकगे रवौ भवलये दृग्वृत्तवत् संस्थिते
प्रत्यक्षं वलनं कुजे त्रिभयुतार्काग्रासमं दृश्यते।
त्वं चेदुत्क्रमजीवयानयसि तत् तादृक् सखे गोलविन्-
मन्ये तर्ह्यमलं तदेव वलनं धीवृद्धिदाद्योदितम्॥३८॥
यत्राक्षोऽङ्गरसा ६६ लवा दिनमणेस्तत्रोदयं गच्छतो
मेषे वा वृषभेऽपि वाप्यनिमिषे कुम्भे स्थितस्यापि वा।
स्पर्शो दक्षिणतस्तदा क्षितिजवत् स्यात् क्रान्तिवृत्तं यत-
स्तद्ब्रुह्युत्क्रमजीवयात्र वलनं व्यासार्धतुल्यं कथम्॥३९॥

वलन आनयन में क्रमज्या के स्थान पर उत्क्रमज्या के उपयोग अप्रासंगिकता—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य जब खस्वस्तिक पर स्थित होता तब आकाश वलय अर्थात क्रांतिवृत्त दृग्वृत्त समान स्थित होता है तब वलन प्रत्यक्षरूप में (सूर्य+९०°) की अग्रा रूप होता है। यदि आप उत्क्रमज्या के उपयोग से (सूत्र) गोल द्वारा इसी के तुल्य वलन ज्ञात करके दिखा देवें तो मैं (भास्कराचार्य) लल्लाचार्य द्वारा अपने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में कही हुई बात को सही मान लूंगा। इसी प्रकार ६६°अक्षांश अर्थात (९०-२४° स्वल्पांतर) पर जब सूर्य वहाँ उदित होते समय मेष, वृषभ अथवा मीन, कुंभ पर स्थित हो तब चंद्रमा उसको (सूर्य ग्रहण में) दक्षिण की ओर से स्पर्श करता है तथा उस समय क्रांतिवृत्त क्षितिजवत् होता है। इस स्थिति में तब वलन को त्रिज्या तुल्य किस प्रकार कह सकते हैं?

विशेष— जैसा कि हमने पूर्व में कहा ब्रह्मगुप्त ने क्रमज्या का ही उपयोग किया है अपने ग्रंथ में लेकिन श्रीपति तथा पृथुदकाचार्य (जिन्होंने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की टीका की है) दोनों ने ही ब्रह्मगुप्त की बात पर ध्यान नहीं देकर

लल्लार्योक्त कथन को ही स्वीकार कर लिया। (सिद्धान्त शेखर चंद्र ग्रहणाध्याय श्लोक १८ से २०)। यद्यपि भास्कराचार्य से पूर्व आचार्यों ने उत्क्रमज्या के उपयोग की अप्रासंगिकता को स्वीकार लिया था लेकिन उसके समर्थन में ठोस तर्क नहीं दिये जाने के कारण आगे के आचार्यों ने उस सुधार को न समझ पाकर पारम्परिक सूत्र को ही ग्रहण कर लिया। जब कि भास्कराचार्यने उनके पूर्वाचार्यों द्वारा दिये गये दोनों प्रकार के सूत्रों का बारीकी से अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि उन दोनों में से किस के द्वारा शुद्ध मान ज्ञात होते हैं। उन्होंने जिन तर्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला वह यहाँ उन्होंने कह दिया है, जिनको उनके परवर्ति आचार्यों ने तर्क द्वारा गलत सिद्ध नहीं कर पाने के कारण स्वीकार कर लिया।

।। इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के चंद्र ग्रहणाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न।।

अथ सूर्यग्रहणाधिकारः

इदानीं सूर्यग्रहणाधिकारो व्याख्यायते—

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
ऊर्ध्वोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि॥१॥

अध्याय के आरंभ का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— अमावस्यान्त काल पर समकल चंद्र-सूर्य को दृष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत देखता है उनको वह भूकेंद्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देखता है। सूर्य चंद्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चंद्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चंद्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चंद्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से ऊपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही दृष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्य ग्रहण में सूर्य चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण दृष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से मैं (आचार्य) लम्बन तथा नति को कह रहा हूँ जिनके कारण सूर्य ग्रहण में सूर्य-चंद्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते हैं।

इदानीं लम्बनस्य भावाभावं धनर्णत्वं च कथयितुमिति कर्त्तव्यतामाह—

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये।
रवौ तदूनेऽभ्यधिके च तत् स्यादेवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम्॥२॥

लम्बन की स्थिति अथवा अभाव एवं धन ऋणत्व—

सूर्य-प्रभा टीका— दर्शान्त काल (अमावस्या) का लग्न ज्ञात करे तथा इसका त्रिभोन लग्न ज्ञात करे। इस त्रिभोन लग्न के समय रवि का लम्बन नहीं होता। सूर्य यदि इससे न्यून अथवा अधिक हो तब इसका लम्बन होता है तथा वह क्रमशः धन एवं ऋण होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य रवि के रहने पर लम्बन नहीं होता है।

उपपत्ति— सर्वप्रथम हम यह स्पष्ट करते हैं कि लम्बन क्या होता है? चंद्र ग्रहण में क्योंकि चन्द्रमा भूछाया द्वारा आच्छादित होता है अतः वह दृष्टा की पृथ्वी पर किसी भी स्थिति से दृश्यमान होने में प्रभावित नहीं होता। लेकिन चंद्रमा जब सूर्य ग्रहण में सूर्य को आच्छादित करता है तब उसकी दृश्यस्थिति दृष्टा के पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर से प्रभावित होती है। यह लंबन के कारण होती है।
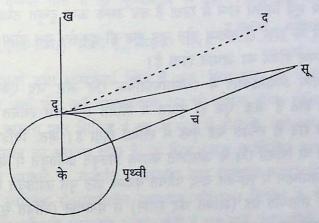
चित्र में,

के = भू केंद्र है।

दृ = दृष्टा की पृथ्वी के ऊपर की स्थिति है।

ख = खमध्य है।

चं = चंद्रमा है।

सू = सूर्य है।

दृद = रेखा के चं सू के समानांतर खींची गई है।

दृष्टा भूकेंद्र (के) से चंद्रमा को (के चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख के चं = ख दृ द है। लेकिन दृ स्थान पर बैठा हुआ दृष्टा चंद्रमा को (दृ चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चंद्रमा का नतांश ख दृ चं है तथा—

$\angle$ख दृ चं = $\angle$ख के चं + $\angle$के चं दृ = $\angle$ख दृ द + $\angle$द दृ चं

तथा $\angle$दृ चं के, $\angle$ख के चं के लिए लंबन शुद्धि है।

सूर्य के लिए लम्बन शुद्धि $\angle$दृ सू के है। यह चंद्र की लंबन शुद्धि से अल्प है।

∠दृ चं के लंबन का मान होता है।

लग्न से प्राप्त नब्बे अंश वृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ लगता है वही वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त रवि के ऊपर से तथा दूसरा कदम्ब प्रोत वृत्त लंबित रवि के ऊपर से क्रांतिवृत्त में जहाँ जहाँ लगता है उनके बीच का क्रांतिवृत्त पर चाप (रवि के लंबित स्थान से रवि स्थान पर्यंत) रवि का स्पष्ट लम्बन होता है। लेकिन जब सूर्य वित्रिभ लग्न में रहता है तब उसके ऊपर दृग्वृत्त तथा रवि और लंबित रवि के ऊपर से कदम्ब प्रोत वृत्त एक ही दृक्क्षेप वृत्त होता है। अतः वहाँ पर स्पष्ट लंबन का अभाव होता है।

गर्भीय अमान्तकाल में स्थानाभिप्रायिक रवि और चंद्र एक ही बिंदु (रेखा) में होते हैं अतः एक ही दृग्वृत्त में लंबित रवि और लंबित चंद्र होते हैं। लंबित रवि से लंबित चंद्र पृष्ठ में लंबित होता है। अतः वित्रिभ से रवि अल्प होने पर लंबित रवि के ऊपरीगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ लगता है उससे अधोभाग में लम्बित चन्द्र परिगत कदम्ब प्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में लगेगा। अतः यहाँ शीघ्रगति ग्रह (लंबित चंद्र स्थान) से मन्दगति (लंबित सूर्य स्थान) के आगे रहने के कारण युति गम्य होती है। अतः गर्भीय अमान्त से पृष्ठीय अमान्त स्पष्ट लंबांतर के पश्चात् होता है। इसलिए गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लंबान्तर जोड़ने से पृष्ठीय अमान्त काल होता है। वित्रिभ से रवि अधिक रहने पर लंबित रवि से लंबित चंद्रमा अधोभाग में होता है। अतः लंबित रवि ऊपर गत कदम्ब प्रोत वृत्त और क्रांति वृत्त के सम्पात से लंबित चंद्रोपरिगत कदम्ब प्रोत्त वृत्त और क्रांतिवृत्त का सम्पात ऊपर होता है अतः मध्यगति ग्रह (लंबित रवि स्थान) से शीघ्रगति ग्रह (लंबित चंद्र स्थान) के आगे रहने के कारण युति गत होती है। अतः गर्भीय अमान्त काल में स्पष्टलम्बांतर को ऋण करने से पृष्ठीय अमान्त काल होता है। अतः आर्योक्त ''तदूनेऽभ्यधिके'' युक्ति युक्त है। उपपन्न हुआ।

दृग्लंबन का परमत्व— भूकेंद्र से और भू पृष्ठ से स्वकक्षा स्थित रविकेंद्रगत रेखा द्वय चन्द्रकक्षा में जहाँ-जहाँ लगती है उसके अन्तर्गत चन्द्रगोलीय दृग्वृत्तचाप रवि लंबन है। इसी प्रकार भूकेंद्र से और भूपृष्ठ से चंद्रकक्षास्थ चंद्र केंद्रगत दोनों रेखायें रवि कक्षा में जहाँ जहाँ लगती है उनके अन्तर्गत रविगोलीय दृगवृत्त चाप चन्द्रलंबन है। इस तरह एक त्रिभुज बनता है।

भूकेंद्र से ग्रह केंद्र (रवि केंद्र या चंद्र केंद्र) पर्यन्त ग्रह कर्ण एक भुज, भूपृष्ठ से ग्रहकेंद्र पर्यन्त पृष्ठ कर्ण द्वितीय भुज, भूव्यासार्ध तृतीय भुज। इन भुजों से बनने वाले त्रिभुज में पृष्ठकर्ण और भूव्यासार्ध से उत्पन्न कोण = १८० – पृष्ठीय नतांश, कोणज्या और कोणोनभार्धांशज्या बराबर होती है, इसलिये ज्या (१८०–पृष्ठीय नतांश) = पृष्ठीय दृग्ज्या। अब अनुपात किया कि यदि ग्रह कर्ण में पृष्ठीय दृग्ज्या पाते हैं तो भूव्यासार्ध से क्या? इससे प्राप्तफल ग्रहलग्न कोणज्या (दृग्लग्नज्या) आती है, जिसका मान = $\frac{\text{पृ.दृग्ज्या} \times \text{भूव्यासार्ध}}{\text{ग्रह कर्ण}}$। इस सूत्र में ग्रहकर्ण तथा भूव्यासार्ध स्थिर हैं अतः सिद्ध हुआ कि पृष्ठीय दृग्ज्या का परमत्व जहाँ जो, वहीं दृग्लम्बनज्या का भी परमत्व होगा। लेकिन पृष्ठीय दृग्ज्या का परमत्व पृष्ठ क्षितिज में ग्रह के रहने से होता है, अतः पृष्ठ क्षितिज ही में दृग्लम्बन का परमत्व होता है यह सिद्ध हुआ। गर्भक्षितिज धरातल और पृष्ठक्षितिज धरातल के अन्तर्गत दृगमंडलीय चाप (कुच्छन्न कला) होता है।

ख स्वस्तिक से ग्रहगोलीय दृग्मण्डल और पृष्ठ क्षितिज के योग बिन्दु में जो भूव्यासार्धकला (कुच्छन्न कला) होती है वह परम लंबन होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"वित्रिभलग्नसमेऽर्के न लंबनं तदधिकोनके भवति।
वस्य क्रांतिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समा न तदा॥२॥"

सूर्यसिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भवः।$\frac{1}{2}$।"
"लंबनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते॥२॥
मध्य लग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात् प्रविशोधयेत्।
धनमूनेऽसकृत् कर्म यावत् सर्वं स्थिरीभवेत्॥६॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वित्रिभोदयसमे न लंबनं भास्करे समधिकोनके भवेत्।
चेत् समा तदपमज्यकोत्तराऽक्षज्ययाऽस्त्यवनतिस्तदा नहि॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"परमं लम्बनमुदयेऽस्ते वा भानोर्दिवादले न स्यात्।
दर्शान्तजे प्रसाध्ये कथितवदभ्रोदयविलग्ने॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के रवि.ग्र. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वित्रिभलग्नसमे दिननाथे लम्बननाश इहाभ्यधिकोने।
तद्भवति क्षयवृद्धि विधायि स्पष्टतिथेरसकृच्च सकृद्वा॥३॥"

इदानीमस्मेवार्थं सम्प्रधार्यानुपातद्वयेन लम्बनमाह—

त्रिभोनलग्नं तरणिं प्रकल्प्य तल्लग्नयोर्यः समयोऽन्तरेऽसौ।
त्रिभोनलग्नस्य भवेद्द्युयातः शङ्क्वाद्यतस्तस्य चरान्त्यकाद्यैः॥३॥
त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिञ्जिनी कृताहता व्यासदलेन भाजिता।
हतात् फलाद्वित्रिभलग्नशङ्कुना त्रिजीवयाप्तं घटिकादि लम्बनम्॥४॥

दो अनुपातों द्वारा लम्बन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— दर्शान्त काल पर लग्न ज्ञात करके उसको वित्रिभ करके, उस वित्रिभ के भुक्त भोग्य के अन्तर को लग्न के उदय काल में जोड़ देने से वित्रिभ का उदय काल प्राप्त होता है। इस काल से वित्रिभ लग्न जनित कुज्या, द्युज्या, अन्त्या तथा त्रिप्रश्नाधिकारोक्त प्रकार से शंकु का साधन करे। शंकु से दृग्ज्या तथा उसका छायाकर्ण साधित करे। फिर त्रिभोन लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या का साधन करे। (अब उनसे लंबन ज्ञान करने के लिए अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या से चार घटी लंबन (परम लंबन) प्राप्त होता है तो अभीष्ट में क्या? प्राप्तफल मध्यमलग्न होगा। इसको स्फुट करने के लिए दूसरा अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभलग्न शंकु का इतना लंबन होता है तो इतने नत अंतर में क्या? प्राप्तफल स्फुट लंबन होगा।) त्रिभोलग्न में से सूर्य के अन्तर की ज्या को चार से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को वित्रिभ लग्नशंकु से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से घटिकादि लंबन स्फुट होता है।

सूत्र रूप में—

$$\text{लंबन} = \frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

उपपत्ति— पूर्वोक्त टीका में ही ब्रेकिट में लिखा गया भाग उपपत्ति रूप है। यहाँ आचार्य ने दो अनुपात किये हैं प्रथम यह कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य हो जावे अर्थात् वित्रिभलग्नऽर्क अन्तर ज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जावे तो

क्षितिज पर परमलंबन का मान चार (४) नाडी होता है; तब प्राप्त वित्रिभ लग्नऽर्क अन्तर ज्या में कितना लंबन होगा?

दूसरा अनुपात यह किया है कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य पर न हो तब यदि वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या (वित्रिभ लग्न शंकु) यदि त्रिज्या तुल्य हो जावे तब मध्यम लंबन $\frac{४ \times \text{त्रिभोनलग्नऽर्क अन्तरज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होता है (प्रथम अनुपात से) अतः प्राप्त त्रिभोन लग्न की नतांश कोज्या (अर्थात वित्रिभ लग्न शंकु) में कितना लंबन होगा?

विशेष— **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के सूर्यग्रहणाधिकार में ब्रह्मगुप्त ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"त्रिज्याकृतेश्चतुर्गुणशङ्कुहतायाः फलेन भक्तायाः।
तात्कालिकार्कराशित्रयोनलग्नान्तरज्यायाः ॥४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्षेदघ्नशङ्कुविहतात् त्रिगुणस्य वर्गाल्लब्धेन वित्रिभदिनेशविशेष जीवा।
भक्ता विलम्बनमिदं स्युदितं दिनेशे न्यूनाधिके धन ऋणं त्रिगृहोनलग्नात्॥"

सूर्य सिद्धान्त में सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"एक ज्यावर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गति जीवया॥७॥
मध्यलग्नार्क विश्लेषज्या छेदेन विभाजिता।
रविन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक्पश्चात् घटिकादिकम्॥८॥"

यहाँ वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या को दृग्गति कहा गया है। यह वित्रिभ लग्न शंकु ही है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तद्गज्यावर्गान्तरमूलं सा दृग्गतिर्भवति।
तद्घबधेन गभज्यावर्गो भक्तो भवेच्छेदः॥६॥
दृग्लम्बार्कान्तरजा ज्या छेदाप्ता भवेद्धरिजम्।$\frac{१}{२}$।"
"असकृत् कार्य चैतत् पराशर्यं मतं प्रवक्ष्येऽथ।
दृग्लम्बजनरघबधेन भजेद्गज्याकृतिं फलेन हता॥८॥

दृग्लम्बार्कान्तरजा ज्या लम्बनताडिका भवन्त्यसकृत्।
सुस्थिरलम्बनतिथिजान् कुर्यादुष्णांशुशशिपातान्॥६॥''

पूर्व श्लोक ६ में स्थूल दृग्गति ग्रहण की गई है तथा इन श्लोकों में पराशरमत से सूक्ष्म दृग्गति ग्रहण की गई है यही यहाँ विशेष है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''ग्राह्य वित्रिभविलग्नविशेषज्या हता विपद लग्नं नरेण।
व्यास खण्डकृतिहृत्फलमाहुर्लम्बनं परमलम्बननिघ्नम्॥''

इदानीं प्रकारान्तरेण स्फुटीकरणमाह—

फलाद्रवि १२ घ्नात् त्रिभहीनलग्नकर्णेन लब्धं खलु लम्बनं वा।

प्रकारांतर से लंबन स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वप्राप्त फल अर्थात् मध्यलंबन को बारह (१२) से गुणा करके वित्रिभ लग्न (शंकु) के छाया कर्ण से विभक्त करने से भी स्फुट लंबन प्राप्त होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक से कि, यदि वित्रिभलग्नशंकु द्वादश अंश हो तो वित्रिभ लग्न शंकु को त्रिज्या चाप से अपवर्तित करने से गुणा के स्थान पर १२ तथा हर स्थान पर वित्रिभ लग्न कर्ण प्राप्त होता है। यथा–

$$\text{पूर्वानीत लंबन घटी} = \frac{४ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या} \times \text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रि} \times \text{त्रि}} \text{ है}$$

$$= \frac{४ \times १२ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\dfrac{१२ \times \text{त्रि.}}{\text{वित्रिभलग्नशंकु}} \times \text{त्रि.}}$$

$$= \frac{४ \times १२ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{वित्रिभ छाया कर्ण} \times \text{त्रि}} \text{ (यह ब्रह्मगुप्तोक्त है।)}$$

$$= \frac{१२ \times \text{फल}}{\text{वित्रिभ लग्न छाया कर्ण}}$$

$$\text{यहाँ फल} = \frac{४ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मध्यलंबन है।}$$

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"कर्णगुणाद् व्यासार्धाद् वसुवेद विभाजितात् फलविभक्ता।
लम्बननाड्यो भास्करवित्रिभलग्नान्तरज्या वा।।६।।"

उपरोक्त उपपत्ति के अनुसार भास्करोक्त तथा ब्रह्मगुप्तोक्त बात को परस्पर परिवर्तित किया जा सकता है।

सिद्धान्त शेखर में भी श्रीपति ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"श्रुतिसङ्गुणात् त्रिभगुणाद्विभाजिताद्वसुसागरैरथ फलेन वा हृता।
रवि वित्रिभोदय वियोगशिञ्जिनी घटिकादिलम्बनमिहासकृत् भवेत्।।"

श्रीपति ने इस श्लोक से भास्कराचार्य के पूर्व श्लोक ३ व ४ की व्याख्या भी होती है।

इदानीं प्रकारान्तरेण लम्बनमाह—

त्रिभोनलग्नस्य रवेश्च शङ्कोर्वा दृग्ज्ययोर्वर्गवियोगमूलम्।।५।।
स्याद्दृङ्नतिर्वेद ४ गुणा त्रिमौर्व्या भक्ताथवा लम्बननाडिकाः स्युः।

प्रकारांतर से लंबन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिभोनलग्न तथा रवि के शंकु तथा दृग्ज्या साधित करे। दोनों के शंकु वर्गों तथा दृग्ज्या के वर्गों का पृथक्-पृथक् अंतर का मूल दृङ्नति होता है। दृङ्नति को चार (४) से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से लम्बन घटियाँ होती है।

सूत्र रूप में—

$$\text{दृङ्नति} = \sqrt{\text{त्रिभोन लग्न शंकु}^2 - \text{रविशंकु}^2}$$

$$= \sqrt{\text{त्रिभोन लग्न दृग्ज्या}^2 - \text{रवि दृग्ज्या}^2}$$

$$\text{स्फुट लंबन घटि} = \frac{\text{दृङ्नति} \times ४}{\text{त्रिज्या}}$$

उपपत्ति— यदि वित्रिभ लग्न खमध्य बिंदु हो तब क्रांतिवृत्त दृग्मंडल हो जाता है तथा त्रिभोन लग्न तथा रवि के अन्तर की ज्या, सूर्य की दृग्ज्या होती है। पूर्व श्लोक ३-४ के अनुसार इस दृग्ज्या को चार (४) से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से मध्य लंबन होता है। यह वहाँ उपपत्ति में कहा है। वित्रिभ लग्न खमध्य बिंदु पर होने पर परम लंबन शून्य घटी होता है तथा

क्षितिज पर होने पर ४ घटी होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लम्बन सूर्य की नतज्या के अनुपात में प्राप्त होता है। इस परिस्थिति में यह लंबन क्रांतिवृत्त में ऊर्ध्व स्थिति में होता है तथा यह कर्ण रूप में होता है।

यदि वित्रिभ लग्न खअर्ध तुल्य नत हो तो क्रांतिवृत्त के तिर्यक स्थित होने के कारण पूर्वापर स्फुट लंबन कोटिरूप में होता है। मध्य लम्बन आनयन में त्रिज्या वित्रिभलग्नशंकु है। इसको स्फुट करने के लिए यह वित्रिभ लग्न शंकु दृक्क्षेपमंडल में कोटि होता है, तब उसकी दृग्ज्या भुज है एंव त्रिज्या कर्ण है। जब वित्रिभ शंकु कर्ण से कोटि रूप में होता है तब स्फुट लंबन त्रिज्या भी कोटि रूप में हो जाती है।

भास्कराचार्य के कहे अनुसार हम इसको दूसरे प्रकार से भी देख सकते हैं। रवि की दृङमंडल में दृग्ज्या कर्ण रूप में है तथा वित्रिभ लग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप में भुजरूप में है। स्फुट लंबन जो कर्ण रूप में है जब दृग्मंडल नतांश रूप में कोटी रूप में हो जाता है। अतः तब $\sqrt{\text{त्रिभोन लग्न दृग्ज्या}^2 - \text{रवि दृग्ज्या}^2}$ स्फुट लंबन की कोटि है। अतः इसको दृग्नति कहते हैं।

अतः स्फुट लंबन को दृग्मंडल नत पर आधारित समझना चाहिये। दृग्मंडल नत को दृग्नति भी कहते हैं। वित्रिभलग्न और रवि की अन्तर ज्या, वित्रिभलग्नशंकु व्यासार्ध में परिणत करने से दृग्नति होती है। इस प्रकार क्षितिस्थ रवि की परमनति वित्रिभ लग्न शंकु तुल्य होती है यह पूर्व के तुल्य होती है। किन्तु दृक्क्षेप और रवि की दृग्ज्या तुल्य शलाका समतल भूमि पर भुजकर्ण के रूप में विन्यास करने पर उसकी कोटि रूप दृग्नति दिखाई देती है।

यहाँ जिस प्रकार वित्रिभलग्न तथा रवि की दृग्ज्या के वर्गों के अन्तर का मूल उसका शंकु होता है, उसी प्रकार उनके शंकु वर्गों के अन्तर का मूल होता है। अब इसके लिए बताते हैं। इनके स्व-स्व शंकुवर्गों को त्रिज्या के वर्ग में घटाने से दृग्ज्या वर्ग होता है। अतः इन का अंतर करने से त्रिज्या वर्ग दोनों स्थानों पर तुल्य होने से समाप्त हो जाता है तथा शंकु वर्गान्तिर शेष रहता है। अतः आचार्य ने कहा है "त्रिभोनलग्नस्य रवेश्च शंक्वीर्वा दृग्ज्योरिति।" दृङ्नति का त्रिज्या से अनुपात करने से लंबन घटी में प्राप्त होता है।

विशेष— भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्वदृग्दृक्षेपगुणयोवर्गविश्लेषजे पदे।
दृग्गतिज्ये भवेतां भास्करामृत तेजसोः॥२३॥"

यहाँ खमध्य से सूर्य तक जाने वाली (वृत्त में) दूरी जो क्रांतिवृत्त पर लंबवत होती है "दृग्गतिज्या" होती है। इसके पश्चात् के आचार्यों ने खमध्य से क्रांतिवृत्त पर लंबवत् दूरी को 'दृन्नतिज्या' कहा है।
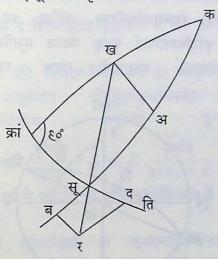
चित्र में क्रां सू द ति क्रांति वृत्त है। क = कदम्ब है। सू = सूर्य है। ख = खमध्य है। क ख क्रां तथा क सू क्रांतिवृत्त पर लम्ब हैं। र = स्वस्थान से देखने पर सूर्य की स्थिति है। ख अ, क सू पर लंब है। समकोण त्रिभुज ख क्रां सू में –

$(\text{ज्या ख अ})^{२} = (\text{ज्या ख सू})^{२} - (\text{ज्या ख क्रां})^{२}$ ∵ ख क्रां = अ सू

अथवा $(\text{सूर्य दृग्गति ज्या})^{२} = (\text{सूर्य दृग्ज्या})^{२} - (\text{सूर्य दृक्क्षेपज्या})^{२}$

यहाँ क्योंकि वित्रिभ लग्न की दृग्ज्या दृक्क्षेप होती है। अतः

दृग्नति = $\sqrt{\text{सूर्य दृग्ज्या}^{२} - \text{वित्रिभ लग्न दृग्ज्या}^{२}}$. आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

चित्र में सू द सूर्य की लंबन है तथा सू र सूर्य की नति लंबन है।

वराह के पंचसिद्धान्तिका के सौर सिद्धान्त द्वारा सूर्यग्रहण आनयन के अध्याय ९ में आचार्योक्त विधि ही कही है। यथा–

निम्नलिखित दो श्लोकों में मध्य लग्नज्या ज्ञात करने के लिए कहा है–

"मध्यार्कलम्बित तिथेरनक्ष राश्युदग्मैः प्रतीपांशाः।
प्राक् समलिप्ताहानिः क्रमेण पश्चाद्धनं कार्यम्॥१७॥

तन्मध्य विलग्नाख्यं तस्माच्चापक्रमांशकाः क्रमशः।
तैरक्षवियुतयुक्तैर्या ज्यामध्याभिधाना सा॥१८॥"

इसके पश्चात् आगे के दो श्लोकों में रविदृक्क्षेप ज्ञात करने के लिए बताया है। यथा–

"तिथ्यन्तविलग्न ज्या काष्ठान्तज्याहता स्वलम्बहता।
मध्यज्याघ्नी व्यासाऽर्धभाजिता वर्गिता सा च॥१९॥
मध्यज्या कृतिविश्लेषितां पृथक् स्थाप्य मूलमेकस्याः।
सवितुर्दृक्क्षेपाख्यं संस्मृत्यर्थं पृथक् स्थाप्यम्॥२०॥"
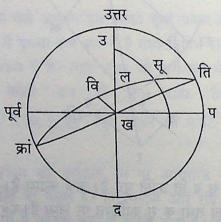
चित्र में वि = वित्रिभ लग्न अर्थात (लग्न–९०°) है। ख = ख स्वस्तिक है। वि ख = वित्रिभ लग्न का नत है। क्रां वि ल सू ति = क्रांतिवृत्त है। उ ख द = याम्योत्त है। ल = याम्योत्तर वृत्त तथा क्रांतिवृत्त का मिलान बिंदु मध्यलग्न है। सू = अमान्त पर सूर्य की स्थिति है। ज्या (विख) = सूर्य दृक्क्षेप है जो ज्ञात करना है। गोलीय ख वि ल त्रिभुज जो वि बिंदु पर समकोण है, को स्वल्पांतर से समतल त्रिभुज मान लेने पर चापीय त्रिभुज की भुजाओं के चापों की ज्या को इस समतल त्रिभुज की भुजायें मान ली गई हैं।

$(\text{ज्या विख})^2 = (\text{ज्या ल ख})^2 - (\text{ज्या वि ल})^2$

समकोण त्रिभुज ख वि ल में ख ल कर्ण है।

अथवा $(\text{ज्या वित्रिभलग्न नत})^2 = (\text{ज्या म. ल.नतांश})^2 - (\text{ज्या} (\text{म.ल.} - \text{वि.}))^2$

अथवा $(\text{रवि दृक्क्षेप})^2 = (\text{ज्या म.ल. नतांश})^2 - (\text{ज्या म.ल.वि.})^2$

मध्य लग्न का नतांश पूर्व श्लोक १७-१८ से ज्ञात कर लिया जाता है तथा ज्या (म.ल. – वि.) को पंचसिद्धान्तोक्त सूत्र–

$$\text{ज्या (म.ल. –वि.)} = \frac{\text{ज्या (म.ल.नतांश)} \times \text{ज्या } \angle\text{ल ख वि}}{१२०}$$

इस प्रकार पंच सिद्धान्तिका में भी आचार्योक्त को आधार रूप ही कहा गया है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में नति की घटिकादि आचार्योक्त कही है। यथा–

"हताथवा दृष्टि गतिः खषड्गजैर्विलम्बनं तत् स्वमृणं क्रमाद् भवेत्।
तिथेर्विरामे परपूर्वभाग योर्मुहुस्तदुत्थांशकलाः शशीनयोः॥८॥
तद्वर्गतिथ्यन्तजदृष्टिजीवा वर्गान्तरं दृग्गतिवर्गमुक्तम्॥६॥"

यहाँ आचार्य ने $\frac{\text{दृग्गति}}{\text{त्रिज्या}} \times ४$ को ही $\frac{\text{दृग्गति}}{३४३८ \div ४} = \frac{\text{दृग्गति}}{८६०}$ कहा है।

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि के रविग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपवर्गौ पृथगन्वितौ वा भूयाल्पभूखण्डकवर्गिताभ्याम्।
हीने तु तच्छङ्कुकृते पदे स्ते दृङ्मध्यजीवे नरमौर्विके वा॥१४॥
दृग्गतिः कृत (४) गुणाऽथवा हता त्रिज्ययैव घटिकादिलम्बनम्।
तत्तिथौ क्षयधनं यथोक्तवल्लम्बनस्फुट इहोदितोऽसकृत्॥१६॥"

आचार्य ने लल्लाचार्य की भांति भी (पूर्वाक्त श्लोक) लंबन कहा है। यथा–

"नतघटिकाङ्ग समाहतिरंशा स्वमृणमिने परपूर्वकपाले।
तदपमचापपलापंशयुतोनं त्रिभरहितं द्युदले नतशङ्कू॥७॥
खरसनाग हता नतमौर्विका द्युदलशङ्कुगुणा त्रिभमौर्विहृत्।
भवति लम्बनमुक्तकपालयोः तिथिघटीष्वसकृत्स्वमृणं क्रमात॥८॥"

इदानीं लम्बनप्रयोजनमाह—

शङ्कोस्तयोर्दृग्गुणयोस्तयोर्वा त्रिज्याचतुर्थांशविभक्तयोः स्यात्॥६॥
यद्वर्गविश्लेषपदं द्विधैवं विलम्बनं तद्घटिकादिकं वा।

लंबन ज्ञात करने की अन्य विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त त्रिभोनलग्न तथा सूर्य के शंकु एवं दृगज्या

को त्रिज्या के चतुर्थांश से विभक्त करके उनके वर्गों के अंतर का मूल लेने से लंबन प्राप्त होता है।

उपपत्ति— आचार्य ने यह श्लोक पूर्वोक्त श्लोक में कथित सूत्र के दोनों भागों को ही सम्मिलित करके नये रूप में कह दिया है।

आचार्य द्वारा पूर्व कथित श्लोक के दोनों सूत्रों को एक रूप में करने से–

$$\text{स्फुट लंबन घटी} = \frac{४}{\text{त्रिज्या}}\sqrt{\text{त्रिभोन लग्न शंकु}^{२} - \text{रवि शंकु}^{२}}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{४}{\text{त्रिज्या}}\right)^{२}\left[\text{त्रिभोन लग्न शंकु}^{२} - \text{रवि शंकु}^{२}\right]}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रिभोन लग्न शंकु})^{२} \times \left(\frac{४}{\text{त्रिज्या}}\right)^{२} - (\text{रवि शंकु})^{२} \times \left(\frac{४}{\text{त्रिज्या}}\right)^{२}}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{त्रिभोन लग्न शंकु}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^{२} - \left(\frac{\text{रवि शंकु}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^{२}}$$

इसी प्रकार —

$$\text{स्फुट लंबन घटी} = \sqrt{\left(\frac{\text{त्रिभोन लग्न दृग्ज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^{२} - \left(\frac{\text{रवि दृग्ज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^{२}}$$

इदानीं लम्बनप्रयोजनमाह—

तत्संस्कृतः पर्वविराम एवं स्फुटोऽसकृत् स ग्रहमध्यकालः ॥७॥

लंबन का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यलग्न अर्थात् त्रिभोन लग्न से सूर्य अधिक हो तो दर्शान्तकाल में लंबन को हीन करना चाहिये और यदि त्रिभोन लग्न से सूर्य न्यून हो तो दर्शान्त काल में लंबन को धन करना चाहिये। लंबन संस्कृत दर्शान्त काल से पुनः पुनः तब तक लंबन आदि संपूर्ण क्रिया करे जब तक लम्बन का मान स्थिर न हो जावे। इस प्रकार स्थिर भूत दर्शान्त काल स्पष्ट दर्शान्तकाल होता है।

उपपत्ति— चंद्र कक्षा आसन्न है तथा रवि कक्षा दूर स्थित है अतः भूमि

पर स्थित दृष्टा से जो रवि मंडल गामी सूत्र है उससे चंद्रमा दृष्टा को अवलम्बित दिखता है। यही लंबन है। क्रांति वृत्त पर परमोच्च स्थान पर वित्रिभलग्न होता है। उससे यदि रवि न्यून हो तो सूर्य से अवलंबित चन्द्र पीछे की ओर होता है। चन्द्रमा की गति शीघ्र होती है अतः वह पीछे से तेज गति से आकर सूर्य से पीछे से युति करता है। अतः लंबन का तिथि में धन करते हैं। यदि वित्रिभ से रवि अधिक हो तो अवलंबित चंद्रमा सूर्य से आगे होता है तब शीघ्र गति से युति लंबन तुल्य काल में हो चुकती होती है अतः लंबन को ऋण करते हैं। इस प्रकार लंबन संस्कृत दार्शान्त ग्रहण मध्य काल होता है, यह उपपन्न हुआ।

यदि त्रिज्या तुल्य सूर्य की दृग्ज्या का परम भुक्त अन्तर १५ अंश तुल्य होता है तब लंबन कला ४८।४६ प्राप्त होती है तो इष्ट सूर्य दृग्ज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल दृग्लंबन कला होती है। इससे इसी प्रकार अनुपात करने से दृक्क्षेप से जो लंबन लिप्ता प्राप्त होती है वह अवनति लिप्ता है। यह भुज रूपा है। दृग्लंबन कला कर्ण है। इनके वर्गान्तर का मूल स्फुट लंबन लिप्ता होता है।

जैसे दृङ्नति आनयन में रविदृग्ज्या कर्ण तथा दृक्क्षेप भुज होता है इसी प्रकार दृक्क्षेप के आनयन में अवनति भुज तथा स्फुट लंबन लिप्ता कोटी होती है।

इदानीं सकृत्प्रकारेण लम्बनमाह—

त्रिभोनलग्नस्य नरस्त्रिभू १३ घ्नो दन्तैः ३२ विभक्तः परसंज्ञकः स्यात्।
लग्नार्कयोरन्तरकोटिदोर्ज्ये विधाय दोर्ज्यापरयोर्वियोगात्॥८॥
स्वघ्नाद्युतात् कोटिगुणस्य कृत्या मूलं श्रुतिः कोटिगुणात् परघ्नात्।
श्रुत्या हृताल्लब्धधनुः कला यास्ते वासवो लम्बनजाः सकृत् स्युः॥९॥

अब सकृत्प्रकार से लम्बन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिभोलन लग्न के शंकु को (१३) तेरह से गुणा करके ३२ से विभक्त करने से प्राप्त फल 'पर'संज्ञक है। दर्शान्त काल पर जो लग्न है उसके तथा सूर्य के अंतर की भुज कोटि साधित करके उस ज्या तथा 'पर' के अंतर के वर्ग में कोटिज्या के वर्ग का अंतर युक्त कर देवें। इस प्रकार प्राप्त योगफल का मूल कर्ण है। कोटिज्या तथा 'पर' के गुणा में कर्ण से भाग देने से जो फल प्राप्त हो उसको चाप की जितनी कला हो उतनी लम्ब असु होते हैं।

सूत्र रूप में—

$$पर = \frac{१३}{३२} \text{ त्रिभोन लग्न शंकु}$$

$$कर्ण = \sqrt{[पर \backsim ज्या\ (लग्न\ अर्कान्तर)]^2 + कोज्या^2\ (लग्नऽर्कान्तर)}$$

$$लंबन = चाप \left(\frac{लग्नऽर्कान्तर\ कोज्या \times पर}{कर्ण}\right)$$

उपपत्ति— यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न शंकु में परम लंबन प्राप्त होता है तो इष्ट शंकु में कितना होगा?

$$प्राप्तफल = \frac{इष्ट\ त्रिभोलग्न\ शंकु \times परम\ लंबन\ ज्या}{त्रिज्या}$$

$$अर्थात\quad पर = \frac{त्रिभोन\ लग्न\ शंकु \times ज्या\ २४^\circ}{३४३८} = \frac{त्रिभो.ल.शे \times १३}{३२}$$

यहाँ ४ घटी परमलंबन होता है तब त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न शंकु होता है। ४ घटी कितने अंश तुल्य होती है यदि ६० घटी में ३६० अंश होते हैं। $\frac{४ \times ३६०}{६०}$ = २४ अंश। अर्थात् परम लंबन की ४ घटी, २४ अंश तुल्य होती है। अतः $पर = \frac{ज्या\ २४^\circ \times त्रिभोन\ लग्न\ शंकु}{त्रिज्या}$

अतः पूर्व श्लोक ३ व ४ में आचार्योक्त लंबन का सूत्र—

$$लंबन = \frac{४ \times वित्रिभ\ लग्नऽर्कान्तर\ ज्या}{त्रिज्या} \times \frac{वित्रिभ\ लग्नशंकु}{त्रिज्या}$$

$$लंबन = पर \times \frac{वित्रिभ\ लग्नऽर्क्रान्तरज्या}{त्रिज्या}$$

यहाँ वित्रिभ लग्नऽर्कान्तरज्या जब त्रिज्या के तुल्य होगी जब लंबन 'पर' के तुल्य हो जाता है। उपरोक्त प्राप्त 'पर' का मान निम्नलिखित क्रांतिज्या ज्ञात करने के सूत्र के समरूप है।

$$क्रांतिज्या = \frac{ज्या\ २४^\circ \times ज्या\ भुजांश}{त्रिज्या}$$

दोनों सूत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि त्रिभोनलग्नशंकु = ज्या

भुजांश है। अर्थात् 'पर' का मान क्रांतिज्या के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। अतः त्रिज्या संभूत क्रांतिकला तुल्य परम लंबन होता है। यदि वित्रिभ लग्न शंकु त्रिज्या से अल्प हो तो वह तज्जनित क्रांतिकला तुल्य होता है। अतः वित्रिभ लग्न शंकु जनित क्रांतिज्या, परमलम्बन असू की ज्या होती है।
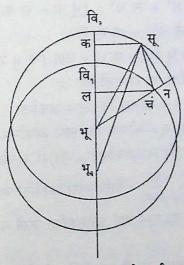
यहाँ चित्र में त्रिज्या तुल्य अंगुल मान से कर्कटक (गोला प्रकार) से भू$_1$ को केंद्र मानकर एक वृत्त बनावे तथा इसको चंद्र कक्षा कल्पित करे। इस केंद्र से ऊर्धव-अधः एक सीधी रेखा खेंचे। भू$_1$ से ऊपर की ओर इस ऊर्धव रेखा पर परम लंबनासुज्या अंतर पर भूमी को भू बिंदु पर मानकर फिर एक वृत्त खेंचे। इसको सूर्य कक्षा कल्पित करे तथा इस पर चक्रांश अंकित करे। भू भू$_1$ से होकर जाती हुई उर्धव रेखा जहाँ इन वृत्तों को काटे वहाँ वित्रिभलग्न संज्ञक बिन्दु वि$_1$ तथा वि$_2$ उच्च स्थान कल्पित करे। रवि कक्षा में वित्रिभलग्न तथा सूर्य के अंतर भाग तुल्य वित्रिभलग्न वि$_2$ से नतांश पर सूर्य को सू बिंदु पर अंकित करे। इसी प्रकार चंद्र कक्षा में चंद्र वित्रिभलग्न से जितने अंश पर हो उतने अंश नत पर चंद्रमा को चं बिंदु पर कल्पित करे। भूमि बिंदु भू से चंद्र बिंदु चं को मिलाती हुई एक रेखा आगे तक खेंचे। यह सूत्र रविकक्षा को जहाँ पर काटे वह सूर्य बिंदु से जितने घटी अंतर पर हो उतने घटिकायें लग्न की ज्ञात करे। इस प्रकार से क्षेत्र बनाकर लम्बन साधन के लिए उपपत्ति ग्रह के शीघ्रफल ज्ञात करने के प्रकार से करे।

यहाँ रविकक्षा कक्षामंडल, चंद्र कक्षा प्रतिमंडल तथा परम लंबन असुज्या

अंतर फलज्या तथा वित्रिभलग्न को शीघ्रोच्च कल्पित करके क्रिया करे। चित्र में वि$_2$ भू सू कोण स्फुट केंद्र है तथा वि$_2$ भू$_1$ सू कोण मध्यम केंद्र है तथा भू चं कर्ण है।

समकोण त्रिभुज भू ल चं में–

$$\text{कर्ण}^2 = \text{भू चं}^2 = \text{भू ल}^2 + \text{ल चं}^2 = (\text{भू क} - \text{ल क})^2 + \text{क सू}^2$$

$$= (\text{भू क} - \text{सू चं})^2 + \text{क सू}^2$$

$$\text{कर्ण}^2 = (\text{कोज्या (क भू सू)} - \text{पर})^2 + \text{ज्या (क भू सू)}^2$$

यदि ल, वित्रिभ अर्कांतर पर लग्न हो तो

कोज्या क भू सू = कोज्या वि. लग्न अर्कान्तर

तथा ज्या क भू सू = कोज्या वि. लग्न अर्कान्तर

$$\text{अतः कर्ण}^2 = [\text{कोज्या (वि.ल. अर्कान्तर} \backsim \text{पर)}]^2 + \text{कोज्या}^2 \text{ (वि.ल.अर्कांतर)}$$

अतः लंबन = $\frac{\text{पर}}{\text{कर्ण}}$ × वित्रिभलग्न अर्कान्तर ज्या; पूर्व प्राप्त सूत्र में त्रिज्या = कर्ण। कर्ण का मान यहाँ प्रतिस्थापित करने पर आचार्योक्त सूत्र प्राप्त हो जाता है।

सूत्रों की समरूपता से ही इस विधि की प्रेरणा आचार्य को प्राप्त हुई होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

विशेष— उपरोक्त उपपत्ति में किये गये विवेचन के अनुसार भास्कराचार्य ने मध्यक्रांतिज्या को 'पर' संज्ञा कहा है उसी प्रकार **लल्लाचार्य** ने **शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** के चंद्र श्रंगोन्नति अध्याय में कहा है। वहाँ उन्होंने चंद्रमा की मध्यक्रांतिज्या के लिए सूत्र कहा है। यथा–

"शुभ्रभानु भुजशिञ्जिनी हता कृष्णवर्त्मकुमुदाकरप्रियैः
भाजिता नयनपावकैर्भवेत क्रान्तिमौर्व्यशिशिरद्युतेरपि॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के रविग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिभरहितविलग्नादर्कहीनादूभुजाग्रे त्रिकुलवरद $\left(\frac{३२}{१३}\right)$ भक्ते त्रिज्ययाग्रोनयुक्तात्।
दृगदृगुडुकलापे तद्भुजावर्गयोगात् पदविहृदिषुजो ना काष्ठतो दोर्गणो वा॥३२॥
सकृदेवमिहापि लम्बनं प्राग्वद्दृगतितोऽपि साधयेत्।
द्युदलत्रिभहीनलग्नयोरन्तर्ज्यात इह द्युखण्जम्॥३३॥"

अथ नत्यर्थमर्केन्द्वोर्दृक्क्षेपावाह—

दृग्ज्यैव या वित्रिभलग्नशङ्कोः स एव दृक्क्षेप इनस्य तावत्।
सौम्येऽपमे वित्रिभजेऽधिकेऽक्षात् सौम्योऽन्यथा दक्षिण एव वेद्यः ॥१०॥
चापीकृतस्यास्य तु संस्कृस्य त्रिभोनलग्नोत्थशरेण जीवा।

सूर्य चंद्र की दृक्क्षेप ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— वित्रिभ लगन शंकु की दृग्ज्या सूर्य की दृक्क्षेप संज्ञक होती है तथा इसी प्रकार चंद्र की होती है। वित्रिभ लग्न की उत्तर क्रांतिज्या अक्षांश से अधिक हो तो दृक्क्षेप उत्तर तथा अन्यथा होने पर दक्षिण होता है। दृक्क्षेप का धनु प्राप्त करके वित्रिभ लग्न को चंद्र मानकर सपात तात्कालिक चन्द्र की ज्या से विक्षेप चंद्र साधित करे। इस वित्रिभ लग्न विक्षेप से (उस) दृक्क्षेप के धनु में संस्कार करे। यदि दोनों एक दिशा में हो तो योग तथा विभिन्न दिशा में हो तो अन्तर करे। इस प्रकार संस्कार वशाद चंद्र दृक्क्षेप की दिशा होती है। इसकी ज्या, चंद्र की दृक्क्षेप संज्ञक होती है।

उपपत्ति— त्रित्रिभ लग्न क्रांतिवृत्त में भ्रमण करने के कारण कदाचित वह दक्षिणोत्तर वृत्त से पूर्व की ओर तथा कदाचित पश्चिम की ओर होता है। यदि उदयलग्न उत्तर गोल में होता है तो वह पूर्व की ओर होता है तथा अन्यथा पश्चिम में होता है। खअर्ध पर वित्रिभ लग्न होने पर दृक्क्षेपमंडल में जहाँ वित्रिभ लगता है उससे खअर्ध की दूरी तक रवि दृक्क्षेप का चापांश होता है। जहाँ विमंडल लगता है उससे ख अर्ध अन्तर तक चन्द्र दृक्क्षेप चापांश होता है। इसकी ज्या उनकी दृक्क्षेप होती है।

जब कक्षामंडल खमध्य होता है तब दृङ्मंडल से इधर उधर स्थित ग्रह लंबित होने पर भी कक्षामंडल में ही रहता है उसको त्यागता नहीं है। अतः यहाँ नति का अभाव होता है। यदि खअर्ध से नत होकर वित्रिभ लग्न दक्षिण की ओर हो तो क्रांतिवृत्त तिरछा होने के कारण उस पर स्थित रवि दृङ्मण्डल गत लंबित होने पर क्रांतिवृत्त से दक्षिण की ओर जितने अंतर पर दिखाई देता है उतनी उसकी नति होती है और वित्रिभ लग्न यदि खअर्ध से नत होकर उत्तर की ओर होता है तो उत्तर नति होती है। इसी प्रकार चंद्र की नति होती है। चन्द्रकक्षामण्डल को विमंडल कल्पित करे क्योंकि चन्द्रमा विमंडल में ही भ्रमण करता है। अतः खार्ध से विमंडल जितना नत होता है उतना चंद्र दृक्क्षेप का चाप होता है। उसकी ज्या उसका दृक्क्षेप होता है। दृक्क्षेप से तिरछा विमंडल

होने के कारण दृङ्मंडल गत लंबित चंद्र का विमंडल से जितना अन्तर दक्षिणोत्तर होता है वह चंद्र नति होती है तथा उससे दृक्क्षेप प्राप्त होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अक्षज्याया वित्रिभलग्नात् स्वक्रान्तिरुत्तराऽर्कस्य।
इन्दोर्वा यद्यधिकाऽवनतिः सौम्याऽन्यथा याम्या।।८।।
वित्रिभलग्नादुत्तरदक्षिणविक्षेप हीन संयुक्तम्।
शंकुधनुरुत्तरायामधिकोनं दक्षिणावनतौ।।९।।
तज्जयेन्दुशंकुराद्यः सवितुर्दृक्क्षेपमण्डले युक्ते।
अपमण्डलेन भानोश्चन्द्रस्य विमण्डले युते।।१०।।"

भास्कराचार्य ने सूर्यग्रहणाधिकार के अंत में श्लोक १८,१९ की स्वकृत्त उपपत्ति में अपने ही यहाँ कथित श्लोक में वर्णित विधि का खण्डन भी कर दिया है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृग्लम्बनजा दृग्ज्या सौम्या सौम्येऽपमेऽक्षतोऽभ्यधिके।
याम्याऽन्यथाऽत्र सैव स्पष्टा दृक्क्षेपउक्तदिक्वस्तु।।१०।।
केचित् सपातदृग्लम्बजेषुणेच्छन्ति संस्कृतिं सदसत्।।$\frac{१}{२}$।।"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"उत्तरो यदि हि वित्रिभलग्नात् स्वापमः समधिकः पलमौर्व्याः।
स्यात्तदाऽवनतिरुत्तरदिक्का दक्षिणात्वपरया तपनेन्द्वोः।।"

इदानीं दृक्क्षेपान्नतिसाधनमाह—

दृक्क्षेप इन्दोर्निजमध्यभुक्तितिथ्यंशनिघ्नौ त्रिगुणोद्धृतौ तौ।।११।।
नती रवीन्द्वोः समभिन्नदिक्त्वे तदन्तरैक्यं तु नतिः स्फुटात्र।

दृक्क्षेप से नति साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रसूर्य के दृक्क्षेप को स्व-स्व मध्यभुक्ति (मध्यम गति) के पंद्रहवें भाग से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से उनकी क्रमशः नति प्राप्त होती है। उनकी नति एक ही दिशा में होने से उनका अन्तर करने से तथा विभिन्न दिशा में होने से उनका योग करने से रविग्रह की स्फुट नति होती है।

उपपत्ति— त्रैराशिक से, यदि त्रिज्यातुल्य दृक्क्षेप में परम भुक्ति (गति) का १५ वाँ भाग तुल्य नति प्राप्त होती है तो इष्ट दृक्क्षेप में कितनी होगी? प्राप्तफल नतिकला होता है। अब नति के योग-वियोग करने के कारण को कहते हैं। यदि जिस दिशा में चंद्र नत है यदि उसी दिशा में रवि नत होगा तो उनकी नति का अंतर सूर्य-चंद्र के तुल्य होगा और नति भिन्न दिशा में होने पर उनकी नति का योग चन्द्र सूर्य के अन्तर तुल्य होगा। उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविशशिमध्यगतिगुणे तिथिगुणितव्यासदल भक्ते॥११॥
फलयोर्दिक् साम्येऽन्तरमवनतिरैक्यं दिगन्यत्वे॥१२॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ततो दृग्ज्ये मध्यस्वगति तिथि भागेन गुणिते।
त्रिमौर्व्या संभक्ते भवति विवरं यच्च फलयोः॥"

सूर्य सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दृक्क्षेपः शीततिग्मांश्वोर्मध्य भुक्त्यन्तराहतः।
तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं साऽवनतिर्भवेत्॥१०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। आचार्य ने सूर्य चंद्र दोनों के गति अंतर को लेकर सूत्र कहा है जब कि भास्कराचार्य ने सूर्य-चंद्र के अलग अलग दृक्क्षेप की गणना की है। यथा—

"दृक्षेपे शरयुग्मबाणगुणिते द्विःस्थे शशाङ्केनयोः।
कर्णाभ्यां विहृते फलान्तरकला मध्यांशदिक् सा नतिः।
दृक्क्षेपः स्फुट भुक्तिजान्तरहतः खाद्रीषुरुपेषुहृद्।
वा नत्येन्दुशरः समान्यककुभोर्युक्तो वियुक्ततः स्फुटः॥११॥"

यहाँ आचार्य ने सूत्र निम्नलिखित कहा है जो भास्करोक्त तुल्य ही है। श्लोक के प्रथम भाग की व्याख्या आगे भास्कर प्रथम के महाभास्करीय श्लोक की व्याख्या में देखें।

$$\text{चंद्रसूर्य नति} = \frac{\text{दृक्क्षेपज्या} \times \text{सूर्य चंद्र मध्य गति अंतर}}{\text{५१५७०} \ (= \text{३४३८} \times \text{१५})}$$

भारतीय आचार्यों के अनुसार अधिकतम नति ग्रहगति का $\frac{१}{१५}$ वाँ भाग हो सकती है। यही भास्कराचार्य ने ग्रहण किया है।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त को भिन्न प्रकार से कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपज्ये त्वविशिष्टे भूव्यासार्धहते हृते।
स्फुट योजन कर्णाभ्यामवाप्ता लिप्तिकादयः॥२८॥
अभिन्नाशयोर्विश्लेषस्तासां सूर्यनिशाकृतोः।
मध्यज्ययोरथान्यत्वे योगोऽवनति लिप्तिकाः॥२९॥"

यहाँ आचार्योक्त सूत्र से भास्करोक्त सूत्र प्राप्त किया जा सकता है। यथा—

$$\text{चंद्र नति} = \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times \text{भूमी का योजनात्मक अर्धव्यास}}{\text{चंद्र की स्पष्ट दूरी}} \text{ चापकला}$$

$$\text{लेकिन चंद्र की स्पष्ट दूरी} = \frac{\text{चंद्र की मध्य गति योजन} \times ३४३८}{\text{चंद्र की चाप कला गति}}$$

$$\text{चंद्र नति} = \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times \text{भू योजनात्मक व्यासार्ध}}{\text{चंद्र की मध्यम योजनात्मक गति} \times ३४३८} \times \text{चंद्र की चाप कला गति}$$

$$= \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times ५२५}{७९०६ \times ३४३८} \times \text{चंद्र चाप कला गति}$$

$$= \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times \text{चंद्र चाप कला गति}}{१५ \times ३४३८}$$

इसी प्रकार सूर्य नति प्राप्त होगी। भूमि का योजनात्मक व्यास ५२५ ग्रहण किया है।

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त सूत्र ही कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपज्यामविश्लिष्टां गत्यन्तरहतां हरेत्।
खस्वरेष्वेकभूतारव्यैर्लब्धास्ता लिप्तिकादयः॥११॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के रविग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अथवा स्फुट भुक्तिताडितौ दृक्क्षेपौत्रिगुणेन भाजितौ।
तिथिभिश्च फलेनती स्फुटे स्वे कक्ष्याप्रतिमण्डले तयोः॥४॥
मध्यभुक्तिताडितौ (च वा) दृक्क्षेपौ तिथिभाग ताडितौ।
नती त्रिगुण भाजितौ क्रमात् सूर्य-चंद्रमसोः कलागते॥६॥"

इदानीं स्फुटनतेरेवानयनमाह—

दृक्क्षेप इन्दोर्द्विगुणो विभक्तः क्विन्द्रैः १४१ स्फुटैवावनतिर्भवेद्वा॥१२॥
लघुज्यकोत्थो द्विगुणोऽक्षभक्तः षष्ट्यंशयुक्तोऽवनतिः स्फुटा वा।

स्फुट नती आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रमा के दृक्क्षेप को दो से गुणा करके १४१ से विभक्त करने से स्फुट अवनति होती है अथवा लघु ज्या से (व्यासार्ध १२० मान कर) गणना करने से चंद्र दृक्क्षेप को दो से गुणा करके ५ से विभक्त करने से प्राप्तफल में उसका साठवाँ भाग युक्त करने से स्फुट अवनति होती है।

उपपत्ति— यहाँ स्वल्पांतर से चंद्र दृक्क्षेप तथा रवि दृक्क्षेप को तुल्य मान कर भुक्त्यंतर के पन्द्रहवें भाग से अनुपात करे। यदि त्रिज्या तुल्य दृक्क्षेप हो तब भुक्त्यन्तर के पन्द्रहवें भाग तुल्य स्फुट नति होती है तब इष्ट दृक्क्षेप में कितनी होगी? प्राप्तफल में भुक्त्यन्तर (गति अंतर) का पंद्रहवाँ भाग गुणा में तथा त्रिज्या हर में प्राप्त होती है। इसके गुणक तथा हर के स्थान पर १४१ प्राप्त होता है। यह वृहज्या से प्राप्त होता है। अर्थात् $\frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४८' ४६''}{३४३८} =$

$\frac{\text{दृक्क्षेप} \times २}{१४१}$ स्वल यहाँ $\frac{\text{चन्द्रगति} - \text{सूर्य गति}}{१५} = ४८'४६''$ इसको लघुज्या से

करने पर $\frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४८' \times ४६''}{१२०} = \text{दृक्क्षेप} \times \frac{२}{५}$ स्वल

विशेष— **आर्यभट (द्वि.)** ने **महासिद्धान्त** के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"केचित् सपातदृग्लम्बजेषुणेच्छन्ति संस्कृतिं तदसत्।
पढिकै भक्तो रघ्नो दृक्क्षेपोऽसौ नतिर्भवति॥११॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त बात के मूल सूत्र को कहा है। इस सूत्र को आगे सरल रूप में अपवर्तित करके सूर्य सिद्धान्त आदि में तथा भास्कराचार्य ने कहा है। यथा—

''जीवा शशाङ्कभास्कर मध्यम भुक्त्यन्तरेण सङ्गुणिता।
पञ्चदशभिर्गुणितया विभाजिता त्रिज्ययाऽवनतिः ॥२४॥''

सूर्य सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र को कहकर आगे और सरल रूप में गणना करके कहा है। यथा–

''दृक्क्षेपः शीततिग्मांश्वोर्मध्य भुक्त्यन्तराहतः।
तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं साऽवनतिर्भवेत् ॥१०॥
दृक्क्षेपात सप्ततिहृताद् भवेद्वाऽवनति फलम्।
अथ वा त्रिज्यया भक्तांत् सप्त सप्तकसंगुणात् ॥११॥''

यहाँ सूत्र इस प्रकार प्राप्त किया है। त्रिज्या का मान ३४१५ ग्रहण किया है—

$$\text{नति} = \frac{\text{दृक्क्षेप (सूर्य चंद्र गति अंतर)}}{३४१५ \times १५} = \frac{\text{दृक्क्षेप} (७९० - ५९)}{५१२२५}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ७३१}{५१२२५} = \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०} \text{ स्वल. से}$$

$$\text{तथा नति} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ७३१}{\text{त्रिज्या} \times १५} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४८'४६''}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४९}{\text{त्रिज्या}} \text{ स्वल्पां.}$$

अतः ये दोनों सूत्र एक ही हैं। भास्कराचार्य ने और भी अलग प्रकार से इन को सरल करके रख दिया है।

अन्य के लिए पूर्व श्लोक की व्याख्या के विशेष में देखें।

वटेश्वरचार्य ने वटे.सि. के रविग्रहण में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''द्वि गुणानतशिञ्जिनी हता क्षितिशक्रै (१४१) र्नति लिप्तिकामितिः ।$८\frac{१}{२}$।''

इदानीं स्थूले लम्बनावनती सुखार्थमाह—

त्रिभोनलग्नस्य दिनार्धजाते नतोन्नतज्ये यदि वा सुखार्थम् ॥१३॥
दृक्क्षेपशङ्कू परिकल्प्य साध्यं स्वल्पान्तरं लम्बनकं नतिश्च।

स्थूल लम्बनावनती सरलरूप में ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिभोन लग्न की (चंद्र मान कर उसकी) क्रांति तथा शर ज्ञात करे तथा इस शर से क्रांति में संस्कार करके स्फुट क्रांति प्राप्त

करे। क्रांत्यांश तथा अक्षांश से वित्रिभ नतांश ज्ञात करे। इसको तीन राशि में से घटा कर (उन्नतांश) उसकी ज्या वित्रिभ शंकु होती है। इस प्रकार उन्नतज्या को वित्रिभ लग्न शंकु तथा नतज्या चंद्र का दृक्क्षेप मान कर उपरोक्त प्रकार से लंबन तथा अवनति ज्ञात करे।

उपपत्ति— स्वल्पांतर से याम्योत्तर वृत्त में ही वित्रिभ लग्न को मान कर दिनार्धकाल की भांति वित्रिभनतांश और उन्नतांश ज्ञात करे। उन्नतांश ज्या, वित्रिभ शंकु होता है तथा निदार्धशंकु की दृग्ज्या दृक्क्षेप के आसन्न होती है। पूर्वोक्त प्रकार से वित्रिभ शंकु से नतांश तथा दृक्क्षेप से नति का साधन सरलता से किया जा सकता है। वित्रिभ लग्न की नतांश ज्या तथा उन्नतांश ज्या क्रमशः नति तथा लंबन होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"लग्नात् त्रिराशिहीनादपक्रमाक्षांशयुति विशेषोनात्।
भत्रितयाज्ज्या छेदस्त्रिज्यार्धकृतेः फलेन हताः॥२२॥
वित्रिभलग्नार्कान्तरजीवा घटिकादिलंबनं वा स्यात्।
वित्रिभलग्नापक्रमविक्षेपाक्षांश युतिवियुतेः॥२३॥"

भास्कराचार्य ने भी स्वकृत वा.भा. में ब्रह्मगुप्तोक्त उपरोक्त श्लोक २३ को ही उद्धृत किया है। आचार्य का श्लोक ब्रह्मगुप्तोक्त श्लोक पर ही आधारित है।

इदानीं नतेः प्रयोजनमाह—

स्पष्टोऽत्र बाणो नतिसंस्कृतोऽस्मात् प्राग्वत् प्रसाध्ये स्थितिमर्दखण्डे॥१४॥

नति का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्रशर तथा नति का (एक दिशा में योग तथा भिन्न दिशा में अन्तर) संस्कार करके स्पष्ट शर प्राप्त होता है। उससे पूर्व कथित प्रकार से स्थिति तथा मर्द खण्ड ज्ञात करे।

उपपत्ति— गणितागत दर्शान्तकाल में लंबन का असकृत प्रकार से क्रिया करने से स्फुट दर्शान्तकाल आता है वह ग्रहमध्य काल होता है तथा उस समय का तात्कालिक चंद्र संपात ज्ञात करके उसका विक्षेप (शर) साधित करे। स्थिर लंबन काल पर जो वित्रिभलग्न हो उससे अवनति साधित करे तथा उसमें विक्षेप का संस्कार करे। इस प्रकार मध्यग्रहण का शर स्फुट होता है। इससे मानार्ध योगान्तर से स्थिति मर्द खण्ड आदि चंद्र ग्रह की भांति ज्ञात करे।

चंद्र स्थान पर से क्रांतिमंडल का अंतर विक्षेप (शर) होता है। चंद्र विमंडल में तथा रवि क्रांतिमंडल में रहने से उनका जो विक्षेप है वह याम्योत्तर अन्तर होता है। अब भूगर्भस्थ दृष्टा यदि भूअर्ध पर ऊपर पृथ्वी पर स्थित हो तो रविकक्षामंडल से चंद्र कक्षा मंडल नीचे होने से दृक्क्षेप के कारण लंबित होता है। उनका योम्योत्तर दिशा में जितना लंबन होता है वह नति के आगे शर होने से उसमें शर का संस्कार करने से स्फुट रविचन्द्र का अंतर प्राप्त होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धानत के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्राग्दृक्क्षेपोत्थनतिर्नत भागाशाऽथ तत्समयजेन्दोः।
बाणेन संस्कृताऽसौ स्पष्टो बाणोऽत्र तेनैव॥१२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"संयोगान्तरमवनतिशशाङ्कविक्षेपयोः समान्यदिशोः।
स्फुटविक्षेपः शशिवत् स्थित्यर्धविमर्ददलनाडयः॥१३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिशोः साम्ये भेदे युतिरवनतिस्तच्छशिशरौ
समाशौ चेद्योगोऽन्तरमपरथा स स्फुटशरः।"

सूर्यसिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यज्यादिग्वशात् सा च विज्ञेया दक्षिणोत्तरा।
सेन्दु विक्षेपदिक्साम्ये युक्ता विश्लेषिताऽन्यथा॥१२॥"

तया स्थिति विमिर्दार्धग्रासाद्यं तु यथोदितम्।$\frac{१}{२}$।"

भास्कर (प्रथम) ने महासिद्धान्त के पंचम अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विक्षेपः शशिनः स्पष्टस्तेन युक्ता नतिः स्फुटा।
नानाशयोस्तु विश्लेषः शेषा सा नतिरुच्यते॥३१॥"

इसके आगे श्लोक ३४ से ३६ में स्थितिर्ध, विमर्दादि ज्ञात करना बताया है नति की सहायता से। इसी प्रकार लघुभास्करीय में भी आचार्य ने कहा है।

इदानीं स्पर्शमुक्तिसंमीलनोन्मीलनकालार्थमाह—

तिथ्यन्ताद्गणितागतात् स्थितिदलेनोनाधिकाल्लम्बनं
तत्कालोत्थनतीषुसंस्कृतिभवस्थित्यर्धहीनाधिके।
दर्शान्ते गणितागते धनमृणं वा तद्विधायासकृज्-
ज्ञेयौ प्रग्रहमोक्षसंज्ञसमयावेवं क्रमात् प्रस्फुटौ॥१५॥
तन्मध्यकालान्तरयोः समाने स्पष्टे भवेतां स्थितिखण्डके च।
दर्शान्ततो मर्ददलोनयुक्तात् संमीलनोन्मीलनकाल एवम्॥१६॥
सकृत्प्रकारेण विलम्बनं चेत् सकृत् स्फुटौ प्रग्रहमोक्षकालौ।
किंत्वत्र बाणावनती पुनश्च तात्कालिकाभ्यां विधुवित्रिभाभ्याम्॥१७॥

स्पर्श, मुक्ति, संमीलन, उन्मीलन काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— गणितागत तिथ्यन्त में से स्थिति अर्ध हीन युत करके लंबन ज्ञात करे अर्थात् तिथ्यन्त काल में स्पर्श कालिक स्थित्यर्ध घटाकर तथा मोक्षकालिक स्थित्यर्ध जोड़कर स्पर्शिक लम्बन तथा मौक्षिक लंबन का साधन करे, फिर उसे स्पष्ट शर जनित स्थित्यर्ध करके हीन और युत तिथ्यन्त से लंबन ज्ञात करे। इस प्रकार असकृत करे।

तात्पर्य यह है कि स्पर्शकाल ज्ञान के लिए पहले मध्यकालिक स्पष्टशर से स्थित्यर्ध साधन करे फिर उसको स्पष्ट तिथ्यन्त में से घटाने से प्राप्तफल से लंबन तथा नति साधन करे। तात्कालिक सपात चंद्र से शर साधन करे। नति तथा शर के संस्कार से स्पष्ट शर साधन करके उससे चंद्र ग्रहण की भांति स्थित्यर्ध साधन करे। तिथ्यन्त में उसको घटाने से प्राप्तफल से पुनः नति, स्पष्ट शर तथा स्थितिऽर्ध का साधन जब तक अधिशेष रहे तब तक इसी तरह करे। अधिशेष होने पर जो लंबन हो उसको तात्कालिक स्पष्ट शर जनित स्थित्यर्ध करके हीन गणितागतदर्शान्त में धन या ऋण करे, तब स्फुट स्पर्श काल प्राप्त होता है। इसी तरह स्थित्यर्ध युक्त तिथ्यन्त से स्फुट मोक्षकाल प्राप्त होता है। उस स्फुट स्पर्शकाल तथा स्फुट मोक्षकाल का तथा स्पष्ट दर्शान्त काल का अन्तर स्पार्शिक तथा मौक्षिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होते हैं एवं जिस प्रकार स्थित्यर्ध से स्पष्ट स्थित्यर्ध साधन किया है उसी प्रकार असकृत् कर्म द्वारा अपने विमर्दार्ध से स्पष्ट विमर्दार्ध साधन करना चाहिये अर्थात् पूर्ववत् असकृत् कर्म से स्फुट संमीलन काल और स्फुट उन्मीलन काल का साधन कर के उनके और मध्यकाल के अन्तर के बराबर स्पष्ट विमर्दार्धद्वय समझना चाहिये। (यहाँ आचार्य ने पहले

मध्यकाल लंबन को ही स्थूल रूप में स्पर्शकाल और मोक्षकाल में स्वीकार किया है, इससे असकृत कर्म में कोई हानि नहीं है)।

उपपत्ति— स्थिति अर्ध आनयन तथा उसका स्फुटीकरण पूर्व में बताया गया है। गणितागत दर्शान्त काल, मध्य ग्रहण काल होता है। उस समय चन्द्र सूर्य तुल्य होते हैं। स्थित्यर्ध दर्शान्त काल में से घटाने से स्पर्शकाल तथा युत करने से मोक्षकाल होता है।

दृष्टा जब भूकेंद्र से भूअर्धव्यास तुल्य ऊपर भूपृष्ठ पर स्थित होता है तब लंबन उत्पन्न होता है। उससे संस्कृत दर्शान्त स्फुट मध्यग्रहकाल होता है एवं स्पर्शकाल के समय तत्काल जनित लंबन से संस्कृत स्पर्शकाल स्फुट काल होता है। इस युक्ति से मध्यग्रहणकाल में लंबन का संस्कार करने से स्पर्श, मोक्ष, संमीलन, उन्मीलन काल होता है। किंतु स्पर्शकाल के लंबन संस्कार को करने से शर किंचित अन्यथा होता है तथा नति किंचित अन्यथा दिखती है। उससे संस्कृत स्थित्यर्ध भी किंचित अन्य दृश्य होती है। अतः गणितागत दर्शान्त में उसको घटाने से दर्शान्त में लंबन धन-ऋण करके युक्त करते हैं। असकृत विधि से लंबन तथा पुनः लंबन से नति, तत्काल शर से स्फुट स्थित्यर्ध करते हैं। उससे तत्काल शर भी स्फुट होता है। इस प्रकार स्पार्शिक शर ज्ञात होता है। यदि पूर्व श्लोक ९ में बताई सकृत विधि से लंबन ज्ञात करके स्पर्श-मोक्ष एक बार में ज्ञात कर सकते हैं। लेकिन पुनः पुनः शर, शर से नति करके स्पार्शिक शर पुनः प्राप्त करना होता है। अतः कहा गया है कि 'किंत्वत्र बाणावनती पुनश्च तात्कालिकाभ्यां विधुवित्रिभाभ्यामिति'।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्फुटतिथ्यन्ताल्लम्बनमसकृत् स्थित्यर्ध हीनयुक्तद्वा।
तत्स्फुट विक्षेप कृत स्थित्यर्धोनयुततिथ्यन्तात्॥१६॥
तत्स्पष्टतिथिच्छेदान्तरे स्फुटे दिनदले विहीनयुतात्।
स्वविमर्दार्धेनासकृदेवं स्पष्टे विमर्दार्धे॥१७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्थित्यार्धोनयुतात् परिस्फुटतिथेः स्याल्लंबनं
पूर्ववत्मन्मध्यग्रहवे च मध्यतिथो ततस्तु तिथौ।
स्थित्यर्धेन परिस्फुटेषु जनितेनोनाधिकाद्वाऽसकृत्
ततिथ्यन्तरनाडिकाः स्थितिदले स्तः स्पर्शमुक्त्योः स्फुटे॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कुर्याच्छन्नस्थितिदलमर्दार्धान्युक्तवत् खगजतिथौ।
हित्वा क्षिप्त्वा साध्यं तात्कालिकलम्बनं प्राग्वत्॥१३॥
स्थितिसंस्कृततिथि भोगे स्वर्णं कार्यं विलम्बनं त्वसकृत्।
सुस्थिरलम्बन समयजनत्या कार्यः स्फुटो बाणः॥१४॥
स्पर्शादिमध्यकालान्तरं स्फुटं स्थितिदलाद्याख्यम्।
इष्टग्रासादिप्राग्वदत्र साध्यं च बुद्धिमता॥१५॥"

इदानीं विशेषमाह—

शेषं शशाङ्कग्रहणोक्तमत्र स्फुटेषुजेन स्थितिखण्डकेन।
हतोऽथ तेनैव हृतः स्फुटेन बाहुः स्फुटः स्याद्ग्रहणेऽत्र भानोः॥१८॥
ग्रासाच्च कालानयने फलं यत् स्फुटेन निघ्नं स्थितिखण्डकेन।
स्फुटेषुजेनासकृदुद्धृतं तत् स्थित्यर्धशुद्धं भवतीष्टकालः॥१९॥

विशेष ज्ञान– भुज एवं इष्ट काल—

सूर्य-प्रभा टीका— यहाँ सूर्य ग्रहण में शेष बातें बिम्ब, वलन, भुज, कोटी, आदि का आनयन चंद्रग्रहणोक्त प्रकार से ज्ञात करे। किंतु इसमें भुज साधन में विशेष बात है। यहाँ पूर्वोक्त चंद्रग्रहण प्रकार से भुज प्राप्त करके उसको तात्कालिक शर जनित स्थितिर्ध से गुणा करके स्फुट स्थिति खंड से विभक्त करने से स्फुट भुज प्राप्त होता है।

यहाँ नति से संस्कृत चंद्रशर के द्वारा स्थितिर्ध तथा लंबन से संस्कृत स्थितिखंड से उपरोक्त क्रिया करते हैं।

ग्रास के मान के द्वारा काल आनयन के फल (श्लोक १५ चंद्रग्रहणाधिकार) को लंबन संस्कृत स्थितिखंड से गुणा करके तात्कालिक स्फुट शर जनित स्थित्यर्ध से विभक्त करके जो स्फुट हो उसको स्थितिर्ध में से घटाने से इष्ट काल प्राप्त होता है। यह स्पर्श से आगे का तथा मोक्ष के पूर्व का काल होता है। उस काल के पुनः नतिसंस्कृत शर ज्ञात करके 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गाद्विक्षेपकृत्येत्यादि" फल साधित करके स्फुट करे। इससे जो इष्ट काल स्फुट हो उससे असकृत्कर्म करे।

उपपत्ति— भुज आनयन पूर्व में बता दिया गया है उस प्रकार साधित करे। लंबन संस्कार युक्त स्पर्श तथा मध्य काल का अंतर स्फुट स्थित्यर्ध होता

है। भुज स्थितिर्ध संबंधि प्राप्त होता है जैसे चंद्रग्रहण में मध्य में स्थित्यर्ध होता है। तत्संबंधि भुज वहाँ जो प्राप्त होता है तदृश ही यहाँ भी होता है।

इष्ट को स्थितिखंड से गुणा करके जो आनयन करते हैं उसमें स्फुट स्थित्यर्ध से इष्ट करके गणना करते हैं, वह स्फुटस्थित्यर्ध संबंधी भुज होता है। अब उसको तत्काल स्फुट शर जनित स्थित्यर्ध संबंधी करने के लिए अनुपात किया कि यदि स्फुट स्थित्यर्ध में इतना भुज होता है तो तत्कालजनित स्फुट शर की स्थित्यर्ध में कितनी भुज होगी? प्राप्तफल स्फुट भुज होता है। इससे विपरीत कर्म द्वारा ग्रास से काल आनयन के लिए करते हैं। 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गादि' द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह मध्य स्थित्यर्ध ईष्ट होंता है। इसको स्फुट स्थित्यर्ध में से घटाने से उतना सम्यग इष्ट प्राप्त होता है। उस फल से स्फुट स्थित्यर्ध परिणाम के लिए अनुपात किया कि यदि मध्यमस्थित्यर्ध में इतना फल प्राप्त होता है तो स्फुट स्थित्यर्ध में कितना होगा? यह जो फल प्राप्त होता है उसको स्फुट स्थित्यर्ध में शोधित करने से स्फुट इष्ट शेष रहता है।

ब्रह्मगुप्त यद्यपि प्रथम व्यक्ति था जिसने भुज में शुद्धिकरण किया, जिसको आगे उद्धृत किया जायेगा। ब्रह्मगुप्तोक्त को ही आचार्य ने यहाँ कहा है जिसको श्रीपति ने अपने सिद्धान्त शेखर में कहा है।

ब्रह्मगुप्तोक्त कथन का भास्करोक्त शुद्धिकरण—

'शशिदृक्क्षेपार्थं यद्वित्रिभलग्नेषुणात्र संस्करणम्।
जिष्णुजमतं तदुक्तं न मन्मतं वच्मि युक्तिमिह॥१॥
यत्राक्षोजिनभागास्तत्रार्केन्दू तुलादिगावुदये।
पातः किल गृहषट्कं सममण्डलवत् तदापवृत्तं स्यात्॥२॥
अर्काल्लम्बितचन्द्रो न जहात्यपमण्डलं ह्यविक्षिप्तः।
वित्रिभशरसंस्कारान्नतिरत्रायाति सा व्यर्था॥३॥'

यहाँ आचार्य ने कहा है कि ब्रह्मगुप्त का यह कहना कि सूर्य के दृक्क्षेप धनु तथा वित्रिभ लग्न के शर के संस्कार (धन-ऋण) से चंद्र दृक्क्षेप धनु प्राप्त होता है मुझे (भास्कराचार्य को) मान्य नहीं है। वे कहते हैं कि उदाहरण रूप में जहाँ अक्षांश २४° है वहाँ जब सूर्य, चंद्र तथा राहु तुला राशि के आरंभ में हों तब सूर्योदय पर रवि ही लग्न होता है तथा वित्रिभ लग्न तीन राशि होता है एवं चंद्र शर शून्य होता है, तब क्रांति मण्डल सममण्डल होता है तथा दृग्मण्डल होता है। दृङ्मण्डलगत अधः लंबित चंद्र उस कक्षा मंडल (क्रांतिवृत्त)

को नहीं त्यागता है, अतः जब नति का अभाव होता है तब वित्रिभ लग्न खमध्य होता है तथा उसका शर $४\frac{१}{२}^\circ$ होता है। अतः चंद्र का दृक्क्षेप ब्रह्म गुप्तोक्त प्रकार से $४\frac{१}{२}^\circ$ होता है जिससे इस दृक्क्षेप से प्राप्त नति

$$=\frac{७९०'३५''}{१५}\times\frac{\text{ज्या }४\frac{१}{२}}{३४३८}=\frac{५२'४२''}{३४३८}\times २७० = ४'८''$$ होती है।

जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता।

रवि ग्रहण में रवि चन्द्र का याम्योत्तर अंतर होता है। दृङ्मण्डल गत अधोलंबित चंद्र होता है उसका रविकक्षा से जितना अन्तर होता है वह चन्द्र रवि का याम्योत्तर अंतर ही स्फुट विक्षेप होता है। उसका पूर्व विक्षेप से जितना अंतर होता है उतनी नति होती है। इस प्रकार यह रवि ग्रहण में नति का स्वरूप होता है।

उपरोक्त प्रकार से ब्रह्मगुप्तोक्त कथित सूत्र की कमी बताने के पश्चात् आचार्य ने आगे उक्त सूत्र किस स्थिति में युक्ति युक्त हो सकता है वह कहा है।

ब्रह्मगुप्त ने विमण्डल को रविकक्षामंडल कल्पि करके नति का आनयन किया है, जो युक्तियुक्त है। क्योंकि ग्रहण काल पर चंद्रशर बहुत अल्प होता है अतः उसको कक्षा मंडल पर माना जा सकता है। भास्कराचार्य कहते हैं कि विमंडल को कक्षामंडल ब्रह्मगुप्त द्वारा मान लेने से ब्रह्मगुप्तोक्त नति प्राप्त होती है। लंबन काल में चन्द्रमा जितना विक्षेप चलता है उतने अंश से प्रथम शर के अंतर से उसकी नति को कम करे। रविदृक्क्षेप का धनु यदि वित्रिभलग्न के शर में युक्त करे तो उतना अन्तर नति में से घटावे और यदि कम करे तो उतनी युक्त करे। इस प्रकार करने से वह नति स्फुट होती है। अथवा रविदृक्क्षेप को चंद्र शर में संस्कृत करके नति साधित करे तो वह भी स्फुटासन्न होती है। किन्तु ग्रहण काल में चन्द्र शर अल्प होता है अतः संस्कार करने से भी स्वल्पांतर से वह नति तुल्य ही होता है। अतएव ब्रह्मगुप्ताचार्य ने स्वल्पांतर होने के कारण इस कर्म को भास्कराचार्य के मत से उपेक्षित किया है।

उपरोक्त विवेचन को भास्कराचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में निम्न लिखित श्लोकों में कहा है। यथा—

लम्बनकालशरान्तरमस्यां व्यस्तं नती यदि क्रियते।
स्पष्टैवं स्यादथवा चन्द्रस्य शरेण संस्कृत्य॥४॥
भानोर्दृक्क्षेपधनुः साध्या स्वल्पान्तरा नतिस्तस्मात्।
ग्रहणे स्वल्पशरत्वात् स्वल्पान्तरता नतेर्यस्मात्॥५॥
तस्मान्नेदं पूर्वैरर्कांशाद्यैस्तदा कृतं कर्म।
आत्मप्रतिभासो वा मयोदितः किं जगद्विरोधेन॥६॥

आधुनिक आचार्यों का कहना है कि भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की प्रक्रिया को गलत-समझ कर अपना इस बारे में सुझाव दिया है। ब्रह्मगुप्त ने रविचंद्र की परस्पर नति को ज्ञात किया था।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शशिवद्बाहुः स्फुटविक्षेपकृतस्थितिदलेन सङ्गुणितः।
स्पष्टस्थित्यर्धहृतो भवति भुजः पूर्वच्छेषम्॥१८॥
ग्रासात्कालः शशिवत् स्पष्टस्थितिदलगुणोऽसकृद् भक्तः।
स्फुटविक्षेपकृतस्थितिदलेन शोध्यः स्थितिदलात् स्यात्॥१९॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने सूर्यग्रहणाधिकार के श्लोक १४ में ब्र.गु. आचार्योक्त बात को स्वीकार किया है। यथा–

"बाहुश्चन्द्रग्रहण विधिनैवेष्टकालोद्भवो यः
क्षेपस्पष्टस्थितिदलहतो भाजितः प्रस्फुटेन।
स्थित्यर्धेन स्फुट इह भवेदुक्तवत् कालसिद्धि-
श्चेष्टग्रासाद् गुणकहरयोर्व्यत्ययेनासकृत् स्यात्॥१४॥"

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त बात की ओर ही संकेत किया है। रंगनाथ ने भास्करोक्त वचनों को ध्यान में रखकर अपनी स्वकृत सूर्यसिद्धान्त की टीका में इस श्लोक का अर्थ किया है। सूर्य सिद्धान्तोक्त यहाँ कोटि ही भास्कराचार्योक्त भुज है। यथा–

"भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्धसंगुणाः।
स्फुटस्थित्यर्धसंभक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः॥१९॥"

लेकिन इस श्लोक में 'मध्यस्थित्यर्ध' तथा 'स्पष्ट स्थित्यर्ध' की परिभाषा स्पष्ट नहीं होने से विद्वानों में इनके अर्थ में भ्रम की सी स्थिति है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। सूर्य ग्रहणाधिकार–

"बाहु स्पष्टशरोद्भवः स्थितिदलक्षुण्णः स्फुटो जायते।
स्थित्यर्धेन हृतः स्फुटेन शशिच्छेषस्य कार्यो विधिः।
ग्रासात् पूर्ववदागतश्च समयः क्षुण्णः स्फुटेनासकृत्
स्थित्यर्धेन हृतः स्फुटेषुजनितेन स्तः स्थितेः स्वाद दलात्॥१६॥"

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के सूर्यग्रहणाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

अथ ग्रहच्छायाधिकारः

अथ ग्रहच्छायाधिकारो व्याख्यायते। तत्रादौ तावद्ग्रहविक्षेपान् मध्यमानाह—

विक्षेपलिप्ताः क्षितिजादिकानां
खेशा ११० द्विबाणेन्दुमिता १५२ रसाश्वाः ७६।
षट्त्रीन्दवः १३६ खाग्निभुवः १३० सितज्ञ-
पातौ स्फुटौ स्तश्चलकेन्द्रयुक्तौ ।।१।।

ग्रहों के विक्षेप मध्यमान—

सूर्य-प्रभा टीका— मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि का क्रांतिवृत्त से विक्षेप (झुकाव) क्रमशः ११०, १५२, ७६, १३६, १३० कला चाप तुल्य है। बुध तथा शुक्र के गणितागत पातों को उनके शीघ्र केन्द्रों से युक्त करने से उनके पात स्फुट होते हैं।

उपपत्ति— मध्यगति वासना के वेध प्रकार से वेध वलय की ग्रह विक्षेपोपत्ति को देखें। जब शीघ्रकेंद्र ९०°३०' होता है तब त्रिज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है। जिस दिन वेधवलय में परम विक्षेप उपलब्ध होता है तब ग्रह का परम मध्यम विक्षेप होता है। इस प्रकार जो भोमादि ग्रहों के परम मध्यम विक्षेप उपलब्ध हुए उन्हें यहाँ आचार्य ने कहा है।

अब बुध शुक्र के पात स्फुट करने के लिए कहते हैं। भगणाध्याय में इन बुध शुक्र के पातों के जो भगण पठित किये हैं उनमें उनके शीघ्र केन्द्र भगण युक्त करने से उनके वास्तव मान होते हैं। इस प्रकार पूर्व में प्राप्त गणितागत बुध-शुक्र के पातों में उनके स्वस्व शीघ्र केंद्र युक्त करने से उनके मान स्फुट होते हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त गुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ग्रहों के शर पठित किये हैं तथा शर आनयन कहा है। यथा—

"शून्येशाः यम तिथयः षडगा षटत्रीन्दवः खगुणचन्द्राः।
क्रान्तेर्विक्षेपकलाः कुज बुध गुरु शुक्र रविजा नाम्।।१।।

बुधसितपातेऽव्यस्तं मन्दफलमुपान्त्यशीघ्रफलम्।।७ $\frac{१}{२}$।।''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में गुरु के अतिरिक्त सभी विक्षेप आचार्योक्त कहे हैं। यथा–

''दिगिन्दवो द्वीषु भुवोरसेभाः षड्वन्हि चन्द्राः खगुणेन्दवश्च।''

इदानीं ग्रहविक्षेपानयनमाह—

मन्दस्फुटात् खेचरतः स्वपातयुक्ताद्भुजज्या पठितेषुनिघ्नी।
स्वशीघ्रकर्णेन हृता शरः स्यात् सपातमन्दस्फुटगोलदिक्कः।।२।।

ग्रह विक्षेप आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— मन्द स्फुट ग्रह में स्वपातयुक्त करके उसकी भुजज्या साधित करे। उसको ग्रह के पठित (पूर्वोक्त) शर से गुणा करके स्वशीघ्रकर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल ग्रह का स्फुट विक्षेप होता है। सपात मन्दस्फुट ग्रह यदि छै राशि से अल्प हो तो उत्तर विक्षेप होता है अन्यथा दक्षिण होता है।

उपपत्ति— मन्द स्फुट ग्रह स्व शीघ्र प्रतिमण्डल में भ्रमण करता है, तथा उसका पात भी उसी में भ्रमण करता है। प्रतिमण्डल तथा विमण्डल के संपात पर पात होता है। उससे आरंभ करके विक्षेप की प्रवृत्ति होती है। यहाँ सीधी शलाका को कक्षामंडल तथा तत्प्रतिमंडल में छेद्यकोक्त विधि अनुसार चलाने से शीघ्र प्रतिमंडल में मेष से आरंभ करके प्रतिलोम पातस्थान चिन्हित करके वहाँ विमण्डल निवेश करे। पात चिन्ह से छै राशि अन्तर पर विमण्डल-प्रतिमंडल का अन्य संपात करके पात से पूर्व की ओर त्रिभा तुल्य अंतर पर पठित विक्षेप प्रमाण से प्रतिमंडल के उत्तर की ओर विमंडल किसी आधार पर स्थिर करके मेष के आदि से अनुलोम मंद स्फुट ग्रह प्रतिमंडल तथा विमंडल में देकर विक्षेपोपपत्ति को दर्शाये। जहाँ जो ग्रह जितना विप्रकर्ष हो उस प्रदेश में उतना विक्षेप होता है।

अब विक्षेप आनयन को कहते हैं। पात स्थान पर ही विक्षेप का अभाव होता है। उससे त्रिभा तुल्य अन्तर पर परम विक्षेप होता है। इसके बीच में अनुपात से ज्ञात करे। अतः पात तथा ग्रह के चिन्ह की बीच जितना अंतर ज्ञात हो वह ग्रह तथा पात को युत्त करने से वहाँ उसका माना होता है। मेष के आदि से अनुलोम ग्रह देकर पातको प्रतिलोम देवें। इनका योग शर ज्ञान के लिए केंद्र होता है। इसकी ज्या साधित करे। यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में पठित विक्षेप

तुल्य प्रतिमंडल तथा विमंडल का अंतर प्राप्त होता है तो अभीष्ट ग्रह स्थान की ज्या में कितना होगा? प्राप्तफल शीघ्रकर्ण के आगे विक्षेप होता है। अब द्वितीय अनुपात करे कि यदि शीघ्र कर्णाग्र पर इतना विक्षेप होता है तो त्रिज्याग्र पर क्या? यहाँ गुणक भाजक में त्रिज्या तुल्य होने से उसका नाश हो जाता है तथा दोज्या तथा पठित विक्षेप के गुणा में शीघ्रकर्ण हर होता है।

इस प्रकार यह प्राप्तफल कक्षा प्रदेश में विक्षेप ज्या रूप का चाप स्फुट विक्षेप होता है। भूमि के चिन्ह से एक सूत्र बांध कर दूसरा आगे विमंडल में ग्रह स्थान से निबद्ध किया गया सूत्र कर्ण है। सूत्र का कक्षा मंडल से अंतर स्फुट शर इत्यादि छात्रों को दिखायें।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"समलिप्तस्फुट मध्यात् स्वपात युक्ताज्ज्ञशुक्रयोः शीघ्रात्।
जीवाविक्षेपगुणा हताऽन्त्यकर्णेन विक्षेपः॥१०॥"
"शेषाणां स्फुटपाताद्विक्षेपो मध्यमायोगात्॥८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"समकलग्रहपातसमागतात् भुजगुणोऽथ निजेषु कला
हतः निजचलश्रवणेन हृतो भवेदपममण्डलतः स्फुट सायकः।"

सूर्य सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

'स्वपातोनाद् ग्रहाज्जीवा शीघ्राद्भृगुजसौम्ययोः।
विक्षेपघ्नान्त्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः॥५७॥'

इदानीं विक्षेपस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यतालक्षणमन्यत् स्फुटीकरणमाह—

त्रिज्यावर्गादयनवलनज्याकृतिं प्रोह्य मूलं
यष्टिर्यष्ट्या द्युचरविशिखस्ताडितस्त्रिज्ययाप्तः।
यद्वा राशित्रययुतखगद्युज्यकाघ्नस्त्रिमौर्व्या
भक्तः स्पष्टो भवति नियतं क्रान्तिसंस्कारयोग्यः॥३॥

विक्षेप के क्रांति संस्कार योग्यता के लक्षण-स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या वर्ग में से अयनवलन ज्या के वर्ग को घटा कर मूल लेने से यष्टि संज्ञक फल प्राप्त होता है। इस को ग्रह विक्षेप से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से क्रांति संस्कार योग स्फुट शर प्राप्त होता है।

अथवा यष्टि को तीन राशि युक्त ग्रह की द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से भी क्रांति संस्कार योग्य विक्षेप होता है।

उपपत्ति— चित्र में सं = संपात बिंदु, क = कदम्ब, ध्रु = ध्रुव, ∠क श^1 ध्रु = चाप क ध्रु^{1} = अयनवलन, ग्र = ग्रह; ग्र^1 न = ग्रल = स्फुट क्रांति, ग्र श^1= विक्षेप; ग^{1}श^1 = स्फुट विक्षेप। चित्र से आचार्योक्त कथन स्पष्ट हो जाता है।
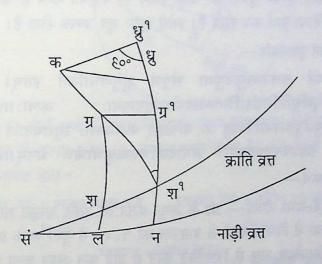
शराग्र (श^{1}ग्र) पर ग्रह (ग्र) होता है। क्रांति (=शल) के आगे शर (ग्र श) होता है। क्रांति में शर का संस्कार करने से ग्रह की स्फुट क्रांति= ग्र ल होती है। यहाँ गणितागत शर से क्रांति को स्फुट करना कहा है। क्रांति विषुवत् मण्डल से तिर्यग ध्रुवाभिमुख होती है तथा विक्षेप क्रांतिमंडल से तिर्यगरूप में कदम्बाभिमुख होता है। अभी तक कि परिभाषानुसार क्रांतिवृत्त पर स्थित ग्रह की नाडीवृत्त से ध्रुवप्रोत वृत्त में दूरी क्रांति कही गई है। यहाँ किसी अन्य स्थान पर स्थित ग्रह (ग्र) की क्रांति को यहाँ स्पष्ट क्रांति कहा है। जिसको ज्ञात करना बताया है।

कध्रु^{1} चाप की ज्या भुज है तथा ग्रह यदि श^1 बिंदु पर हो तो कश^1 चाप की ज्या त्रिज्या तुल्य कर्ण है तथा ∠क ध्रु^{1}ध्रु =९०° अतः $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{ज्या वलन}^2}$ = वलन कोटी (=ध्रु^{1}श^1) है। इसको आचार्य ने यष्टि संज्ञा दी है। क्रांति के आगे विक्षेप कदम्बाभिमुख कर्णरूप (=ग्रश^1) है। इसका कोटी रूप करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या कर्ण में कोटि यष्टि

तुल्य होती है तो शर कर्ण में कितनी होगी? प्राप्तफल क्रांतिसंस्कार योग्य विक्षेप होता है। इसका संस्कार करने से स्फुट क्रांति होती है।

विक्षेपग्रस्थ ग्रह की विषुवमण्डल से याम्योत्तर अंतर होता है वह स्फुट क्रांति कहलाती है।

अब सत्रिभ ग्रह की क्रांतिज्या भुजस्थान पर कल्पित करने से वह भुज होती है और उसकी द्युज्या को यष्टि स्थान पर कल्पित करने से कोटि होती है। वहाँ त्रिज्या कर्ण रूप होता है। इससे दूसरा सूत्र उपपन्न होता है।

इदानीमायनं दृक्कर्माह—

आयनं वलनमस्फुटेषुणा संगुणं द्युगुणभाजितं हतम्।
पूर्णपूर्णधृतिभिर्ग्रहाश्रितव्यक्षभोदयहृदायनाः कलाः ।।४।।
अस्फुटेषुवलनाहतिस्तु वा यष्टिहृत् फलकलाः स्युरायनाः।
ता ग्रहेऽयनपृषत्कयोः क्रमादेकभिन्नककुभोर्ऋणं धनम् ।।५।।

अयन दृक्कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के अयन वलन को उसके अस्फुट शर से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल को १८०० से गुणा करके ग्रह स्थित राशि के निरक्षोदय असु से विभाजित करने से प्राप्त फल अयन कला होता है।

अथवा अयनवलन कला को अस्फुट शर से गुणा करके यष्टि से विभक्त करने से भी प्राप्तफल कला स्वल्पान्तर से अनुकल्प्य अयन कला प्राप्त होती है।

ग्रह जिस अयन में होता है उस (ग्रह के) अयन तथा ग्रह के शर के एक दिशा में होने पर इस अयन कला (दृक्कर्म) को ग्रह में ऋण करे तथा भिन्न दिशा में होने पर धन करे। इस प्रकार करने से अयन दृक्कर्म युक्त ग्रह होता है।

उपपत्ति— ग्रह बिंब (ग्र) केन्द्र के ऊपरीगत (क ग्र अ) कदम्बप्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ (अ) पर लगता है वह ग्रह स्थान है। इस ग्रह स्थान के उपरीगत ध्रुवप्रोत वृत्त ध्रु अ खेंचे। बिंब केंद्र (ग्र) से अहोरात्र वृत्त (ग्र उ) बनावे तब बिंब केंद्र (ग्र) से स्थान (अ) पर्यन्त मध्यशर (ग्र अ) एक भुज। बिंब केंद्र (ग्र) से स्थान ऊपरीगत ध्रुवप्रोत्तवृत्त (ध्रु उ अ) पर लंबवृत्त (ग्र उ) लंब वृत्तीय चाप (ग्र उ) द्वितीय भुज। लंब (उ) से स्थान पर्यन्त (उ अ) तृतीय भुज। स अ = अयन दृक्कर्म होता है।
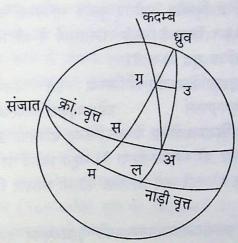
इन तीनों भुजों से उत्पन्न त्रिभुज में स्थान गत कदम्ब प्रोत वृत्त तथा ध्रुव प्रोत वृत्त से उत्पन्न कोण (ग्र अ उ) अयन वलन है। ∠ग्र उ अ = ९०° है। तब अनुपात द्वारा—

$$\frac{\text{मध्यशर ज्या} \times \text{आयन वलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{\text{मध्यशर ज्या} \times \text{सत्रिभ ग्रह क्रान्ति}}{\text{त्रिज्या}}$$

भास्कराचार्य ने $\frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन}}{\text{त्रिज्या}}$ को त्रिज्या में परिणत किया है

जैसे

$$\frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन} \times \text{त्रि}}{\text{त्रि} \times \text{बिम्बीय द्युज्या}} = \text{नाडी वृत्तीय अयन दृक्कर्म — असु}$$

$$= \frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन}}{\text{बिम्बीयद्यु.}}$$

यहाँ आचार्य ने स्वल्पांतर से बिम्बीयद्यु = स्थानीयद्यु = द्यु इस फल को ग्रहसंस्कार योगत्व किया है कि यदि ग्रहाश्रित राशि के निरक्षोदय असु में १८०० राशिकला पाते हैं तो इन असुओं में क्या? इससे आयनदृक्कर्म कला प्राप्त होती

है जिसका स्वरूप = $\frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन} \times १८००}{\text{द्यु} \times \text{निरक्षोदयासु}}$ है।

इस प्रकार भास्करोक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में गोलबंधनाधिकार में

भास्कराचार्य से भिन्न बिम्बीय अहोरात्र वृत्तीय चापकला को स्वीकार करके इसका ग्रह में संस्कार किया है। यही लल्लाचार्य ने भी किया है। इस को भास्कराचार्य ने अधिक शुद्ध किया है।

"सत्रिगृहक्रान्तिरुदग्दक्षिणयोस्त्रिज्या हृतं वलनम्।
विक्षेपगुणमृणधनं ग्रहेऽन्यदृक्कर्मचरदलवत्॥६६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में लल्लोक्तवत् सत्रिभग्रह क्रांतिज्या के स्थान पर उसकी उत्क्रमज्या को स्वीकार किया है। बहुत स्थानों पर ब्रह्मगुप्ताचार्य का अनुसरण करते हुए भी कहीं कहीं लल्लोक्त को भी स्वीकार किया है। अध्याय १ श्लोक ४–

"विक्षेप सत्रिभखगोत्क्रमजाऽपमज्याधाते गृहत्रयगुणेन हते कलास्ताः।
शोध्यतास्तयोः समदिशोः खचरेषु देया भिन्नांशयोर्भवति दृग्विधिरेषपूर्वः॥"

सूर्य सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आयन दृक्कर्म श्रीपति और लल्लाचार्य से सूक्ष्म है। इसकी उपपत्ति में रंगनाथ ने भास्करोक्त सूत्र की भी उपपत्ति की है।

"सत्रिभग्रहजक्रान्ति भागघ्नाः क्षेपलिप्तिकाः।
विकला स्वमृणं क्रांतिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययोः॥१०॥"

आर्यभट (द्वि.) ने भी लल्लाचार्य का अनुसरण किया है।

इदानीमक्षजं दृक्कर्माह—

स्फुटास्फुटक्रान्तिजयोश्चरार्धयोः समान्यदिक्त्वेऽन्तरयोगजासवः।
पलोद्भवाख्या भनभःसदां शरे महत्यथाल्पे यदि वा स्युरन्यथा॥६॥
स्पष्टेषुरक्षवलनेन हतो विभक्तो लम्बज्यया रविहतोऽक्षभया हतो वा।
लब्धं हतं त्रिभगुणेन हृतं द्युमौर्व्या स्युर्वासवः पलभवा अथ तैः शरे तु॥७॥

याम्योत्तरे क्रमविलोमविधानलग्नं
खेटात् कृतायनफलादुदयाख्यलग्नम्।
सौम्ये क्रमेण विपरीतमिषौ तु याम्ये
भार्धाधिकात् खचरतोऽस्तविलग्नमेवम्॥८॥

अक्ष दृक्कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह की स्फुट तथा अस्फुट क्रांति साधित करके उनके चरार्ध करे। यदि वे स्फुट-अस्फुट क्रांति एक ही दिशा में हो तो चरार्धों का अंतर करे और यदि भिन्न दिशा में हो तो चरार्धों का योग करे। प्राप्त

असुफल से, यदि शर अधिक मान का हो तो अक्षदृक्कर्म होता है। यदि शर अन्यथा अल्प हो तो ग्रह के स्पष्ट शर को आक्षवलन से गुणा करके फिर लंबज्या से विभक्त करने से अथवा स्पष्ट शर को अक्षभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से अक्षदृक्कर्म असु होता है।

ग्रह को दृक्कर्म संस्कृत करके उसको सूर्य मानकर दृक्कर्म असु से लग्न ज्ञात करे। यदि ग्रह का शर दक्षिण हो तो क्रम लग्न (धन दिशा में) तथा उत्तर हो तो विलोम लग्न ज्ञात करे। इस प्रकार ग्रह का उदय लग्न प्राप्त होता है।

अब ग्रह को (१८०°+रवि) मान कर अक्षदृक्कर्म असु से उत्तर शर हो तो क्रमलग्न तथा दक्षिण हो तो विलोम क्रम से उस ग्रह का अस्त लग्न प्राप्त होता है।

उपपत्ति— चित्र में स न = क्षितिज है। ख = खस्वस्तिक; ग्र = ग्रह; ब = ग्रह की अयन दृक्कर्म के पश्चात की स्थिति। क म इ = नाडी वृत्त तथा अ म ब = क्रांतिवृत्त। ग्र द = अहोरात्रवृत्त का भाग है। यह ग्र द = स्थानीय अक्षांशवश शुद्धि अथवा दृक्कर्म असु है। कोण ब = स्थानीय अक्षांश तथा द कोण = लंबांश (Colatitude), ग्र ब = ग्रह का शर है।
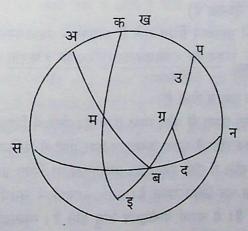
जब **ग्रहस्थान** क्षितिज में रहता है तब ग्रहबिंब केंद्र क्षितिज से नीचे अथवा ऊपर रहता है। ग्रह स्थान ऊपरीगत ध्रुवप्रोतवृत्त तथा बिंब केन्द्रोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त बनाने से दोनों के अन्तर्गत बिम्बीय अहोरात्र वृत्तीय चाप आक्षदृक्कर्म संज्ञक है। **ग्रहस्थान** से बिंबीय अहोरात्र वृत्त पर्यन्त स्थान गत ध्रुवप्रोतवृत्त में

स्पष्ट शर ग्र ब एक भुज है। बिंबीय अहोरात्रवृत्त और क्षितिज वृत्त के सम्पात से स्थान पर्यन्त क्षितिज वृत्त में ब द द्वितीय भुज है। बिंबीय अहोरात्रवृत्त और क्षितिज वृत्त के सम्पात से स्थान गत ध्रुवप्रोत वृत्त के ऊपर लम्बवृत्त में ग्रद तृतीय भुज है। इस त्रिभुज को आचार्य ने सरल जात्य माना है तथा इसमें स्थान लग्न कोण अक्षांश या तत्तुल्य आक्षवलन है। यहाँ एक कोण समकोण है अतः अवशिष्ट तृतीय कोण लंबाश के बराबर है। अब अनुपात किया कि यदि लम्बज्या में स्पष्ट शरज्या पाते हैं तो अक्षज्या में क्या? इससे लम्बवृत्तीय चापज्या व बिंबीय अहोरात्र वृत्तीय चापज्या आती है

$$= \frac{\text{स्पष्ट शरज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{लंबज्या}} \text{। लेकिन } \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लंबज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

अतः $\frac{\text{स्प.श.ज्या} \times \text{पभा}}{१२}$ = लम्बवृत्तज्या = बिम्बीय अहोरात्र वृत्त चाप ज्या। यहाँ स्वल्पांतर से स्प.श.ज्या = स्प.शर = म.शर तथा पूर्वागतफल का चाप करने से $\frac{\text{शर} \times \text{पभा}}{१२}$ = बिंबीय अहोरात्र वृत्तचाप। लेकिन यह आक्षदृक्कर्म के बराबर नहीं है। अतः ब्रह्मगुप्त आचार्योक्त यह आनयन स्थूल है।

(भास्कराचार्य ने दोनों ही सूत्रों में त्रिज्या से गुणा करके दृग्ज्या से विभक्त किया है जिससे सूक्ष्मता है)

क्षितिज में ग्रहस्थान स्थित रहने से अक्षज्या =अक्षवलनज्या = आक्षवलन स्वल्पांतर से। अतः $\frac{\text{स्व.शर} \times \text{आक्षवलन}}{\text{लंबज्या}} = \frac{\text{स्व.शर} \times \text{पलभा}}{१२}$ = आक्षदृक्कर्म। इससे भास्करोक्त उपपन्न होता है।

आचार्योक्त प्रकार से और स्पष्ट करते हैं। गोल में विषुवन्मंडल स्वाक्षांश से जितने मान का होता है उतना उन्मण्डल उत्तर गोल में क्षितिज से ऊपर लगता है तथा दक्षिण गोल में नीचे रहता है। अतः वहाँ पर स्थित ग्रह स्वचरार्ध असु तुल्य उन्नत तथा नत स्थित रहता है। अतः आचार्य ने चरार्ध साधन के लिए श्लोक में कहा है। ये चरार्ध पलोद्भव असु होते हैं। स्फुटास्फुट क्रांतिज्या के चरार्धों का अंतर जितना असु होता है उतना शर होता है। अतः तुल्य दिशा में रहने से उनका जितना अन्तर होता है उतना चर होता है। यदि शर अधिक हो तो उसकी क्रांति विपरीत दिशा में होती हैं तब उसका शर का एक खण्ड उत्तर की ओर तथा दूसरा दक्षिण की ओर होता है। इनका योग वह शर होता

है। अतः तज्जनित चरार्धों का योग शर जनित पलोद्भव असु होता है। यह महति शर में होता है।

अब अल्प शर में। ग्रह जब उत्तर गोल में रहता है तब उसका उत्तर शर उसके अक्ष के वशाद ग्रह के शर से जितना उन्नत होता है वह त्रैराशिक से साधित करते हैं। यदि लम्बज्या में अक्षवलन कोटि तुल्य भुज होता है तो स्फुट शर तुल्य में कितनी होगी? इस प्रकार जो फल प्राप्त होता है वह ग्रह के द्युज्यावृत्त में ज्या रूप में होता है। अथवा लघुरूप में क्षेत्र में अनुपात किया कि यदि द्वादश अंगुल कोटि में पलभा भुज होती है तो स्फुट शर कोटि में कितनी होगी। प्राप्तफल तथा पूर्व प्राप्तफल तुल्य होंगे। इसका त्रिज्या वृत्त में परिणाम करने के लिए अनुपात किया कि यदि द्युज्या में इतनी ज्या होती है तो त्रिज्या वृत्त में कितनी? प्राप्तफल का धनु करे। यह शर से अल्प होने से उत्पन्न नहीं होता अतः इसको नहीं करते।

अब आयन दृक्कर्म के लिए स्फुट विक्षेप असु का साधन करते हैं। इसको स्फुट करने का कारण कहते हैं। इसके लिए निरक्ष देश के क्षितिज पर स्थित ग्रह करे। यह क्षितिज अन्य देश का उन्मण्डल होता है। शर के मूल में से जो द्युज्या वृत्त शराग्र पर है उसका उन्मण्डल से जितना अन्तर होता है उतना स्फुट शर होता है। यह कोटि रूप में होता है तथा अस्फुट कर्णरूप में होता है। अतः यहाँ कोटि रूप में पलोद्भव असु साधित करते हैं।

दक्षिण शर के इतने असु क्षितिज से नीचे स्थित ग्रह जब इतना ही क्षितिज से ऊपर होता है तब उतना अयन दृक्कर्म किये हुए ग्रह से आगे की ओर क्रांतिवृत्त क्षितिज पर लगता है। यदि उत्तर शर हो तो इतने असु, क्षितिज से ऊपर स्थिति ग्रह जब क्षितिज से इतना ही नीचा होता है तब उतना अयन दृक्कर्म किये हुए ग्रह से पीछे की ओर क्रांतिवृत्त क्षितिज से लगता है। अतः कहा गया है कि 'शरे तु याम्योत्तरेक्रमविलोमविधान लग्नं इत्यादि'' इस प्रकार उदय लग्न होता है। इस प्रकार उदय लग्न साधन से विपरीत प्रकार से अस्त लग्न का साधन करे।

पश्चिम में ग्रह अस्त होकर चलता हुआ पूर्व में उदित होने पर जहाँ लगता है वहाँ पर पूर्व में उदय लग्न तथा पश्चिम का अस्त लग्न होता है। अतः कहा है कि ''भार्धाधिकात् खचरतोऽस्त विलग्नमेवम् इत्यादि।''

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महाभास्करीय के चन्द्रश्रंगोन्नतिधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवद्भाशरघातं प्रहृतं खेटे क्षिपेच्छरे सौम्ये।
पश्चाद्याम्ये जह्यादूव्यस्तं प्रागक्षकमैतत्॥४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"विषुवच्छायागुणिताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात् सौम्यात्।
फलमृणं धनं धनमृणं याम्यादुयास्तमयलग्ने॥४॥"

भास्करोक्त प्रकार से उत्तर शर होने पर अयनदृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षज दृक्कर्म कला को घटाने से तथा दक्षिण शर होने पर अक्षज दृक्कर्म कला को अयन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में जोड़ने से उदय लग्न होता है। अस्त लग्न साधन में उत्तर शर होने पर छः राशि सहित अयन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षजदृक्कर्म कला को जोड़ने से तथा दक्षिण शर होने पर घटाने से पश्चिम क्षितिज में ग्रह के अस्तंगत रहने से जो पूर्व क्षितिज में लग्न होता है वह भास्कराचार्य सम्मत अस्त लग्न होता है। यहाँ ब्रह्मस्फुट ने उसमें से छः राशि को घटाकर पश्चिम क्षितिज में ग्रह के अस्तंगत रहने से जो अस्तलग्न होता है उसी को ग्रहास्त लग्न स्वीकार किया है।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा–

"क्षुण्णे क्षेपेऽक्षज्ज्यया लम्बभक्तेऽक्षच्छायाघ्ने भानुमक्तेऽथवाऽत्रेति"

सूर्यसिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा–

"विषुवच्छाययाऽभ्यस्ताद् विक्षेपाद द्वादशोदृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम्॥८॥
लब्धं प्राच्यमृणं सौम्ये विक्षेपे पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु विपर्ययः॥६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अक्षज्यागुणितेऽथ लम्बकहृतें क्षेपे फलं सौरिका
जयन्ते रविभिर्हृतेऽथ विषुवच्छायाङ्गुलैर्वा हते॥३॥
प्रागृणं स्वमयनग्रहे फलं सौम्ययाम्यशर सम्भवं सदा।
अन्यथापरकपालसंस्थितेकारयेदिति भवेत् स दृग्ग्रहः॥४॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि.के. उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''विषुवत्प्रभया हतः शरो रवि (१२) भक्तो ह्युदयास्तगे ग्रहे।
धनदिग्विशिखे क्षयं धनं स्वमृणं याम्यशरे दृशे खगे॥१८॥''

इदानीमुदयास्तलग्नयोः स्वरूपं प्रयोजनं चाह—

निजनिजोदयलग्नसमुद्गमे समुदयोऽपि भवेद्धनभः सदाम्।
भवति चास्तविलग्नसमुद्गमे प्रतिदिनेऽस्तमयः प्रवहभ्रमात्॥६॥

उदयास्त लग्न स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रतिदिन ग्रह प्रवह वायु वश भ्रमण करता हुआ अपने-अपने स्थान पर उदयलग्न के समय आकाश में उदित होता है तथा अस्त लग्न के समय पर अस्त होता है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''उदयविलग्नसमाने स्फुटलग्ने खेचरोदयो भवति।
नित्यं प्रवहवशेनास्तं यात्यस्तमयसमलग्ने॥६॥''

इदानीं ग्रहस्य दृश्यत्वलक्षणमाह—

निशीष्टलग्नादुदयास्तलग्ने न्यूनाधिके यस्य खगः स दृश्यः।
दिनेऽपि चन्द्रो रविसन्निधानान्नास्तं गतश्चेत् सति दर्शने भा॥१०॥

ग्रह के दृश्य होने के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— रात्रि में किसी समय पर जब ग्रह का गणितागत उदयलग्न उस समय के लग्न से अल्प होता है तब ग्रह उदित (दृश्य) रहता है। इसी प्रकार किसी समय पर जब ग्रह का गणितागत अस्त लग्न उस समय के लग्न से अधिक होता है तब ग्रह उदित (दृश्य) रहता है। इन्हीं लक्षणों के होने पर चंद्रमा दिन में भी दृश्य होता है। दिन में चंद्रमा रवि के पास में स्थित होने पर भी अस्त नहीं होता। यदि ग्रह दृश्यमान हो तो उसकी छाया साधित की जा सकती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''प्रागूनमाद्यमधिकं पश्चाल्लग्नाद्ग्रहोदयोऽस्तमयः।
षड्भयुतमन्यदुदयैर्घटिकाः कृत्वौनमधिकसमम्॥५॥''

''यद्यधिकमुदयलग्नादूनं षड्ग्रहयुतास्तमयलग्नात्।
लग्नं तदा शशाङ्कोदृश्यः सति दर्शने छाया॥ चं.छाया धि.श्लोक-३॥''

इदानीं छायार्थं ग्रहस्य द्युगतमाह—

ज्ञातुं यदा भाभिमता ग्रहस्य तत्कालखेटोदयलग्नलग्ने।
साध्ये तयोरन्तरनाडिका यास्ताः सावनाः स्युर्द्युगता ग्रहस्य॥११॥
ता एव खेटद्युतिसाधनार्थं क्षेत्रात्मकत्वात् सुधिया नियोज्याः।
ऊनस्य भोग्योऽधिकभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्योऽन्तरकाल एवम्॥१२॥

ग्रह की छाया ज्ञात करने के लिए ग्रह की दिनगत घटि साधन करना—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस समय की ग्रह की छाया ज्ञात करनी हो तो तात्कालिक ग्रह का उदय लग्न तथा इष्ट लग्न ज्ञात करके उनकी अन्तर घटियाँ साधित करे। ये सावन घटियाँ ग्रह के ओरात्र वृत्त पर ग्रह की दिनगत घटियाँ होती हैं। इनके साधन के लिए इसको विद्वानों को क्षेत्रात्मक जानकर इनसे ही क्रिया करनी चाहिये। उदय लग्न यदि इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह स्थित राशि के भोग्य काल को, इष्ट लग्न राशि के भुक्तकाल में युक्त करके उसमें इन दोनों राशियों के बीच की राशियों के उदयकालों को जोड़ने से ग्रह के उदयलग्न तथा इष्ट लग्न का अन्तर काल होता है।

उपपत्ति— इष्ट लग्न क्षितिज पर होता है। इष्टकालिक ग्रह से जो उदयलग्न ज्ञात करते हैं उस उदयलग्न से ग्रह क्षितिज के ऊपर आस-पास के स्थान पर रहता है उसका उपरोक्त भुक्त-भोग्य प्रकार से लग्न साधन करके अन्तर काल ज्ञात करे। ये अन्तर घटियाँ ग्रह से संबंधित सावनात्मक होती हैं, सूर्य से संबंधित नहीं होती।

इसको गोल में प्रदर्शित करते हैं। गोल में इष्ट लग्न को क्षितिज पर निवेश करे और तात्कालिक ग्रह का उदयलग्न मेष आरंभ से आगे देवे उसके अग्रभाग पर बिन्दु रूप में ग्रह को दिखावे। वहाँ उसका अहोरात्र वृत्त निवेश करे। उस वृत्त के पूर्व क्षितिज संपात से आरंभ करके ग्रह चिन्ह पर्यन्त जितनी घटियाँ होती हैं वह ग्रह की द्युगत (दिनगता) होती है। ये सावनात्मक होती हैं। इनकी अहोरात्रवृत्त पर गणना की जाती है। ग्रह के अहोरात्रवृत्त में ६० घटियाँ सावनात्मक होती हैं। छाया साधन के लिए क्षेत्रात्मक इन घटियों को ग्रहण करते हैं। क्षेत्र व्यवहार ही से छाया साधन करते हैं। अतः आचार्य ने 'ता एव खेटद्युति साधनार्थं।' इत्यादि कहा है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिदिनमुदयास्तमयावसकृत् तात्कालिक ग्रह विलग्नैः।
सूर्यास्तमयौदयिकौ शीतांशोः पूर्णिमास्यन्तः॥८॥"

चन्द्रछायाधिकार में (ग्रह) चंद्र के उन्नतकालानयन को आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

"लग्नसममुदयलग्नं षड्गृहयुक्तास्तमयलग्नसमम्।
पूर्वापरयोः कृत्वाः गतशेषाः स्वोदयैर्घटिकाः॥४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्राचिलग्न उदयेन्दुना समे सर्त्तुभास्तशशिना च पश्चिमे।
संविधाय गतशेष नाडिकाः"

लल्लाचार्य ने ग्रहोदयास्तमयाधिकार में लग्नअन्तरकाल आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में–

"गम्योऽल्पादसुनिवहोऽधिकारद् गतोयो मध्यस्थैरसुभिरसौ युतो विधेयः।
कालांशा गगनरसैर्भजेदमीभिश्चोत्काल्पैर्द्युचरमवेहि तैरदृश्यम्॥६॥"

इसका अर्थ यहाँ बताते हैं जिससे भास्करोक्त श्लोक भी स्पष्ट होगा। अर्थ-तात्कालिक (इष्ट समय) ग्रह और लग्न से असकृत कर्म द्वारा प्रतिदिन उदय और अस्त साधन करे अर्थात् जिस समय ग्रह उदय की घटी ज्ञात करनी हो उस समय के लग्न (तात्कालिक लग्न) तथा ग्रहोदय लग्न साधन कर दोनों के अन्तर्गत घटी साधन कर उन साधित घटी से ग्रह को चलाकर उससे फिर उदय लग्न साधन कर तात्कालिक स्थर लग्न से पुनः इष्ट घटी साधन करना चाहिये। इस प्रकार असकृत करना चाहिये। अस्त काल ज्ञात करने के लिए अस्त लग्न (सषडभास्त लग्न) से कर्म करना चाहिये।

यहाँ काल ज्ञान भास्करोक्त श्लोक १२ उत्तरार्ध अनुसार किया जाता है। श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है।

"उदयति सममस्तं गच्छता प्राक् तदूनस्तदनु तदधिकश्चेदुक्तवत् तत्र कालः।"

इदानीं क्रान्तेः स्फुटत्वं कृत्वा छाया साधनातिदेशं करोति स्म—

स्पष्टा क्रान्तिः स्फुटशरयुतोनैकभिन्नाशभावे
तज्ज्या स्पष्टोऽपमगुण इतो द्युज्यकाद्यं ग्रहस्य।
कृत्वा साध्या तदुदितघटीभिः प्रभा भानुभाव-
च्चन्द्रादीनां नलकसुषिरे दर्शनायापि भानाम्॥१३॥

ग्रह की छाया साधन की विधि से ग्रह की स्पष्ट क्रांति द्वारा सूर्य छायावत ग्रहतारादि की छाया आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह की क्रांति ग्रह के स्फुट शर में, दोनों एक दिशा होने पर युक्त करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर भी युत करने से स्फुट क्रांति होती है। स्फुट क्रांति की ज्या स्फुट क्रांतिज्या होती है तथा कुज्या, द्युज्या, चरज्या आदि सभी साधित कर सकते हैं। पूर्वानीत द्युगत (दिनगत) घटि से उन्नत ज्ञात करके उन्नत से सूर्य की छाया साधन अनुसार ग्रह छाया का साधन करे। इस प्रकार चन्द्र, तारा आदि की छाया साधन करके नलक यंत्र के द्वारा उनका दर्शन करने के लिए उनकी छाया का उपयोग कर सकते हैं।

उपपत्ति— त्रिप्रश्नाध्यायानुसार इसकी उपपत्ति है। वहाँ क्रांतिज्ञान से नत उन्नत ज्ञात करना बताया है। क्रांति तथा स्पष्ट क्रांति आदि भी पूर्व में बता दी गई है।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महाभास्करीय के ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''निजदिनदलजस्पष्टक्रान्त्यक्षांशगतशेषकैः कुर्यात्।
रविवत् समयच्छायासाधनमत्रापि कालज्ञः ॥७॥''

इदानीमत्रापि विशेषमाह—

स्वभुक्तितिथ्यंशविवर्जितो ना महांल्लघुः खाग्निकृतां ४३० शहीनः।
स्पष्टो भवेदस्फुटजातदृग्ज्या संताडितार्कैः स्फुटशङ्कुभक्ता॥१४॥
प्रभा भवेन्ना तिथिभागतोऽल्पो यावद्विधुस्तावदसावदृश्यः।
एवं किल स्यादितरग्रहाणां स्वल्पान्तरत्वान्न कृतं तदाद्यैः॥१५॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिप्रश्नाधिकारोक्त प्रकार से ग्रह का शंकु एवं दृग्ज्या साधन करे। वहाँ ग्रह को स्फुट किया है। ग्रह की भुक्ति (गति) का पंद्रहवाँ भाग महाशंकु में से कम करने से स्फुट शंकु प्राप्त होता है। अस्फुट शंकु से प्राप्त दृग्ज्या को बारह से गुणा करके स्फुट शंकु से विभक्त करने से छाया प्राप्त होती है। छाया के वर्ग में बारह का वर्ग युक्त करके मूल लेने से कर्ण प्राप्त होता है। बृहद्ज्या से शंकु प्राप्त करने से इस प्रकार होता है।

यदि लघुज्या से लघु शंकु ज्ञात करे तो उसमें से भुक्ति का ४३० वाँ भाग कम करने से स्फुट शंकु होता है। यदि महाशंकु भुक्ति के पंद्रहवें भाग से

अल्प हो अथवा लघु शंकु यदि भुक्ति के ४३० वें भाग से अल्प हो तो चंद्रमा अदृश्य रहता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए भी होता है। लेकिन अन्य ग्रहों के लिए यह बहुत अल्प होता है जिस कारण से पूर्वाचार्यों ने इसको नहीं किया है।

उपपत्ति— शंकु दृग्मण्डल में उन्नतांशों की जीवा होती है उसका शंकूमूल का ऊपरी भाग भुक्ति का पंद्रहवाँ भाग तुल्य कला भाग भूपृष्ठस्थ दृष्ट भूमि से (दबा हुआ) अदृश्य होने के कारण दिखाई नहीं देता। यह पूर्व प्रतिपादित किया गया क्षितिजलंबन है। गोलाध्या त्रिप्रश्नवासना के ३८ वें श्लोक में आचार्य ने इस संबंध में कहा है।

यदि ३४३८ त्रिज्या में पंद्रहवाँ भाग लंबन होता है तो १२० त्रिज्या में कितना होगा?

$$\frac{१}{१५} \times \frac{१२०}{३४३८} = \frac{१}{४३०}$$ स्वल्पांतर से।

इस प्रकार लघुशंकु के लिए ४३० भूछन्न कला प्राप्त होता है। इतनी लिप्ता शंकु में कम करने से चंद्रमा दृश्य होता है तथा इससे कम शंकु होने पर चंद्रमा अदृश्य होता है, इसी प्रकार सभी ग्रह अदृश्य रहते हैं। अन्य ग्रहों के लिए यह अंतर अल्प होने के कारण इस संस्कार को अन्य पूर्वाचार्यों ने नहीं कहा।

आर्यभट ने महासिद्धान्त के ग्रहच्छायाधिकार में ग्रहच्छाया का आनयन आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

''निजदिनदलजस्पष्टक्रान्त्यक्षांशगतशेषकैः कुर्यात्।
रविवत् समयच्छायासाधनमत्रापि कालज्ञः ॥७॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के चन्द्रच्छायाधिकार में चंद्र आदि ग्रह छाया आनयन आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

'द्वादशभिर्गुणिताया दृग्ज्याया इष्टमङ्गुलाप्तं यत्।
तत् प्रग्रहणे छाया स्फुटा विधोरन्यथाऽऽसन्ना ॥७॥
स्पष्टापक्रम भागैर्मध्यच्छायाऽर्कवच्छशांकस्यः।
शशिवद्भौमादिनामृक्षाणां तु स्वककुव्वशात् ॥८॥''

सिद्धान्त शेखर में भी श्रीपति ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त ही कहा है। यथा–

"अस्पष्टशङ्कुजनितां खलुदृष्टिजीवामभ्यस्य युग्मशशिभिर्विभजेन्नरेण।
स्पष्टीकृतेन फलङ्गुल पूर्वकं यत् सेन्दोः स्फुटा भवति भानिकटाऽन्यथा तु॥"
स्वक्रांतिभागैः शशिनो दिनार्धच्छाया श्रुतिभास्करवत् प्रसाध्ये।
भौमादिकानां च नभश्चराणां शशांकवत् स्वध्रुवकाच्च भानाम्॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चंद्रछायाधिकार में आचार्योक्त प्रकार से स्पष्ट शंकु का आनयन कहा है। यथा—

"शङ्कुधनुषोऽधिकस्य स्फुट प्रमाणार्धलिप्ताकाभिर्ज्या।
रविशशिमध्यनतिकला तिथ्यंशेनोनिता छेदः॥६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में इसी प्रकार कहा है। यथा—

"मानखण्डसहितान्नुकार्मुकात् शिञ्जिनी भवति हि क्रमेण या।
मध्यभुक्तितिथिभाग जीवया वर्जिता स्फुतरो नरोभवेत्॥"

इदानीं तेषां दूषणं निराकुर्वन्नाह—

**स्वल्पान्तरत्वादबहूपयोगात् प्रसिद्धभावाच्च बहुप्रयासात्।
ग्रन्थस्य तज्ज्ञैर्गुरुताभयेन यस्त्यज्यतेऽर्थो न स दूषणाय॥१६॥**

पूर्वाचार्यों के दोष का निराकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि किसी क्रिया के स्वल्पांतर होने के कारण, अधिक उपयोगी नहीं होने के कारण, अधिक प्रसिद्ध नहीं होने के कारण, बहुत प्रयास से ज्ञात होने के कारण, अत्यधिक वृहद् होने के कारण ग्रंथ में उसकी आवश्यकता त्याग दी जावे तो उसमें कोई दोष नहीं होता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के ग्रहच्छायाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

अथ ग्रहोदयास्ताधिकार:

अथ ग्रहोदयास्तमयाध्यायो व्याख्ययते। तत्रादौ नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षणमाह—

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।१।।
ऊनोऽधिकः पश्चिमदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

प्रतिदिन ग्रह उदयास्त के गत-गम्य के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहे। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है।

इसी प्रकार यदि पश्चिमदृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

उपपत्ति— प्रग्दृग्ग्रह तथा पश्चिमदृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रांतिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमि क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिंदु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के ऊपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहता है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के ऊपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"प्रागूनमाद्यमधिकं पश्चाल्लग्नाद्ग्रहोदयोऽस्तमयः।
षड्भयुतमन्यदुदयैर्घटिकाः कृत्वोनमधिकसमम्।।५।।"

आर्यभट (द्वि.) ने ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा महासिद्धान्तं—

"तस्मिन् पूर्वदिगुक्तैः कुर्याद् दृक्कर्मणी ततः कालः।
कार्यस्तज्जो द्युचरः कृतदृष्टिफलोऽसकृदुदयविलग्नम्।।३।।"

इदानीं तदन्तरघटिकाज्ञानमाह—

तदन्तरोत्था घटिका गतैष्यास्तच्चालितः स्यात् स निजोदयेऽस्ते।।२।।
तल्लग्नयोरन्तरतोऽसकृद्याः कालात्मिकास्ता घटिकाः स्युराक्ष्र्यः।
अभीष्टकालद्युचरोदयान्तर्यद्वेष्टकालद्युचरास्तमध्ये।।३।।

इष्ट समय तथा ग्रहोदय की नक्षत्र अन्तर घटि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट लग्न से प्राग्दृग्ग्रह यदि अल्प हो तो उनकी अन्तर घटियाँ पूर्वोक्त प्रकार से साधित करने से गत घटियाँ होती हैं। ये सावनात्मक हैं। इनको ग्रह की भुक्ति (गति) से गुणा करके साठ (६०) से विभक्त करने से प्राप्त कलाफल को गतघटियों में से कम करने से दृग्ग्रह की निजोदय कालिक घटियाँ होती हैं। इनके द्वारा पुनः इष्ट लग्न की अन्तर घटियाँ साधित करे जब तक कि असकृत कर्म द्वारा वह स्थिर न हो जावे। ग्रहोदय से इष्ट काल के मध्य इतनी नाक्षत्र गत घटियाँ होती हैं। इसी प्रकार ऐष्य घटियाँ साधन करे और इसी प्रकार अस्त के लिए कालात्मक गत-आगत घटियाँ साधन करे।

उपपत्ति— लग्न घटियों के नाक्षत्रात्मक साधन पूर्व में बताये गये हैं। ग्रह के प्रवह वायु वश अर्थात् भूभ्रमण के कारण उदयास्त को **प्रतिदिन** उदयास्त तथा किसी मुहूर्त पर उदय-अस्त को **निरुक्त उदयास्त** कहते हैं।

इदानीमर्कासन्नभावेन यावुदयास्तौ तदर्थमाह—

निरुक्तौ ग्रहस्येति नित्योदयास्ताविनासन्नभावेन यौ तौ च वक्ष्ये।
रवेरूनभुक्तिर्ग्रहः प्रागुदेति प्रतीच्यामसावस्तमेत्यन्यथान्यः।।४।।

सूर्यासन्न अभाव के कारण उदयास्त—

सूर्य-प्रभा टीका— नित्योदय के अतिरिक्त निरुक्त (ग्रह) के उदयास्त को आचार्य कहते हैं। यदि किसी ग्रह की गति रवि से अल्प हो तो वह पूर्व दिशा में उदित तथा पश्चिम दिशा में अस्त होता है जैसे मं.गु.श. अन्यथा होने

पर विपरीत होता है अर्थात् सूर्य से अधिक गति ग्रह पश्चिम में उदित या पूर्व में अस्त होता है। जैसे चंद्रमा।

उपपत्ति— मंद गतिक् ग्रह के निकट जब सूर्य रहता है तो वह ग्रह अदृश्य होता है। वहाँ से सूर्य शीघ्र गति से उससे आगे हटता जाता है तथा मंदगतिक् ग्रह पीछे हटता जाता है। अतः इस प्रकार पीछे रहा मंदगति ग्रह पूर्व दिशा में सूर्योदय से पूर्व दृश्य होता है। यदि मन्दगति ग्रह सूर्य से अधिक आगे स्थित हो तो शीघ्रता से रवि उसके आसन्न जाता है तब सूर्य किरणों से आच्छादित ग्रह (कुण्ठित) पश्चिम में अस्त होता है। इसी प्रकार युक्ति से अधिक भुक्ति वाला ग्रह पश्चिम में उदित तथा पूर्व में अस्त होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा−

''प्रागून भुक्तिरुनो दृश्योऽदृश्योऽन्यथा रवितः।
दृश्योऽधिकगतिरधिकोऽदृश्यः पश्चाद् ग्रहोऽल्पगतिः॥२॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा−

''ऊनोह्यूनगतिः सहस्रकिरणाद् दृश्योभवेत् प्राग्ग्रहः पश्चादभ्यधिकस्तथाऽधिकगतिः स्यात् प्रागदृश्यः पुनः।
स्वल्पोऽनल्पगतिस्तथोनगतिकः पश्चाददृश्योऽधिकः कालांशैरधिकोनकस्तु कथितैरिति।''

सूर्य सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा−

''सूर्यादभ्यधिकाः पश्चास्तं जीवकुजार्कजाः।
ऊनाः प्रागुदयं..........................॥२॥
ऊना विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञभार्गवाः।
व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः॥३॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा−

''कुजजीवार्कजमुनयः शुक्रज्ञौ वक्रिणौ च सूर्याल्पाः।
यान्ति प्राच्यामुदयं पश्चादस्तं व्रजन्त्यधिकाः॥१॥
ऋजुगौ ज्ञसितौ चेन्दुः प्राच्यामूना रवेर्व्रजन्त्यस्तम।
अधिकाः पश्चादुदयं सान्निध्ये लक्षणं चिन्त्यम्॥२॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहोदयास्तमयाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ऊनः प्रागुदयं प्रयाति सवितुः प्रागेव चास्तं ग्रहः
पश्चादभ्यधिकोऽर्के सन्निधिवशान्तित्यं प्रवाहेण च
दृश्याः प्राचि कुजार्यसूर्यतनयाः पश्चाददृश्यास्सदा
वक्रस्थौ ज्ञसितौ च तौ क्रमगती चन्द्रश्च तद्व्यत्ययात्।।१।।"

इदानीं बुधशुक्रयोर्विशेषमाह—

ज्ञशुक्रावृजू प्रत्यगुद्गम्य वक्रां गतिं प्राप्य तत्रैव यातः प्रतिष्ठाम्।
ततः प्राक् समुद्गम्य वक्रावृजुत्वं समासाद्य तत्रैव चास्तं व्रजेताम्।।५।।

बुध शुक्र के लिए विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— बुध-शुक्र मार्गी होने पर तथा उनकी भुक्ति अधिक होने से पश्चिम में उदित होते हैं तथा वहाँ वक्रि होकर वहीं पर अस्त हो जाते हैं तथा वक्रि रहते हुए पूर्व में उदित होते हैं और वहाँ अवक्रि होकर अधिक गति होने के कारण पूर्व में ही अस्त हो जाते हैं।

उपपत्ति— पूर्वोक्त व्याख्या ही उपपत्ति है।

विशेष— पूर्व तथा अग्रिम श्लोक की व्याख्या में विशेष में उद्धृत उद्धरणों का अवलोकन करें। पूर्वाचार्यों ने आचार्योक्त कहा है।

इदानीं कालांशानाहु—

दस्रेन्दवः १२ शैलभुवश्च १७ शक्रा १४ रुद्राः
११ खचन्द्राः १० तिथयः १५ क्रमेण।
चन्द्रादितः काललवा निरुक्ता
ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः।।६।।

कालांश ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि के निरुक्त कालांश क्रमशः १२, १७, १४, ११, १०, १५ होते हैं। वक्रि बुध, शुक्र के कालांश इनसे दो कम अर्थात् क्रमशः १२ तथा ८ होते हैं।

उपपत्ति— कालांश का अर्थ कालात्मक अंश है। छः अंश की एक घटी होती है। एक अंश की दश पानीय पल होते हैं। सूर्य से अस्त होकर उदय होने में चंद्रमा को दो घटी लगती है। इससे कम समय में सूर्य की प्रभा से आच्छाति होने से अदृश्य होता है। दो घटी बारह अंश के तुल्य होती है अतः चन्द्रमा के कालांश १२ होते हैं। इतने अंश से अधिक अंतर पर चंद्रमा दृष्टयोग्य होता है। मंगल के १७ अंश २।५० घटियों के तुल्य होते हैं। इसी प्रकार अन्य

ग्रहों के लिए कहे गये कालांश न्यूनाधिक उलके बिंबों की स्थूल-सूक्ष्मता वश हैं और बुध-शुक्र के बिंब वक्र गतिक होने पर पृथ्वी से निकटतम होने के कारण अधिक चमकदार तथा बड़े होने से उनके कालांश २ अंश न्यून कहे हैं। क्योंकि तब वे सूर्य से अधिक सान्निध्य में होने पर अस्त होते हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है केवल बुध तथा शुक्र के कालांशों में एक अंश का अंतर (कम) है। यथा–

''द्वादशभिः शीतांशुः सितजीवज्ञशनिभूमिजा नवभिः।
द्व्युत्तर वृद्धैरन्तरघटिका षड्गुणितकालांशैः ।।६।।''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने ब्रह्म गुप्तोक्त कालांश ही कहे हैं। यथा–
''शुक्रार्यज्ञद्युमणिजकुजा द्व्युत्तरैः कालभागैर्गोभिश्चन्द्रो रविभिरिनतो जायतेऽदृश्यदृश्यः।
गम्यो न्यूनादसुचय इतश्चाधिकादन्तरस्थैर्युक्त प्राणैः स खरसहतः कालभागा भवन्ति।।''

पुनः ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में भास्करोक्त कहा है। यथा–

''मानाल्पत्वात् पश्चादुदयोऽस्तमयः सितस्य दशभिः प्राक्।
पश्चान्मानमहत्वादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राक्।।११।।''

पुनः सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–
''मानाल्पत्वादृशभिरुदयं याति शुक्रः प्रतीच्यामंशैरस्तं
दिशि सुरपतेः पीनभावात्तु मूर्त्तेः पश्चादस्तं व्रजति वसुभिः प्रागुदेतीत्यनेन।''

श्रीपति ने अध्याय ८ सिद्धान्त शेखर के श्लोक ९ में बुध-शुक्र के कालांश क्रमशः १४ व १० तथा वक्रि बुध-शुक्र के क्रमश १२ तथा ४ कहे हैं।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय में आचार्योक्त कालांश कहे हैं। उन्होंने भी शुक्र-बुध के कालांश भास्कराचार्य से एक-एक अंश अल्प कहे हैं। यथा अध्याय ६ —

''अंशैरन्तरितः सूर्यान्नवभिदृश्यते भृगुः।
द्व्यधिकैर्द्व्यधिकैर्दृश्या ज्यौज्ञसौरिधरासुताः।।४४।।''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कालांश पठित किये हैं लेकिन बुध-शुक्र के कालांश भास्करोक्त से एक-एक अंश कम कहे हैं। लेकिन वक्रि बुध-शुक्र के कालांश भास्करोक्त १२ तथा ८ ही कहे हैं। यथा–

''कालांशै रविभिः शशी महिसुतोऽत्यष्टयाथ नन्दैः सितः
शाशाङ्किर्गुणभूमिरक्षशशभिः सौरिः शिवैरङ्गिराः।
वक्रस्थौ बुधमार्गवौ रवि-गजैः सूर्यान्तरैर्दृश्यतां
यान्ति प्रत्यगिनो भषटकृसहितः कार्यस्तथा दृग्ग्रहः॥५॥''

कालांशों के मानों के लिए वेध द्वारा ही उनको दृकसिद्ध करके मान कहे जाते हैं। अतः आगम ही इनका प्रमाण है।

सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कालांश ही कहे हैं केवल शुक्र कालांश एक अंश अल्प कहा है। शेष सभी आचार्योक्त ही हैं। यथा–

एकादशामरेज्यस्य तिथिसंख्याऽर्कजस्य च।
अस्तांशा भूमिपुत्रस्य दश सप्ताऽधिकास्ततः॥६॥
पश्चादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राङ्महत्तया।
प्रागस्त उदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगोः॥७॥
एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभिरंशकैः।
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात् करोत्यस्तमयोदयौ॥८॥''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''कालांशकैर्नवभिरुष्णुगुलुप्तदीप्तिर्दृश्यो भृगुर्गुरुबुधार्किजा क्रमेण।
तैर्द्वयन्तरैस्तुहिनदीधितिरर्क संख्यैः वक्री बुधाश्च वसुभिर्भृगुनन्दनोऽपि॥३॥''

यहाँ ग्रहों के कालांश में कुछ अंतर है लेकिन बुध, शुक्र के आचार्योक्त तुल्य हैं।

इदानीमितिकर्त्तव्यतामाह—

यत्रोदयो वास्तमयोऽवगम्यस्तद्दिग्भवो दृक्खचरो रविश्च।
अस्तोदयासन्नदिने कदाचित् साध्यस्तु पश्चात् तरणिः सषड्भः॥७॥

ग्रहउदयास्त समय ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के उदय व अस्त को जब जानना हो तो ग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम उदयास्त के अनुसार पूर्व अथवा पश्चिम दृग्ग्रह की तथा सूर्य की स्थिति उस दिन उदयास्त से कुछ पूर्व ज्ञात करे। यदि ग्रह पूर्व में उदित हो तो ग्रह साधन करके उदय लग्न साधन करे। यदि पश्चिम में ग्रह उदयास्त हो तो ग्रह का साधन करके सूर्य में छः राशि जोड़ कर लग्न साधन करे।

इदानीमिष्टकालांशानयनमाह—

दृक्खेचरार्कान्तरजातनाड्यो रसाहताः काललवाः स्युरिष्टाः।

इष्ट कालांश आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दृग्ग्रह तथा सूर्य की अन्तर घटिकाओं का साधन करके उनको ६ से गुणा करने से इष्ट कालांश प्राप्त होते हैं।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सूर्यास्तकालिकौ पश्चात् प्राच्यामुदयकालिकौ।
दिवा चार्कग्रहौ कुर्याद् दृक्कर्माथ ग्रहस्य तु॥४॥
ततो लग्नान्तरप्राणाः कालांशा षष्टिभाजिताः।
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः॥५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में इसी प्रकार कहा है। ग्रहोदयास्ताधिकार। यथा—

"गम्योऽल्पादसुनिवहोऽधिकाद् गतो यो
मध्यस्थैरसुभिरसौ युतो विधेयः।
कालांशा गगनरसैर्भजेदमीभि-
श्चोत्काल्पैर्द्युचरमवेहि तैरदृश्यम्॥६॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविदृक्खेटौ पश्चात् कार्यौ भगणार्धसंयुक्तौ।
तद्विश्लेषांशहतं स्वदृकाणं चीननै विभजेत्॥४॥"

अथ तैरुदयास्तयोर्गतैष्यतामाह—

उक्तेभ्य ऊनाभ्यधिका यदीष्टाः खेटोदयो गम्यगतस्तदा स्यात्॥८॥
अतोऽन्यथा वास्तमयोऽवगम्यः प्रोक्तेष्टकालांशवियोगलिप्ताः।
खाभ्राष्टभू १८०० घ्ना द्युचरोदयाप्ताः खेटार्कभुक्त्यन्तरभाजिताश्च॥९॥
वक्रे तु भुक्त्यैक्यहता अवाप्तास्तदन्तराले दिवसा गतैष्याः।
तात्कालिकाभ्यां रविदृग्ग्रहाभ्यां मुहुः कृतास्ते स्फुटतां प्रयान्ति॥१०॥

ग्रह के उदित होने अथवा उदित हो चुकने का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार प्राप्त इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह को उदय होना शेष होता है। यदि अधिक हो तो उदय

हो चुका होता है। अस्त के समय इससे विपरीत होता है अर्थात् यदि इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह अस्त हो चुका तथा अधिक हो तो अस्त अब होगा। पठित कालांश तथा इष्ट कालांश के अंतर को १८०० से गुणा करके दृग्ग्रह की आक्रांत राशि के स्वदेशीय उदय असुओं से विभक्त करके प्राप्त कला फल को, ग्रह वक्रि हो तो ग्रह तथा सूर्य की गति के अन्तर से पुनः विभक्त करने से तथा मार्गि होने पर दोनों के गति योग से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमशः (वक्रि ग्रह होने पर) ग्रह उदित होने के पश्चात् की दिन संख्या तथा (मार्गि ग्रह होने पर) उदित होने में शेष दिनों की संख्या होती है।

इस प्रकार दिनों से तात्कालिक दृग्ग्रह तथा सूर्य का साधन करके असकृत कर्म करे जब वास्तविक काल का ज्ञान न हो जावे।

उपपत्ति— पठित कालांशों के अन्तर्वर्ति ग्रह के रहने पर वह अदृश्य रहता है। अतः जब इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प होंगे तब ग्रह उदित नहीं होकर अदृश्य रहेगा तथा उदय के लिए पठित कालांश तुल्य इष्ट कालांश होने से वह विलोक्य मान के तुल्य होने से उदित हो जावेगा। अस्त समय पर विलोक्य मान्य तुल्य अस्त कालांश होने पर अस्त हो जायेगा। इष्ट कालांश अधिक होने से (पठित उदित कालांश से) भूमि से बाहर आ जाने से ग्रह उदित होकर विलोक्यमान हो जाता है। इष्ट कालांश तथा पठित कालांश की अन्तर कलाओं की क्षेत्र लिप्तिका करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि इतनी दृग्ग्रह उदय असु में १८०० क्षेत्र लिप्ता होती है तो अन्तर कला असु में कितनी होगी? प्राप्तफल क्षेत्र लिप्ता होती है। इसको ग्रह-सूर्य भुक्ति अंतर से विभाजित करे। भुक्त्यंतर को क्षेत्र लिप्तान्तरात्मक के सजातीय करने के लिए क्षेत्र लिप्तिकाकरण करते हैं कि यदि भुक्त्यन्तर में एक दिवस पाते हैं तो कालांतर कला में क्या? इस प्रकार जो दिनप्रमाण आता है वक्रि ग्रह होने पर भुक्ति का योग करके गणना करते हैं। दूर अन्तर पर होने के कारण स्थूल काल होता है अतः असकृत कर्म सूक्ष्मता के लिए करने के लिए कहा है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''दृश्यादृश्यैर्युतिवद्ग्रहार्क-भुक्त्यन्तरैक्य लब्ध दिनैः।
ऊनाधिक लिप्ताभ्यां प्राग्वत् तात्कालिकैरसकृत्॥७॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उक्तोनाधिककालभागविवर राशेः कलाभिः (१८००)
र्हतं भक्तं प्राचि निजोदयने वरुणाशायां तदस्तेन च।
षष्टिघ्नं ग्रहसूर्य भुक्ति विवरेणाप्तं ग्रहे वक्रिते
भुक्तयैक्येन दिनानि तैरथ मुहुः साध्योग्रहास्तोदयः॥
कथितसमयांशैभ्योऽभीष्टा भवन्ति यदाधिका
विगत उदयो भावी चास्तस्तथा ऽपरथाऽल्पकैः।
उदयति सितो वक्रं यातश्चतुर्भिरिहांशकैः
समयजनितैरेवं केचिद् वदन्त्यपरे त्रिभिः॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"फलमिष्टांशा एतैरुक्तांशेभ्योऽधिकैरेष्यः।
अस्तो न्यूनैर्यातो व्यस्तो ऽस्माल्लक्षणादुदयः॥५॥
इष्टोक्तांशवियोगः कार्योऽथ प्रागिनादधिकः।
पश्चादूनो वा चेद्दृक्खेटः स्यात्तदा योगः॥६॥
तल्लिप्तौघं विभजेद्गत्योः स्वदृकाणसङ्गुणयोः।
तननै हृतयोर्युत्या वक्रिणि खटेऽन्यथा वियोगेन॥७॥
लब्धैर्दिवसैः कथितवदेष्यगतत्वं विचिन्त्यामिह।

सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शनाः।
भवन्ति लोके खचरा भानुभाग्रस्तमूर्तयः॥६॥
तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तरविभाजिताः।
दिनादि तत्फलं लब्धं भुक्तियोगेन वक्रिणः॥१०॥
तल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादशशतोद्धृते।
स्यातां कालगती ताभ्यां दिनादि गतगम्ययोः॥११॥"

लल्लाचाचर्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहउदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उक्तेष्टकालांशविशेषलिप्ता गत्योर्वियोगेन हता दिनानि।
विलोमगेऽर्कग्रहभुक्तियुत्या गतानि गम्यानि च विद्धि युक्त्या॥७॥
अस्तेऽधिकाः स्युर्ध्रुवकालभागा गतानि विद्धीह दिनानि तानि।
अल्पास्तथा गम्य (दिना)नि तानि तथोदये गम्यगतानि तानि॥८॥"

अथ विशेषमाह—

प्राग्दृग्ग्रहश्चेदधिको रवेः स्यादूनोऽथवा पश्चिमदृग्ग्रहश्च।
प्रोक्तेष्टकालांशयुतेः कलाभि साध्यास्तदानीं दिवसा गतैष्याः।।११।।
तथा यदीष्टकालांशाः प्रोक्तेभ्योऽभ्यधिकास्तदा।
व्यत्ययश्च गतैष्यत्वे ज्ञेयोऽह्नां सुधिया खलु।।१२।।

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि प्राग्दृग्ग्रह रवि से अधिक हो अथवा पश्चिम दृग्ग्रह रवि से अल्प हो तो इन इष्ट कालांश तथा पठित कालांश के योग की कला से गत-ऐष्य दिन संख्या ज्ञात करे तथा यदि प्राग्दृग्ग्रह से रवि अधिक हो अथवा पश्चिम दृग्ग्रह से रवि अल्प हो तो इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अधिक हो तो इन दोनों कालांशों के योग की कलाओं से (पूर्व श्लोक ८ की द्वितीय लाइन तथा श्लोक ९ की पूर्व लाइन) गत-ऐष्य दिवस का आनयन करे।

उपपत्ति— जो ग्रह पूर्व में उदित हो चुका है उसके असु रवि से अल्प होंगे तथा जो पश्चिम में उदित हो चुका है उसके अधिक होंगे। पूर्व दिशा के पठित कालांश अल्प होने से वह प्रदृश्य होगा। इसी प्रकार पश्चिम के अधिक होंगे। अतः रवि के पीछे पूर्व दिशा के पठित कालांश होंगे तथा पश्चिम दिशा के आगे होंगे। पूर्व में ग्रह के इष्ट कालांश यदि अल्प हो तो रवि के पीछे होंगे। अतः पृष्ठ गत होने से पठित कालांश से उनका अंतर कर के गणना करेंगे। जब पूर्व में रवि से अधिक दृग्ग्रह के जो इष्ट कालांश साधित करेंगे वे रवि के आगे होंगे। अतः अग्रगत तथा पृष्ठगत कालांशों का योग करने से वह उनके अन्तर के तुल्य होता है। अतः इष्टांशों को अल्प-अधिक कहा है वह गत-गम्य लक्षण से कहा गया है जिनको सजातीय बना लेते हैं।

पुनः यदि एक पीछे तथा एक आगे हो तो ये गत-गम्य लक्षण विपरीत होते हैं। अतः विपरीत होने से ये गत-ऐष्य होते हैं।

।। इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के ग्रहोदयास्ताधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न।।

अथ शृङ्गोन्नत्यधिकारः

इदानीं शृङ्गोन्नतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ चन्द्रशङ्क्वर्थमाह—

मासान्तपादे प्रथमेऽथवेन्दोः शृङ्गोन्नतिर्यद्दिवसेऽवगम्या।
तदोदयेऽस्ते निशि वा प्रसाध्यः शङ्कुर्विधोः स्वोदितनाडिकाद्यैः ॥१॥

चंद्रशंकु का साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— मासान्त पाद अर्थात् चतुर्थ पाद (अर्थात् कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे) अथवा प्रथम पाद (अर्थात शुक्ल पक्ष की एकम से आगे अष्टमी तक) में से किसी भी अभीष्ट दिवस को जब चंद्रशृंगोन्नति ज्ञात करनी हो तब उस मास पाद के उस अभीष्ट दिवस की रात्रि में सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय अथवा रात्रि के किसी भी समय पर चंद्र सूर्य स्पष्ट करे। प्रथम चरण में उनसे अस्त काल में शृंगोन्नति ज्ञात करें, इसी प्रकार रात्रि में किसी समय पर तथा मासान्त पाद के उदयकाल पर चंद्र की शृंगोन्नति साधन करे। उदय से अभीष्ट घटी तुल्य काल अथवा जब अस्त हो वहाँ से ऊपर इष्ट घटी काल पर शृंगोन्नति साधित करे। वहाँ तात्कालिक सूर्य-चंद्र ज्ञात करके चंद्र की स्फुट क्रांति, उदयास्त लग्न, उन्नत घटिकादि उपकरणों से शंकु साधन करे।

उपपत्ति— चंद्रमा के आधे से अल्प शुक्ल भाग की कोटी (उपरी भाग) शृंगाकार होता है, तब वहाँ इष्ट काल पर कितनी शृंगोन्नति होगी यह ज्ञात करनी है। शृंगाकार भाग शुक्ल भाग के आधे से अल्प भाग में होता है। यह मासान्तपाद व प्रथम पाद में चंद्र के आधे से अल्प शुक्ल भाग में संभव होता है। द्वितीय तथा तृतीय (चरण) पाद में ब्रह्मगुप्तादि ने कृष्ण शृंगोन्नति साधित की है उससे भास्कराचार्य सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि कृष्ण शृंगोन्नति मनुष्यों को नेत्रों से दृश्य नहीं होती अतः शुक्ल शृंगोन्नति ही प्रसिद्ध है। अतः आचार्य ने मासान्त पाद व प्रथम पाद के लिए कहा है। द्वितीय तृतीय पाद में चद्र बिंबार्ध कृष्ण होने से वहाँ कृष्ण शृंगोन्नति होती है। सूर्यास्त के पश्चात जितनी घटी में चंद्र अस्त होता है वह गत घटी है तथा सूर्यास्त से जितनी घटी पहले चंद्रास्त

होता है वह ऐश्य घटी है। इसी प्रकार पूर्व क्षितिज में सूर्योदय से गत एवं ऐष्य घटी होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार में यह कहा है कि रवि से जब तक प्रथम तथा चतुर्थ पद (भास्करोक्त) में च्रदमा रहे तब ही भुज, कोटि तथा कर्ण आदि होते हैं। लेकिन फिर भी उन्होंने द्वितीय तथा तृतीय पद में भी चंद्रमा के रहने पर भी चंद्रश्रृंणोन्नति, जो कृष्ण शृंगोन्नति होती है, साधन करने की रीति बताई है। ब्रह्मगुप्त ने शुक्ल शृंगोन्नति साधन के लिए मना नहीं किया है। दोनों शृंगोन्नति साधन की रीति बताकर उन्होनें अपनी विद्वद्‌ता का ही परिचय दिया है। यथा चं.श्रृंगो. अधिकार—

''एवं तावद्यावत् पदयोराद्यन्तयोः शशिनि चार्कात्।
रविरर्धचक्रयुक्तः कल्पयो द्वित्रिपदयोरर्कः॥१०॥''

आचार्य ने निम्नलिखित श्लोक में किसी पाद की चर्चा न करके दोनों ही (शुक्ल तथा कृष्ण) शृंगोन्नति का साधन किया है। यथा—

''रविचंद्रपातलग्नैः स्वक्रान्त्युदयात् स्वलग्नगतशेषाः।
घटिकाः खचरार्धास्तात् स्वेष्टौ रविशीतगू कृत्वा॥४॥''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में ''शेषयोश्च पदयोः सषड्ग्रहं भास्करं दिनकरं प्रकल्पयेदिति'' प्रकार से ब्रह्मगुप्तोक्त बात कही है।

आर्यभट (द्वि.) ने भी चं. श्रृंगो. अधिकार में पूर्व कपाल तथा पश्चिम कपाल दोनों में ही शृंगोन्नति साधन के लिए कहा है। यथा—

''प्राक् शृंगोन्नतिमुख्यै कर्मणि सूर्यग्राविनोदयजौ॥
कृत्वा चन्द्रादीना बाणः साध्योऽस्तजौ पश्चात्॥१॥''

इनके कथम में भास्कराचार्योक्त समानता भी है।

लल्लाचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के शृंगोन्नत्यधिकार में शुक्ल शृंगोन्नति साधन के लिए ही कहा है। यथा—

''शुक्लपक्ष दिवसे द्वितीयके भास्वदस्तसमये प्रसाधयेत्।
तिग्मशीतकिरणौ परिस्फुटौ शृंगमानमवगन्तुमैन्दवम्॥६॥''

इस प्रकार सभी आचार्यो ने शुक्ल शृंगोन्नति का ही साधन किया है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त को व्यर्थ निशाना बनाकर अपनी विशिष्टता बताने का ही प्रयास किया है।

अथार्कशङ्क्वर्थं शङ्कुतलार्थं चाह—

निशावशेषैरसुभिर्गतैर्वा यथाक्रमं गोलविपर्ययेण।
रवेरधः शङ्कुरथाक्षभाघ्नो नरोऽर्क १२ हृच्छङ्कुतलं यमाशम्।।२।।

रवि शंकु शंकुतल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— शृंगोन्नति काल पर चंद्र शंकु साधन करे तथा रवि का साधन करे। उदय तथा अस्त समय का पूर्ण रवि शंकु सिद्ध करे। यदि उसका पूर्व में उदय अस्त अनन्तर हो तो क्षितिज के नीचे रवि होता है, उसका शंकु कैसे साधित करे। उदय से पूर्व जितनी घटी पर शृंगोन्नति होती है वह रात्रि अवशेष होती है। सूर्य अस्त के पश्चात जितनी घटी में होती है वह गत रात्रि होती है।

(रात्रि के पूर्व भाग तथा पश्चात भाग में जब सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है तब सूर्य क्षिजि से उन समयों पर समान स्थिति पर होता है जो सूर्यास्त तथा अग्रिम दिन के सूर्योदय से समान अंतर पर होते हैं।) रात्रि अवशेष असु अर्थात् सूर्यास्त के पश्चात् गत असुओं से तथा उदयात सूर्य को विपरीत गोल में मान कर (सूर्य उत्तर गोल में हो तो दक्षिण गोल में मान कर तथा दक्षिण गोल में हो तो उत्तर गोल में मान कर) त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक ५४ में कथित अनुसार शंकु साधित करने से वह रवि के नीचे स्थित शंकु होता है।

इस रवि के अधः स्थित शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से (त्रिप्रश्नाधिकार में बताये अनुसार) शंकुतल प्राप्त होता है। यह दक्षिण होता है। अधोमुख शंकु से उत्तर शंकुतल प्राप्त होता है।

उपपत्ति— निशावशेष व गत असुओं का अधः स्थल से अभिप्राय होने से इन असुओं से शंकु साधन करने से रवि का अधोमुख शंकु होता है। इसको गोल विपरीत स्थिति प्रकार से साधित करते हैं। ग्रह स्थान से क्षितिज धरातल के ऊपर जो लंब होता है वह शंकु है। शंकु मूल से उदयास्त सूत्र पर्यन्त शंकुतल होता है। क्षितिज के ऊपर अहोरात्रवृत्त के दक्षिण की ओर होने से दिन में वह शंकुतल उदयास्त सूत्र से दक्षिण होता है और रात्रि में क्षितिज से नीचे अहोरात्रवृत्त के उत्तर की ओर होने से वह शंकुतल उदयास्त सूत्र से उत्तर होता है। यह शंकुतल भुज, शंकु कोटि तथा इष्ट हृति कर्ण होती है। इनसे एक अक्ष क्षेत्र बनता है। इस में अनुपात किया कि यदि बारह अंगुल शंकु में पलभा भुज होती है तो कलात्मक महा शंकु में कितनी? प्राप्तफल कलात्मक शंकुतल होता है।

अथ भुजज्ञानार्थमाह—

सौम्यं त्वधोमुखनरस्य तलं प्रदिष्टं
स्वाग्रास्वशङ्कुतलयोः समभिन्नदिक्त्वे।
योगोऽन्तरं भवति दोरिनचन्द्रदोष्णो-
स्तुल्याशयोर्विवरमन्यदिशोस्तु योगः ॥३॥
स्पष्टो भुजो भवति चन्द्रभुजाश इन्दोः शुद्धे भुजे रविभुजाद्विपरीतदिक्कः॥

भुज ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि की अग्रा तथा उसका शंकुतल का एक दिशा में होने पर योग तथा भिन्न दिशा में होने पर अन्तर रविभुज होता है और चंद्र की अग्रा तथा शंकुतल का इसी प्रकार योगान्तर चंद्र भुज होता है। चंद्र तथा सूर्य के भुजों का एक दिशा में होने पर अन्तर तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से श्रृंगोन्नति का स्फुट भुज होता है। चंद्र भुज की दिशा ही स्फुट भुज की दिशा माने। यदि चन्द्र भुज सूर्य भुज से अल्प हो तो स्पष्ट भुज की दिशा चंद्र भुज की दिशा से विपरीत होती है। तुल्य दिशा होने पर भी दोनों के अन्तर की भुज की दिशा चन्द्र भुज की दिशा होती है।

उपपत्ति— यहाँ भुज ज्ञात की गई है। पूर्वापर सूत्र तथा शंकु मूल का दक्षिणोत्तर अन्तर भुज होता है। पूर्वापर सूत्र तथा उदयास्त सूत्र का अंतर अग्रा होती है। यह अग्रा यदि उत्तर हो तो उदयास्त सूत्र और शंकु का अन्तर शंकुतल दक्षिण होने पर अग्रा में से कम करने से जो शेष रहता है वह अग्राखंड उत्तर भुज होता है। पूर्वापर सूत्र से उत्तर की ओर इतने अंतर पर शंकु रहता है, इसका यह अर्थ है। यह अन्तर करने से शंकुतल में से अग्रा घट जावे तो दक्षिण भुज होता है। यदि अग्रा दक्षिण हो तो शंकुतल भी दक्षिण होता है। इनका योग करने से समसूत्र तथा शंकु का अन्तर भुज दक्षिण होता है। इस प्रकार अधोमुख शंकु उत्तर गोल में अग्रा तथा शंकु तल का योग होता है। यहाँ शंकुतल उत्तर होता है। दक्षिण गोल में इनका अन्तर करते हैं। इस प्रकार चंद्र-सूर्य का भुज होता है। इनसे स्फुट भुज ज्ञात करते हैं। चंद्र-सूर्य का याम्योत्तर अंतर स्फुट भुज होता है। यह दोनों के भुज एक दिशा में होने पर अन्तर करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से प्राप्त होता है।

जैसे यदि चंद्र का उत्तर भुज १४० हो तथा रवि का ६० कला उत्तर हो। सूर्य तथा चंद्र भुज एक ही दिशा में होने से रवि भुज को चंद्र भुज में से घटाने

से ५० कला उत्तर भुज शेष बचा। इसी प्रकार ये दक्षिण भुज होने पर चंद्र भुज शेष दक्षिण भुज होगा। यदि रवि भुज में से चंद्र भुज घट जावे तो उत्तर दिशा में होने से पूर्वापर सूत्र से उत्तर में चंद्र शंकु ५० कला अन्तर पर होता है। रवि शंकु ९० कला अन्तर पर है अतः रवि शंकु से ४० कला दक्षिण की ओर चंद्र शंकु है।

अग्रा उत्तर होने पर धन तथा दक्षिण होने पर ऋण होती है। इसी प्रकार भुज होता है। लेकिन शंकु दक्षिण होने पर धन तथा उत्तर होने पर ऋण होता है। इन की सहायता से इस अध्याय में स्पष्ट भुज, सूर्य तथा चंद्र के भुज के एक दिशा में होने पर उनका योग तथा विपरीत दिशा में होने पर उनका अन्तर तुल्य परिभाषित किया गया है तथा स्पष्ट भुज की दिशा को चंद्र के भुज की दिशा में ही कहा है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अग्रे पृथक् स्वशङ्कुतलतुल्ययुतिरन्यदिग्वियुतिः ॥६॥

पृथगन्तरसंयोगौ भुजो यतोऽर्कात् शशी समान्यदिशोः। $\frac{1}{2}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अग्राकानृतलयोः समाशयोः संयुतिर्वियुतिरन्यदिक्स्थयोः।
चन्द्रयोर्भवति बाहुरैन्दवोऽग्रैवभास्कर भुजस्ततोऽन्यदा ॥८॥
तां भुजां दिनकरस्य कल्पयेत् तद्युते शशिभुजेऽन्यदिग्गते।
चन्द्रसूर्य भुजयोः समाशयोर्जायते यदवशेषमन्तरे ॥१०॥
स्यात् स्फुटस्तु स भुजोऽत्र योगजे चन्द्रबाहुदिगथो वियोगजे।
शीतदीधितिभुजेऽधिकेऽपि वा व्यत्ययेन सवितुर्भुजेऽधिके ॥११॥"

इदानीं कोटिमाह—

योऽधो नरो दिनकृतः स विधोरुदग्रशङ्क्वन्वितो मम मता खलु सैव कोटिः ॥४॥

कोटि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि का अधः शंकु तथा चंद्रमा का ऊर्ध्व शंकु का योग आचार्य के मत से कोटि होती है।

उपपत्ति— सूर्य तथा चंद्र का याम्योत्तर अन्तर स्पष्ट भुज होता है।

ऊर्ध्वाधर अन्तर होता है वह कोटि होती है। उदयास्त समय पर यदि शृंगोन्नति होती है तो रवि शंकु से चंद्र शंकुतक कोटि होती है। जब रात्रि में सूर्य का अधः शंकु होता है, उसमें चंद्रमा का ऊर्धवशंकु युत करने से जो ऊर्ध्वाधर अन्तर होता है वह कोटि, उचित रूप से होती है। इसको दृष्टा व्यक्ति अपनी स्वस्थान वश शशि (चंद्र) का श्रृंग उन्नत देखता है। अतः स्वस्थित स्थान पर सम सूत्र से ऊर्ध्वरूप में कोटि होती है। भुज-कोटि से कर्ण ज्ञात करके, एक त्रिभुज बनता है। इस त्रिभुज क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त ने सूर्यचंद्र की अन्तरार्धज्या के द्विगुणित को कर्ण मानकर उसके तथा भुज के वर्गों के अंतर के मूल को कोटि माना है। ब्रह्मगुप्त का यह त्रिभुज क्षेत्र ऊर्ध्वाधर न होकर तिरछा है। जिससे दृष्टा की दृष्टि पूरी तरह सम्मुख देखने के अनुसार दर्पण की तरह नहीं होती। अतः आचार्य के मत से ब्रह्मगुप्त की रीति सम्यक् नहीं है।

एक प्रकार से भास्कराचार्य की रीति से भी कोटि तथा कर्ण ऊर्ध्वाधर धरातल में नहीं है। पं.सुधाक द्विवेदी ने स्वकृत ''वास्तव-शृंगोन्नति'' ग्रंथ में आधुनिक विधि से शृंगोन्नति का साधन सही प्रकार से किया है। श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त की विधि का ही अनुसरण किया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में भास्करोक्त विधि का संकेत दिया है जिसको आधार बना कर भास्कराचार्य ने इस विधि में रही कमी को सूर्य का अधः शंकु जोड़कर पूरी करने का प्रयास किया। यथा–

''कोटिमाहुरथ शङ्कुमैन्दवं तद्भुजाकृति युतेः पदं श्रुतिः ॥११ $\frac{१}{२}$॥''

अर्थात्— शुक्ल द्वितीया को सूर्यास्त समय पर तथा कृष्ण चतुर्दशी को सूर्योदय काल पर शृंगोन्नति का तत्कालिक चंद्र का शंकु कोटि होता है।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की रीति को निशाना बनाकर अपनी बात को श्रेष्ठ बताने का प्रयास किया है लेकिन अपनी बात के आधार रूप लल्लाचार्य की उक्ति के लिए मौन रहे हैं।

ब्रह्मगुप्त ने बह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में भास्करोक्त संकेत प्राप्त होता है। यथा–

''वियुत सहिते रवीन्द्वोरेकान्यकपाल संस्थयोराद्यः।
रवि शशि दृक्शंक्वन्तरमन्योऽदृग्दृश्यशंक्वैक्यम्॥८॥
आद्यान्य वर्ग योर्युतिमूलं पूर्वापरा भुजात् कोटिः। $\frac{१}{२}$।''

अथ दिग्वलनार्थमाह—

दोः कोटिवर्गैक्यपदं श्रुतिः स्याद्भुजो रस ६ घ्नः श्रवणेन भक्तः।
प्रजायते दिग्वलनं हिमांशोः शृङ्गोन्नतौ तत् स्फुटबाहुदिक्कम्॥५॥

वलन व उसकी दिशा का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। भुज को छः से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल वलन होता है। स्फुट भुज (बाहु) की जो दिशा होती है वही वलन की दिशा होती है।

उपपत्ति—चंद्र बिंब के व्यासार्ध को छः अंगुल तुल्य कर्ण मान कर उसमें परिणत भुज की वलन संज्ञा होती है। अतः वलन के लिए अनुपात किया कि यदि इतने अंतर के कर्ण में भुज प्राप्त होता है तो छः अंगुल में कितना होगा? प्राप्तफल = $\frac{\text{६} \times \text{स्प. भुज}}{\text{कर्ण}}$ = चंद्र बिंब वलन उत्पन्न होता है।

आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिकसाम्ये विश्लेषोऽर्केन्दुक्रान्त्योरसाम्य ऐक्यंतत्।
व्यर्केन्दुज्याक्षज्याहतेर्गमौर्व्याप्त यामयांशैः॥५॥
संस्कृत्य भजेद्व्यर्केन्दुज्यातांशेन चन्द्रबिम्बघ्नम्।
पारै भक्तं वलनं संस्कारवशेन दिक कल्प्या॥६॥"

यहाँ रवि भुज = रवि – अग्रा = ज्या रवि क्रांति।
चंद्र भुज = चंद्राग्रा ∓ चंद्र शंकुतल

अथ चन्द्रस्य परिलेखसूत्रानयनयोग्यतां कर्तुं संस्कारविशेषमाह—

चन्द्रस्य योजनमयश्रवणेन निघ्नो व्यर्केन्दुदोर्गुण इनश्रवणेन भक्तः।
तत्कार्मुकेण सहितः खलु शुक्लपक्षे कृष्णेऽमुना विरहितः शशभृद्विधेयः॥६॥

चंद्रमा के परिलेखनसूत्र को आनयन योग्य करने के लिए विशेष संस्कार—

सूर्य-प्रभा टीका— शृंगोन्नति कालिक चंद्र में से रवि को हीन करके शेष की ज्या को चंद्र के योजन कर्ण से गुणा करके रवि के योजन कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल का धनु शुक्ल पक्ष में चंद्र में युक्त करने से तथा कृष्ण पक्ष में घटाने से परिलेखन सूत्र साधन के लिए चंद्रमा होता है।

उपपत्ति— परिलेख सूत्र चंद्रमा की शुक्लता पर आधारित होता है। शुक्ल भाग का उपचय चंद्र सूर्य के अंतर के उपचय के अनुसार होता है। चंद्र बिंबार्ध को छः अंगुल पूर्व में कल्पित करने के लिए कहा है। चंद्र-शुक्ल का अंतर १५ अंश होने पर एक अंगुल शुक्ल भाग होता है। ३० अंश होने पर दो अंगुल तथा इसी प्रकार ९० अंश होने पर छः अंगुल शुक्ल भाग होता है। आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार बहुत से (पूर्ववर्ति) आचार्य चंद्र के शुक्ल भाग का मान ज्ञात करते थे। लेकिन उनकी यह विधि स्वल्पांतर है, क्योंकि ८५°।४५' तुल्य व्यर्क चंद्र होने पर ही बिंबार्ध शुक्ल हो जाता है। आचार्य ने इसके लिए विस्तार से गोलाध्याय के शृंगोन्नति वासना के श्लोक १ में कहा है। आचार्योक्त उपपत्ति अनुसार चित्र बनाया।
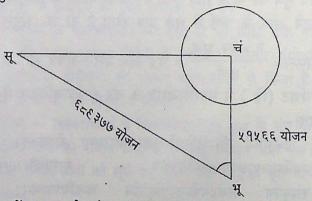
चित्र में सू= सूर्य, चं= चंद्र तथा भू= भूमि की स्थिति बताई गई है। व्यर्केन्दु= चं – सू = कोण सू भू चं होता है। भास्करोक्त भू सू= ६८९३७७ योजन तथा भू चं= ५१५६६ योजन।

$$\text{अतः कोज्या} \angle \text{सू भू चं} = \frac{\text{भू चं}}{\text{भू सू}} = \frac{५१५६६}{६८९३७७} = ०.०७४८$$

अतः कोण सू भू चं= ८५°४३' इसको भास्कराचार्य ने ८५°४५' ग्रहण किया है।

अतः भास्कराचार्य ने (९०° – ८५°४५'') ४°१५' चंद्रमा में शुक्ल पक्ष में युक्त करने के लिए कहा है तथा कृष्ण पक्ष में घटाने के लिए कहा है।

अनुपात किया कि यदि रवि योजन कर्ण में त्रिज्या तुल्य कला होती है तो चंद्र के नीचे स्थित योजन तुल्य रविकर्ण में कितनी होगी? इस प्रकार प्राप्त कला ज्या रूप होती है। अब दूसरा अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य व्यर्केन्दु

की ज्या इतनी कला होती है तो अभीष्ट में कितनी होगी? इस प्रकार करने से पूर्व अनुपात में त्रिज्या से गुणा करने से यही हर में होने से परस्पर इसका नाश हो जाता है तथा चंद्र कर्ण से गुणा तथा रविकर्ण हर में प्राप्त होता है।

यही श्लोक में कहा गया है। इस प्रकार $\frac{\text{व्यर्केन्दु ज्या} \times \text{चंद्र कर्ण}}{\text{सूर्य कर्ण}}$ प्राप्त होता है।

इसके चाप तुल्य शुक्ल पक्ष में चंद्रमा में युक्त करने से तथा कृष्ण पक्ष में हीन करने से वह चंद्र शुक्ल भाग साधन योग्य होता है। इस धनु का परम मान ४°१५' होता है।

भास्कराचार्य ने ४°१५' की त्रुटि सही ज्ञात की लेकिन जो सूत्र बनाया वह शुद्ध नहीं था। उससे वेध तुल्य शुद्ध मान प्राप्त नहीं होते।

विशेष— शुक्ल भाग आनयन के आधुनिक गणित द्वारा प्राप्त सूत्र के तुल्य ही शुद्ध सूत्र **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद** गंथ के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में भास्कराचार्य से बहुत पूर्व ही बताया था। लेकिन भास्कराचार्य ने लल्लाचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त कथनों को त्रुटिपूर्ण सिद्ध करने की मानसिकता के कारण लल्लाचार्य के शुद्ध सूत्र की अवहेलना करके अपना सूत्र कहने की भूल की। यथा—

"रविशीतकरान्तरांशजीवा विपरीता शशिखण्डताडिता वा।
विहृता त्रिभ जीवया सितं स्याच्छशलक्ष्माङ्गवदङ्गुलानि तस्मिन्।।१४।।"

सूत्र—

$$\frac{\text{चंद्र त्रिज्या (अंगुलात्मक) (त्रिज्या} - \text{व्यर्केन्दु कोज्या)}}{\text{त्रिज्या}} = \text{शुक्ल भाग}$$

$$\text{शुक्ल भाग} = \frac{\text{चंद्र त्रिज्या} \times \text{व्यर्केन्दु उत्क्रमज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ६ में यही सूत्र दिया है।

यथा—

"चन्द्र भानुविवरोत्क्रमज्ययाचन्द्रबिम्बमभिहत्य भाजयेत्।।५।।
षण्णगाष्टरससंख्यया सितं नित्यमेव गणकाः प्रजानते।
चन्द्रभानुविवरं पदाधिकं स्यात्तदा क्रमगुणेन युक्त्या।।६।।
त्रिज्यया सितविधिर्विधीयते पौर्णमास्यपरतोऽसित तथा।
सूर्यचन्द्रविवरांशजीवया चोत्क्रमक्रमवशात्सितं विदुः।।७।।"

यहाँ आचार्य ने चांद्र मास के चारों पदों में शुक्ल तथा कृष्ण शृंगोन्नति साधन के सूत्र कहे हैं। यथा–

(१) शुक्ल पक्ष में—

$$\text{चंद्र का शुक्ल भाग} = \frac{\text{उत्क्रमज्या (चं. – सू.)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

(चं – सू) तीन राशि से अल्प होने पर अर्थात् प्रथम पाद में यह सूत्र है।

(चं. – सू) तीन राशि से अधिक होने पर अर्थात् द्वितीय पाद में—

$$\text{चंद्र का शुक्ल भाग} = \frac{\text{त्रि + ज्या (चं. – सू – ९०°)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

(२) कृष्ण पक्ष में—

छः राशि से अधिक (चं. – सू) होने पर अर्थात् तृतीय पाद में—

$$\text{कृष्ण भाग} = \frac{\text{उत्क्रमज्या (चं. – सू – १८०°)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

नौ राशि से (चं – सू) अधिक होने पर अर्थात् चतुर्थ पाद में—

$$\text{कृष्ण भाग} = \frac{\text{त्रि + ज्या (चं. – सू – २७०°)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

भास्कर प्रथम ने **लघुभास्करीय** के अध्याय ६ में उपरोक्त सूत्र ही कहा है। यथा—

"अंतरांशोत्क्रमां जीवा स्फुटेन्दुव्यासताडिताम्।
षण्णगाष्टरसैर्हृत्वा सितमानं पदाधिके॥६॥
क्रमज्यामधिकोत्पन्नां त्रिज्यया योज्य तत् सितम्।
आनयेदसितेऽप्येवमुत्क्रमतोऽसितम्॥७॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में उपरोक्त आचार्यों के अनुरूप कहा है। यथा–

"व्यर्केन्दुदलभुजांशाः शशिमानगुणाः सितं नवतिभक्ताः।
द्विगुणांशोत्क्रमजीवा तावद्यावन्नवतिरंशाः॥११॥
नवतेरधिकांशानां क्रमज्यया संयुतोत्क्रमा त्रिज्या।
चन्द्रप्रमाणगुणिता द्विगुणव्यासार्ध भक्ताऽन्यत्॥१२॥

प्रथमं शुक्लं रात्रौ दिवसेऽन्यत् सन्ध्ययोस्तदैक्यार्धम्।
कर्णो ज्या रविदिग् भवति तस्य सितं श्रवणगत्या च॥१३॥"

अथ परिलेखसूत्रमाह—

व्यर्केन्दुकोट्यंशशरेन्दु १५ भागो हारोऽमुना षट्कृति ३६ तो यदाप्तम्।
द्विष्ठं च हारोनयुतं तदर्धे स्यातां क्रमादत्र विभास्वभाख्ये॥७॥

परिलेखन सूत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र-सूर्य के अंतरांशों की कोटी अंशों के १५वें भाग (हार) से ३६ को विभक्त करने से प्राप्तफल को दो स्थानों पर स्थापित करके पूर्वोक्त हार की सहायता से संक्रमण गणित के द्वारा कोटि (विभा) तथा कर्ण (स्वभा) को ज्ञात कर सकते हैं।

उपपत्ति— परिलेखन सूत्र का स्वरूप बताते हैं। व्यर्केन्दु भुजांशों को १५ से विभक्त करने से अंगुलात्मक शुक्ल भाग पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त होता है। चंद्र (चं.) तथा भूमि को लिखकर वहाँ यथोक्त (व ल) वलन देकर (के चं व) वलन सूत्र में शुक्ल पक्ष में शुक्ल भाग (द व) देकर उसके आगे चिन्ह (द) लगावे तथा वलन सूत्र से तिर्यग्रेखा (अ ब) खेंचे जो चंद्रमंडल वृत्त को अन्य दो बिंदुओं अ ब पर काटे। इन (अ द ब) तीनों चिन्हों से होते हुए एक वृत्त बनावे जिसको परिलेखन वृत्त कहते हैं। इसका के अ = के ब = के द व्यासार्ध होता है उसको परिलेखन सूत्र कहते हैं। परिलेखन वृत्त के अन्दर ही वलन सूत्र व'ल' = वल होता है। वलन रेखा से चंद्र बिंब पर व' बिन्दु बनावे तथा उससे होते हुए के व' चं व सू रेखा खेंचे।
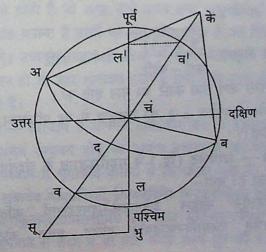
समकोण त्रिभुज के चं अ में कोण चं समकोण है तथा अ के = द के कर्ण है, अ चं भुज है तथा के चं कोटि है। अतः चंद्र केन्द्र चं तथा शुक्ल चिन्ह द का अंतर (द चं), कोटि (के चं) तथा कर्ण (के द) का अन्तर है।

आचार्योक्त लीलावती के सूत्र अनुसार "भुजाद्वर्गितात् कोटिकर्णान्तरान्तम् द्विधा कोटि कर्णान्तरेणोन युक्तम्। तदर्धे क्रमात्कोटिकर्णो भवेताम् इंदधीमांताऽऽवेद्य सर्वत्र योज्यम्" इस श्लोक के अनुसार

$$\frac{\text{भुज}^2}{\text{कर्ण} - \text{कोटि}} = \text{कर्ण} + \text{कोटि}$$

क्योंकि $\text{भुज}^2 = \text{कर्ण}^2 - \text{कोटि}^2$ होता है।

इस प्रकार इनकी सहायता से कोटि तथा कर्ण ज्ञात किये जा सकते हैं।

तथा शुक्ल भाग = $\frac{९०^\circ - \text{ज्या (चं – सू)}}{१५} = ६ - \frac{\text{ज्या (चं – सू)}}{१५}$ आचार्योक्त अनुसार।

यहाँ चन्द्रमा का व्यासार्ध चंदव= ६ है। अतः $\frac{\text{ज्या (चं – सू)}}{१५}$ = व द = शुक्ल भाग। इसी प्रकार चं द = चं व – व द = चंद्र व्यासार्ध – $\frac{\text{ज्या (चं – सू)}}{१५}$ आचार्योक्त श्लोक।

कोटि (के द) – शुक्ल भाग (व द) =चंद्र बिंबार्ध (वचं) है। यह कोटि तथा कर्ण का अन्तर है।

सूत्र के अनुसार $\frac{(\text{व चं} = ६)^2}{\text{कर्ण} - \text{कोटि}} = \text{कर्ण} + \text{कोटि}$

इनके द्वारा कर्ण तथा कोटि का मान ज्ञात करे।

आगे के दो श्लोक ८-९ की व्याख्या से यह परिलेखन चित्र और भी स्पष्ट हो जावेगा।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शुक्लोन मण्डल दलेनानष्टेनेन्दुमण्डलार्ध कृतिम्।
विभजेत् फलमविनष्टाद्‌योनं दलितं श्रवण कोटी॥८॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त सूत्र ही कहा है। यथा—

"शशिमान वर्गपादो मानार्धसितान्तरार्धभक्तयुतः।
परिलेखसूत्रमस्मात् शुक्लेऽर्धाल्पे च परिलेखः॥१४॥"

यहाँ आचार्योक्त सूत्र भास्कोक्त विधि से स्फुट हो जाता है।

अथ परिलेखमाह—

सूत्रेण बिम्बमुडुपस्य षडङ्गुलेन कृत्वा दिगङ्कमिह तद्वलनं ज्यकावत्।
मासस्य तुर्यचरणे वरुणेशदेशात् प्राग्भागतः प्रथमके सुधिया प्रदेयम्॥८॥
केन्द्राद्विभां तद्वलनाग्रसूत्रे कृत्वा विभाग्रे स्वभया च वृत्तम्।
ज्ञेयेन्दुखण्डाकृतिरेवमत्र स्यात् तुङ्गशृङ्गं वलनान्यदिक्स्थम्॥९॥

परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— समान की हुई भूमि पर छः अंगुल सूत्र से एक वृत्त बनाकर उसमें पूर्वादि दिशायें अंकित करे तथा उसको चंद्रमा कल्पित करे तथा पूर्व (श्लोक ५) कथित प्रकार से वलन साधन करके इसको ज्या रूप में मासान्त (चतुर्थ पाद) में पश्चिम चिन्ह से तथा प्रथम चरण में पूर्व दिशा से देवें। चित्र में व ल तथा व' ल' अनुसार। चंद्र केंद्र (चं) से व' वलन के ऊपर से जाते हुए सूत्र में चंद्र गोल के बाहर की ओर चंद्र केंद्र से विभा (कोटि) चं के तुल्य देवें। विभा के अग्र चिन्ह (के) से स्वभा (कर्ण) तुल्य सूत्र से वृत्त बनावे इससे चंद्रमा की खंडित हुई आकृति अ द ब से चंद्रमा की शेष आकृति अ व ब द प्राप्त होती है जो ऊपर नीचे उन्नत तथा नत होती है। समान भूमि पर चंद्र बिंब खंड बनाया है उसमें जो शृंग उन्नत होता है वह कितना है उसकी संख्या ज्ञात करे। उच्चशृंग वलन की दिशा से दूसरी दिशा की ओर होता है। यदि दक्षिण वलन हो तो उत्तर शृंगउन्नत होता है तथा उत्तर वलन होने पर दक्षिण शृंग उन्नत होता है।

उपपत्ति— आचार्य ने जलमय गोलाकार चंद्र के शुक्लत्व का कारण तथा उसको उपचय अपचय होने का कारण बताया है जो यहाँ बताते हैं। आचार्य ने गोलाध्याय में शृंगोन्नति वासना में इस प्रकार कहा है। यथा—

"तरणि किरण सङ्गादेव पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिका भिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निज मूर्तिच्छाययैवातपस्थ॥१॥"

हरिहर भगवान से ब्रह्मा ने वर प्राप्त करके सहर्ष पुत्र की कामना की तो

उनके त्रिनेत्र से पिघले हुए जल बिंदुओं को इकट्ठा करके पितामह ने आकाश में निवेशित कर दिया। यह स्मृति-पुराणों में हम सुनते हैं। अतः आगम प्रमाण से यह चंद्रमा जलमय है। इसके ऊपर सूर्य भ्रमण करता है। अतः यह जिस जिस दिशा में सूर्य के सामने अपनी कक्षा में भ्रमण करता है उस-उस ओर का हिस्सा सूर्य की रोशनी से दिप्तिमान होता है तथा उसके दूसरी ओर स्त्री के काले बालों की तरह श्याम होता है। स्त्री के गोलाकार केश बन्ध की उक्ति आचार्य ने सम्मान सूचक रूप में की है। स्त्री के बालों की श्यामलता उसके श्री की शोभा को बढ़ा देती है। चंद्र की श्यामलता निजमूर्ति की छाया के रूप में है।

इसी प्रकार जैसे घड़े का जो अर्धभाग सूर्य की दिशा की ओर रहता है वह उज्ज्वल होता है तथा दूसरी ओर का भाग श्यामल दिखाई देता है, इसी प्रकार चंद्र होता है। चंद्रमा तथा सूर्य जब एक राशि में स्थित होते है तब वह सूर्य के नीचे स्थित होता है अतः उसका ऊपर का अर्धभाग शुक्ल रहता है तथा नीचे की ओर का अर्ध भाग मनुष्यों को कृष्ण दिखता है। फिर आकाश का आधा भाग अन्तरित करके उनकी स्थिति परिवर्तित हो जाती है तब पूर्णमासि को ऊपर का अर्धभाग कृष्ण तथा नीचे का अर्ध भाग शुक्ल दिखता है। इस प्रकार ८५°४५' सूर्य से तिर्यक स्थित जब चंद्रमा होता है तब उसका ऊपर का तथा नीचे का आधा भाग शुक्ल तथा कृष्ण होता है। इस प्रकार सूर्य चंद्र का दक्षिणोत्तर वलन दिग्वलन होता है। इसको ज्ञात करने के लिए भुजकोटि का साधन करते हैं। इसकी उपपत्ति गोलाध्याय श्रृङ्गो. वासना में बताई गई है यथा–

"यद्याम्योदक् तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् सकर्णः।
दो मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्च कोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम्॥५॥"

रवि चंद्र का दक्षिणोत्तर अंतर भुज है। सूर्य से चंद्रमा जिस दिशा में होता है वह उसकी दिशा है। इसकी ऊर्ध्वाधर अन्तर कोटि होती है। इन पर जो तिर्यक रूप है वह कर्ण है। चंद्र बिंबार्ध मान छः अंगुल को कर्ण मान कर भुजको उससे परिणत करने से भुज की वलन संज्ञा करते हैं। मास के प्रथम चरण में श्रृंगोन्नति होती है। दक्षिण वलन तीन अंगुल होता है तब वहाँ पूर्वाभिमुख चंद्र श्रृंगोन्नति होती है। अतः चन्द्रमध्य (केंद्र) से पूर्वाभिमुख विभा देनी चाहिये। इसके आगे चंद्र बिंब जहाँ खंडित हो वहाँ चंद्र का श्रृंग होता

है। अतः पूर्वभाग का वलन दक्षिण देवे। मासान्त पाद में पश्चिम भागाभिमुख शृंग होता है। अतः वहाँ पश्चिम भाग में वलन देवे। अतः श्लोक में "मासस्य तर्युचरणे वरुणेशदेशादिति।" कहा गया है।

अतः चंद्र केंद्र से वलनाग्र तक गये हुए सूत्र में विभा देने से वह पूर्व प्रतिपादित त्रिभुज की कोटि होती है तथा स्वभा कर्ण होता है। अतः वहाँ विभाग्र से वृत्त खेंचने से चंद्र के शुक्ल भाग की सम्यग् आकृति प्राप्त होती है। जिस दिशा में चंद्रमा से रवि होता है उस दिशा में शृंग उन्नत होता है। जो पूर्व में वलन प्राप्त किया है वह चंद्र की दिशा है। चंद्रमा से सूर्य विपरीत दिशा में होता है।

अतः आचार्योक्त 'स्यात् तुङ्ग शृंग वलनान्यदिक्स्यमिति आदि' उपपन्न हुए।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविदृष्टं सितमर्ध कृष्णमदृष्टं यथाऽऽतपस्थस्य।
कुम्भस्य तथासन्नं रवेरधः स्थस्य चन्द्रस्य॥२॥
सितमुन्नतं यतोऽर्कः सितासितं शुक्लपक्षान्ते।
अर्वागर्धं पश्चाद् गणिताच्छङ्गोन्नतिस्तस्मात्॥३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"धाम्ना धामनिधेरयं जलमयो धत्ते सुधादीधितिः
सद्यः कृत्तमृणालकन्दविशदच्छायां विवस्वद्दिशि।
हर्म्ये धर्मघृणेः करैर्घट इवान्यस्मिन् विभागे
पुनर्वाला कुन्तल कालता कलयति स्वस्यास्तनोश्छायया।
पाथोमये शीतकरेऽर्करश्मयो विमूर्छिताघ्नन्ति तमस्विनीतमः।
निकेतनाभ्यन्तरगं तमः स्वयं यथा त एवामल दर्पणाश्रिताः॥
यस्यां सहस्रकिरणो दिशि तत्र नूनमालोक्यते शशधरस्य सितोन्नतत्वम्।
पक्षान्तयोरपि सितासितता यतोऽस्य शृंगोन्नतिः खलु ततो गणितावगम्या॥"

वराहमिहिर ने इन्हीं की पुनरुक्ति की है। यथा वृहदसंहिता—

"सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः॥"
प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थान विशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धिः।
भवति शशिनोऽपराह्ने पश्चाद्भागे घटस्येव॥४॥"

आचार्य ने जल को यहाँ जल पिण्डात्मक कहा है।

लल्लचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त प्रकार सुन्दर उक्ति कही है। यथा–

''बाह्वङ्गुलानि यत एव निवेशितानि शृंग तु तन्नमति शेषमिहोन्नतं स्यात्।
शुक्लेऽर्धबिम्बसदृशे दलितेऽर्धमौर्व्या लाटीललाटतटरूपधरः शशाङ्क।।१६।।''

आचार्य ने चंद्रमा की उक्ति अपने लाट देश की सुन्दरी स्त्री के सुन्दर मुख से की है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के छेद्यकाधिकार आचार्योक्त परिलेखन कहा है। यथा–

''शृंगोन्नतौ हिमांशोर्मण्डलखण्डेन मण्डलं कुर्यात्।
सितपक्षे प्राग्वलनं दद्यादसिते दिगङ्कितं पश्चात्।।१०।।
विन्दोर्ववलनगसूत्रे कोटिं दद्यात्तदग्रतो वृत्तम्।
कर्णजसूत्रे विलिखेत् संस्था स्याच्छृङ्गयोरिन्दोः।।११।।
शशिशुक्ले त्वऽर्धोने साध्या शृंगोन्नतिर्गणकैः।
बिम्बादौ परिलेखेऽङ्गुलानि लिप्तासमान्यत्र।।१२।।''

उपपत्तौ हि क्वचिदमूर्त्तं प्रमेयं परब्रह्मवत् तज्ज्ञानमेव स्वसंवेद्यम्। अतोऽत्र मन्दावबोधनेन स्वमतं द्रढयितुं परमतनिराकरणाय सुगणकानभ्यर्थ्य दृष्टान्तमाह—

यौ ब्रह्मगुप्तकथितौ किल कोटिकर्णौ ताभ्यां कृते तु परिलेखविधौ यथोक्ते।
नास्तीव भाति मम दृग्गणितैक्यमत्र शृङ्गोन्नतौ सुगणकैर्निपुणं विलोक्यम्।।१०।।
यत्राक्षोऽङ्गरसा ६६ लवाः क्षितिजवत् तत्रापवृत्ते स्थिते
मेषादावुदयं प्रयाति तपने नक्रादिगेन्दोर्दलम्।
याम्योदग्वलयेन खण्डितमिव प्राच्यां सितं स्यात् तदा
नैतद्ब्रह्ममतेऽस्य हि त्रिभगुणो बाहुश्च कोटिस्तदा।।११।।
शृङ्गे समे स्तो यदि बाह्वभाव ऊर्ध्वाधरे ते यदि कोट्यभावः।
त्रिज्यासमौ तस्य च कोटिबाहू किं वा ममानेन नमो महद्भ्यः।।१२।।

स्वमत को दृढ़ता प्रदान करने के लिए आचार्य विद्वान गणितज्ञों के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ब्रह्मगुप्त कथित कोटि एवं कर्ण के द्वारा यथोक्त परिलेख करने पर आचार्य को गणितागत तथा दृग्वेध द्वारा श्रृगोन्नति को देखने

में एकता अनुभव नहीं हुई अर्थात् उनमें अन्तर अनुभव हुआ है। अतः आचार्य विद्वान गणितों को इसकी सत्यता को परखने के लिए आह्वाहन करते हैं।

जिस देश में ६६ अंश अक्षांश हैं वहाँ उदय काल पर जब मेषारंभ पूर्व क्षितिज पर स्थित होता है तब समस्त राशियाँ क्षितिजस्थ होती है अर्थात् तब अपमण्डल क्षितिज होता है तथा उस समय चंद्रमा मकरारंभ पर होता है। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा को याम्योत्तर वृत्त काटता हुआ होता है तथा चंद्रमा का पूर्व की ओर का भाग शुक्ल होता है। लेकिन ब्रह्मगुप्त की परिभाषानुसार यह ऐसा नहीं होता क्योंकि तब उनके अनुसार बाहु तथा कोटि दोनों त्रिज्या के तुल्य होती है। यदि बाहु (भुज) का अभाव हो तो शृंग समतल (क्षितिज धरातल के समानान्तर) होते हैं और यदि कोटि का अभाव होता है तो शृंग ऊर्ध्वाधर होते हैं। अतः ब्रह्मगुप्तानुसार यहाँ भुज-कोटि दोनों त्रिज्या के तुल्य होने से आचार्य के उक्त कथन के तथा सत्यता के विपरीत ब्रह्मगुप्त का निष्कर्ष होता है कि यहाँ शृंग ऊर्ध्वाधर नहीं हो सकते। अतः आचार्य महान गणितज्ञों को नमस्कार प्रेषित करते हैं।

।। इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के शृंगोन्नत्यधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न।।

अथ ग्रहयुत्यधिकारः

अथ ग्रहयुतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ ग्रहाणां मध्यमबिम्बान्याह—

व्यङ्घ्रीषवः ४।४५ सचरणा ऋतवः ६।१५ त्रिभाग-
युक्ताद्रयो ७।२० नव ९ च सत्रिलवेषव ५।२० श्च।
स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां
त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग्विनिघ्न्यः ॥१॥

ग्रहों के मध्यम बिंबमान—

सूर्य-प्रभा टीका— मंगल का मध्यम बिंब मान ४।४५ कला, बुध का ६।१५ कला, गुरु का ७।२० कला, शुक्र का ९।० कला तथा शनि का ५।२० कला होता है। इनको पृथक-पृथक त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर से गुणादि करने के संबंध में आगे बताया गया है जिससे इनके शुद्ध मान ज्ञात होते हैं।

उपपत्ति— चंद्रग्रहणाधिकार के श्लोक ५ में बताये अनुसार ग्रहों के कोणिय व्यास ज्ञात कर सकते हैं। आगे बताई गई विधि द्वारा इन मानों को शुद्ध करना बताया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में जो सूत्र दिया है उसके अनुसार मंगलादि ग्रहों के कलात्मक मान भास्कराचार्य के आसन्न ही प्राप्त होते हैं। यथा–

"भुजलिप्ता भक्ताः कुजादि दृश्यांश संमितर्लब्धाः।
मध्यममानकलाः स्युः कुजबुध गुरु शुक्ररविजानाम्॥२०॥"

इस प्रकार मंगल का मध्यम बिंब मान = $\frac{८१}{१७}$ = ४।१६ कला,

बुध = $\frac{८१}{१३}$ = ६।१४ कला, गुरु = $\frac{८१}{११}$ = ७।२२ कला, शुक्र = $\frac{८१}{९}$ = ९ कला, शनि = $\frac{८१}{१५}$ = ५।२४ कला होता है। ये मान भास्करोक्त मानों के आसन्न

ही हैं। दोनों में, सूत्र में उपयोग किये गये अंक मानों की कुछ स्थूलता के कारण तथा नंगी आंखों से वेध करने के कारण थोड़ा सा अंतर पड़ता है। इसी श्लोक में आचार्य ने इनको आगे बताई गई विधि से शुद्ध करने के लिए कहा है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में ग्रहों के मध्यम कला बिंबमान भास्करोक्त मानों के आसन्न हैं। गुरु तथा शनि के बिंब मान भास्करोक्त से ५ विकला अल्प प्राप्त होते हैं।

"पेधा रेमा रुधा लेता रोटा घभक्ताः स्युः।
भौमान्मण्डललिप्ता मध्या वक्ष्ये स्फुटीकरणम्॥१॥"

इसके अनुसार बिंबमान मंगल = $\frac{\text{पेधा}=१९}{४}$ = ४।४५; बुध = $\frac{\text{रेमा}=२५}{४}$ = ६।१५; गुरु = $\frac{\text{रुधा}=२९}{४}$ = ७।१५; शुक्र = $\frac{\text{लेता}=३६}{४}$ = ९; शनि = $\frac{\text{रोटा}=२१}{४}$ = ५।१५ कलादि होते हैं।

आचार्य ने इन बिंब कलाओं के स्पष्ट मान आगे के श्लोक में ज्ञात करना बताया है।

अथासां स्फुटीकरणमाह—

त्रिघ्न्या निजान्त्यफलमौर्विकया विभक्ता
लब्धेन युक्तरहिताः क्रमशः पृथक्स्थाः।
ऊनाधिके त्रिभगुणाच्छ्रवणे स्फुटाः स्युः।
कल्प्यं खलु त्रिकलमङ्गुलमत्र बिम्बे॥२॥

इन मानों का स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहों के इन मध्यमान कलाओं को उनके (पृथक-पृथक) त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर से गुणा करके उनके शीघ्र अन्त्यफलज्या के तीन गुणे से विभक्त करने से प्राप्त फल को पृथक्स्थ इन मध्यम मानों में यदि त्रिज्या से शीघ्र कर्ण अल्प हो तो युत करने से तथा अधिक हो तो घटाने से स्पष्ट बिंब कला प्राप्त होती है। चाप की तीन कला को एक अंगुल तुल्य मानने से अंगुलात्मक बिंब होता है।

उपपत्ति— ग्रह (मन्दस्पष्ट) का जब त्रिज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है तब वह अपनी मध्यम दूरी स्थान पर स्थित होने से उसका बिंब मान मध्यम होता

है। त्रिज्या से अल्प कर्ण होने पर वह पृथ्वी के समीप स्थित होने से उसका बिंब उपचित (बड़ा) होता है तथा त्रिज्या से अधिक कर्ण होने पर ग्रह पृथ्वी से दूर स्थित होने से उसका बिंब अपचय (छोटा) होता है। इस प्रकार ग्रह बिंब का परम उपचय उसके बिंबमान का तीसरा ($\frac{१}{३}$) भाग तुल्य होता है तथा इतना ही परम अपचय होता है। इनके बीच में अनुपात करते हैं। यदि त्रिज्या से अल्प अन्त्यफलज्या के तुल्य कर्ण उपलब्ध होता है तब वह ग्रह परम स्थूल होता है तथा त्रिज्या से अधिक अन्त्यफल ज्या तुल्य कर्ण यदि उपलब्ध होता है तब वह ग्रह परम सूक्ष्म होता है। इस प्रकार परम सूक्ष्म और मध्यम तथा परमस्थूल और मध्यम का अन्तर मध्यम बिंब का तीसरा भाग होता है, यह उपलब्ध होता है। अतः इतने अंतर के लिए अनुपात करते हैं कि यदि अन्त्यफलज्या तुल्य त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर में बिंब का तीसरा भाग उपलब्ध होता है तो अभीष्ट अन्तर में क्या होगा? त्रिज्या से अल्प कर्ण होने पर इस प्राप्त फल को मध्यम बिंब में युत करने से तथा अधिक होने पर घटाने से स्फुट ग्रह बिंब होता है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में जो ग्रह बिंबमान स्फुट करने का सूत्र दिया है वह भास्करोक्त सूत्र से प्राप्त हो जाता है तथा ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से भास्करोक्त सूत्र प्राप्त किया जा सकता है। यथा ग्रहयुत्यधिकार—

"व्यासार्ध संयुक्तं त्रिगुणान्त्यफलज्ययाऽन्त्यकर्णोनम्।
स्वरदृग्घ्नं स्वदृगंशैर्गुणयाऽन्त्यफलज्यया भक्तम्॥३॥
स्फुटमानकला भूमिजबुधसुरगुरु शुक्र सूर्यपुत्राणाम्।
नाधः स्थयोर्ज्ञसितयोरासन्नत्वाद्रवेरसितम्॥४॥"

$$\text{स्फुटमानकला} = \text{म.बि.} - \frac{\text{म.बिं. (शी.कर्ण} - \text{त्रि)}}{\text{३ अं. फलज्या}}$$; भास्करोक्त सूत्र।

$$= \frac{\text{म.बिं.}}{\text{३ अं. फलज्या}} \text{ (३ अं. फलज्या} + \text{त्रि} - \text{शी.क)}$$

यहाँ मध्यम बिंब कला= $\frac{८१}{\text{कालांश}}$ रखने पर

$$= \frac{८१}{\text{कालांश} \times ३ \times \text{अंफलज्या}} \text{ (३ अं. फ.ज्या} + \text{त्रि} - \text{शी.क)}$$

$$= \frac{\text{२१ (३ अं. फ.ज्या+त्रि – शी.क)}}{\text{अंफलज्या × कालांश}}$$ ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र।

अतः भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से ही अपना सूत्र आगे गणना करके भिन्न रूप में प्रदर्शित किया है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र ही कहा है। यथा—

"त्रिगुणयाऽन्त्य फलोद्भवजीवा समधिकां भुवनत्रयशिञ्जिनीम्।
द्युचरचञ्चलकर्ण विवर्जिता त्रिघन संगुणितां च विभाजयेत्॥
स्वसमयांश हताऽन्त्यफलज्या द्युचर मानकलाः सुपरिस्फुटाः।
न बुधभार्गवयोरासितो रवेर्ध्रुवमधः स्थितयोर्निकटत्वतः॥"

इदानीं युतिकालज्ञानार्थमाह—

**दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघाद्गत्योर्वियोगेन हृताद्यदैकः।
वक्री जवैक्येन दिनैरवाप्तैर्याता तयोः संयुतिरल्पभुक्तौ॥३॥
वक्रेऽथवा न्यूनतरेऽन्यथैष्या द्वयोरनृज्वोर्विपरीतमस्मात्।**

युतिकाल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अभीष्ट दिन के (दो) ग्रहों का अंतर ज्ञात करके उसको उनकी दैनिक गति के अंतर से विभक्त करने से और यदि उनमें से एक वक्रि हो तो उनकी दैनिक गति के योग से विभक्त करने से उनकी युति होने का समय प्राप्त होता है। यदि अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से अल्प (ऊन) हो तो दोनों ग्रहों की युति हो चुकी होती है। यदि दोनों ग्रह वक्रि हो और उनमें से अल्पगति ग्रह दूसरे से (ऊन) अल्प हो तो उनकी युति आगे होगी अन्यथा होने पर युति हो चुकी होती है।

उपपत्ति— यदि दोनों ग्रह एक दिशा में चल रहे हों तो उनकी गति का अंतर उनके प्रतिदिन का अन्तर होता है। यदि एक आगे पूर्व की ओर जाता हो तथा दूसरा दूसरी दिशा में पीछे पश्चिम की ओर जाता हो तो उनकी गति का योग दोनों के बीच प्रतिदिन का अन्तर होगा। अतःउनका अनुपात करते हैं कि यदि एक दिन में दोनों ग्रहों में इतना अंतर होता है तो दोनों ग्रहों की स्थिति की अन्तर कला में कितने दिन होंगे? लब्ध दिन संख्या युति के दिनों की संख्या होगी। यदि अल्पगति ग्रह अथवा वक्रि अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से न्यून हो तो उसका दूसरा ग्रह का अतिक्रम करता हुआ आगे चला गया है। यदि दोनों वक्रि हो तो इससे विपरीत स्थिति होने से वे परस्पर युति करते हैं।

उपरोक्त बात को और स्पष्ट करके बताते हैं। दो ग्रहों की स्थिति के अन्तर की कलाओं को उनकी गति के अन्तर की कलाओं से विभक्त करने से प्राप्त फल दिन संख्या होती है, ऊपर बताये अनुसार। अब यदि अधिक गति वाला ग्रह अल्पगति वाले ग्रह से अधिक (आगे) रहे तो पूर्व गत दिनों में ग्रह युति हो चुकी यह समझना चाहिये। यदि अल्पगति ग्रह अधिक गति ग्रह से अधिक हो तो पूर्व प्रकार से प्राप्त दिवस संख्या में ग्रह युति ऐष्य (होने वाली) समझनी चाहिये। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो विपरीत होता है अर्थात गत युति, ऐष्य होती है तथा ऐष्य युति, गत युति होती है। यदि दोनों ग्रह में एक वक्रि ग्रह दूसरे मार्गी से अल्प हो तो पूर्व प्राप्त दिनों में युति गत (हो चुकी) कहनी चाहिये। यदि यहाँ वक्रिग्रह अधिक (आगे) हो तो युति ऐष्य समझनी चाहिये।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"भुक्त्यन्तरेण भक्तं ग्रहान्तरं फलदिनैरधिक भुक्तो।
प्रागुनगतौ पश्चाद्युतिरधिके वक्रिणोर्व्यस्तम्॥५॥
एको वक्री भुक्त्योर्युत्योनः प्रागथाधिकः पश्चात्।
ग्रहयोरन्तरलिप्तास्तथैव भक्ताः स्वभुक्ति गुणाः॥६॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"भुक्त्यन्तरेण विवरे ग्रहयोर्विभक्ते मार्गस्थयोः
कुटिलयोरपि भिन्नगत्योरित्यादिना।"

अध्याय ११ के श्लोक ११ से १४ का भी अवलोकन करें।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"भुक्त्यन्तरेण विभजेद्ग्रहान्तरं मार्गगौ यदि तौ॥३॥
वक्रस्थौ वाथैको वक्री चेदैक्यकेन लब्धदिनैः।
यातो योगोऽभ्यधिके शैघ्र्यगखेटेऽनृजौ चाल्पे॥४॥
व्यस्तो वक्रस्थितयोर्योगस्तात्कालिकौ च तौ कार्यौ।
तुल्यौ स्यातां दृग्योग्यायोक्तौ दृग्ग्रहो कार्यौ॥५॥
तुल्यौ तो यत्समये तदा युतिर्निश्चितं भवति।$\frac{1}{2}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''निजगतिविवरेण संविभक्ता विवरकलास्त्वनुलोमयोर्दिनानि।
ऋजुगमन विलोम भुक्तियुत्याभ्यधिकगतावधिके युतिर्गतातैः॥७॥
अनधिकगमनेऽधिकेऽथ वक्रिण्यपि चरितान्तरलिप्तका गतिघ्नाः।
गतियुतिविवरोद्धृतास्तथैव स्वफलमृणं स्वमिते गते च योगे॥८॥
धनमृणमथ तद्विलोमगे स्तः समकलिकौ समलिप्तिकाद्विपातात्॥ $\frac{9}{2}$ ॥''

भास्कर प्रथम ने **महाभास्करीय** के छठे अध्याय में आचार्योक्त कहा है।

''ग्रहयोरन्तरं भाज्यं प्रतिलोमानुलोमयोः।
भुक्ति योगेन शेषाणां भोगविश्लेषसंख्यया॥४९॥
दिनादिर्लभ्यते कालो योगिनां योगकारकः।
भुक्तेरनेकरूपत्वात् स्थूल कालोऽत्र गम्यते॥५०॥
समलिप्तौ ततो युक्त्या कुर्यात्तन्त्रस्य वेदिता।
स्वोपदेशाद्गुरोर्नित्यमभ्यासेनापि गम्यते॥५१॥''

सूर्य सिद्धान्त के **ग्रहयुत्यधिकार** में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भविताऽन्यथा।
द्वयोः प्रागयायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात्॥२॥
प्राग्यायीन्यधिकेऽतीतो वक्रिण्येष्यः समागमः।
ग्रहान्तरकलाः स्वस्वभुक्तिलिप्तासमाहताः॥३॥
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोमविलोम योः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन् भुक्तियोगेन भाजयेत्॥४॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति।
विपर्ययाद्वक्रगत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौः॥५॥
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगणसंस्थितौ।
विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादि फलमिष्यते॥६॥''

अथैवं स्थूलकालमानीय सूक्ष्मार्थमाह—

दृक्कर्म कृत्वायनमेव भूयः साध्येति तात्कालिकयोर्युतिर्यत्॥४॥
एवं कृते दिविचरौ ध्रुवसूत्रसंस्थौ स्यातां तदा वियति सैव युतिर्निरुक्ता।
दृक्कर्मणायनभवेन न संस्कृतौ चेत् सूत्रे तदा त्वमपवृत्तजयाम्यसौम्ये॥५॥

अब स्थूल कालमान से सूक्ष्मकाल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से जिस दिन स्थूल रूप से ग्रह युति

का दिन प्राप्त हो उस दिन पुनः मध्यम स्फुट ग्रह स्पष्ट करके शर ज्ञात करके अयन दक्कर्म करके उपरोक्त श्लोक ३ में कथित प्रकार से उनकी युति साधन करे। यह स्फुट युतिकाल होता है। इस प्रकार करने से ग्रह युतिकाल में ध्रुवसूत्र पर स्थित होता है अर्थात् ध्रुव से एक ग्रह के ऊपर से होकर जाता हुआ सूत्र दूसरे ग्रह के ऊपर से होकर भी जाता है। इस प्रकार अयन दृक्कर्म से उनकी युति होती है और यदि अयन दृक्कर्म नहीं करे तो ग्रहयुति, क्रांतिवृत्त सूत्र पर होती है अर्थात कदम्ब से होकर जाने वाले सूत्र पर दोनों ग्रह स्थित होते हैं। कदम्ब सूत्र युति की प्रसिद्धि नहीं है क्योंकि इसके कारण दृष्टा को युति की प्रतिती नहीं होती अतः ध्रुव सूत्र युति ही कही गई है। आकाश में जब अल्प अंतर पर युति दिखाई देती है तब वह प्रायः कदम्बसूत्रस्थ होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''अन्तरयोगो तुल्यान्यदिशोर्विक्षेपयोर्ग्रहान्तरकम्।
आर्यभटादिष्वेवं समलिप्तिकयोर्युतिर्ग्रहयोः।।११।।''

इस श्लोक में उक्त युति गोलयुक्ति से एक कदम्ब प्रोतवृत्त में दो ग्रहों के रहने से सिद्ध होती है। इस युक्ति की असमीचीनता को तथा स्व सम्मत सम सूत्र युति को आचार्य ने आगे कहा है। कदम्ब प्रोतवृत्तीय युति ठीक नहीं है यह बात दृष्टान्त द्वारा निरुपित की गई है। यथा–

''चित्रा स्वातिवदुदये यथाऽन्यथा ऽस्ते तथा युतौग्रहयोः।
न भवति दृग्गणितैक्यं यथा तदैक्यं तदुक्तिरतः।।१२।।''

सूर्यसिद्धान्त में भी ग्रह युति साधन के लिए दृक्कर्म साधन के लिए कहा गया है।

''नक्षत्रग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने।
श्रृंगोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम्।।११।।
तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपो च ततस्तयोः।
दिक्तुल्येत्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम्।।१२।।''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''अन्तरे महति दक्षिणोत्तरे प्राचि तुल्यकलयोः समागमः।
अन्यथा भवति पश्चिमेऽन्यथा दृष्टिकर्मगणितैक्यकार्यतः।।१४।।''

अथ दक्षिणोत्तरान्तरज्ञानार्थमाह—

एवं लब्धैर्ग्रहयुतिदिनैश्चालितौ तौ समौ स्त-
स्ताभ्यां सूर्यग्रहणवदिषू संस्कृतौ स्वस्वनत्या।
तौ च स्पष्टौ तदनु विशिखौ पूर्ववत् संविधेयौ
दिक्साम्ये या वियुतिरनयोः संयुतिर्भिन्नदिक्त्वे।।६।।
याम्योदक्स्थद्युचरविवरं ज्ञेयमत्रेषुदिक्स्थौ
खेटौ यः स्याल्लघुतरशरः सोऽन्यदिक् तुल्यदिक्त्वे।

दक्षिणोत्तरअन्तर ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ग्रहयुति काल दिवस ज्ञात करके असकृत प्रकार से उनको तात्कालिक बना कर उन ग्रहों की समलिप्तिक स्थिति ज्ञात करे। फिर उनमें सूर्यग्रहण वत् नति का संस्कार करके उनके शर यदि एक दिशा में हो तो अंतर करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से ग्रह का याम्योत्तर अन्तर प्राप्त होता है। यदि दोनों शर उत्तर अथवा दक्षिण हो तो अल्प शर वाला ग्रह दूसरे ग्रह के शर की दिशा से विपरीत दिशा में होता है।

उपपत्ति— पूर्वानुसार।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने ग्रहयुत्याधिकार अध्याय महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शशिबाणो निजनत्या संस्कार्योऽन्ये यथागताः स्पष्टाः।।६।।
निज दिक्स्थो द्युचरोऽन्याशोऽल्पशरो यदैकदिग्बाणौ।
एकदिगिष्वोर्विवरं भिन्नदिशोः संयुतिः कार्याः।।७।।"

सूर्यसिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ च ततस्तयोः।
दिक्तुल्येत्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम्।।१२।।"

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में ब्रह्मगुप्त ने आचार्योक्त कहा है—

"अन्तरयोगौ तुल्यान्यदिशोर्विक्षेपयोर्ग्रहान्तरकम्।
आर्यभटादिष्वेवं समलिप्तिकयोर्युतिर्ग्रहयोः।।११।।"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ११ श्लोक १८—

"समदिगन्यदिशोः शरयोः क्रमात् वियुतिरैक्यमिह द्युचरान्तरम्।
इति युति कथिताऽऽर्यभटादिभिः सदृशलिप्तिकयोर्गगनौकसौः।।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"निजमध्यमबाणसङ्गुणाभुजजीवा कुखगान्तरोद्धृता।
स शरो भवति स्फुटो रविग्रहणोक्त्या नतिसंस्कृतो विधोः॥१०॥
स्वस्वबाणदिशि भिन्नगोलयोः क्षेपयोश्च भवतौ नभश्चरौ।
यस्य तुल्यककुयोर्लघुः शरो जायतेऽन्यदिशि सोऽपर ग्रहात॥१२॥"
समये समलिप्तयोर्भवेदुदयो यस्य च तुल्यलिप्तयोः।
उदयास्तमयेन येन तद्भेदे पर्वबिलम्बनाद्यतः॥१३॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भिन्नदिक्कौ तु विक्षेपौ युक्तावन्तरमिष्टयोः।
तुल्यदिक्को विशेषेण विधाद्विवरलिप्तिकाः॥५४॥"

लघुभास्करीय में भास्कर प्रथम ने अध्याय ७ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विक्षेपलिप्तिका लब्धास्ताभिरन्तरमिष्टयोः।
एकदिक्त्वे विशिष्टाभिर्युक्तार्भिन्नदिक्कयोः॥६॥"

इदानीं भेदयोगलम्बनज्ञानार्थमाह—

मानैक्यार्धाद्द्युचरविवरेऽल्पे भवेद्भेदयोगः
कार्यं सूर्यग्रहवदखिलं लम्बनाद्यं स्फुटार्थम्॥७॥
कल्प्योऽधःस्थः सुधांशुस्तदुपरिग इनो लम्बनादिप्रसिद्ध्यै
किंत्वर्कादिव लग्नं ग्रहयुतिसमये कल्पितार्कात्र साध्यम्।
प्राग्वत् तल्लम्बनेन ग्रहयुतिसमयः संस्कृतः प्रस्फुटः स्यात्
खेटौ तौ दृष्टियोग्यौ यदि युतिसमये कार्यमेवं तदैव॥८॥
याम्योदक्स्थद्युचरविवरं भेदयोगे स बाणो
ज्ञेयः सूर्याद्भवति स यतः शीतगुः सा शराशा।
मन्दाक्रान्तोऽनृजुरपि यदाधः स्थितः स्यात् तदैन्द्र्यां
स्पर्शो मोक्षोऽपरदिशि तदा पारिलेख्येऽवगम्यः॥९॥

भेदयोग लम्बन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि दो ग्रहों का याम्योत्तर अन्तर उनके मानैक्यार्ध से अल्प हो तो उनकी भेदयुति होती है। जिस प्रकार सूर्य-चंद्र ग्रहों का ग्रहण

होता है उसी प्रकार इनके अतिरिक्त ग्रहों के ग्रहण को भेद युति कहते हैं। भेदयुति के लिए भी लंबन साधन किया जाता है। इसके लिए जो ग्रह नीचे स्थित होता है उसको चंद्रमा माना जाता है तथा जो ऊर्ध्वस्थित होता है उसको सूर्य माना जाता है। किन्तु वित्रिभ लग्न साधन के लिए जो लग्न साधन किया जाता है वह वास्तविक सूर्य से ही ज्ञात किया जाता है इस कल्पित सूर्य से नहीं किया जाता। सूर्य से लग्न ग्रह युति के समय का ज्ञात करते हैं। पूर्व प्रकार से इससे लंबन तथा नति का साधन करे। लंबन से ग्रहयुति काल को संस्कारित करके स्पष्ट युतिकाल ज्ञात करे, यदि भेद युति दृष्टियोग्य हो अर्थात् क्षितिज के ऊपर हो। भेद युति में ग्रह का याम्योत्तर अन्तर जो बाण (शर) है वह सूर्य ग्रहण में चंद्रमा के शर के समान है।

इस शर की दिशा कल्पित सूर्य से कल्पित चन्द्रमा जिस दिशा में होता है वही होती है अर्थात् पृथ्वी के आसन्न स्थित ग्रह, दूरस्थ दूसरे ग्रह से जिस दिशा में होता है वही होती है। यदि नीचे स्थित ग्रह जिसको चंद्रमा माना है वह वक्रि हो अथवा उसकी अल्प भुक्ति हो तो दूसरा उच्चस्थ ग्रह की उससे भेद युति उसके पूर्व दिशा की और से स्पर्श तथा पश्चिम की ओर से मोक्ष होता है। यह उसके परिलेखन कर्म के लिए विशेष बात कही गई है। यदि उपरोक्त से अन्यथा स्थिति हो तो पश्चिम से स्पर्श तथा पूर्व में मोक्ष होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''तत् खेटमण्डलान्तरमल्पं मानैक्यखण्डतस्तच्चेत्।
भेदयुतिर्लम्बनकं भानुग्रहवत् तदा कुर्याद्॥८॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''क्षेपयोर्वियुतिरेकगोलयोर्या च भिन्नककुभोर्भवेद् युतिः।
अन्तरं तदुभयोः प्रकीर्तितं तद्दलैक्यलघुभेदकारकम॥११॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''एवं मानैक्यार्धादधिके मध्यान्तरे न युतिर्ग्रहयोः।
स्थित्यर्धविमर्ददले हीने ताराग्रहोडुयुतौ॥१९॥
लम्बनमर्क ग्रहणवदसकृत स्वावनतिलिप्तिकास्पष्टौ।
तात्कालिकविक्षेपौ तदन्तरैक्यं समान्यदिशोः॥२०॥

विक्षेपो मध्यान्तरमूर्ध्वस्यच्छादको ग्रहोऽधस्थः।
मानैक्यार्धादधिके नातिस्पष्टा स्फुटोक्तिरतः॥२१॥
ग्राह्यग्राहकलम्बनाख्यकलिका विश्लेषिता लम्बना।
एवं चावनति पुराविगणिता लिप्तास्तु षष्ट्या हृताः॥२३॥
ऋज्वोर्वक्रगयोश्च भुक्तिविवरेणाप्ता घटीपूर्वकं।
वक्रावक्रगयोर्जवैक्यविहृतास्तज्जायते लम्बनम्॥२४॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''मानैक्यार्धाद् द्युचर विवरे स्यान्न भेदोऽधिके
तू न्यूने भेदो ग्रहणवदिहच्छादकोऽधस्तनः स्यात्।
साध्यलग्नं युतिसमयतो वित्रिभं तद् विधाय कार्याः
सूर्यग्रहणवदखिला लम्बनार्थाः क्रियाश्च॥''

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के ग्रहयुत्यधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

अथ भग्रहयुत्यधिकारः

अथ भग्रहयुतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ भध्रुवकानाह—

अष्टौ नखा गजगुणाः खशरास्त्रिषट्काः सप्तर्तवस्त्रिनव चाङ्गदिशोऽष्टकाष्ठाः।
गोऽर्कास्तथाद्रिमनवः शरबाणचन्द्राः खात्यष्टयस्त्रिधृतयो नवनन्दचन्द्राः ॥१॥
अर्काश्विनो जिनयमा नवबाहुदस्राः क्वब्ध्यश्विनो जलधितत्त्वमिताश्च भागाः।
षष्ट्यश्विनश्च पवनोत्कृतयोऽष्टभानि खाङ्काश्विनो नखगुणा रसदन्तसंख्याः ॥२॥
सप्तामराः खमिति भध्रुवका निरुक्ता दृक्कर्मणायनभवेन सहाश्विधिष्ण्यात्।
ब्रह्माग्निभध्रुवलवा रदलिप्तिकोना मैत्रेन्द्रयोर्द्व्यधिपभस्य च सेषुलिप्ताः ॥३॥

नक्षत्रों के ध्रुवक—

सूर्य-प्रभा टीका— अभिजीत नक्षत्र सहित नक्षत्रों के ध्रुवाँक उपरोक्त श्लोक में अधोलिखित सारिणी अनुसार आचार्य ने कहे हैं। यथा-

अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आ.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.
०	०	१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६
८	२०	७	१९	३	७	३	१६	१८	९	२७	५	२०	३
०	०	२८	२८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

स्व.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	अ.	श्र.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
६	७	७	७	८	८	८	८	९	९	१०	१०	११	०
१९	२	१४	१९	१	१४	२०	२५	८	२०	२०	२६	७	०
०	५	५	५	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

ये राशि, अंश, कलादि हैं।

आचार्य ने ये नक्षत्र ध्रुवाँक अयन दृक्कर्मसंस्कारित कहे हैं। कृत्तिका तथा रोहिणी नक्षत्र ३२ कला अल्प हैं और विशाखा,अनुराधा व ज्येष्ठा नक्षत्र ध्रुवाँक ५ कला अधिक कहे गये हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ध्रुवाँक ही कहे हैं। यथा—

"अष्टनखैर्मेषे गविरदलिप्तोनैर्गुणस्वरैर्मियुते।
कर्कटने गुणषोडशधृतिभिः सिंहे नवत्रिघनैः ॥१॥
कन्यायां पञ्चनखैस्तुलिनि त्रयतिधृतिभिरलिनि सेषुकलैः।
द्विचतुर्दशातिधृतिभिर्धनुषि शशांकमनुनखतत्त्वैः ॥२॥
मकरेऽष्टनखैः कुम्भे नखषड्विंशैर्झषे मुनित्रिंशेः।
पृथगश्विन्यादीनां ध्रुवकांशैर्योगतारास्थैः ॥३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही ध्रुवाँक कहे हैं।

सूर्यसिद्धान्त के नक्षत्रग्रह युत्यधिकार में श्लोक १ से ६ तक प्रकार से जो नक्षत्र ध्रुवाँक विधि कही है उनमें तथा भास्करोक्त ध्रुवाँको में कुछ अंतर आता है। लेकिन अधिक आसन्न हैं।

अथ भानां शरांशानाह—

दिशोऽर्काक्ष सार्धाब्धयः सार्धवेदा दशेशा रसाः खं स्वराः खं च सूर्याः।
त्रिचन्द्राः कुचन्द्रा विपादौ च दस्रौ तुरङ्गाग्नयः सत्रिभागं च रूपम् ॥४॥
विपादं द्वयं सार्थरामाश्च सार्धा गजाः सत्रिभागेषवो मार्गणाश्च।
द्विषष्टिः खरामाश्च षड्वर्गसंख्यास्त्रिभागो जिना उत्कृतिः खं च भानाम् ॥५॥
निरुक्ताः स्फुटा योगताराशरांशास्त्रयं ब्रह्मधिष्ण्याद्विशाखादिषट्कम्।
करो वारुणं त्वाष्ट्रभं सार्पमेषां शरा दक्षिणा उत्तराः शेषभानाम् ॥६॥

नक्षत्र शरमान—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने नक्षत्रों के निम्नलिखित शर दिशा सहित पठित किये हैं।

अश्विनि	१०° – ०	उत्तर	स्वा.	३७° – ००'	उ.
भ.	१२° – ०'	उत्तर	वि.	१° – २०'	द.
कृ.	४° – ३०'	उ.	अ.	१° – ४५'	द.
रो.	४° – ३०'	दक्षिण	ज्ये.	३° – ३०	द.
मृ.	१०° – ०'	द.	मू.	८° – ३०'	द.
आ.	११° – ०'	द.	पू.	५° – २०'	द.
पु.	६° – ०'	उ.	उ.	५° – ०'	द.
पु.	०° – ०'	उ.	अ.	६२° – ०'	उ.
आ.	७° – ०'	द.	श्र.	३०° – ०'	उ.
म.	०° – ०'	उ.	ध	३६° – ०'	उ.

पू.	१२° –०'	उ.	श.	०° – २०'	द.
उ.	१३° –०'	उ.	पू.	२४° – ०'	उ.
ह.	११° – ०'	द.	उ.	२६° – ०'	उ.
चि.	१° – ४६'	द.	रे.	०° – ०'	उ.

उपपत्ति— गोल बन्धोक्त विधि से एक बड़ा गोलयन्त्र बनावे। उसमें भगोल का आधार वृत्त विषुवद्वृत्त बनावे तथा क्रांति वृत्त पर ३६०° भगणांश अंकित करे। फिर उस गोल यंत्र को ठीक उत्तर-दक्षिण ध्रुवाभिमुख यष्टि पर जल से समान की हुई क्षितिज वृत्त जिस प्रकार हो उसके अनुसार स्थिर करके रात्रि में गोल केंद्रगत दृष्टि से रेवती तारा को देखकर क्रांतिवृत्त में मीनान्त बिन्दु को रेवती तारा निश्चित करके केंद्रगत दृष्टि से ही अश्विन प्रथमनक्षत्र के योगतारा को देखकर उस पर वेध वलय निवेश करे। इस प्रकार करने से वेधवलय का क्रांतिवृत्त से जो संपात है वह मीनांत से आगे जितने अंतर पर है वह तारा का ध्रुवांश होता है। अब वेधवलय का जहाँ संपात होता है वहाँ से योगतारा जितने अंतर पर है उतना शरांश उत्तर-दक्षिण होता है। यहाँ जो ध्रुवांश पठित किये गये हैं वे दृक्कर्म किये हुए हैं। ये जो शरांश पठित किये हैं, ये भी स्फुट हैं। जो दोनों ध्रुवों को कीलता हुआ प्रोत वृत्त है वह वेधवलय है। उस वेधवलय से जो शर ज्ञात करते हैं वह ध्रुवाभिमुख है। यही ध्रुवाभिमुख शर स्फुट शर है। जो कदम्बाभिमुख है वह अस्फुट है। अतएव पूर्व में भगणोत्पत्ति कथन में ग्रहवेधवलय में कदम्ब प्रोत (वृत्त) करने के लिए कहा है। इस कारण से दृक्कर्म करके ये नक्षत्र ध्रुवाँक कहे हैं। जहाँ ध्रुव से ग्रह के ऊपर से होकर जाने वाला सूत्र जहाँ क्रांतिवृत्त में लगता है वहाँ अयन दृक्कर्म कृत ग्रह होता है।
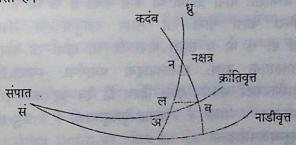
आचार्य का कथन चित्र से स्पष्ट है। सं ब = ध्रुवक है तथा न ब = अस्फुट शर है। सं.अ = ध्रुवांश है तथा न अ = ध्रुवप्रोत स्फुट शर है। अ ब =

अयन दृक्कर्म संस्कार है। ग्रहच्छायाधिकार के श्लोक ३ में आचार्य द्वारा कहे अनुसार न ल = स्फुट शर है जब कि यहाँ न अ को स्फुट शर कहा है। इस बात की ओर आचार्य ने यहाँ ध्यान आकर्षित किया है। आचार्य ने कहा है कि इस अंतर के लिए उन्होंने दृक्कर्म कृत ध्रुवांकादि यहाँ कहे हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में नक्षत्रों के आचार्योक्त शर ही पठित किये हैं। भास्कराचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त शरांशों में कृत्तिका, विशाखा तथा अनुराधा के शरांसों में थोडी कलाओं का अंतर है। यथा—

"सौम्या दशार्कविषया याम्याः शरदशभवा रसाः सौम्याः।
खं सप्तदक्षिणाः खं सौम्याः सूर्यत्रयोदशकाः॥५॥
दक्षिणातो भवयमलाः सप्तत्रिंशदुदगंशका याम्या।
अध्यर्धत्रिचतुष्कार्धनवमसत्र्यंशविषयशराः॥६॥
सौम्या द्वयधिका षष्टिस्त्रिंशत् षट्त्रिंशदितरलिप्ताः।
अष्टादशोत्तरा जिनषट्विंशत्यम्बराण्यंशाः॥७॥
प्राजेशयोगतारा विक्षेपांशैः कला त्रिघनहीनैः।
आग्नेयस्य कला नामेकोनत्रिंशता हीनैः॥८॥
पञ्चदश कला हीनैश्चित्रायाः सप्तभिर्विशाखायाः।
षट्सप्तत्या मैत्रस्यैन्द्रस्य त्रिंशता हीनैः॥९॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त शरांश ही कहे हैं।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में नक्षत्र शरांश आचार्य के बहुत आसन्न कहे हैं। आर्यभट ने ३०' को पूर्ण अंश मान लिया है। यथा—

"बाणांशाः पीना प्रा मा मा केना कका त ना सा ना।
योला केला पीना खा लासा दलयुता पा च॥६॥
गा ढा ध मा म ताला गोना ग्ता ना खभा रत ना।
शततारायां बाणः खनलिप्ताद्यो भमार्गणाः स्पष्टाः॥७॥
वारुण सार्प भकत्रय हस्त द्वितय द्वि दैव षट् कानाम्।
याम्या बाणा भानामन्येषामुत्तराशाः स्युः॥८॥"

अथागस्त्यलुब्धकयोराह—

अगस्त्यध्रुवः सप्तनागास्तु भागास्तुरङ्गाद्रयस्तस्य याम्याः शरांशाः।
षडष्टौ लवा लुब्धकस्य ध्रुवोऽयं नभोऽम्भोधिभागाः शरस्तस्य याम्यः॥७॥

अगस्त्य तथा लुब्धक ध्रुवांश तथा शर--

सूर्य-प्रभा टीका— अगस्त्य के ध्रुवांश ८७° तथा दक्षिण शरांश ७७° है। लुब्धक के ध्रुवांश ८६° तथा शरांश ४०° दक्षिण हैं।

उपपत्ति— पूर्ववत।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने अगस्त्य तारा के ध्रुवांश तथा शर आचार्योक्त ही कहा है। यथा **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** भग्रहयुत्यधिकार—

''विक्षेप्तो दक्षिणतस्तत् क्रान्तेर्भागसप्तसप्तत्या।
मिथुनस्य सप्तविंशे भागेऽगस्त्यो नतैर्भागैः ॥३५॥''

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त शर ही अगस्त्य के कहे हैं। यथा–

''नक्षत्रांशैः संयुतं राशियुग्मं ८७° लोपा मुद्रावल्लभस्य ध्रुवः स्यात्।
शैलाभ्यस्तै रुद्रतुल्यैश्च भागैः विक्षिप्तोऽयं दक्षिणे स्वापमाग्रात्॥''

सूर्य सिद्धान्त के नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकार में कहा गया है कि अश्विन्यादि नक्षत्रों तथा अगस्त्यादि ताराओं के ध्रुवक और शर की गोल रचना कर के गणक वेध द्वारा इनकी परीक्षा करे। क्योंकि ये पाठ पठित ध्रुवक एवं शर ग्रंथ निर्माण काल के हैं। कालान्तर में वेधोपलब्ध ही लेने चाहिये। यथा–

''गोल बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम्॥१२''

अन्य ग्रंथकारों ने अपने-अपने वेध से प्राप्त ध्रुवक एवं शर कहे हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में लुब्धक तारा के ध्रुवक व शर आचार्योक्त कहे हैं। यथा–

''षड्विंशे मिथुनांशेंऽशक चत्वारिंशता मृगव्याधः।
तत्क्रान्तेर्दक्षिणतो विक्षिप्तोऽगस्त्यवच्छेषम्॥४०॥''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही लुब्धक के ध्रुवक तथा शर कहे हैं। यथा–

''उत्कृत्यांशैर्लुब्धको वैणिकर्क्षे विक्षिप्तोंऽशैर्दक्षिणे चाभ्रवेदैः।''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रयोगाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। लेकिन अगस्त्य का दक्षिण शर ८०° कहा है। ये सब वेधोक्त हैं। यथा–

''अगस्त्यनामा मिथुनेंऽशकैस्त्रिभिर्विवर्जिते योगमुपैति खेचरैः॥७॥

चतुर्भिरंशैर्मृगयुर्विवर्जितैस्त्रिभिश्च भागैरभिजिच्च कार्मुकैः।
क्रमाच्छरांशा खगजाः खसागरा यमस्य दिश्युत्तरतः कृतर्तव॥८॥''

अथेष्टघटिका आह—

अगस्त्यस्य नाडीद्वयं प्रोक्तमिष्टं सषड्भागनाडीद्वयं लुब्धकस्य।
त्रिभागाधिकं स्थूलभानामणूनां ततश्चाधिकं तारतम्येन कल्प्यम्॥८॥

इष्ट घटियाँ—

सूर्य-प्रभा टीका— अगस्त्य की इष्ट नाडी दो कही गई हैं तथा लुब्धक की २$\frac{१}{६}$ नाडी कही गई हैं। इनसे अधिक स्थूल ताराओं की २$\frac{१}{३}$ नाडी होती है और इनसे अधिक स्थूल ताराओं के लिए तारतम्य से कल्पित करे।

उपपत्ति— इष्टनाडी सूर्य तथा इष्ट तारा के उदय के मध्य का समयांतर होता है। अगस्त्य की इष्टनाडी दो कही हैं अतः उसका कालांश १२ होता है। लुब्धक की इष्टनाडी २$\frac{१}{६}$ से कालांश १३ होता है। जिनकी इष्टनाडी २$\frac{१}{३}$ है उनके कालांश १४ हैं। इनसे अधिक के १५ कालांश आदि मानें। स्थूलतारा सूर्योदय से अल्प कालान्तर में उदित होता है। अतः ग्रह व ताराओं के कालांश स्थूल सूक्ष्मता के अनुसार तारतम्य से होते हैं। सूक्ष्म तारा सूर्योदय से अधिक कालांतर के उदित होते हैं। ६ अंश की एक नाडी होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''नवतेरुनैर्दृश्यो घटिकाद्वितयेन तदुदयविलग्नम्।
उदयैरधिकं कृत्वातदुदय सूर्योऽस्तमय लग्नम्॥३६॥
षडभयुतमूनमुदयेः षड्राशियुतं तदस्तमय सूर्यः।
घटिका द्वितयेनैवं षड्भागयुतेन मृगहर्त्तुः॥३७॥
एवं नक्षत्राणां घटिका द्वितयेन सत्रिभागेन।
उदयार्कोऽस्तमयार्काद्यस्योनस्तत् सदा दृश्यम्॥३८॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त इष्टघटी कही है। यथा—

''घटिका द्वितयेनैव षड्भागयुतेन मृगहर्त्तु।
षडदलाढये च नाडयौ शेषंकर्मागस्त्यवत् तस्य सर्वम्।''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रह योगाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्र्यंशान्वितं तु घटिकाद्वितयं तदिष्टं षड्भागयुङ्मृगरिपोर्घटजस्य युग्मम्॥१६॥"

भग्रहयुतौ पूर्वकर्तव्यतामाह—

विधेयमायनं ग्रहे स्वदृष्टिकर्म पूर्ववत्।
स्फुटश्च खेटसायको ग्रहर्क्षयोगसिद्धये॥९॥

नक्षत्रग्रह युति पूर्व कर्तव्य कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ग्रह में अयन दृक्कर्म करके युति काल ज्ञात करे। नक्षत्रों के ध्रुवों में दृक्कर्म करके उनके शर स्फुट करे। इस प्रकार ध्रुव प्रोत वृत्तीय ग्रह तथा तारा ज्ञात करे।

विशेष— **सूर्य सिद्धान्त के नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार में** आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ग्रहवद द्युनिशे भानां कुर्याद् दृक्कर्म पूर्ववत्।
ग्रहमेलकवच्छेशं ग्रहभुक्त्या दिनानि च॥१४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कृत्वापि दृष्टिकर्म श्रीषेणार्यभटविष्णुचन्द्रोक्तम्।
प्रतिदिनमुदयेऽस्ते वा न भवति दृग्गणितयोरैक्यम्॥१३॥
भमुनि मृगव्याधानां यतंस्ततो दृष्टिकर्म वक्ष्यामि।
दृग्गणितसमं देयं शिष्याय चिरोषितायेदम्॥१४॥"

अथ युतिकालज्ञानार्थमाह—

ग्रहध्रुवान्तरे कला नभोगभुक्तिभाजिताः।
गतागताप्तवासरैर्युतिर्ग्रहेऽधिकोनके॥१०॥
विलोमगे नभश्चरे गतैष्यताविपर्ययः।
ग्रहर्क्षदक्षिणोत्तरान्तरं नभोगयोगवत्॥११॥

युतिकाल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस नक्षत्र की ग्रह से युति ज्ञात करनी हो उसके ध्रुव तथा ग्रह की अन्तर कला में ग्रह भुक्ति से भाग देने से प्राप्त लब्धि युति के गत दिन होते हैं, यदि ध्रुव से ग्रह अधिक हो। यदि अल्प हो तो युति होना शेष होता है। यदि ग्रह वक्रि हो तो गत एवं ऐष्य युति विपरीत होती है। ग्रह तथा नक्षत्र का दक्षिणोत्तर अन्तर के अनुसार उनकी युति होती है।

उपपत्ति— नक्षत्रध्रुव की गति शून्य मानकर ग्रह की एक दिन की

गतिकला से भाग देने से जो समय प्राप्त होता है उसका आनयन यहाँ किया गया है। यहाँ यह सब ग्रह युति असकृत प्रकार से करना चाहिये।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः।
विपर्ययाद् वक्रगते ग्रहे ज्ञेयः समागमः॥१५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कृतदृक्फले ध्रुवकादूने वक्रग्रहे गतो योगः।
गम्योऽधिकेऽन्यथा स्यादृजुगे दिवसादिकं च खगगत्या॥६॥"

अथ युतिप्रसङ्गेन भानामुदयास्तकालमाह—

दृक्कर्मणा पलभवेन तु केवलेन भानां मुनेर्मृगरिपोरुदयास्तलग्ने।
कृत्वा तयोरुदयलग्नमिनं प्रकल्प्य लग्नं ततो निजनिजे पठितेष्टकाले॥१२॥
यत् स्यादसावुदयभानुरथास्तलग्नाद्व्यस्तं विभार्धमपि लग्नकमस्तसूर्यः।
इष्टोनषष्टि ६० घटिकास्वथ वास्तलग्नल्लग्नं क्रमेण भदलोनितमस्तसूर्यः॥१३॥
स्यादुद्गमो निजनिजोदयभानुतुल्ये सूर्येऽस्तभास्करसमेऽस्तमयश्च भानाम्।
अत्राधिकोनकलिका रविभुक्तिभक्ता यातैष्यवासरमितिश्च तदन्तरे स्यात्॥१४॥

युति प्रसङ्ग में नक्षत्रों के उदयास्त काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अगस्त्य तथा लब्धक के उदयास्त लग्न केवल अक्ष-दृक्कर्म करके ज्ञात करे। क्योंकि नक्षत्रों के ध्रुवों में अयन दृक्कर्म पहले से ही किये जा चुके हैं अतः दुबारा न करे। उदय लग्न को सूर्य मान कर पूर्वोक्त पठित इष्ट काल नाडी का लग्न साधन करे। यह साधित लग्न उदयसूर्य होता है (अर्थात् तारा के उदय के समय सूर्य की स्थिति है) जब तारा उदित होता है। अब अस्तलग्न साधित करके उसको सूर्य मान कर अपने-अपने पूर्वोक्त इष्टनाडी काल के विलोम लग्न (विपरीत दिशा में) साधन करे। इसमें से (१८०°) छः राशि घटाने से अस्त सूर्य प्राप्त होता है, अथवा इष्ट घटी को ६० घटी में घटा कर अस्त लग्न प्रकार से लग्न साधित करके उसमें से छः राशि घटाने से अस्त सूर्य प्राप्त होता है जब तारा अस्त होता है। जब उदय सूर्य के तुल्य सूर्य होता है तब नक्षत्र का उदय होता है और जब अस्त सूर्य के तुल्य सूर्य होता है तब नक्षत्र अस्त होता है। सूर्य तथा उदयऽर्क अथवा अस्तऽर्क के

अन्तर को सूर्य की दैनिक भुक्ति से विभक्त करने से अगस्तोदयास्त के गत अथवा गम्यदिन प्राप्त होते हैं। यदि उदयऽर्क अधिक हो तो ऐष्य दिन होते हैं और यदि अल्प हों तो गत होते हैं।

उपपत्ति— पूर्व कथित प्रकार से उदयास्त लग्न साधन करे। उदय लग्न पर नक्षत्र उदय होता है उस उदय लग्न के समान यदि रवि हो तो रवि के साथ नक्षत्र भी उदित होता है। उस उदय से, पूर्व पठित घटियों के तुल्य काल तक नक्षत्र रवि की प्रभा से आहत होने से क्षितिज के ऊपर स्थित होकर भी दिखाई नहीं देता है। पठित इष्टकाल पर क्रमलग्न जिस स्थान पर होता है वही रवि उदयऽर्क तुल्य होता है तथा अस्त सूर्य के बाद दृश्य घटी तुल्य काल में नक्षत्रास्त लग्न का अस्त होता है। कल्पना करते हैं कि नक्षत्रोदय लग्न के उदय के बाद द्विगुणित दृश्य घटी से अधिक काल में सषड्भास्तलग्न का उदय है, नक्षत्रोदय लग्न और उदयार्क के मध्य में रवि है तब पूर्व क्षितिज में नक्षत्रोदयानन्तर दृष्य घटी से अल्पकाल में अर्कोदय से पूर्व क्षितिज में नक्षत्र दर्शन का अभाव होता है। नक्षत्र बिंबोदय के बाद दृश्य घटी तुल्य काल में उसके उदयार्क चिन्ह का उदय होता है। सषड्भास्त लग्न के उदय से पहले दृश्य घटी तुल्यकाल में सषड्भास्त सूर्य चिन्ह का उदय होता है। इसलिए उदयार्क से सषड्भार्क अधिक तथा आचार्योक्त अस्तसूर्य उदयार्क से अल्प है, यह स्थिति है। इस स्थिति से पूर्व क्षितिज में दर्शनाभाव है, परन्तु पश्चिम क्षितिज में सूर्यास्त के बाद उदयसूर्य चिन्ह का उसके बाद अस्त सूर्य चिन्ह का, उसके बाद अस्त लग्न का अर्थात् नक्षत्र बिम्ब का अस्तमय होता है। इसलिए पश्चिम क्षितिज में नक्षत्र बिंब का दर्शन होता है एवं यदि पश्चिम क्षितिज में नक्षत्रास्त सूर्य और अस्तलग्न के मध्य में सूर्य के रहने के कारण नक्षत्र बिम्ब दर्शनाभाव हो तो उसी दिन में पूर्वक्षितिज में रात्रिशेष में नक्षत्र बिंब दर्शन होता है। इसलिए इस तरह की स्थिति में रवि सान्निध्यवश से नक्षत्र बिंब का अदृश्यत्व नहीं होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''नवतेरुनैर्दृश्यो घटिकाद्वितयेन तदुदयविलग्नम्।
उदयैरधिकं कृत्वा तदुदयसूर्योऽस्तमयलग्नम्॥३६॥
षड्भयुतमूनमुदयैः षड्राशियुतं तदस्तमयसूर्यः।
घटिकाद्वितयेनैवं षड्भागयुतने मृगहर्त्तुः॥३७॥

एवं नक्षत्राणां घटिका द्वितयेन सत्रिभागेन।
उदयार्कोऽस्तमयार्काद्यस्योनस्तत् सदा दृश्यम्॥३८॥
उदयास्तसूर्यान्तरे रवौ दृश्यतेऽन्यथाऽस्तमितम्।
ऊनाधिका रविकला रविभुक्तया भाजिता दिवसाः॥३९॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रहयोगाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''उदयलग्नमभीष्टफलाधिकं भवति यस्य समं पटुरश्मिना।
सममुदेति विभार्धमपीतरद्विफलमस्तमुपैति च यस्य सः॥१७॥
उदयास्तमयार्कमध्यगेऽर्के दृश्यः स्याद् ध्रुवकः स्फुटोपमश्चेत्।
फलहीन युतोऽन्यतुल्य दिक्स्थो लघुतामेति गृहत्रयांशकेभ्यः॥१८॥''

अथ विशेषमाह—

यस्योदयार्कादधिकोऽस्तभानुः प्रजायते सौम्यशरातिदैर्घ्यात्।
तिग्मांशुसान्निध्यवशेन नास्ति धिष्ण्यस्य तस्यास्तमयः कथञ्चित्॥१५॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि नक्षत्र का उदयार्क से अस्तार्क दीर्घ उत्तर शर के कारण अधिक हो तो नक्षत्र सूर्य के सान्निध्य के कारण अस्त नहीं होता।

उपपत्ति— जिस नक्षत्र का उत्तर शर दीर्घ होगा उसका पलोद्भव असु अधिक होगा। उससे विलोम लग्न ज्ञात करने से उदयलग्न अल्प होता है तथा अस्तलग्न अधिक होता है जिनसे उदयऽर्क व अस्तऽर्क साधित करने से अस्तऽर्क न्यून होता है। अस्तऽर्क के समान (तुल्य) रवि होने पर नक्षत्र अस्त होना आरंभ करता है और दिन में अन्य समय दृश्य रहते हुए उदयऽर्क के समान (तुल्य) रवि के रहने से वह नक्षत्र उदित होता है। अतः उदयऽर्क से अस्त लग्न अधिक होता है। इस प्रकार सूर्य के सान्निध्य के कारण वह उदय-अस्त होता है। जैसे-जैसे उत्तर शर दीर्घतर होता जाता है वैसे-वैसे उदयास्त अर्क का अन्तर अल्प होता जाता है। अल्प अंतर होने से अल्प दिनों के लिए ही वह नक्षत्र अदृश्य होता है। इस प्रकार जिन देशों में उदयास्त अर्क तुल्य होता है वहाँ उस नक्षत्र का सूर्य के सान्निध्य में रहते हुए अदृश्य नहीं होता।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रहयोगाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उदयसवितुर्यस्यास्तार्को ध्रुवस्य महान् भवेद्।
दिन कर वशादस्तं गच्छत्यसौ न कदाचन॥१९ $\frac{1}{2}$॥"

ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उदयार्कोऽस्तमयार्काद्यस्योनस्तत् सदा दृश्यम्॥३८॥

श्रीपति ने **सिद्धान्त शेखर** में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अस्तादित्यो महान्स्यादुदय दिनकराद्यस्य धिष्ण्य ध्रुवस्य
तन्नक्षत्रं कदाचिद् दिवसपतिवशान्नास्तमायाति नूनम्।"

अथान्यं विशेषमाह—

यस्य स्फुटा क्रान्तिरुदक् च यत्र लम्बाधिका तत्र सदोदितं तत्।
न दृश्यते तत् खलु यस्य याम्या भं लुब्धकः कुम्भभवो ग्रहो वा॥१६॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि किसी तारे या ग्रह की उत्तर क्रांति लंब (९०° – अक्षांश) से अधिक हो तो वहाँ वह सदा उदित रहता है और यदि दक्षिण क्रांति लंब (९०° – अक्षांश) से अधिक हो तो लुब्धक, अगस्य, तारा अथवा ग्रह उस स्थान पर कभी भी दृश्य नहीं होता।

जहाँ पर अक्षांश ३७° से अधिक हो वहाँ अगस्त्य तारा दृश्य नहीं होता और जहाँ ५२° से अधिक अक्षांश हो वहाँ अभिजित नक्षत्र सदा उदित रहता है। आचार्य ने स्वकृत टीका में ये दो उदाहरण दिये हैं।

उपपत्ति— लंबांश विषुवन्मंडल के दक्षिण क्षितिज से जितना ऊपर होता है उतने ही अंश वह उत्तर क्षितिज से नीचा होता है। अतः लंब से अधिक उत्तर क्रांति विषुवमण्डल में देने से उसके आगे जहाँ अहोरात्र वृत्त निबध्य होता है वह उत्तर क्षितिज के ऊपर होता है। अब दक्षिण क्रांति देने से उसके आगे जहाँ अहोरात्रवृत्त निबध्य होता है वह दक्षिण क्षितिज से नीचे होता है। अतः जहाँ क्षितिज के नीचे स्थित अहोरात्र वृत्त में (ग्रह-तारा) परिभ्रमण करता है वहाँ वह सतत अदृश्य होता है और जहाँ क्षितिज के ऊपर स्थित होता है वहाँ सतत दृश्यमान होता है।
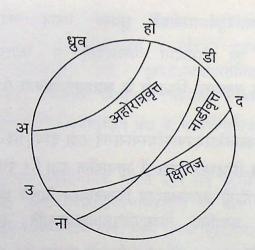
चित्र में अहो = तारे अथवा ग्रह का अहोरात्र वृत्त है। उ ध्रु = स्थान का अक्षांश है, ध्रु अ = ९० – क्रांति है।

अतः यदि तारा कभी भी अस्त न हो उसके लिए आवश्यक है ध्रु अ सदा ध्रुउ से अल्प हो। अर्थात्

ध्रु अ < ध्रु उ

९० – क्रां < अक्षांश

अथवा ९० – अक्षांश < क्रांति

लंबांश < क्रांति

अर्थात् क्रांति यदि लंबांश से अधिक हो तो वह सदा उदित रहता है।

विशेष— **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के** भग्रहयोगाधिकार में अदृश्य स्थिति की परिस्थिति बताई है। यथा—

"यदपमधनुः क्षेपस्पष्टं पलेन च संस्कृतं
त्रिभवनमहद् यस्मिन् देशे स तत्र न दृश्यते।।२०।।"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लम्बांशेभ्योऽभ्यधिकाः स्फुटापमांशाः स्युरुत्तरा यस्य।
दृश्यस्तत्र सदा स्याद् धिष्णयं खेटोऽन्यथाऽदृश्यः।।१२।।"

अथ देशान्तरवशेन विशेषमभिधायेदानीं कालान्तरवशेन विशेषमाह—

इत्यभावेऽयनांशानां कृतदृक्कर्मका ध्रुवाः।
कथिताश्च स्फुटा बाणाः सुखार्थं पूर्वसूरिभिः।।१७।।

अयनांशवशादेषामन्यादृक्त्वं च जायते।
शरज्या अस्फुटाः कार्याः स्फुटीकृतिविपर्ययात्॥१८॥
ताभिरायनदृक्कर्म मुहुर्व्यस्तं ध्रुवेष्वथ।
अयनांशवशात् कार्यं तद्दृक्कर्म यथोदितम्॥१९॥
एवं स्युर्ध्रुवकाः स्पष्टाः शरज्याश्च ततः स्फुटाः।
यथोक्तविधिना कार्यास्तच्चापानि स्फुटाः शराः॥२०॥
ततो भग्रहयोगादि स्फुटं ज्ञेयं विजानता।
इत्याधिक्येऽयनांशानामल्पत्वे त्वल्पमन्तरम्॥२१॥

देशांतर के वश विशेष कहकर अब कालांतर वश विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वाचार्य जब अयनांश का अभाव था उस समय दृक्कर्म के द्वारा ध्रुवक तथा स्फुट शर बताते थे। लेकिन अयनांश के कारण इनमें अन्तर पड़ता है। अस्फुट शरज्या से स्फुट शर विपरीत विधि से ज्ञात करे। इनकी सहायता से अयन दृक्कर्म का विपरीत विधि से संस्कार करके स्फुट ध्रुवक ज्ञात करे। अब अयनांश वशाद शुद्ध दृक्कर्म ज्ञात करके ध्रुवकों में संस्कार करके शुद्ध ध्रुवाँक तथा शर ज्ञात करे। इनके द्वारा नक्षत्र ग्रह योग (युति) स्फुट ज्ञात करे। यह विधि तब उपयोग में लेवें जब अयनांश अधिक हो। अल्प अयनांश होने पर अन्तर अल्प होता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के भग्रहत्यधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

अथ पाताधिकारः

अथ पाताध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

भावाभावे गतैष्यत्वे पातस्य विदुषां भ्रमः।
पूर्वेषां यत्र वक्ष्येऽहं तत्साधनमपि स्फुटम्॥१॥

पाताध्याय के आरंभ करने का प्रयोग—

सूर्य-प्रभा टीका— पात होने अथवा न होने के संबंध में जानने में पूर्व विदुषि भी भ्रमित हो जाते हैं। उस पात के साधन की विधि भास्कराचार्य बता रहे हैं।

अथार्कस्य गोलायनसन्धिप्रतिपादनार्थमाह—

चक्रे १२ चक्रार्धे ६ च व्ययनांशेऽर्कस्य गोलसन्धिः स्यात्।
एवं त्रिभे च ३ नवभे ९ ऽयनसन्धिर्व्ययनभागेऽस्य॥२॥

सूर्य की गोल संधि-अयन संधि का प्रतिपादन—

सूर्य-प्रभा टीका— १२ राशि तथा ६ राशि अयनांश रहित पर सूर्य की गोल संधि तथा ३ राशि तथा ९ राशि अयन रहित पर अयन संधि होती है।

स्पष्टीकरण— यहाँ ये संधियाँ आचार्य ने अपने समय के ११° अयनांश के कारण १२ राशि – ११° = ११ राशि १९ अंश तथा १८०° = ६ राशि – ११° = ५ राशि १९ अंश गोल संधियाँ कही हैं। तथा ३ राशि – ११° = २ राशि १९° तथा ९ राशि – ११° = ८ राशि १९ अंश अयन संधियाँ बताइ हैं।

उपपत्ति— क्रांतिमंडल का मेषारंभ से पश्चिम की ओर अयनांश तुल्य अन्तर पर विषुवन्मण्डल के साथ संपात होता है वहाँ रवि गोल संधि होती है। विषुवन्मण्डल में ही याम्योत्तर गोल विभाग की संधि होती है। इस प्रकार संपात से तीन राशि अंतर पर उत्तर परम क्रांति होती है, वहाँ रवि अयन संधि होती है। यहाँ से ही सूर्य की दक्षिण की ओर गमन प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार संपात

से पीछे के ओर तीन राशि अन्तर पर परम दक्षिण क्रांति होती है, वहाँ से सूर्य की उत्तर गमन प्रवृत्ति होती है। यह इस प्रकार अयन संधि उपपन्न होती है।

समान की गई भूमि पर कर्कटक (गोला प्रकार) से एक वृत्त बनावे उस पर ३६०° अंकित करे। ध्रुव को देखकर सम्यग् दिशायें अंकित करे। इन दिशाओं के मध्य (वृत्त के मध्य केंद्र पर) एक सूक्ष्म सीधा कीलक (शंकु) गाडे। प्रातः काल में पश्चिम भाग में स्थित होकर दृष्टा हाथ से कीलक (शंकु) से बंधे हुए सूत्र को अर्धोदित सूर्य को वेध्य करे तथा त्रिज्यावृत्त में पूर्व भाग में वहाँ चिन्ह लगावे। इस प्रकार विध्य करते हुए जिस दिन ठीक पूर्व दिशा में सूर्य उदित होता हुआ दिखाई देवे वह दिन विषुवद्दिन होता है। उसय दिन का गणित से स्फुट सूर्य ज्ञात करे। वहाँ पर सूर्य मेषारंभ से जितने अंतर पर हो वह अयनांश होता है। यहाँ से सूर्य का उत्तर गमन होता है अर्थात् रोजाना उत्तर की ओर उदित होता हुआ होता है। इस प्रकार वह तुलारंभ से अयनांश तुल्य दूरी से दक्षिण की ओर जाता है। इस प्रकार प्रतिदिन वेध करने से जिस दिन परम उत्तर दिशा में सूर्य उदित हो वह दिन तथा परम दक्षिण दिशा में उदित हो वह दिन अयन दिन होता है। इन दोनों के मध्य सूर्य की दक्षिण गमन प्रभृति होती है तथा जहाँ से परम दक्षिण की ओर उदित होता है वहाँ से परम उत्तर की ओर उदित होने के स्थान तक (उत्तरायन) उत्तर गमन प्रभृति होती है।

इसी प्रकार चंद्रमा की गोल तथा अयन संधियाँ वेध से ज्ञात करे।

विशेष— आचार्योक्त बात सिद्धान्त ग्रंथों की मूल भूत बात है जो सभी आचार्यों ने मानी तथा कही हैं। अतः यहाँ उसके लिए उद्धरण नहीं दिये जा रहे हैं।

अथ चन्द्रस्य विशेषमार्याचतुष्टयेनाह—

अयनांशोनितपादाद्दोः कोटिज्ये लधुज्यकोत्थे ये।
ते गुणसूर्यैः १२३ अश्वैः ७ गुणिते भक्ते कृतैः ४ सूर्यैः १२॥३॥
अयनांशोनितपाते मृगकर्क्यादिस्थिते द्विषड्रामैः ३६२।
कोटिफलयुतविहीनैर्बाहुफलं भक्तमाप्तांशैः॥४॥
मेषादिस्थे गोलायनसन्धी भास्करस्योनौ।
तौ चन्द्रस्य स्यातां तुलादिषड्भस्थिते तु संयुक्तौ॥५॥
गोलायनसन्ध्यन्तं पदं विधोरत्र धीमता ज्ञेयम्।
रविगोलवदस्पष्टा स्पष्टा क्रान्तिः स्वगोलदिक् शशिनः॥६॥

चन्द्रमा की चारों संधियों के लिए विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— अयनांश ऊनित पात की ज्या तथा कोटिज्या लघुज्या प्रकार से ज्ञात करके उनको क्रमशः १२३ से तथा ७ से गुणा करके क्रमशः ४ व १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमशः बाहुफल तथा कोटिफल होते हैं। अयनांश रहित पात यदि मकरादि में (मकर से कर्कारंम तक) स्थित होने अथवा कर्क्यादि (कर्क से मकरांभ) स्थित होने पर ३६२ में कोटिफल क्रमशः युत तथा हीन करके प्राप्तफल से बाहुफल को विभक्त करे। प्राप्तफल के अंशादि ग्रहण करे। यदि अयनांश उनित पात मेषादि छः राशि में हो तो पूर्व प्राप्त अंशादि फल को रवि की गोल व अयन संधियों में से घटाने से चंद्रमा की गोल तथा अयन संधियाँ होती हैं तथा तुलादि छः राशि में स्थित होने पर युत करने से चंद्रमा की गोल तथा अयन संधियाँ होती हैं। प्रथम गोल संधि से लेकर अयन संधि तक तीन राशि तक प्रथम पद कहते हैं। उससे आगे तीन राशि तक द्वितीय गोल संधि अन्त तक द्वितीय पद कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय तथा चतुर्थ पद होता है। चंद्रमा की क्रांति सूर्य क्रांतिवत् साधित करे। प्राप्त क्रांति की दिशा रवि गोल वश होती है न कि स्वगोल वशाद। उसमें शर का संस्कार करने से वह स्वगोल दिशा की होती है।

उपपत्ति— यहाँ सूर्य की गोल, अयन संधि के द्वारा जो चंद्रमा की अयन-गोल संधि कही गई हैं उसका कारण बताते हैं। सूर्य का क्रांतिवृत्त तथा विषुवत् वृत्त का संपात, गोल संधि होती है और चंद्रमा की गोल संधि विषुवन्मण्डल तथा विमण्डल का संपात होता है। चंद्रमा विमण्डल में भ्रमण करता है उसके संपात पर वह पूर्व दिशा में उदित होता है तब वहाँ स्थित चंद्रमा की स्फुट क्रांति में शर का संस्कार करने से शून्य होता है, इसका यह अर्थ हुआ। इसके आगे तथा पीछे तीन राशि अंतर पर स्फुट परम क्रांति होती है। इन्हीं स्थानों पर चंद्रमा की यथा संख्या उत्तर-दक्षिण परम सीमा होती है। अतः ये चंद्रमा की अयन संबंधि स्थान उपपन्न होते हैं।

अब पहले आचार्य द्वारा गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय में कथित उदाहरण को यहाँ लेते हैं। यथा–

"युक्तायनांशोऽशशतं १०० शशी चेदशीति ८० रर्कोद्विशती २०० विपातः।
चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु धीवृद्धिदं त्वं यदि बोबुधीषि॥"

इस श्लोक का अर्थ यह है कि 'यदि तुम लल्लाचार्य ने अपने

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में जो कुछ कहा है वह जानते हो तो चंद्रमा १००°, सूर्य ८०° तथा राहु से चंद्रमा २००° पर यदि हो तो पात होने का समय ज्ञात करके कहो?

अयनांश ११ अंश है अतः रवि २ राशि ६ अंश, चंद्रमा २ राशि २६ अंश तथा पात ३ राशि २१ अंश हुआ। प्रश्न में जो विपात चंद्र कहा गया है वह धीवृद्धिद ग्रंथ के अभिप्रायानुसार कहा है। वहाँ 'चक्राच्छोधितः पात' कहा है। अतः वहाँ का विपात यहाँ के सपात के तुल्य है। यहाँ अयनांश उनित पात ३।१० राश्यादि है इसकी ज्या, कोटिज्या लघुज्या प्रकार से ११८ और २१ है। यहाँ ज्या के मान को १२३ से गुणा करके ४ से विभक्त करने से ३६२८।३० भुजफल तथा कोटिज्या को ७ से गुणा करके १२ से विभक्त करने से १२।१५ कोटिफल प्राप्त होता है। ३६२ में से कोटिफल को घटाने से ३४६।४५ प्राप्त हुआ। अयनांश ऊनित पात ३।१० कर्क्यादि में स्थित है अतः कोटिफल को घटाये हुए से बाहुफल को विभक्त करने से लब्धि १०।२२।२८। इसको रवि की गोलसंधि व अयन संधि में से घटावे क्योंकि अयनांश ऊनित पात, मेषादि छः राशियों में स्थित है। इस प्रकार करने से चन्द्रमा की गोल-अयन संधि ११।८।३७।३२;२।८।३७।३२ तथा अन्य ५।८।३७।३२;८।८।३७।३२ है।

यहाँ स्वगोल संधिस्थ चंद्रमा की स्फुटशर, स्फुट क्रांति पूर्ण होती है।

गोल में कहे गये अनुसार क्रान्तिवृत्त में बद्ध मेषादि से विलोम चन्द्र पात के राश्यादि ज्ञात करके चिन्ह लगावे। इसी प्रकार विमण्डल में भी करे। विमण्डल का वहाँ संपात करके उससे पूर्व में तीन राशि अंतर पर ४।३० अंश पर क्रांतिमंडल के उत्तर की ओर तथा पश्चिम में तीन राशि अंरत पर इतने ही अंशों पर दक्षिण की ओर विमण्डल को विन्यास करके स्थिर कर देवे। इस प्रकार करने से विमंडल विषुवन्मण्डल से जहाँ संपात करे वहाँ चंद्रमा की गोल संधि होती है। इससे रवि गोल संधि कितने अंतर पर स्थित है यह ज्ञात नहीं है, लेकिन रवि गोल संधि का जो विक्षेप है वह ज्ञात है। रविगोल संधि में से अयनांश घटाने से ११।१९ राश्यादि हुआ। यहाँ पर स्थित चंद्र का शर साधन करने के लिए चंद्रमा से चंद्र का पात जितना होता है उतना ही अयनांश अनित पात होता है। उसकी ज्या को परमशर २७० से गुणा करके त्रिज्या (१२०) से विभक्त करे। इस प्रकार करने से गुणक भाजक को ३० से अपवर्तित करने से गुणक स्थान पर ९ तथा हार स्थान पर ४ प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राप्तफल उस स्थान

पर चंद्र का शर होता है। इतनी ही वहाँ उसकी स्फुट क्रांति होती है। अस्फुट क्रांति होती है इतनी स्फुट क्रांति कितने भाग पर होती है यह ज्ञात कर सकते हैं। क्रांति साधन के लिए १५° के खंडों की स्थूल क्रांति ब्रह्मगुप्तादि ने कही है। यथा–

"क्रान्तिकला द्विरसगुणास्त्रिखमुनयो द्विखदिशो वसुत्र्यर्काः।
वसु वसुविश्वे च खकृतमनवश्च क्षेपयुतवियुताः। इति।"

अर्थात् ६ खंडों की क्रांति कला ३६२।७०३।१००२।१२३८।१३८८।१४४० होती है, यदि त्रिज्या ३४३८ हो।

तथा शर खण्ड इस करण में इस प्रकार कहे हैं–

"खश्वा बाणर्तवोऽङ्गाक्षास्त्र्यब्धयो भानि खेचराः। इति।"

७०।६५।५६।४३।२७।९।

अर्थात् छः खंडों की शर कला ७०।१३५।१९१।२३४।२६१।२७० होती है।

अर्थात् परम क्रांति २४° की ज्या = १४४० तथा शर = २७० होती है। अतः ३६२ में तत्स्थानीय शर खंड से संस्कृत करने से जितना होता है वह स्फुट क्रांति खंड होता है। अब तत्स्थानीय शरखण्ड कितना है यह ज्ञात करने का उपाय बताते हैं।

यदि त्रिज्या तुल्य १२० कोटिज्या में प्रथम शर खण्ड ७० कला तुल्य होता है तो अयनांश ऊनित पात की कोटिज्या में कितनी होगी?

अर्थात् $\frac{\text{कोज्या (पात – अयनांश)} \times ७०}{१२०} = \frac{\text{कोज्या (पात – अयनांश)} \times ७}{१२} =$

तत्स्थान का शरखंड प्राप्त होता है। इसको भास्कराचार्य ने कोटिफल कहा है। यदि अयनांश ऊनित पात मकरादि छः राशियों में स्थित हो तो वहाँ स्थिति से तीन राशि आगे चन्द्र की स्फुट परम क्रांति २४° से अधिक होती है तथा कर्क्यादि छः राशि में स्थित होने पर कम होती है। स्फुट खंड के लिए अनुपात किया कि यदि इतने खण्ड में १५° चाप विमण्डल में या क्रांतिमंडल में चाप गत प्राप्त होते हैं तो पूर्वप्राप्त शर तुल्य में कितना होगा? पूर्व में शरसाधन में ज्या को ९ से गुणा तथा ४ से भाग दिया गया है, तब यह प्राप्त किया है। अब यहाँ १५ से गुणा तथा (३६२ – कोटिफल) हार है। इस प्रकार दोनों गुणा के अंकों का गुणा १५×९=१३५ होता है। इससे स्फुट शर ज्ञात करे।

इस प्रकार तीन राशि युक्त ग्रह की द्युज्या को त्रिज्या से गुणा करने से स्फुट शर होता है। वहाँ स्थित चंद्र सायन अंश पूर्ण होता है। यहाँ तीन राशि युत करने से द्युज्या परमद्युज्या होती है। अतः १३५ से परमद्युज्या को गुणा करके त्रिज्या से भक्त करने से $\frac{१३५ \times ११०}{१२०}$ = १२३ प्राप्त होता है। इस प्रकार अयनांश ऊनित पात की ज्या को १२३ से गुणा करके ४ से विभक्त करे। इस भुजफल को ३६२ में कोटिफल कम-अधिक करके प्राप्तफल से विभक्त करने से प्राप्त अंशादि फल को रवि की अयनांश ऊनित गोल तथा अयन संधि में से कम करने से चंद्र की गोल तथा अयन संधि होती है। क्योंकि पात विलोम गति से उस स्थान से विषुवदमण्डल से दक्षिण की ओर क्रांतिवृत्त में होता है। वहाँ स्थित विमण्डल का पूर्वार्ध जितना उत्तर की ओर परम विक्षेप अंश पर होता है उतने ही अंश पर रवि गोल संधि पश्चिम की ओर होती है, उसका विषुवन्मण्डल के साथ संपात होता है। इसी प्रकार तुलादि में स्थित होने पर इससे विपरीत होता है।
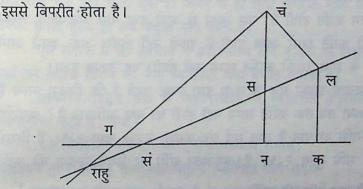
चित्र में ग सं न क = नाडीवृत्त। रा सं स ल = क्रांतिवृत्त। ग = चंद्रगोल संधि। ग चं = चंद्र पाथ। सं = सूर्य गोल संधि। ल क = चं की अस्फुट क्रांति। चं ल = चंद्र का अस्फुट विक्षेप। चं न = चंद्र की स्फुट क्रांति।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में चन्द्र के स्पष्टपात आनयन की रीति बताई है। यह आचार्योक्त के स्वल्पांतर से तुल्य है। श्री सुधाकर द्विवेदी ने महासिद्धान्त की स्वकृत टीका में यह गणना की है। वहाँ इसका अवलोकन कर सकते हैं।

"व्यस्तायनांशसंस्कृतपातज्या कोटिज्या मसै भक्ता।
गनधै तद्युतहीनैस्तत्पाते मृगकुलीराद्ये॥२॥

दोर्ज्या विभजेदंशैर्व्यस्तायनसंस्कृताः पदविरामाः।
भार्धोनाधिकपाते हीनाढ्यास्ते भवन्ति शीतांशोः॥३॥"

पं. सुधाकर द्विवेदी जी के अनुसार श्लोक में 'गनधै' के स्थान पर 'गलधै' होना चाहिये।

अथ साधरण्येन क्रान्तिसाम्यसंभवज्ञानमाह—

स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेः।
ऊना यावत् तावत् क्रान्त्योः साम्यं तयोर्नास्ति॥७॥

साधारण प्रकार से क्रांतिसाम्य संभव ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस दिन जितनी घटी पर स्फुट चंद्र स्वअयन संधि पर हो उसकी स्फुट क्रांति साधित करे तथा उतने काल पर जहाँ रवि हो उसकी क्रांति साधित करे। यदि सूर्य क्रांति से चंद्र क्रांति अल्प हो तो इसका अर्थ है जितनी अल्प है उतने समय में उनकी क्रांतिसाम्य होने की संभावना नहीं है।

उपपत्ति— स्वअयन संधि पर स्थित चंद्रमा की जो क्रांति होती है वह उसकी परम क्रांति होती है। उस स्थान से आगे तथा पीछे चन्द्रमा के चलने पर उसकी क्रांति इससे अन्य होती है इतनी नहीं होती। अतः इससे आगे रविक्रांति के साथ उसकी क्रान्ति साम्य नहीं होती। यह उपपन्न हुआ।

आचार्य इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं कि जितना अल्प है उतनी अथवा तब तक क्रांति साम्य नहीं होती का क्या अभिप्राय है? अयनांश कम छः राशि पर पात है तथा सूर्य चंद्र क्रमशः २।१६ तथा २।१६ हैं जिससे वे अयन संधि तुल्य २।१६ हैं। स्वअयन संधि पर स्थित चन्द्रमा की क्रांति ११७० है तथा रवि की क्रांति १४४० है अर्थात् चंद्र क्रांति $२४° - ४\frac{१}{२}° = १९\frac{१}{२}$ = ११७० तथा सूर्य की क्रांति २४° है, क्योंकि यहाँ चंद्र विमण्डल नाडीवृत्त तथा क्रांतिवृत्त के मध्य में है। अतः चंद्र की क्रांति जब अधिकतम हो तब वह सूर्य क्रांति से अल्प होती है तथा तब उनका क्रांति साम्य नहीं होता। उतने काल आगे १३।४० दिवस पर रवि चंद्र तथा पात अपनी मध्यम गति से चलते हुए सूर्य ३ रा.२अं.२८क.१२वि०' चंद्र ८रा.१९ अं.४क.२६वि. तथा राहु ६ रा. ११अं.४३क.२८ वि. होते है। यहाँ चंद्रमा द्वितीय अयन संधि पर ८ रा. १९अं.९क.३५ वि. होता है तथा यहाँ इसकी अधिकतम क्रांति ११६९ होगी। वहाँ उस समय पर सूर्य की क्रांति १३९८ होगी। यहाँ भी चंद्र

की क्रांति सूर्य की क्रांति से अल्प है अतः क्रान्ति साम्य नहीं है। फिर १३।४० दिवस आगे भी क्रांति साम्य का अभाव होता है। इस प्रकार प्रथम काल से दो मास तक क्रांति साम्य का अभाव रहता है। यदि गोल संधि (बापूदेव शास्त्री के अनुसार तुलादि) पर पात हो तथा सूर्य दक्षिणायन या उत्तरायन संधि पर हो तब तक क्रांतिसाम्य का अभाव रहता है।

आचार्य ने यहाँ जो कहा है वह आगामी श्लोकोक्त की पृष्ठ भूमि के रूप में कहा है।

अथ व्यतिपातवैधृतयोर्लक्षणमाह—

व्यतिपातोऽयनभेदे गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयोः क्रान्त्योः।
साम्ये वैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रमसमत्वे॥८॥

व्यतिपात वैधृति लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि सूर्य चंद्र विपरीत अयन में हो लेकिन एक ही गोल में स्थित हो तथा उनकी क्रांति तुल्य हो तो व्यतिपात योग होता है और यदि सूर्य चंद्र दोनों एक ही अयन में हो तथा विपरीत गोल में हो और उनकी क्रांति तुल्य हो तब वैधृति योग होता है।

पूर्व श्लोक में जो आचार्य ने क्रांतिसाम्य होने न होने के लक्षण कहे हैं यहाँ उन लक्षण विशेष का नाम व्यतिपात तथा वैधृति बताया है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में लल्लाचार्य ने व्यतिपात वैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''तुल्येऽयने भिन्नदिशो रविन्द्वोः स्याद् वैधृश्चक्रसमें समासे।
भिन्नेऽयने तुल्यदिशोस्तु योगे चक्रार्धतुल्ये व्यतिपात योगः॥१॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''चक्रार्धेऽर्कशशियुतौ भिन्नायनयोरपक्रमसमत्वे।
रविशशिनोः सममधुधृत योगाद्विषदो व्यतीपातः॥३३॥
चक्रे वैधृतमेकायनस्थयोः क्रान्तिजीवयो साम्ये।
इन्धनरविमणियोगादग्निवदूनाधिककलाभ्यः॥३४॥
व्यतिपातोऽपक्रमोर्दिक् साम्यो वैधृतो दिगन्यत्वे।
अधिको न्यून कल्पयोदिग्भेदे ऽपक्रमः शशिनः॥३७॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भवनदलसमासे क्रान्तिसाम्ये रवीन्द्वोर्नियतमयनभेदे गोलयोर्दिक् समत्वे।
दिनमणिमणिनीलात् सोमसूर्याश्मयोगादपि दहन इवाशु स्याद् व्यतीपातनामा॥
अयनकृत समत्वे गोलयोर्भिन्नदिक्त्वेदिनकर शशियोगे चक्रतुल्ये च जाते।
तदपमसमतायां मङ्गलोन्मूलनार्थ विषमिव मधुसर्पित्साम्यतो वैधृतः स्यात्॥
नयति शशिशरश्चेत् स्वां दिशं क्रांतिचापं समधिकतनुरन्यक्रांतिसीम्नस्तदानीम्।
अधिकतरपीह न्यूनमेव प्रकल्पं तुहिनकिरणमर्त्तेस्तत् स्फुटं क्रांतिचापम्॥"

सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः॥१॥
विपरीतायनगतौ चद्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ॥२॥"

अतस्तज्ज्ञानार्थं संभवमाह—

सायनरविशशियोगो भार्धं ६ चक्रं १२ यदा तदासन्नः।
तत्संभवस्तदूनाधिकलिप्ता भुक्तियोगहृताः॥६॥
लब्धदिनैरेष्यगतैस्तात्कालिकयोरपक्रमौ साध्यौ।

पात का गत-गम्य ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस दिन रवि तथा चन्द्र के पृथक्-पृथक् सायन अंशों का योग छः राशि हो अथवा १२ राशि हो तो उस काल के आसन्न आगे अथवा पीछे क्रमशः व्यतिपात अथवा वैधृति योग होने की संभावना होती है। यदि उनका योग छः राशि अथवा १२ राशि पूर्ण न हो तो उसमें जितना कम हो उतनी कला में और यदि छः राशि या १२ राशि से अधिक हो तो जितना अधिक हो उतनी कला में सूर्य-चंद्र की स्फुट गति योग का भाग देने से प्राप्तफल दिनादि होते हैं। यदि कम कलाओं को विभक्त किया है तो पात होने में ऐष्य दिन प्राप्त होते हैं और यदि अधिक कलाओं को विभक्त किया है तो इतने दिवस पूर्व पात गत हो चुका होता है।

पूर्वोक्त न्यूनाधिक कलाओं तथा दोनों के गति योग से अनुपात करे कि रवि और चंद्र के गति योग में एकदिन पाते हैं तो न्यूनाधिक कला में क्या? इस प्रकार करने से जो लब्ध दिन प्राप्त हो उनको अपने चालन फलों के न्यून में रवि चंद्र और पात में जोड़ना चाहिये तथा अधिक में हीन करना चाहिये। तब चक्रार्ध तथा चक्र कालिक रवि चंद्र तथा पात प्राप्त होते हैं। इससे

तात्कालिक रवि क्रान्तिज्या साधित करे। उसका चाप रवि क्रांति तात्कालिक होती है। चंद्र क्रांति चाप में उसके शर को युक्त-हीन करने से उनकी क्रांति होती है।

उपपत्ति— यदि सूर्यचंद्र की क्रांति का योग छः राशि अथवा बारह राशि हो तो उनकी आसन्न क्रांतिसाम्य होती है। जब इनका योग छः अथवा बारह राशि होता है तब उनके भुज तुल्य होते हैं। भुज के तुल्य होने से चंद्र तथा सूर्य की स्फुट क्रांति तुल्य होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''भुजैक्यलब्धदिवसैरवीन्दुपाता युतोनकाः स्वफलैः।
अर्कक्रान्तिज्या धनुरिन्दोर्विक्षेपयुक्तोनम्॥३५॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है लेकिन क्रांतिसाधन नहीं कहा है। यथा–

''तपनशशिसमासे चक्रचक्रार्धहीनाधिकतरकलिकास्तद्भुक्ति योगेन भक्ताः
फलमिह दिवसाद्यं स्यात् क्रियन्ते अनुपातात् स्वफलयुतविहीनाः सूर्यशीतांशुपाताः॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतीपात वैधृति अधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''चक्रार्धचक्राधिकहीनलिप्ताः खषडगुणा भुक्तिसमासभक्ताः।
भवन्ति नाडयो गतगम्यसंज्ञास्तात्कालिकौ तौ च तमश्च कुर्यात्॥२॥
तयोरपि क्रान्तिकलाः समाश्चेत् तदा भवेन्मध्यमपातकालः।$\frac{१}{२}$।''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''दत्तायनयोर्योगे चक्र चेद्वैधृतिस्तदाऽर्केन्द्वोः।
भार्धतद्यपि पातः कालोऽसौ मध्यपाताख्यः॥१॥''

इदानीं तस्मात् कालात् क्रान्तिसाम्यस्य गतैष्यत्वप्रतिपादनार्थमाह—

ओजपदेन्दुक्रान्तिर्महति सूर्यापमाल्लघुः समजा॥१०॥
यदि भवति तदा ज्ञेयो यातः पातस्तदन्यथा गम्यः।

पूर्वोक्तकाल से क्रांति साम्य का गतऐष्य प्रतिपादन—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि विषम पद में स्थित चन्द्र की क्रांति सूर्य क्रांति से अधिक हो तो पात गत होता है। यदि सम पद में स्थित चंद्र की क्रांति सूर्य

क्रांति से अल्प हो तब भी पात गत होता है। इनसे विपरीत होने पर पात ऐष्य होता है।

उपपत्ति— विषम पद में स्थित चंद्र की क्रांति उपचित होती है। जैसे-जैसे ग्रह आगे बढ़ता है वैसे-वैसे उसकी क्रांति विषम पद में उपचित होती है। प्रथम तथा तृतीय पाद की गोलसंधि के आंरभ से तीन राशि आगे अन्तर पर क्रांति परम होती है। अतः विषमपद में स्थित होकर जैसे-जैसे आगे बढ़ता है (चंद्रमा) वैसे-वैसे क्रांति उपचित होती है। वहाँ से तीन राशि अंतर पर आगे द्वितीय गोल संधि तक समपद होता है वहाँ पर स्थित होकर जैसे-जैसे ग्रह आगे बढ़ता है वैसे-वैसे क्रांति का अपचय होता है। यह द्वितीय तथा चतुर्थ पद में होता है। अतः ओज पद में स्थित चंद्रमा की क्रांति यदि सूर्य की क्रांति से अधिक हो तो उससे आगे चलने पर उसकी क्रांति और भी अधिक होगी और जैसे-जैसे चन्द्रमा पीछे चलेगा वैसे-वैसे उसकी क्रांति कम होगी। इस प्रकार कम होते हुए रवि क्रांति के तुल्य (साम्य) होगी, जो गत हो चुकी है। अब सम पद में स्थित चंद्र की क्रांति सूर्य क्रांति से अल्प हो तो वहाँ चंद्रमा के पीछे चलने से उसकी क्रांति बढ़ेगी तथा इस प्रकार बढ़ते हुए एक स्थान पर उसकी क्रांति सूर्य क्रांति के तुल्य (साम्य) होगी, जो गत हो चुकी है। इन लक्षणों के विपरीत लक्षण होने पर क्रांति साम्य ऐष्य होगा, यह ज्ञात होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के स्फुट गत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"मेष तुलादाविन्दोरपक्रमेरव्यपक्रमादूने।
एष्यत्यधिकोऽतीतो विपरीतः कर्कमकरादौ॥३८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ८ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"विषमपदसमुत्थेऽपक्रमे शीतरश्मेर्महति खलु गतोऽर्कक्रान्तितः पातकालः।
लघुवपुषि च भावी कर्कनक्रादिजाते स भवति भविता चेत् स्याल्लधीयस्यतीतः॥"

सूर्य सिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता।
यदि स्यात अधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा॥७॥
ऊना चेत् स्यात् तदा भावी वामं युग्मपदस्य च।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुद्धयति॥८॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैद्युत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''अयुगमजश्चान्द्रमसोऽपमश्चेदपक्रमाद् भानुमतोऽधिकः स्यात्।

समोद्भवो वापि लघुस्तदेतो विपातकालो भवितान्यथातः ॥५॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''स्पष्टे क्रान्ती साध्ये रव्यपमादैन्दवोऽल्प ओजस्थः।

समजोऽपमोऽधिको वा गम्यः पातस्तदाऽन्यथा पातः ॥४॥''

अथ तस्मात् कालाद्गतगम्यस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य परिज्ञानमार्योत्तरार्धादारभ्य सार्धेनार्यात्रयेणाह—

तत्क्रान्त्योरेकदिशोरन्तरमैक्यं विभिन्नदिशोः ॥११॥

कार्यं व्यतिपाताख्ये तदन्यथा वैधृते प्रथम एवम्।

गतगम्येष्टघटीभी रवीन्दुपातान् प्रचाल्य साध्योऽन्यः ॥१२॥

आद्यान्यकालयोरपि यदि गम्यं लक्षणं गतं यदि वा।

आद्यान्ययोस्तदान्तरमतोऽन्यथैक्यं च तेन हताः ॥१३॥

आद्यगुणा नाड्योऽसकृदिष्टाः स्पष्टाः स्युरेवमेतासु।

चक्रार्धचक्रकालाद्गतगम्यं पातमध्यमाद्यवशात् ॥१४॥

पूर्वोक्त क्रांति के द्वारा क्रांतिसाम्य के गत गम्य काल, उत्तरार्ध तथा आरंभ से अर्ध काल तीनों का परिज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— व्यतिपात काल में दोनों क्रांति यदि एक दिशा में हो तो उनका अन्तर तथा भिन्न दिशा में हो तो योग ज्ञात करे और वैधृति काल में इससे विपरीत करे। इस योग अथवा अन्तर को 'आद्य' कहे। इसी प्रकार इष्ट घटी कल्पित करके उससे चन्द्र-रवि-पात की गतियों को गुणा कर के साठ से विभक्त करने से जो कलादि प्राप्त हो, गत-गम्य पात काल में उसको रवि-चंद्र और पात में धन-ऋण करके रवि-चंद्र की क्रांति ज्ञात करे। इनसे पूर्ववत द्वितीय राशि 'अन्य' ज्ञात करे।

इस प्रकार प्राप्त 'आद्य' और 'अन्य' दोनों, पात ऐष्य अथवा गत दर्शाये तो दोनों का अंतर करे अन्यथा योग करे अर्थात् दोनों में से एक ऐष्य तथा दूसरी गत हो तो दोनों का योग करे। यह छेद है। 'आद्य' राशि तथा कल्पित इष्ट समय के गुणा में इस छेद का भाग देने से प्राप्तफल घटी पातमध्य होता

है। यह पात के समय सूर्य-चंद्र के छः राशि अथवा बारह राशि योग के पूर्व का समय है। यदि प्रथम प्राप्त क्रांतिद्वय से गत पात का बोध होता है और पश्चात् का समय है यदि इनसे (प्रथम प्राप्त दोनों क्रांति से) पात एष्य का बोध होता है।

उदाहरण— यहाँ आचार्योक्त सूत्र को पूर्व श्लोक ३ से ६ की व्याख्या में कथित उदाहरण के द्वारा ही प्रदर्शित करते हैं। वहाँ चंद्रमा १००, सूर्य ८० तथा पात २०० आदि कहा गया है। अतः चंद्र २।२६, सूर्य २।६ तथा पात ३।२१ है। इनको तात्कालिक कल्पित करते हैं तो इन सायन सूर्य-चंद्र का योग छः राशि होता है। रवि २।२०+ चंद्र ३।१०= ६।० राशि। अतः यहाँ व्यतिपात संभव है। यहाँ रवि की गोल व अयन संधि ११।१६ तथा २।१६ है तथा चंद्र की ११।८।३७।३२ तथा २।८।३७।३२ है। यहाँ चंद्रमा २।२६ है। इसके आसन्न अयन संधि है उसको ग्रहण किया है। चंद्रमा को अयन संधि तुल्य मान कर स्फुट क्रांति साधन करने से १४१७ होती है।

अब तात्काल सूर्य की क्रांति ज्ञात करते हैं। जिस समय चंद्रमा स्वअयन संधि तुल्य होगा उस समय पर जो सूर्य होगा वह तत्काल सूर्य है। अभी अयनसंधि चन्द्र से कम है तब अयनसंधि से आगे वह कितने समय में गया? चन्द्र की स्व अयन संधि से उसकी अन्तर कला को चन्द्र की भुक्ति से विभक्त करने से प्राप्त दिन संख्या में वह स्वअयन संधि पर स्थित होगा यह ज्ञात होता है। यहाँ उदाहरण में चंद्रमा का स्वसंधि से अन्तर २०।२३ अंशादि (२।२६ – २।८।३७) है। इसकी कलाओं को चंद्र भुक्ति से विभक्त करे। यहाँ सरलता के लिए चंद्र भुक्ति (गति) ७८० मान लेते हैं तथा रवि की भुक्ति ६० मान लेते हैं। २०।२३ अंशादि की १२२३ कला में चंद्र भुक्ति ७८० का भाग देने से १।३४ दिनादि प्राप्त होते हैं। इतने काल में चंद्रमा अपने पूर्व स्थान से अयन संधि पर आ जावेगा। इतने काल में रवि चलेगा तब तत्काल रवि २।७।२६ होता है। इसकी क्रांति १४१० होती है। इससे चंद्र की स्वअयन संधि की क्रांति १४१७ क्रांति साम्य से अधिक है।

शिष्याधीवृद्दिद ग्रंथ के 'सूर्यापमादोजपदोद्भव' इत्यादि में कथित लक्षणों से क्रांति साम्य का अभाव है। तथा ब्रह्मगुप्त के पक्ष से 'त्रिनवगृहेन्दुक्रान्ति' इत्यादि अनुसार लक्षण होने से और सिद्धान्त शेखरोक्त 'त्रिनव भवनजाता क्रांन्ति' इत्यादि लक्षणों से एवं माधवाचार्य के सिद्धान्त चूडामणि ग्रंथोक्त

'खेरोजपदक्रान्तेश्चन्द्रयुग्मपदोद्भवा। स्वल्पा चेन्न तयोः क्रान्त्योः साम्यं स्यादन्यथा भवेत् ॥'' में कथित लक्षणों के अनुसार क्रांतिसाम्य का यहाँ अभाव है।

भास्कराचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में जो दो उदाहरण देकर यह दिखाने का प्रयास किया है कि उनके कथन के अनुसार तो पात होता है जो सही है लेकिन अन्य आचार्य जैसे लल्ल, ब्रह्मगुप्त, श्रीपति, माधवाचर्य आदि के कथनों के अनुसार पात का अभाव होता है। लेकिन उनका यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि अन्य आचार्यों ने, भास्कराचार्य स्वयं के द्वारा उक्त श्लोक ९ तथा के ९ $\frac{1}{2}$ अनुरूप ही अपने श्लोकों में कहा है जिनको भास्कराचार्य ने उद्धृत किया है। यथा–

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपात वैधृत्यधिकार में–

''सूर्यापमादोजपदोद्भवाच्चेद्युग्मादिजश्चन्द्रमसो लघीयान्।
अपक्रमः स्यान्न तदास्ति पातस्तदन्यथात्वेऽपमयोः समत्वम् ॥४॥
अयुग्मजश्चन्द्रमसोऽपमश्चेदपक्रमाद्भानुमतोऽधिकः स्यात्।
समोद्भवो वानधिकस्तदेतो निपातकालो भवितान्यथातः ॥५॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय १४ में—

''त्रिनवगृहेन्दुक्रान्तिर्मेषतुलादौ दिवाकरक्रान्तेः।
ऊना यावदभावस्तावद्भावोऽन्यथा चेति ॥३५॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ८ में—

''त्रिनवभवनजाता क्रान्तिरिन्दोर्यदाल्पा दिनकृदपमतः स्यान्मेषजूकादिजातात्।
नहि भवति तदा च क्रान्तिसाम्यं रविन्द्वोर्नियतमितरथात्वे जायते सम्भवोऽस्य ॥३॥''

माधवाचार्य द्वारा उक्त श्लोक पूर्व में यहाँ उद्धृकर दिया है।

भास्कराचार्य द्वारा उद्धृत इन पूर्वोक्त श्लोकों में हम देखते हैं कि इनमें सभी आचार्यों ने चंद्रमा के शर के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। अतः आचार्यों द्वारा कथित ये श्लोक पात होने न होने के लिए अनुमान ही दर्शाते हैं निष्कर्ष नहीं; जैसे कि भास्कराचार्य ने इनके अनुरूप ही अपना श्लोक कहा है। अतः भास्कराचार्य का आक्षेप न्यायसंगत नहीं हो सकता। यही विचार डॉ. डी. अर्कसोमायजी के हैं। इसकी उपपत्ति अग्रिम श्लोक की उपपत्ति में देखें।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''क्रान्त्योर्युतिरेकदिक्कयोर्विवरं भिन्नदिशोस्तु वैधृते।
विवरं समदिक्कयोस्तयोर्व्यतिपातेऽन्यदिशोः समागमः।।६।।
प्रथमः स तथापरो युतै रहितैष्टघटीफलेन तैः।
गतयोरथवापि गम्ययोर्विवरं संयुतिरन्यथा तयोः।।७।।
प्रथमेष्टघटीवधेऽमुनाविहृते लब्धघटीमितेऽन्तरे।
पातः प्रथमेगतागते गतगम्यः प्रथमारव्यकालतः।।८।।''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''क्रान्त्योर्युतिरन्यदिशोरेकदिशोरन्तरं व्यतीपाते।
एक दिशोर्युतिरन्तरमन्यदिशोर्वैधृते प्रथमः।।३९।।
एवं द्वितीय राशिर्युतहीनैरिष्ट नाडिका स्वफलैः।
एष्यादतीतं वा यदि राशिद्वयमपि तदन्तरकम्।।४०।।
छेदोऽन्यथा तदैक्यं घातस्येष्टघटिका प्रथमराश्योः।
फलघटिकाभिर्मध्यं द्वयोरपि प्रथमराशिवशात्।।४१।।''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में अध्याय ८ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''क्रांत्योर्योगो विसदृशदिशोरन्तरं चैकदिक्त्वे पूर्वो राशिर्भवति नियतं स व्यतिपातयोगे।
आशैत्वे युतिरपमयोर्वैधृते भिन्नदिक्त्वे भेदो यः स्यात् सच कथितवत् यातयेयोऽवधार्य।।
अभिमतघटिकाप्त्या चानुपाताद्युतोनैरिनहिमकरपातैः प्राग्वदन्योऽपि साध्यः।
द्वितयमिदमतोतंभाविवास्यात् तदा तद्विवरमपरथा चेत् संयुतिश्छेदकः स्यात्।।
प्रथममथ घटीनामाहतेः पातमध्यं भवति फलघटीभिः पूर्वराशेर्वशेन।
विगतमथ भविष्यत् तद्वदेवेष्टनाडी फलरहित युतैस्तैश्चासकृत्कर्मणैव।।''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

तत्क्रान्त्योर्भिन्नदिशोरैक्यं तुल्याशयोर्विवरमाद्यः।
व्यतिपातेऽथ व्यस्तो ज्ञेयोऽसौ वैधृतेपाते।।५।।
लक्षणवद्यातैष्येष्ट घटीभिरिनामृतांशुशशिपातान्।
सञ्चाल्यादौ साध्यौ प्राग्वत् स्यादुत्तरस्ताभ्याम्।।६।।
आद्योत्तरयोस्तुल्ये चिन्हे भेदाद्धरोऽन्यथा योगात्।
आद्यप्रागिष्टघटीघात तेनोद्धरेत् फलघटीभिः।।७।।

मध्यमकालादाद्यवदेष्यगतो मध्यमः पातः।
कथितवदस्मात् साध्ये ह्युत्तर आद्यस्त्विहाद्यश्च॥८॥

एवं पातमध्यमभिधायेदानीं पाताद्यन्तकालपरिज्ञानार्थमाह—

मानैक्यार्धं गुणितं स्पष्टघटीभिर्विभक्तमाद्येन।
लब्धघटीभिर्मध्यादादिः प्रागग्रतश्च पातान्तः॥१५॥
तात्कालिकैः पृथक् पृथगाद्यं प्राग्वत् प्रसाध्य तेन भजेत्।
मानैक्यार्धेन हता असकृत् स्थितत्यर्धनाडिकाः स्पष्टाः॥१६॥

पातमध्य ज्ञात करके अब पातका आदि अन्त काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य-चंद्र के मानैक्यार्ध (ग्रहण की भांति) को स्पष्ट घटी (श्लोक ११ से १४ में कहे अनुसार प्राप्त) से गुणा करके पूर्व प्राप्त 'आद्य' संज्ञक से विभक्त करने से प्राप्त घटी पात मध्य काल से पूर्व पात आरंभ काल तथा पातमध्य से पात अन्त काल को दर्शाती है अर्थात् प्राप्त होती है। इस प्रकार ये स्थित्यर्ध घटियाँ होती हैं। आदि और अंत कालिक पृथक-पृथक् तात्कालिक चन्द्रसूर्य पात ज्ञात करे। पुनः इनसे प्राप्त स्थिति अर्ध को साठ से विभक्त करके भुक्ति से गुणा करने से प्राप्त स्व-स्व फल को पातमध्य कालिक घटि में एक स्थान पर घटावे तथा दूसरे स्थान पर योग करे। फिर इन तात्कालिक चंद्र-सूर्य की क्रांति ज्ञात करके पूर्ववत् उनका अन्तर 'आद्य' संज्ञक कल्पित करे। इस आद्य से मानैक्यार्ध गुणित इष्ट घटी में भाग देने से स्थिति अर्ध नाडियाँ स्पष्ट होती हैं। इस प्रकार असकृत कर्म करे जब तक स्थित्यर्ध नाडियाँ स्थिर हो जावे। इस प्रकार पृथक्-पृथक् प्राप्त इष्ट काल से दूसरा ज्ञात करके स्फुट स्थित्यर्ध ज्ञाते करे।

उपपत्ति— श्लोक १५-१६ की उपपत्ति इस प्रकार है। व्यतिपात होने पर जब चंद्र-सूर्य के अहोरात्रवृत्तों का अंतर समाप्त हो जाता है तब व्यतिपात मध्य होता है। जब तक चंद्र-सूर्य मंडल केन्द्रों का उत्तर-दक्षिण अन्तर उनके बिंब मानार्ध से अल्प होता है (ग्रहण स्थित वत) तब तक पात (काल) होता है। पूर्वोक्त श्लोक ११ से १४ से जो समय ज्ञात किया जाता है वह पातकाल का मध्य होता है और जब तक किसी एक के बिंब के उच्चतम बिन्दु की क्रांति दूसरे के बिंब के नीचतम बिंदु की क्रांति बराबर रहती है और जब से एक के नीचतम बिंदु की क्रांति दूसरे के उच्चतम बिंदु की क्रांती तुल्य होती है। इन दोनों स्थितियों के मध्य के काल को पात का काल (ग्रहणकाल वत) कहते हैं अर्थात् वह समय जब तक पात रहता है।

अतः पात का यह काल ज्ञात करने के लिए अनुपात किया कि यदि दोनों की क्रांति का योग अथवा अंतर (उनकी दिशानुसार) (पूर्वोक्त श्लोक ११ से १४ अनुसार) तुल्य दूरी पूर्व प्राप्त स्पष्ट घटी में शून्य होता है तो उनके बिंबमान योगार्ध तुल्य दूरी कितने समय में शून्य होगी ?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{इष्टघटी} \times \text{मानैक्यार्ध}}{\text{आद्य}}$$ =पातकाल। यही आचार्य ने श्लोक में कहा है।

अब श्लोक ११ से १४ की उपपत्ति कहते हैं। माना कि व्यतिपात होने के पश्चात हमने सूर्य-चंद्र की क्रांति ज्ञात की जिनसे पूर्वोक्त प्रकार से यह पता चला कि व्यतिपात हो चुका है। माना कि चंद्र की क्रांति सूर्य की क्रांति से अधिक है तथा वह लगातार कम होती हुई सूर्य क्रांति के तुल्य हो जावेगी तब व्यतिपात होगा भविष्य में। लेकिन यदि चंद्र क्रांति सूर्य क्रांति से अल्प हो तथा लगातार कम हो रही हो तो इसका अर्थ है व्यतिपात हो चुका है। इस प्रकार यह ज्ञात करके कि व्यतिपात हो चुका है अथवा आगे होगा किसी इष्ट समय पश्चात् सूर्यचंद्र की क्रांति ज्ञात करे तथा योग अथवा अंतर पूर्वोक्त प्रकार से करे। यह योग अथवा अन्तर उन दोनों के अहोरात्र वृत्तों के बीच की दूरी के तुल्य होता है। माना पहली दूरी जो ज्ञात की है वह 'आद्य' है तथा दूसरी इष्ट समय पश्चात् दूरी जो ज्ञात की है वह 'अन्य' है। हमको व्यतिपात आगे होने की स्थिति का अध्ययन करना है अतः आद्य से अन्य अल्प होगा क्योंकि उनका अन्तर शून्य हो जावेगा। आद्य और अन्य का अन्तर ज्ञात किया तथा अनुपात किया कि यदि आद्य और अन्य के बीच में कल्पित इष्ट समय में सूर्यचंद्र के अहोरात्र वृत्त का अन्तर आद्य-अन्य के तुल्य होता है तो आद्य तुल्य अन्तर को समाप्त होने में कितना समय लगेगा ?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{आद्य} \times \text{इष्ट समय}}{\text{आद्य} - \text{अन्य}}$$ = पात होने में शेष समय।

इस प्राप्त समय के पश्चात पुनः क्रांतियाँ ज्ञात करे तथा असकृत कर्म पुनः पुनः करके पात होने का स्फुट समय ज्ञात करे।

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''तात्कालिकैर्ग्रहैरसकृदिष्टघटिकाफलोनयुक्तैस्तैः।
प्राग्वत्प्रथमश्छेदः प्रमाणयोगर्धलिप्तानाम्॥४२॥

इष्ट घटिका गुणानामसकृत फलनाडिकाभिराद्यन्तौ।
व्यतिपातवैधृतानयनमन्यतन्त्रेषु न ब्राह्यात्॥४३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्थितिरभिमतनाडीताडिते मानयोगे प्रथमविभजिते स्यात् तन्निवृत्तिः प्रवृत्तिः।
स्थितिदलयुतहीने मध्यकालेऽथ तस्मिन् फलमुदित मनन्तं दानहोमादिषुज्ञैः॥"

सूर्य सिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविन्दुमानयोगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत्।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाऽऽप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत्॥१४॥
पातकालः स्फुटोमध्यः सोऽपि स्थित्यर्धवर्जितः।
तस्य सम्भवकालः स्यात् तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः॥१५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तात्कालिकैरसकृदिष्टघटीफलोनयुक्तैस्तथा प्रथम राशिरनेन भक्तम्।
मानैक्यमिष्टघटिकाहतमाप्तनाडयः पातस्थितिर्ग्रहणवत् प्रथमान्त्यकालौ॥६॥
चन्द्र सहस्रकरमण्डलमेकर्गाद्येन प्रयाति समयेन समस्तमेव।$\frac{9}{2}$।"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तत्स्थिरकाले मध्यं स्फुटघटिकामानयोगदलघातः।
हरभक्तः स्थितिघटिका ग्रहणवदत्रापि सुस्थिरात् कालात्॥११॥"

अथ स्थित्यर्धोपपत्तिरूपं श्लोकमाह—

तावत् समत्वमेव क्रान्त्योर्विवरं भवेद्यावत्।
मानैक्यार्धादूनं साम्याद्बिम्बैकदेशजक्रान्त्योः॥१७॥

स्थित्यर्ध उपपत्ति रूप श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— जब तक क्रान्त्यन्तर मानैक्यार्ध से अल्प होता है उस स्थिति में बिम्ब के एक प्रदेश जनित क्रांति का साम्य (तुल्य) होता है। तावत्काल पर्यन्त उसका फल (पात जनित) फलादेश करने वाले मुनियों ने कहा है।

अर्थात् जब तक रवि और चन्द्र का मण्डलान्तर एक स्थानगत होता है यानि समान क्रान्तिजनक मण्डल स्पर्शरूप, केन्द्राभिप्रीयक क्रान्त्यान्तर मानैक्यार्ध

के बराबर होता है तब तक ही यह संभव होता है क्योंकि बिम्बैक देशज क्रान्ति बराबर है।

विशेष— यहाँ जो बात कही गई है। यही बात हमने पूर्व श्लोकों की उपपत्ति में सिद्ध की है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कही है। यथा–

"रवि बिम्बमेकमार्गच्छशि बिम्बापक्रमे भवति यावत्।
तावत्फलं तदुक्तं तदभावे तत्फलाभावः ॥४४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भानोर्बिम्बंतुहिनकिरणापक्रमेणैकमार्गे यावत्तावन्मुनिभिरुदितः सम्भवस्तत्फलस्य। तस्याभावे भवति नियतं तत्फलस्याप्यभावो यत्रोद्वाहादिषु पुनरिह द्युत्रयंनैवदुष्टम्॥"

सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वं कर्मविनाशकृत्॥१७॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में कहा है कि जब तक चंद्रमा तथा सूर्य का अहोरात्रवृत्त एक ही होता है तब तक का काल पात काल होता है। इसका अर्थ आचार्योक्त कथन ही है। पूर्व श्लोकों की उपपत्ति से ये स्पष्ट हो जाता है। अतः लल्ल ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"चन्द्रसहस्रकरमण्डलमेकमार्गादूयेन प्रयाति समयेन समस्तमेव।६ $\frac{१}{२}$।"

अथ विशेषमार्यात्रयेणाह—

स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेः।
ऊना तयोस्तु विवरं मानैक्यार्धाद्यदाल्पकं भवति॥१८॥
ज्ञेयं तदेव मध्यं पातस्यापक्रमान्तरं चाद्यः।
तस्मादिष्टघटीभिः प्राक् पश्चाच्चापरौ साध्यौ॥१९॥
आद्यान्यान्तरभक्तं मानैक्यार्धाद्ययोस्तदा विवरम्।
इष्टघटीभिः क्षुण्णं स्थित्यर्धे स्तः पृथक् पृथक् स्पष्टे॥२०॥

तीन श्लोकों में विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— पातभावाभाव लक्षणोक्त अनुसार स्वअयन संधि पर

स्थित चंद्र की क्रांति यदि तात्कालिक सूर्य की क्रांति से अल्प हो तो क्रांति साम्य का अभाव होता है। अर्थात् पात का अभाव होता है (श्लोक ७) यही यहाँ विशेष है, जब तक उनकी क्रांति का अन्तर भी उनके मानैक्यार्ध से अल्प हो तब तक पात होता है यह ज्ञात होता है। उस पात का मध्य कब होता है उसके लिए कहते हैं; जिस समय पर चंद्रमा स्वअयन संधि पर होता है वह काल पात मध्य होता है। उनकी क्रांति के अन्तर को 'आद्य' कल्पित करे। फिर उस काल से आगे तथा पीछे किसी इष्ट घटी पर चलित उनकी पृथक-पृथक क्रांति का अन्तर साधित करे उसकी 'अन्य' संज्ञा है। इस आद्य तथा अन्य के अन्तर से मानैक्यार्ध और आद्य के अंतर को इष्टघटी से गुणा करके भाग देवें। वह एक स्थिति अर्ध है। इसी प्रकार अन्य से दूसरा ज्ञात करे।

उपपत्ति— इष्ट घटी में सूर्यचंद्र की क्रांति का अन्तर इतना होता है। आद्य और अन्य के अन्तर तुल्य इष्ट घटी में संबंधित क्रांति अंतर होता है। इतने क्रांति अंतर में इष्ट घटी प्राप्त होते हैं तो आद्य ऊनित मानैक्यार्ध तुल्य अंतर में कितनी होगी? इस प्रकार आचार्योक्त उपपन्न होता है।

यहाँ चन्द्रमा के अहोरात्रवृत्त तथा अयनान्त में जो अंतर है वह आद्य ऊनित मानैक्यार्ध तुल्य होता है। अतः आचार्योक्त ''आद्यान्यान्तरभक्तं मानैक्यार्धाद्ययोस्तदा विवरम्'' उपपन्न हुआ।

इदानीं पातप्रयोजनमाह—

पातस्थितिकालान्तर्मङ्गलकृत्यं न शस्यते तज्ज्ञैः।
स्नानजपहोमदानादिकमत्रोपैति खलु वृद्धिम्॥२१॥

पात प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि पात स्थिति काल में मंगल कार्य नहीं करने चाहिये उनका त्याग करना चाहिये क्योंकि उनका नाश हो जाता है। लेकिन तीर्थादि स्नान, जप, होम, दान आदि कर्म इस काल में करने से उनके पुण्य की वृद्धि होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त बात ही कही है। यथा-

''रवि बिम्बमेकमार्गच्छशि बिम्बापक्रमे भवति थावत्।
तावत्फलं तदुक्तं तदभावे तत्फलाभावः॥४४॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा-

"भानोर्बिम्बं तुहिन किरणापक्रमेणैकमार्गे यावत्तावन्मुनिभिरुदितः सम्भवस्तत्फल्स्या। तस्याभावे भवति नियतं तत्फलस्याप्यभावो यत्रोद्वाहादिषु पुनरिह द्युत्रयं नैवदुष्टम्॥"

सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः॥
एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्म विनाशकृत्॥
स्नानादान जपश्राद्धव्रत होमादिकर्मभिः।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महाभास्करीय के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"एषा पातदिगुक्तोत्सर्गनिषेधादिहान्यदूह्यं च।
क्रान्त्योः साम्य नेष्टं मङ्गलकार्ये जपादिके शस्तम्॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के वैधृति व्यतिपाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"चन्द्रः सहस्रकरमण्डलमेकमार्गाद्येन प्रयाति समयेन समस्तमेव।
पुण्यः स दानजपहोमविधावनिष्टो यात्रादिकेषु हि दिनत्रयमत्र दुष्टम्॥१०॥"

समाप्तोऽयं ग्रहगणिताध्यायः

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के पाताधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥